प्रकाशकः :

श्री विजयचन्द जरगड चौहरी वाजार, डेननीबाने, पन्सारी के उपर, चयपुर-3.

अयनावृत्ति - 1000

मूल्य : 19

मुहक :

वैशाली प्रिटिंग प्रेस, स्वयुर-3.



जैन योगीन्द्र श्री ग्रानन्दघनजी

# ग्रद्भुत योगी ग्रानन्दधन

१७वीं सबी के महार् सन्त. श्री ग्रानन्वयनजी म० जिन्होंने भेव जान के द्वारा जड़ चेतन का पृथक् करण किया. जिनके जीवन में हर क्षण ब्रात्नानुभूति बीप जनता रहा, जिन्होंने ब्रागम व तिगम को ब्रात्ममात किया, व योग साबना के द्वारा भौतिक परार्थों के प्रभाव में हिमालय वत छंचे उठ गये। सम्यम् ज्ञान, दर्शन एवं ग्राचर्ग्य ही जिनके जीवन का कार्य क्षेत्र वन रया, स्वरूपस्य नाधना ने मर्वया प्रतिवन्ध मुक्त वना दिया । रह-कर्ण व रन्त-क्या को मम देखने वाले प्रदमुत योगी ग्रानन्वयन समस्त भौतिक दिव्य पदार्थी को उपेक्षित मार से देन उन्हें पुद्गत समस्द देना अनदेना कर देने थे। क्योंकि मावकीय जीवन में इबर-उबर देखे विना निरम्नर बहुने रहना ही माध्क का सर्वोग्निर कर्तव्य है। यही स्थिति प्रातन्त्रवनजी महाराज को महत दरलब्द थी, जिसकी प्रमिष्यक्ति दनकी रचनाग्री में अनेक जगह मंकेत रूप में व्यक्त है। प्रतृन्तिज्ञस्य जन्त स्वंचना बीतराग स्वका को मनम्पाने मे धनमोल हीरे हैं. वे सबयं तो मावना के द्वारा ग्रमर पद बरेंगे ही किन्तु उनका पर "अब हम असर सबे ना मरेंगे" र्याद समस्त्रर गायेगा और इसके मार्कों की रहराई को सममेगा तो निश्चित मुक्त बनेगा। एक क्या अनेक ऐसे पद हैं जिनमें जिनवासी के सागर को अपनी कविन्त्र शक्ति के द्वारा वाक्य रूप गागर में भर दिया । दे दीनराग न्दरूप को समकाने दाले उनके स्नदन, पद प्रादि रुक्तार्थे भी प्रभर एवं देने में सर्देश मक्षम हैं।

्षेत्रेश्चानन्द्रवन्द्री महाराज की रचनार्थे सावकों की अनुपन थाती है. हो मांध्रकों को प्रवत्त प्रेर्डा देकर साध्य के प्रति लागरक रचती हैं. लिनवाड़ी को सनम्कर सनमाने वाले साध्य दन-मानम का प्रमन्त उपकार करते हैं। स्व० श्री उनरावचन्द्रजी जरगढ़ जिनकी रुचि आध्यात्मिक भजनों के प्रति विशेष रहती थी, प्रानन्द्रम-भजनावनी का हिन्दी में अर्थ करके उन्होंने नी मारी पुन्योतार्वन किया है, उनका परिश्रम ग्राड सफल हो रहा है. इनकी प्रमन्तता।

प्र० विचक्षराश्री



पुनीत स्मृति में श्रद्धांजिल स्वरूप प्रकाशित

#### स्व० श्री उमरावचन्दजी जरगढ

## संक्षिप्त जीवन परिचय

श्री उमरावचन्दजी का जन्म सम्वत् १६५६ श्रावणा शुक्ला १० बुधवार को जौहरीश्री प्रेमचन्दजी के किनण्ठ भ्राना श्री नेमीचन्दजी जरगड़ के यहां हुग्रा। ग्राप श्री जैन श्वेनाम्वर श्रीमाल जाति के जरगड़ गौत्र के थे। १० वर्ष की ग्रायु में ग्रापका विवाह सुश्री उमराव कवेंर सुपुत्री श्री मदनचन्दजी टांक के साथ हुग्रा। ग्रापने रत्न उद्योग की शिक्षा श्री रतनलालजी फोफिलिया से प्राप्त की तथा ग्रपने पैनृक व्यवसाय में सफलता पूर्वक कार्य करते रहे। ग्रापकी शिक्षा मैट्रिक नक होते हुए भी ग्रापकी ग्रामित्त ग्रह्मययन में रही ग्रीर ग्राप साहित्य, जैन-दर्णन, ग्रायुवेंद, ज्योतिप, होमियोपेथी ग्राटि में ग्रह्मययन-रत रहे। ग्रापकी जैन-दर्णन एवं ग्रह्मयातम में विशेष कचि रही। ग्रापका सम्पर्क विभिन्न विद्वानों साधुग्रों एवं पण्डितों से रहा। श्री ग्रगरचन्दजी नाहटा के सम्पर्क में ग्राने से तथा उनकी प्रेरणा में ग्राप लेखन कार्य भी करने लगे। समय समय पर इनके द्वारा सम्पादित एवं लिखन पुस्तकों प्रकाणिन हुई, जिनकी सूची इस पुस्तक के ग्रन्त में दी गई है।

स्वगंवास के चार वर्ष पूर्व मे ही शारीरिक ग्रस्वस्थता के कारण ग्रापके कई ग्रन्य ग्रंथ ग्रन्तूरे व ग्रप्रकाशित रह गये थे। प्रस्तुत ग्रंथ उन्हीं में से एक है। इस ग्रंथ को श्री महतावचन्दजी खारैंड ने श्री ग्रगरचन्दजी नाहटा के सहयोग से पूर्ण किया है।

व्यापार, श्रद्ययन, लेखन व मनन के साथ-साथ श्रापकी श्रीमाल सभा, ज्वैलर्स एसोसियेशन ग्रादि सामाजिक कार्यों मे भी रुचि रही है। श्रापका स्वर्गवास म० २०२८ के माह सुदी ५ (वसत पंचमी) के शुभ दिन में हुशा।

श्रापकी धर्म पत्नी बड़ी धार्मिक प्रवृत्ति की है। श्रापकी स्मृति में श्रापके मुपुत्र विजयचन्दजी ने इसे प्रकाणित कर एक बहुत ही उपयोगी कार्य किया है।

## ग्रपनी बात

सन् १६५८-५६ की वात है। स्व॰ श्री उमरावचंदजी जरगड योगीराज श्रानन्दघनजी के पदों का श्रर्थ लिख रहेथे, तव उन्होंने मुफे श्रपने कार्य में सहयोग देने को कहा। वे बहुत कुछ कार्य कर चुके थे। बहुत कुछ वाकी था। उन्हीं दिनों में श्री देवचंदजी महाराज की चौवीसी सार्थ के सम्पादन का कार्य भी चल रहा था। वह समाप्ति पर था। पहिले चौबीसी का कार्य पूर्ण कर प्रेस में दिया गया। वह छपकर तैयार हो गया। श्रव नियमित रूप से श्री श्रानन्दघन-पदावली का कार्य चलने लगा।

स्व० श्री जरगडजी के पास 'ग्रानन्दघन-पदावली' की हस्तलिखित पांच प्रतियाँ थीं ग्रीर दो प्रतियाँ गुजराती भाषा में मुद्रित थीं। मुद्रित प्रतियों में प्रथम प्रति श्री मोतीलाल गिरघरलाल कापडिया द्वारा सम्पादित थी जिसमें केवल ५० पदों पर ही विस्तृत व्याख्या थी तथा दूसरी मुद्रित प्रति ग्राचार्य श्री बुद्धिसागर सूरीक्वर द्वारा सम्पादित थी जिसमें १०७ पदों पर व्याख्या थी।

श्री जरगडजी ने इन्हीं पुस्तकों के ग्राघार पर 'ग्रानन्दघन-पदावली' का पाठ निश्चित किया ग्रीर पाठान्तर दिये। जो पाँच प्रतियाँ हर्रालिखित थीं उनमें से कौन-कौनसी प्रति कव-कव की लिखी हुई थी, इसका पता उनके स्वर्गस्य हो जाने से श्रव नहीं लग सकता। पदावली का ग्रथं लिखते समय तो संभव है यही विचार रहा होगा कि भूमिका लिखते समय इस पर विचार कर लिया जावेगा। ६० पदों का कार्य पूर्ण-रूपेण सम्पन्न हो चुका था। जितने पद उनके संग्रह में थे उनके शब्दार्थ, पाठान्तर ग्रीर ग्रथं पृथक् लिख लिये, गये थे। ग्रचानक ही श्री जरगडजी को व्यापारार्थं जयपुर से वाहर जाना पड़ा ग्रीर काम स्थिगत करना पड़ा। तत्पश्चात् जयपुर जब-जव वे ग्राये, तब-तव वे सप्ताह से ग्रधिक यहाँ नहीं ठहरे। इसी मध्य उनका माल बम्बई में खोया गया, इससे वे ग्रधिक चितित हो गये ग्रीर चित्त पर इसका गहरा ग्राघात लगा ग्रीर भी ऐसे कई कारण वने जिससे वे स्वस्थ चित्त नहीं रह संके। समय

निकलता गया । ग्रन्त में वे रुग्ए हो गये । इससे फिर उन्हें रोग-मुक्ति काल ने ही दी ।

सन् १९६९ ई० में मेरे मित्र स्व० श्री जतनमलजी लुगावत ने मुभे श्रानन्दघनजी की पदावली के दो भाग श्री मोतीलाल गिरघरलाल कापिडिया द्वारा सम्पादित देकर उन्हें श्राद्योपान्त पढ़ने की प्रेरणा दी। मैंने दोनों भाग पढ़े। श्री कापडियाजी ने १०८ पदों का बहुत ही सुन्दर विवेचन किया है। श्री जतनमलजी ने कहा कि ये सब गुजराती में हैं। ग्रपने लोगों को समभने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि हिन्दी में यह प्रयास किया जावे तो हिन्दी भाषा भाषियों के लिए एक ग्रन्छी ग्राध्यात्मिक वस्तु मिल सकती है। मैंने श्री जरगडजी के प्रयास की वात कही कि उसमें थोड़ा ही कार्य वाकी है। यदि पांड्रलिपि मिल जावे तो उसे पूर्ण किया जा सकता है। तदन्तर श्री जरगडजी की घर्म-पत्नी से पूछ-ताछ ग्रीर तलाश के पश्चात ज्ञात हुग्रा कि वह पांडुलिपि कोई ले गया, जिसका कुछ पता नहीं है ग्रीर श्री जरगडजी इस स्थिति में नहीं थे कि वे कुछ बता सकें। ग्रतः निराश होकर मैं चुप बैठ गया। मेरे पास इस सम्बन्ध की कोई सामग्री नहीं थी। जो थी वह मैं पहिले ही थी जरगडजी को दे चुका था। ग्रन्त में एक वर्ष पश्चात् श्री जरगडजी की पत्नी ने मुक्ते बुलाकर सूचित किया कि इनके लिखे हुए 'ग्रानन्दघनजी' के पद मिल गये हैं। मैंने उन्हें देखा कि सब मेरे ही लिखे हुए थे। स्रव वाकी सामग्री की तलाश थी। काफी परिश्रम करके वह सामग्री एकत्रित की गई श्रीर उसे सुरक्षित रख दी। यह सब सामग्री सन् १९७१ के ग्रगस्त मास में मिली थी। इसके पश्चात इसका कार्यं ग्रारम्भ कर दिया गया जी ग्रापके सन्मुख प्रस्तुत है।

श्री जरगडजी से प्राप्त सामग्री देखने से ज्ञात हुग्रा कि उन्होंने चौबीसी ग्रीर पदावली दोनों पर ही करीब-करीब ६० प्रतिशत कार्य कर दिया था। चौबीसी के छठे स्तवन श्री पद्मप्रभ जिन से १६वें स्तवन श्री ग्रर जिन स्तवन तक श्री जरगडजी ने बहुत ग्रच्छा ग्रर्थ लिखा है। बाकी के प्रथम पांच स्तवन में उनके संकेतानुसार मैंने ग्रर्थ लिखा है ग्रीर उन्नीसवें स्तवन से चौबीसवें स्तवन तक मैंने ग्रपनी मंद बुद्धि ग्रनुसार ग्रर्थ किया है। इसी प्रकार पदावली के ६० पदों पर तो उनका ही ग्रर्थ लिखा गया है ग्रीर श्रेप पदों पर मैंने ग्रर्थ लिखा

है। पदावली में बहुत से पद शंकात्पद तथा कुछ ग्रन्य कवियों के लगे उनका उल्लेख यथास्थान कर दिया गया है। जितने पद 'ग्रानन्दघन' नाम के मिले वे सब ही इस पदावली में सम्मिलित कर लिये गये हैं ग्रौर उनसे सम्बन्धित सूचनायें उन पदों के साथ ही दे दी गई है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में यह प्रथम ही प्रयास है। ग्रभी इसमें संशोधन की काफी गुंजाइश है।

### पदावली तथा भ्रन्य रचना

कपर लिखा जा चुका है कि श्री जरगडजी के पास पदों की हस्तलिखित प्रतियों की चार लिपियां थी। उन्हें मैंने पाठान्तर के लिये 'ग्र, श्रा, इ श्रीर उ नाम दिये हैं। 'ग्र' प्रति में ६६ पद, 'ग्रा' प्रति में ६० पद, 'इ' प्रति में ७७ पद श्रीर 'उ' प्रति में ६२ पद हैं। सं० १७५३ में लिखी हुई डेरागाजीखां की प्रति का उल्लेख श्री जरगडजी ने ग्रीर किया है। न तो उसकी प्रतिलिपि प्राप्त हुई श्रीर न यह जात हो सका कि यह प्रति किस महानुभाव से प्राप्त हुई श्री। उनके (श्री जरगडजी के) लेखानुसार इतना ही जात हुग्रा कि इस प्रति में १५-२० ही पद थे। यह प्रति मिल जाती तो इसमें संग्रहीत पदों का क्रम ज्ञात हो जाता ग्रीर यह भी निश्चय हो जाता कि ये पद श्री ग्रानन्दघन जी के ही हैं। कारण इसका यह कि यह प्रति श्री ग्रानन्दघनजी के स्वर्गस्थ होने के २०-२२ वर्ष वाद ही लिखी गई थी।

जितनी भी प्रतियां मिली हैं, उन सवका एक कम नही हैं, ग्रीर न उनमें पद संख्या ही समान है। किसी में ७७,-७८, किसी में ८० ग्रीर किसी में ६० पद मिलते हैं। श्री भीमसिंह मागोंक ने सर्वप्रथम १०८ पदों का संग्रह करके स. १६४४ वि. में 'ग्रानंदघन 'वहुत्तरी' के नाम से प्रकाशित किया था। इसके पश्चात इसी कम ग्रीर पदों की संख्या से श्री मोतीलाल गिरधर लाल कापड़ियाजी तथा श्राचार्य श्री बुद्धिसागरजी ने पदों की विस्तृत ज्याख्या कर प्रकाशित कराया है। इन प्रकाशित पदावलियों में ग्रन्य कियों के भी पद ग्रानंदघनजी का नाम देखकर सम्मिलत कर लिये गये हैं, इससे वास्तविक पदों की संख्या ज्ञात करना कठिन ग्रीर ग्रत्यन्त परिश्रंम साघ्य हो गया है।

### पदसंख्या व नाम

श्री ग्रानंदधनजी के पदों का संग्रह तो 'बहुत्तरी' के नाम से ही ग्रधिक प्रसिद्ध है। इन पदों के प्रथम संग्रहकार और प्रकाशक ने १०८ पद संग्रह कर प्रकाशित किये, उसका नाम भी 'वहुत्तरी' ही रखा है। इससे यह तो संभव लगता है कि इन पदों के संग्रह का प्राचीन नाम 'वहुत्तरी' रहा होगा। ऐसा ग्रनु-मान होता है कि श्री भीमिसह माएों के के सन्मुख वहुत्तरी की कई प्रतियां थी। उन्होंने जिस प्रति में नयापद देखा, उसे ही ग्रपने संग्रह में सम्मिलित करके पदों की सं. १०८ करली। यदि वे सावधानी से छानवीन करते तो पदों की संख्या इतनी नहीं हो सकती थी श्रीर न श्री ग्रानंदघनजी के संबंध में जो श्रनगंत वार्ते उठाई गई हैं, वे ही उठती।

हमारे विचार में तो इन पदों की संख्या 'वहत्तर' से अधिक होने के कारगा यह है कि उन दिनों मुद्रगा जैसे साधन तो उपलब्ध थे नहीं, जिनसे प्रचार-प्रसार हो सकता था। एकमात्र साधन लोक-गायक और संतगरा जो देश में पूर्व से पश्चिम श्रीर उत्तर से दक्षिए। घूमते हुये जनता को भजन गाकर सूनाते थे। इस प्रकार पदों (गायनों ] का प्रचार-प्रसार सहज ही हो जाता था। मध्य-युग में जब भी किसी संत महात्मा का ग्राविर्भाव हुग्रा, धीरे धीरे उसका प्रभाव सवंत्र देश में फैल जाता था। यही कारण था कि सूरदास, कवीर, मीरां ग्रादि के भजन बंगाल, महाराष्ट्र ग्रीर गुजरात तक घर घर में फैल गये थे। ग्रच्छे भजनों को जनता भी सून सूनकर कंठाग्र कर लेती थी। समय समय पर इन भजनों को गाकर अपनी भक्ति प्रकट करने के साथ-साथ अपना मनोरंजन भी किया करती थी। यह भी होता था कि इन भजनो में प्रयुक्त शब्दों की स्थान विशेष के अनुसार काया पलट जाती थी। इसके साथ ही यह भी होता था कि पद किसी ग्रन्य का है ग्रीर विस्पृति के कारण किसी दूसरे के नाम चढ़ा दिया जाता था। यथा 'कहत कवीर सुनो भाई साबु'' या "मीरां के प्रभु गिरिघर नागर,, ग्रादि पद के ग्रन्त में जोड़कर पद समाप्त कर दिया जाता था। ग्रीर यह भी होता था कि कोई पंक्ति किसी की, कोई पंक्ति किसी की, गाकर ग्रंत में किसी प्रसिद्ध पदकर्ता का नाम रखकर पद पूर्ण कर दिया जाता था। इसका परिखाम यह हुया कि पदावलियों में भ्रनेक पाठ भेद हो गये और भ्रन्य पद-कत्तीं को पद ग्रन्य पद कर्ताग्रों के नाम से प्रसारित हो गये। यही घटना श्री ग्रानंदघनजी के पदो के साथ हुई। ग्रन्य कवियों के पद और उनकी शैली से भिन्न पद भी उनके नाम से प्रसिद्धि पा गये। लिखकर संग्रह करने वालों ने

जैसे जैसे सुना वैसे वैसे ही लिखकर संग्रह कर लिया। यही कारण है कि श्री आनंदधनजी के पदों का कम सब संग्रहों में समान नहीं है और नहीं उनकी संख्या समान है। हम यहाँ एक ग्रकारादि कम से प्राप्त पदों की सूची दे रहे हैं जिससे प्रकट होगा कि हमारे पास वाली किस प्रति में कौनसा पद किस संख्या पर है और किस प्रति में कितने पद हैं। प्रस्तुत पुस्तक [ग्रंथावली] में पदों की संख्या १२१ है ग्रीर उनका कम भी इसलिए पृथक हो गया है कि हमारी घारणा के अनुसार जो पद श्री ग्रानंदधनजी के हैं उन्हें प्रथम रखां गया है भीर जो पद उनके नहीं समक्षे गये उन्हें वाद में। वास्तव में होना तो यह चाहिये था कि विषयवार या राग या लयवार कम बनाया जाता किन्तु यह कार्य समय की काफी श्रपेक्षा रखता है। इधर पुस्तक प्रकाशित करने शीझता थी इससे यह नहीं हो सका।

श्री जरगडजी के संग्रह में श्री ग्रानंदघनजी की एक रचना "सिमितियों की ढालें" ग्रीर मिली है। वह भी दी जा रही है। यह रचना पूर्व में श्री ग्रगरचंदजी नाहटा द्वारा सम्पादित ग्रन्ट प्रवचन माता सन्भाय सार्थ ध्वी देवचंद सन्भाय माला भाग १ में प्रकाणित हो चुकी है। साथ ही श्री ग्रगरचंद जी नाहटा के संग्रह से प्राप्त ग्रानंदघनजी की दो रचनायें—[१] ग्रादिनाथ जिन स्तवन ग्रौर [२] चौबीस तीर्थं करों का स्तवन-ग्रौर दे रहे हैं। ये दोनों स्फुट रचनायें श्री ग्रानंदघनजीं के साबु जीवन स्वीकार करने के पश्चात कुछ वर्षों के बाद की लिखी हुई मालूम पड़ती हैं। इनकी प्राचीन प्रतियां नहीं मिलने से संदिग्ध भी हो सकती हैं। श्री नाहटाजी ने हस्तलिखित प्रतियों की खोज सर्वाधिक की है ग्रतः उन्हें ग्रप्रकाणित पद भी १५ ग्रौर मिले हैं।

### चौबीसी

श्री जरगड़ को संग्रह में चौदोसी की हैं प्रतियों को प्रतिलिपियाँ प्राप्त हुई। ये प्रतिलिपियें किस किस समय की प्रतियों की हैं, इसकी जानकारी मिलना अब ग्रसंनव है। इन प्रतिलिपियों को मैंने, 'ग्र' 'ग्रा' 'इ' 'ई' 'ठ' ग्रीर 'ऊ' से चिह्नित कर पाठ नेद दिये हैं। इनमें 'ठ' प्रति श्री ज्ञानविमलमूरि जी के टब्वेवाली है ग्रीर 'ऊ' प्रति श्री ज्ञानसारज़ी के टब्वेवाली है। इन प्रतियों में प्रयम प्रति १ नवीं सदी के ग्रीतिम चरण की ग्रीर दूसरी प्रति १६वीं सदी के नवें दशक की है।

चौदीसी के स्तवनों में वत्तीस स्तवन ही योगीराज थी प्रानंदघनजी के रिचत कहे जाते हैं। शेप ग्रन्तिम दो स्तवन-श्री पार्श्वनाय जिन स्तवन ग्रीर श्री महावीर जिन स्तवन—प्रन्य महानुमावों के 'श्रानंदधन' नाम से रचित हैं। हमने प्रस्तृत पुस्तक में श्री पार्श्वनाय भगवान के तीन स्तवन और श्री महाबीर मगवान के तीन स्तवन दिये हैं। दोनों ही जिनेन्वरों के तीन तीन स्तवन ही। जिनमें प्रयम २३ वां और २४ वां स्तवन-"श्रृवपटरामी हो स्वामी माहरा" ग्रीर वीरजी नै चरण लागू वीरपण्ं तें मांगू रें हैं। द्वितीय २३ वां ग्रीर २४वां स्तवन-"पास जिन ताहरा रूपन् मुक्त प्रतिभास किम होय रें" और "चरम जिलोसर विगत स्वरूपनूं रे, मावूं केम स्वरूप" है तया नृतीय २२वां श्रीर २४वां स्तवन-"प्रराम् पाद-पंकन पार्वना जस वासना झगम अनूप रे" ग्रीर "वीर डिलोसर परनेश्वर बयो जन जीवन जिन भूप" है। ये तृतीय स्तवन पं. मुनि श्री गव्यूलालजी की 'त्रानंदघन चौदीसी याने स्रव्यात्म परमामृत" के गुजराती प्रनुवादक पं. श्री मंगल जी उद्धवजी जास्त्री की पुस्तक से लिये गये हैं। ग्रतः हम उनके ग्रामारी हैं। इन स्तवनों के संबंध में इस पूस्तक में किसी प्रकार की नूचना नहीं दी गई हैं। हमने इन स्तवनों के ग्रयं के साय जो टिप्पणी वी है उसमें गलतफहमी के कारण मूल हो गई ग्रतः यहां उसका स्पष्टीकरण म्रावस्यक है। प्रयम २३ वां भ्रौर २४वां स्तवन "ब्रुवपदरामी" भ्रौर "वीरजी नै चरखें लागू" श्री झानसारजी के टब्बे के लेखानुसार तया श्री अगरचंदजी नाहटा के संप्रह की चौदीसी की एक प्रति-को सं. १८५७ की लिखी हुई है-के मनुसार श्री देवचंदजी महाराज रचित हैं। द्वितीय २३वां श्रीर २४वां स्तवन

"पाम जिन ताहरा रूपनूं" ग्रीर चरम जिलेसर विगत स्वरूपनूं रे" श्री ज्ञान-मार जी महाराज रचित है। नृतीय २३वां ग्रीर २४ वां स्तवन-- "प्रलामूं पाद-पंकज" ग्रीर "वीर जीलेमर परमेश्वर जयो" — िकसकी रचना है पता नहीं लगा। श्री ग्रगरचंदजी नाहटा का ग्रनुमान है कि ये दोनों स्तवन उपाच्याय श्री यजो-विजयजी महाराज के होने चाहिये। इस विषय में निष्चयात्मक वात नहीं कहीं जा सकती। यह ग्रागे की जोब का विषय है।

इस चौवीमी को पूर्ण करने के लिये अन्य महानुभावों ने भी प्रयास किया मानृम होता है। श्री ज्ञानिवमल सूरिजी ने अपने नाम मे दो स्तवनों की रचना कर चौवीसी पूर्ण की थी। यह चौवीसी श्री जिनदत्तमूरि पुस्तकालय जयपुर में मुरक्षित है। स्थानाभाव से उन स्तवनों को यहाँ देने में हम श्रसमर्थ हैं।

उपर लिखा जा चुका है कि बाबीस ही स्तवन श्री ग्रानंदयनजी के बनाये हुये है और परवर्नी दो स्तवन श्रानंदयनजी के नाम से ग्रन्य कियों ने बनाये है। श्री ग्रानंदयनजी ने बाबीम ही स्तवन क्यों बनाये, चौबीस पूर्ण क्यों नहीं किये। यह जिजासा उत्पन्न होती ही है। हमारे से पूर्व के चौबीसी संपादकों ने उम प्रग्न पर विचार किया है। स्वर्गीय श्री मोतीलाल गिरियर कापिडयाजी ने काफी उत्हापोह कर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है—"श्री ग्रानंदयनजी ने चौबीमी के स्तवन ग्रायु के उत्तर भाग में बनाये थे क्यों कि इन स्तवनों की गाना, उपना दिगय निरागण ग्रीर उनके दानम प्रयोगों को देखने से प्रौढ़ता स्तवनों में दिखाई पड़ती है वह पदों में नहीं है। यह प्रौढ़ता उन्हें उत्तर ग्रवस्था में प्राप्त हुई लगती है। इस उत्तर ग्रवस्था के भी ग्रंतिम भाग में इन स्तवनों की रचना हुई है। यदि वे उत्तर ग्रवस्था के भी ग्रंतिम भाग में इन स्तवनों की रचना हुई है। यदि वे उत्तर ग्रवस्था के भी ग्रंतिम भाग में इन स्तवनों की रचना हुई है। यदि वे उत्तर ग्रवस्था के भी ग्रंतिम भाग में वहीं खो होते तो चौबीमी को श्री ग्रानंदयनजी दो स्तवनों के लिये कभी ग्रयूरी नहीं छोड़ते। किन्हीं ग्रनिवार्य कारणों ने २३वां ग्रीर २४वां स्तवन वे नहीं बना पाये।" (५० पदों के प्रथम संस्करण की मूमिका पृ. ५०-५६)

इमी स्थान पर श्री कापित्याजी ने एक गंका श्रीर उठाई है—"श्री श्रानंटघनजी ने केवल इकवीस ही स्तवनों की रचना की थी। वावीसवां स्तवन उनका नहीं मालूम होता है। इस प्रकार इकवीस स्तवनों में श्रात्मा की उत्क्रांति वतानेवाले योगीराज जो बाकी के स्तवन लिखे होते तो श्रति विशुद्ध श्रात्मदणा भावों को बताने वाले और खास कर योग की अति उत्कृष्ट दशा सूचित करने वाले होते। बावीसवें स्तवन की वस्तु रचना, भाषा और विषय पूर्व स्तवनों से बिलकुल अलग पड़ जाते हैं। इकवीस स्तवनों तक जो लय चली श्रा रही थी उसका एकदम भंग हो जाता है। उसमें (बावीसवें स्तवन में) जो विषय लिया गया है, वह सामान्य किव जैसा है।"

यहाँ हम ग्रत्यन्त नम्र निवेदन करना चाहते है कि वावीसवें स्तवन में योगीराज ने राजुल (राजिमती) की वेदना का हृदयस्पर्शी वर्णन करते हुये, वताया है कि ग्रात्मा वैभाविक दशा से स्वाभाविक दशा की ग्रोर कैसे श्रयसर होती है। पश्चमों का ऋन्दन सुनकर श्री नेमिनाथ जब शोभायात्रा (बरात) में से रथ वापिस कर देते हैं, तब साध्वी राजिमती का हृदय विदीएं हो जाता है। इसका म्रत्यन्त मार्मिक वर्णन श्री योगीराज ने किया है। वह मन में विचारती है कि मेरा श्रीर प्रभु का संबंध तो श्राज का नहीं, श्रनेक जन्मों का है, फिर प्रभु ऐसा क्यों करते हैं। वे पशुग्रों पर तो दया दिखाते हैं ग्रीर मेरे कष्टों की ग्रीर जरा भी घ्यान नहीं देते हैं। जो विवाह ही न करना था तो सगाई-संबंध ही क्यों किया ? सगाई-संबंध करके लगन-विवाह न करने से तो मेरी गति श्रत्यन्त भयानक हो गई है। राजिमती का स्वयंवर नहीं हुन्ना था। माता-पिता की इच्छा को ही उसने शिरोधार्य किया था। राजिमती का जीवन अपने ढंग का निराला ही है। उस समय उसकी अवस्था भी बहुत नहीं थी, फिर भी वह एक सती साध्वी की तरह राज महलों के सुखों को ठुकराकर तुरंत अपने होनेवाले पित नेमिनाथ के पद-चिह्नों पर ग्रागे बढी। इधर भगवान ग्ररिष्ठ नेमिनाथ के भाई रहनेमिने अनेक प्रकार के भय दिखाये, प्रलोभन दिये, पर वह तो हृदय से भगवान ग्ररिष्ठ नेमिनाथ को वर्गा कर चुकी थी। सती साघ्वी के तेज के सन्मुख रहनेमि की पराजय हुई। ऐसी श्रपूर्व स्त्री रत्न का यदि कवि वर्णन न करते तो यह अपराघ हो जाता। श्री ग्रानंदघनजी जैसे महापुरुष उस सती को कभी भूल नहीं सकते थे। तीर्थं कर पत्नियों में जितना रोचक भाव पूर्ण ग्रीर उत्कृष्ट त्यागमय जीवन राजिमती का था वैसा अन्य किसी का नहीं था। ऐसी साघ्वी की वेदना का वर्णन न करना वास्तविकता से मुँह मोड़ना होता। श्री योगीराज का यह प्रेम-प्रसंग का रसमय वर्णन और दुखी हृदय की पुकार ही नहीं है बिल्क ग्राठों जन्मों से बने हुये संबंध को ग्रिषुण्ण बनाये रखने व पूर्णे श्रात्म समर्पण् का ग्रद्भुत एवं बेजोड़ वर्णन है। सच्ची साध्वी स्त्री का कार्य पित में दोप निकालना नहीं है किन्तु पित के पद- चिह्नों पर चलकर ग्रात्म समर्पण् है। पित जिम मार्ग जावे उसी मार्ग का ग्रनुसरण् पत्नी के लिये श्रेय-स्कर है। राजिमती ने यही किया ग्रीर स्वामी से पूर्व ही भव-बंधनों को तोड़ डाला ग्रीर मोक्ष में पित का स्वागत करने के लिये पिहले ही पहुँच गई। किव का इस प्रकार का वर्णन इनी बात का द्योतक है। ग्रात्मोत्क्रांति की भूमिका में जो बात प्रथम स्तवन में—"कपट रहित थई ग्रातम श्ररपण्। रे, ग्रानंदधन पद रह" कही है उसही की परम पुष्टि इस स्तवन में इस प्रकार की है-"सेवकपण् ते ग्रादरे रे, तो रहे सेवक माम। ग्राज्य साथे चालिये रे, ग्रेहिज रूडो काम।" इसमे बढकर कीन सा ग्रात्म समर्पण् होगा ? कीन सा त्याग होगा ? कीन सा योग होगा? संसार से मुक्त करानेवाला ज्यापार ही तो, समर्पण्, त्याग ग्रीर योग है।

ऐसे उच्चाणय वाले स्तवन पर श्री कापिड्या जी का शंका करना निरा-धार ही कहा जा सकता है।

कपर के विचार श्री कापड़ियाजी के चीवीसी तथा बावीसवें स्तवन के लिये उठाई गई गंका के सम्बन्ध में हैं। ग्रव श्री ग्रानंदघनजी की रचना-पदा-वली के एक ग्रन्य संपादक व विवेचक ग्राचायं श्री बुद्धिसागर सूरिजी के विचार दिये जाते हैं। ग्राचायं श्री का कथन है—"ग्रन्य दर्गनीय विद्वानों का कथन है कि प्रथम सगुगा की उपासना-स्तुति की जाती है, तत्पश्चात ग्राघ्यात्म ज्ञान में गहरे पैठने के पश्चाद निगुंगा की उपासना-भक्ति की ग्रोर ग्रग्नसर होना पड़ता है। यद्यपि इस प्रकार की गंली जैन विद्वानों में दिखाई नहीं देती है तथापि इस वात को माना जावे तो ग्रानंदघनजी ने गुजराती भाषा में चौवीसी की रचना की, फिर मारवाड़ में घूमते हुये लोगों के उपकाराथं ग्रजभाषा में पदों की रचना की।" श्रागे वे लिखते हैं—"एक दंत कथा सुनने में ग्राती है कि एक समय श्री ग्रानंदघनजी गंग्रुजय पवंत पर जिन दर्गन करने गये हुये थे। उन्हीं दिनों श्री ग्रानंदघनजी ग्रीर श्री ज्ञानविमलसूरिजी श्री ग्रानंदघनजी से मिलने के लिये ग्रगुंजय पर गये थे। श्री ग्रानंदघनजी एक जिन मंदिर में प्रभु की स्तवना

करने में लीन थे। ये दोनों महात्मा गुप्त रूप सं चीवीसी के स्तवन सुनने लग गर्ने। श्री यशोविजय जी का क्षयोपशम ऐसा था कि कोई भी वात एक दफा सुनने के पश्चाद् उसे अविकल वैसे की वैसे ही सुना सकते थे। इस प्रकार उन्/ांने २२ पदों को सुनकर याद कर लिये। वावीसवें स्तवन के वाद कुछ घ्विन सुनकर श्री ग्रानंदचनजी ने पीछे की ग्रोर देखा तो उन्हें श्री यशोविजयजी तथा श्री ज्ञानविमल सूरिजी दिखाई पड़े। इससे ग्रागे स्तवन वोलते हुये वे सकुचा गये ग्रीर फिर दो स्तवन नहीं वने।" ग्रागे ग्रपने विचार प्रकट करते हुये उन्होंने लिखा है--"हमारा ग्रपना विचार इस सम्वन्ध में ऐसा है कि श्री ग्रानंद- घनजी जहाँ जहाँ गये वहाँ वहाँ प्रसंगवश प्रभु-भक्ति के उल्लास से मिन्न भिन्न जिनश्वर देवों के स्तवन वनाकर चौवीसी की रचना की।"

वास्तिविकता यह क्या है ? वताना किठन है। हमारा अनुमान यह है कि श्री आनंदघनजी दीक्षित होने के पश्चात अध्ययन में लग गये। उनके गुरुजी ने उन्हें अच्छा शास्त्रममंत्र वना दिया। आरंभ में इन्होंने स्फुट विषयों और भिक्त पूर्ण रचनायें लिखी, जिसका प्रमाण इस ग्रंथावली में दी हुई समितियों की ढालें श्रीर कुछ अन्य गीतिकायें हैं। इसी प्रकार अन्य विषयों पर भी उनकी रचनायें होनी चाहिये। इस विषय पर गहरी खोज की जावेगी तो उनकी और भी कई रचनायें उपलब्ध हो सर्केगी।

श्री श्रानंदघनजी ने जहाँ जहाँ भी पद यात्रायें की, वहाँ वहाँ जन समूह को उपदेण देने श्रीर श्रपने श्रनुभव व्यक्त करने के लिये गूढार्थ पदों की रचना समय समय पर की। ये पद रचनायें जैन परम्परा में चली श्रा रही शैली में ही की है। जैन श्रागमों में इस शैली के स्थान स्थान पर दर्शन होते हैं। जैन श्रमणों का सर्वमान्य नवकार महामंत्र इस गूढार्थ शैली का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। इस महामंत्र में सर्वप्रथम ही "शत्रुश्रों को हननं करने वाले" को नमस्कार किया गया है। 'एामो श्ररहंताणाम्'। श्रिहंसा धर्म को सर्वोपिर स्थान देनेवालों ने शत्रुश्रों के मारने की बात कही, प्रकट में सुननेवालों को यह श्रटपटी लगती है। जब इसके वास्तिवक श्रथं की श्रोर घ्यान जाता है तो चित्त भित्त विभोर हो जाता है।

यह थी गूढार्थ जैली जैन मनिपियों की । श्री ग्रानन्दघनजी ने भी इसे श्रपनाया था । इस गैली में इन्होंने "बहुत्तरी" की रचना की । इसमें उन्हें यच्छी सफलता मिली। जनता इनके पदों की ग्रोर ग्रत्यधिक ग्राक्ट हुई। ये पद हमारे विचार से एक साथ नहीं बनाये गये थे। इनका रचना काल भी लम्वा मालुम पड़ता है। ऐसा लगता है कि समय-समय पर ग्रलग-ग्रलग स्थानों पर ये पद बनाये गये थे। चौबीसी की रचना पर विचार करने से तो यह श्रनुभव होता है कि चौबीसी की रचना के समय श्री ग्रानन्दघन जैन ग्रागम निप्णात हो चुके थे ग्रीर साधना के उत्कृष्ट मार्ग पर ग्रग्रसर थे। स्तवनों की गम्भीरता भी यही प्रकट करती है कि वह पूर्ण वयस्क तथा साधनारत थे। यह समय सं० १७०० के ग्रास पास ग्रथवा इससे कुछ ग्रधिक होना चाहिये। जबिक वह प्रौढ़ ग्रवस्था के लगभग होंगे। इनकी ग्रवस्था के सम्बन्ध में विचार करते हुये इनकी रचनाग्रों के सम्पादकों ने लिखा है—"यह उपाध्याय श्री यशोविजयजी के समकालीन थे ग्रीर श्री उपाध्याय जी का इनसे मिलन हुग्रा था। साथ ही श्री उपाध्यायजी से ये कुछ वयस्क भी थे। श्री उपाध्याय जी ने इनकी स्तुति में एक ग्रष्टपदी की रचना भी की थी, जो इस प्रकार है:—

### प्रथम पद राग-कानडो

मारग चलत चलत जात, आनन्दघन प्यारे रहत आनन्द भरपूर। ताको सख्प भूप तिहूँ लोक ते न्यारो बरषत मुख पर नूर।।१।। सुमति सखी के संग नित नित दोरत कबहुँ न होत ही दूर। 'जसविजय' कहे सुनो आनंदघन! हम तुम मिले हजूर।।२।।

#### द्वितीय पद

आनंदघन को आनंद सुजश ही गावत रहत आनंद सुमता संग।
सुमति सखी और नवल आनंदघन मिल रहे गंग-तरंग।।१।।
मन मंजन करके निर्माल कियो है चित्त, तापर लगायो है अविहड रंग।
'जसविजय' कहे सुनत ही देखो, सुख पायो भोत अभंग।।२॥

तृतीय पद, राग-नायकी, चम्पक ताल आनंद कोउ नहि पावै जोइ पावै सोइ आनंदघन ध्यावै । आनंद कौन रूप कौन आनन्दघन, आनन्द गुण कौन लखावै ।।१।। संहज सन्तोष आनन्द गुण प्रकटत, सब दुविधा मिट जावै। 'जस' कहे सोही आनन्दघन पावत, अन्तर ज्योति जगावै।।२।।

चतुर्थं पद

आनन्द ठोर ठोर नहीं पाया, आनन्द आनन्द में समाया। रित अरित दोउ सङ्ग लिये, वरिजत अरथ ने हाथ तपाया ॥१॥ कोउ आनन्दघन छिद्रहि पेखत, जसराश सङ्ग चिंढ आया । अ.नन्दघन आनन्दरस झीलत, देखत ही 'जस' गुण गाया ॥२॥

पंचम पद, 'राग-नायकी

आनन्द कोऊ हम दिखलावो । कहँ ढूंढत तू मूरख पंछी, आनन्द हाट न विकावो ॥ १॥ ऐसी दसा आनन्द सम प्रकटत, ता सुख् अलख लखावो । जोइ पार्व सोइ कछु न कहावत, 'सुजस' गावत ताको वधावो ॥ २॥

पष्ठ पद, राग-कानडो, ताल रूपक 🕟

आनन्द की गति आनन्द जाणे। बाहि सुख सहज अचल अलख पद, वा सुख 'सुजस' वखाने।।१।। सुजस विलास जब प्रकटे आनन्द रस, आनन्द अक्षय खजाने। ऐसी दशा जव प्रकटे चित अन्तर, सोहि आनन्दघन पिछाने।।२।।

सप्तम् पद

एरी आज आनन्द भयो मेरे, तेरो मुख निरख निरख ।

रोम रोम सीतल भयो अंग अंग ॥ ऐरी ॥

सुद्ध समझण समता रस झीलत, आनन्दघन भयो अनन्त रंग ॥ १ ॥

ऐसी आनन्द दशा प्रकटी चितअन्तर ताको प्रभाव चलत निरमल गंग ।

वाही गंग समता दोउ मिल रहे, 'जसविजय' सीतलता के संग ॥ २ ॥

### श्रष्टम् पद

थानन्दघन के संग सुजस ही मिले जव, तव आनन्द सम भयो 'सुजस'।
पारस संग लोहा जे फरसत, कंचन होत ही ताके कस ।। १।।
खीरनीर जो मिल रहे 'आनंद' 'जस' सुमित सखी के संग भयो हैएकरस।
भव खपाइ 'सुजस' विलास भये, सिद्धं स्वरूप लिये धसमस ।। २।।

इम अष्टपदी से कुछ वातें व्यनित होती हैं जिससे ग्रानंदवनजी की जीवन-यात्रा की भलक प्राप्त हांती है। प्रथम तो यह है कि जिस समय उपा-ध्याय यशोतिजय जी उनसे मिले उम समय आनन्दधनजी श्रानी उत्कृष्ट साधना मे रत थे और एकान्तवास में थे। वे तत्कालीन जैन साधु समाज को कदाग्रह, गच्छ भेद, ग्रीर संकृतित पंथों के भगड़ों में फैंग हुए देखकर वहत ही खिप्न मना हो गये थे। यह खिन्नता कई प्रकार से उन्होंने चाने स्तवनों में प्रकट की है — "चरम नयन करी मारग जीवतां रे, भून्यो सकल ससार"। "पुरुष परवर अनुभव जीवता रे, अन्धीअन्य पलाय," ( श्री अजितनाथ जिनस्तवन ) "गच्छा नां भेद वह नयन निहालतां, तत्त्वनी वात करतां न लाजे . उदर भरगादि निज काज करता थकां, मोहनडिया कलिकाल राजै<sup>17</sup> (श्रीग्रनंत-नाथ जिन स्तवन) इस लिम्नता के साथ ही उनके यह उद्गार भी मनन योग्य हुँ--- "वानी दूंगर ब्राडा ब्रति घणा, तुज दरसण जगनाथ। घीठाई करी मारग संचरूं, सेगू कोई न साय"। (श्री ग्रिमनन्दन जिन स्तवन) ग्रीर ग्रेन्त में भाषनी यह भावना प्रकट कर, एकान्तवासी होकर उत्कृष्ट साधना में सलग्न हो गये-"काल लटिय लही पंथ निहाल णूंरे, ऐ ग्रासा अवलम्भ । ऐ जन जीवे जिनजी जाराज्यो रे, ग्रानन्दघन मत ग्रंव" (थी ग्रजितनाथ जिन स्तवन)।

श्री आनन्दघन जी के इस प्रकार एकान्तवासी होने में तथा उनके कुछ पदों के आधार पर (वे पंद उनके नहीं हैं) लोगों ने अंतुमान लगाया है कि ग्रानन्दघन जी जैन साधुवेश त्याग कर, तुम्बा लेकर ग्रीर लम्बा चोला पहिन कर मस्तो में घूमा करते थे लेकिन यह बात सर्वथा ग्रयथार्थ, कपोल कल्पित ग्रीर निराघार है। यदि वे इस प्रकार से जैन साधु-वेश त्याग कर घूमते तो यशोविजय जी जैसे विद्वान, निष्ठावान साधु कभी भी भ्रानन्दघन जी की स्तुति में भ्रष्टपदी रचकर श्रद्धाच्यक्त नहीं करते। इस भ्रष्टपदी के प्रत्येक पद में यशोविजय जी की उनके प्रति श्रद्धा भीर ग्रानन्दघन जी की भ्रपने श्रद्धेय के प्रति यथार्थ निष्ठा भीर उच्च साधना के दर्शन होते हैं।

श्री ग्रानन्दघन जी की रचनाग्रों के सम्पादकों ने इनका जन्म सम्वत् १६६० के ग्रास-पास तथा देहोत्सर्ग सं० १७३० के लगभग माना है। इस जन्म सम्बत् के धनुमान का कारण यह दिया है कि उपाध्याय श्री यशीवजय जी का स्वर्गवास सम्बत् १७४५ में बड़ोदा के ग्रन्तर्गत छभोई गांव में हुपा था, जहाँ उनकी चरण-पादुका है। यह उसके लेख से प्रकट होता है। इनके माधार पर उपाध्याय श्री यशोविजय जी का जन्म सम्वन् १६७० के मासरास माना गया है। श्री उपाध्याय जी मे श्री ग्रानन्दघन जी जेव्ह थे ग्रत: इनका जन्म सम्वत् १६६० के आस-पास अनुमान किया गया है ग्रीर श्री आनन्द-धन जी के स्वर्गवास के सम्बन्ध में श्री प्रभुदास वेचरदास पारेख ने म्रानन्दवन चौवीसी के प्रथम संस्करण की भूमिका पृष्ठ १६ में लिखा है — "मेरी एक समय की यात्रा में प्रशामी सम्प्रदाय के एक साधु से भेट हुई। वार्तालाप के मध्य प्रसंगवश उन्होंने कहा कि हमारे सम्प्रदाय के संस्थापक श्री प्राणलाल जी महाराज सम्वत् १७३१ में मेड़ता गये थे, वहाँ उनकी लाभानन्द जी उरनाम भानन्दचन जी से भेट हुई थी और उसी वर्ष ग्रर्थात् सम्वत् १७३१ में उनका (म्रानन्दवन जी का) देहोत्सर्ग हो गया था। यह वर्णन श्री प्रामालाल जी महाराज के जीवन चरित्र में लिखा मिलता है"। "निजानन्द चिरतामृत" के पृ० ५१७ से इस वर्णन की पुब्टि होती है कि श्री प्राणनाल जी महाराज मेड़ता गये थे श्रीर श्री श्रानन्दघन जी से उनकी भेंट हुई थी। पून: जब वे सं० १७३१ में मेड़ता गये तब उनका स्वर्गवास हो चुका था।

जक्त भवतरण से यह तो निश्चित हो जाता है कि श्री मानन्दघन जी का स्वर्गवास सं० १७३१ में हुमा था।

ऊपर के विवेचन का सार यह है कि श्री कापड़िया जी पदों की रचना पहिले श्रीर चौबीसी की रचना श्रायु के शेष भाग में मानते हैं

श्री वृद्धिमागर जी स्तवनों की रचना पदों से पूर्व मानते हैं। जन्म श्रीर देहोत्सगं के सम्बन्ध में दोनों के विचार समान हैं कि श्री ग्रानन्दधन जी १७वीं मताब्दी के श्रन्तिम चरण से १०वीं मताब्दी के प्रथम तीन दशक तक थे"।

## श्री म्रानन्दघन जी की भाषा व जन्मभूमि

चौतीसी श्रीर पदों के सब ही सम्पादकों, श्री देसाई तथा श्राचायें सितिमोहनसेन ने उक्त विषय पर श्राने ग्रपने विचार व्यक्त किये हैं। श्री बुद्धिसागर मूरिजी ने श्री श्रानन्दयन जी की भाषा पर विचार करते हुए लिखा है—"श्रीमद पहला चौत्रीसी रची। श्रीमदनी रचना मा गुजंर भाषानां घरगयु (ठेठ गुजराती) भव्दों ने पेठे मारबाढी घरग्रु भव्दोनो प्रयोग श्राक्ता विना रहेन नाहि। तेथी गुजराती भाषा ना घरग्यु भव्दोंनां प्रयोग थी ते गुजरातना हता, श्रेम सिद्ध थाय छै।" (भूमिका पृ० १४४)

श्री कापड़िया जी इस सम्बन्ध में लिखते हैं—"मि॰ मनमुन लाल रवजी भाई मेहता 'जैन काव्य दोहन' प्रथम भागना उपोदघात मां जे अनुमानों उपर ग्रानन्दघनजीना सम्बन्ध मां दोरवाई गया छै ते बन्ध बेसता नयी""" ते ओ जे भाषा ने त्रिशेष काठियावाडी संस्कार वाली कहे छैं ग्रने मुनि बुद्धिमागर जी जेने गुजराती कहे छैं" (उपोदयात पृ० ५८) तत्मश्वात् श्री कापड़िया जी ने स्तवनों और पदों के बहुत से शब्द देकर यह सिद्ध किया है कि श्री ग्रानन्दघन जी की भाषा को काठियावाड़ी या गुजराती कहना भूल है। श्री कापडियाजी का कहना है कि जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग श्री ग्रानन्दघन जी ने किया है वैसी भाषा बुन्देलखण्ड में बोली जाती है। यह उन्होंने आने गुरु श्री गम्भीर विजय जी से सुना है, जिनका जन्म बुन्देलखण्ड में हुग्रा था।

श्री प्रभुदास वेचरदास पारख ने अपनी सम्पादित चौजीसी के —जो सं० २००६ में प्रकाणित हुई है — उपोदघात् पृ० २४ में लिखा है — 'श्री — ग्रानन्दघन जी की चौजीसी गुजराती भाषानुं भाषा दृष्टि थी पए। एक अनमोल रत्न छुँ" इनके इस कथन से ऐसा लगता है कि श्री पारेख जी ने उस समय तक के प्रकाशित ग्रानन्दघन जी सम्बन्धी साहित्य पर दृष्टि नहीं डाली। प्रसिद्ध जैन इतिहासज्ञ श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने महावीर जैन विद्यालय रज़त स्मारक श्रंक में लिखा है—"श्रा पदो शुद्ध हिन्दी-वृज भाषा मां रच्या छै. पर्रा गुजराती लहिया (लेखक) अने प्रकाशकोए तेमने लखवा, छपाववा थी तेमां गुजराती पर्या थइ गयुं छे अने हिन्दी नहि समजवाथी घणी श्रशुद्धियां रही गइ छे। आथी ते पदोनुं शुद्ध संस्कर्ण कोई हिन्दी मर्मज्ञ विद्वान पासे करावी ने प्रकृट करवानी खास जरूरी छे"।

ग्रांचार्य क्षितिमोहन सेन एम. ए. शास्त्री ने श्री ग्रानन्दघनंजी, उनके पदों तथा भाषा पर "बीला" पत्रिका के नवम्बर, सन् १६३ म के श्रंक में लिखा है-"ग्रन्य प्रमाण के ग्रभाव में भजन की भाषा से किसी व्यक्ति का देश अनुमान करना कठिन है। जो लोग भजनों को वहन करते थे उनके मुख से भी उनमें कुछं विलक्षराता श्राजाती थी। ग्रानन्दयन की भाषा पर राजस्थानी ग्रीर गुजराती का बहुत प्रभाव है। उसमें कितना प्रभाव पदकत्ती का है और कितना प्रभाव संग्रहकर्त्ता का है, इसका निर्एाय करना कठिन है। मोतीचन्द कापडिया महायश ने श्री गम्भीरविजयजी गणी द्वारा सना है कि ऐसी भाषा की सम्भावना युन्देलखण्ड में ही सकती है। गम्भी विजयजी का जन्म बुन्देलखण्ड में हुश्रा है। वे सम्भते हैं कि ऐनी विशेषतार्थे केवल उनकी जन्मभूमि में ही हो सकती है किन्तु पूर्वी राजपूताने के भी बहुत से भक्तों की ऐसी भाषा दिखाई देती है ग्रीर सब देशों में ही ग्रानन्द्वन के पूर्वभीर वाद में भी बहुत से भक्तों का जन्म, हुआ, था। ज़ीन, साधुओं की साक्षी के अनुसार आनन्दघन का अन्तिम जीवन पश्चिमी राजपूताने के मेड़ता नगर में बीता था। उनकी रचनाओं में जो गुजराती श्रीर राजस्थानी प्रभाव हैं वह बुन्दलखण्ड में कैसे सम्भव हो सकता है ? राजस्थान की रचना में ही यह खूवी मिलती है। इसलिए मैं ठीक ठीक नहीं समभु सका कि राजपूताना ही ग्रानन्दघन का जन्म स्थान क्यों न माना जाय ?"

ऊपर के अवतरणों से स्पष्ट हो जाता है कि शौबीसी और पदों के सम्पादकों ने श्रीमानन्दधनजी की मापा और जन्मभूमि के सम्बन्ध में जो विचार दिये हैं, वे पक्षपातपूर्ण हैं। वे समभते हैं कि अस्कृष्ठ रूचनाकार और संधिक गुजरान की ही भूमि में अवतीएं हो मकते हैं। निष्पक्ष दिवार ती इनमें श्री देसाई ग्रीर श्री ग्राचार्य सेन के ही हैं। यह बात निश्चित सी है कि रचनाकार मदा मे ही लोक में प्रचलित काव्य भाषा में ग्रपने विचार प्रकट करते माये हैं। जिन मनय कान्य भाषा सस्कृत और प्राकृत भाषायें थी उन समय कवियों ने इन दोनों भाषाओं में ही अपने अपने उद्गार प्रकट किये थे। जब सोक भाषा ग्राम्नंग का जोर बढ़ा तो महाकवि कालीदास जैने उद्भट विद्वान भपभ्रं ग भाषा मे लिखने से दूर नहीं रहे । विक्रमोवंशी इमका उत्तम उदाहरण है। ग्राप्त्रंश भाषा के पश्चात जो भाषा काव्य के लिए उत्तर भारत में स्वीकृति हुई उम विकसित भाषा का नाम विद्वानों ने —जो अन्तर्वेद से लेकर गुजरात तक मे प्रसार पा चुकी थी--"पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी" रहा । पूर्व में तो फिर काव्य भाषा मैयली, बज, अवधी स्वीकृत हो गई ग्रीर पश्चिम में षही काव्य भाषा रही जिसका नाम प्रागे चलकर 'पिष्ठचमी राजस्थानी गुजराती हिन्दी' प्रिविद्ध हो गया। श्री श्रानन्दधन जी के समय में यही भाषा काव्य के लिए स्वीकृत थी। 'श्री ग्रानन्दघन जी ने इसी भाषा में ग्रवने उद्गार प्रकट किये। तस्कालीन ग्रन्य रचनाकारों की रचनायें देखने से इम बात की पुष्टि हो जाती है। चू कि जैन सनों की विहार स्थली राजन्थान और गुजरात अधिकाश मे रही, इन लिए उनकी रवनायों में गूजराती शब्दों का याना यनिवायं था। इमी कारण श्री आनन्दघन जी की रचनों में गुनराती के कुछ मध्द प्रवेश पा गये हैं. वरना उनकी मापा तो 'पश्चिमी राजम्यानी गूजराती हिन्दी ही है। इससे उनकी भाषा को गुत्रराती, बुन्देली, ग्रथवा काठीयावाड़ी ग्रीर उनका जन्म गुजरात, बुन्देलखण्ड, काठीयाबाड मे अनुमान करना निष्यक्ष विचार के धीनक नहीं हैं। प्रवासाधाव में सनकी सून्तरंग्रा, जन्मन्यान ग्रादि का ग्रनुमान करना कठिन है। प्रन्तिम समय में वह मेड़ना मे रहे, वहीं उनका स्वर्गवास हुपा, इससे ग्राभास होता है कि राजस्थान से उनका लगाव था। यही कहीं उनकी जन्मभूमि हो सकती है।

ग्रव हम।रा यहाँ एक नम्र निवेदन है कि स्तवनों श्रीर पदों की विस्तृत ध्याख्या न करके उनका संक्षिप्त में ही इम प्रकार ग्रथं दिया है कि पाठक उनके हादं तक पहुँच सकों। संभव है, इसमें भ्रमेक त्रुटियाँ रह गई हों, इसका दायित्व हमारी अल्पन्नता पर ही है। इसके लिए हम क्षमा के पात्र हैं। हमारा यह प्रयास तो मूर्य को दीपक दिखाने मात्र ही है। हमारी ब्रुटियों की अथवा आगम दिरद्ध आशय की ओर घ्यान आविषत करने वाले महानुमावों के विचारों का हम कृतज्ञता पूर्वक सहर्ष स्वागत करेंगे।

ग्रन्त में हम श्री ग्रगरचन्द जी नाहटा के प्रति ग्रमारी हैं जिनकी समय समय पर हमें बहुमूल्य सलाह मिलती रही है ग्रीर जिन्होंने श्रपने संग्रह का उपयोग हमें स्वच्छन्दतापूर्वक करने दिया ग्रीर फिर ग्रन्थावली के लिए प्रारम्भिक कक्तन्य लिख भेजा जिससे कई नई वातों पर प्रकाण पड़ता है। श्री जवाहर चन्द जी पटनी को हम नहीं मूल सकते जिन्होंने इस पुन्तक के लिए हमारी प्रार्थना स्वीकार कर भूमिका लिख भेजी है। ग्रनः हम उनके इतज्ञ हैं। महाम्मा मृतिवयं श्री नथमल जी स्वामी के सम्मुख तो करबद्ध नतमस्तक हैं जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में से समय निकालकर इस पुन्तक के लिए "प्राग्वाच्य" लिख दिया। इसके साथ ही हम "ग्रानन्दघन चौबीमी याने ग्रव्यात्म परमामृत" के लेखक मृनिधी गव्यूलाल जी महाराज ग्रीर इसके गुजराती लेखक श्री मंगल जी उद्भव जी शास्त्री, 'ग्रानन्दघन पद्य रत्नावली' के सम्पादक श्री सारामाई मिणलाल नवाब, आचार्य श्री बुद्धिनागर मूरीघ्वर जी तथा इन पुस्तकों के प्रकाणकों के प्रति ग्रत्यन्त इतज्ञता प्रकट करते हैं जिनकी पुस्तकों से हमने श्री ग्रानन्दघन जी के कुछ पद ग्रीर स्तवन ग्रयनी ग्रंथावली में सामार उद्धृत कियं हैं।

### जय ग्रानन्दघन

विनीत:

स्व० उमरावचन्द जैन जरगह महतास चन्द्र सारैंड

## प्रासंगिक वक्तव्य

### —श्री ग्रगरचन्द नाहटा—

जैन घर्म में ग्रात्मा को ही सर्वाधिक प्रधानता दी गई है। ग्रत: वह ग्रात्मवादी दर्जन है। मनुष्य ग्रपने पुरुषार्थ से ही परमात्मा वनता है। परमात्मा एक व्यक्ति नहीं, स्थिति है। इसलिए जैन धर्म में भगवान महावीर ने स्पप्ट रूप से कहा है कि ग्रात्मा ही ग्रपना मित्र है भीर वही ग्रपना मन्नु है। ग्रपने वृरे विचारों ग्रीर कियाग्रों से दुर्गति ग्रीर ग्रच्छे विचारों से मदगति-ग्रयान म्ल-द्ल-प्राप्त करता है। कमों का वन्वन करने वाला वही है। कमों का शुभाशुभ परिस्ताम भी करने वाले को ही भोगना पढ़ता है। अपने प्रयत्न या स्वभाव में स्थिति होने से ग्रात्मा कर्मों से मुक्त हो जाता है, पर होता है। ग्रपने पुरुपार्थ से है। जिस तरह अन्य दर्णनों में ईण्वर को कर्ता-वर्ता माना गया है उमी तरह जैन दर्गन में ब्रात्मा को ही कर्ता-भोक्ता माना है। ब्रात्म-दर्गन ही सम्यक्-दर्णन है ग्रीर सम्यक्-दर्णन, ज्ञान, चारित्र का समन्वय ही मोक्ष मार्ग है। इम ग्राव्यात्मिक परंपरा में समय-समय पर ग्रनेक योगीव्यानी पुरुप हो गये हैं जिनमें से १७वीं के अन्त और १८वीं के प्रारंभ में खेताम्बर जैन सम्प्रदाय के खरतर गच्छ में लाभानन्द नामक एक योगिराज हो गये हैं जिनका ग्रात्मा-नुभव मुलक प्रसिद्ध नाम ग्रानन्दघनजी है। उन्होंने ग्रपनी साधना से वहत कंची स्थित प्राप्त करली थी। उनकी रचनाओं में वाईस तीर्थंकरों के वाईम स्तवन ग्रीर लगभग एक सौ पद तथा पाँच सुमित की सज्कार्ये ही प्राप्त हैं। उनकी प्राप्त समस्त रचानाएँ ही इस ग्रन्थ में दी गई हैं ग्रतः इसका नाम ही ग्रानन्दघन-ग्रन्थावली रखा गया है।

वाल्यकाल से ही मैं ग्रानन्दघनजी के स्तवन एवं पदों को सुनकर ग्रानन्द प्राप्त करता रहा हूँ। ग्रागे चलकर जब जैन-साहित्य की शोध का काम प्रारम्भ किया तो ग्रानन्दघनजी की रचनाग्रों की भी खोज की गई। स्तवनों ग्रीर पदों के ग्रनेक हस्तिलिखित प्रतियों का ग्रवलोकन, नकल, पाठान्तर ग्रीर

1

संग्रह का कार्य किया गया। गुजराती में उनके वाईस स्तवनों तथा २ ग्रन्यों की पूर्ति मिला चौवीसी पर कई विवेचन देखने में ग्राये ग्रौर पदों पर भी योगिनिष्ठ वृद्धिसागरसूरिजी ग्रौर स्वाध्याय-प्रेमी मोतीचन्द कापिड़िया के विवेचन पढ़ने को मिले। पर हिन्दी में स्तवनों ग्रौर पदों का कोई विवेचन नहीं मिलने से कई वर्षों से यह प्रयत्न चल रहा था कि इस ग्रभाव की पूर्ति शोघ्र ही की जाय। ग्रानन्दघनजी की रचनाएं वड़ी गूढ़ ग्रौर रहस्यपूर्ण हैं। ग्रतः विवेचन के विना साधारण पाठक उनके रहस्य या ममं को नहीं प्राप्त कर सकता। उन्हें गाकर भाव विभोर तो हो सकता है पर भावों को हृदयंगम नहीं कर सकता।

कुछ वर्ष पूर्व जयपुर से श्री उमरावचन्द जी जरगड़ श्रपने जवाहरात के व्यापार के सिलसिले में वीकानेर श्राये । उनसे वातचीत होने पर उनमें कुछ चितन श्रीर लेखन की प्रतिभा का श्राभास हुशा । तव मैंने उनको प्रेरणा दी कि श्राप श्रीमद् श्रानन्दघनजी श्रीर देवचन्दजी की रचनाश्रों पर हिन्दी में विवेचन लिखिए । उन पर चितन करने से स्वयं श्राघ्यात्मिक भावो से श्रोत—श्रोत होंगे श्रीर विवेचन लिखने पर दूसरों के लिए भी वहुत उपयोगी सिद्ध होगा । उन्हें वह बात जैंच गई श्रीर श्री देवचन्दजी की चौवीसी श्रीर स्नात्र-पूजा पर हिन्दी विवेचन लिख डाला जो श्रीजिनदत्तसूरि सेवा संघ से प्रकाशित हो चुका है । देवचन्दजी की कुछ प्रेरणादायक रचनाश्रों का संग्रह भी छोटी पुस्तक के रूप में उनने प्रकाशित करवा दिया ।

योगीराज श्रीमद् ग्रानन्दघनजी की रचनाग्रों पर विवेचन लिखना साधारए काम नहीं था, इसलिए उनने काफी समय तक जहां जो कुछ मिला पढ़ा ग्रौर सग्रह किया। मैंने भी ग्रानन्दघनजी की वाईसी पर जो सर्वोत्तम विवेचन श्रीमद् ज्ञानसारजी का लिखा मिलता है, उसे उन्हें दे दिया ग्रौर ग्रन्थ भी जो जानकारी एवं सामग्री उन्हें ग्रावश्यक थी, देता रहा। निरंतर प्रेरित करते रहने से उनने ग्रानन्दघनजी की रचनाग्रों पर विवेचन लिखना प्रारम्भ भी कर दिया पर इस कार्य को वे पूरा करके ग्रन्तिम रूप नहीं दे पाये। इसी वीच वे ग्रस्वस्थ हो गये ग्रौर उनकी मानसिक स्थिति गिरती ही गई। ग्रतः वह काम ग्रघूरा ही पड़ा रहा। हर्प की बात है कि श्री महतावचन्दजी खारेड़

ने उस काम को वहुत परिश्रम करके पूरा कर दिया और अब वह पाठकों को प्रकाशित रूप में मुलभ हो रहा है।

श्री जरगड़जी की घमंपत्नी मी ग्राघ्यात्मिक प्रेमी है। उन्हें भी उनकी विद्यमानता में ही इसे प्रकाणित रूप में देखने की वड़ी इच्छा थी पर खेद है कि जरगड़जी की विद्यमानता में यह काम पूरा नहीं हो पाया। यद्यपि में इसके लिए बहुत प्रेरणा देता रहा पर संयोग नहीं था। ग्रव जरगड़जी की घमंपत्नी ग्रोर मुपुत्र विजयचन्दजी इमे प्रकाणित करवा कर श्री जरगड़जी की ग्रन्तिम इच्छा को पूर्ण कर रहे हैं। यह बहुत खुशी की वात है। मुक्ते भी इससे ग्रपार हुप हो रहा है।

### 🗸 श्रानन्दघनजी का मूलतः गच्छ

श्रीमद् भ्रानन्दघनजी वैसे तो गच्छातीत ही नहीं, संप्रदायातीत स्थिति को पहुँच चुके ये फिर भी मैंने प्रारम्भ में जो उन्हें खरतरगच्छ का वतलाया है उसका स्पष्टीकरण कर देना श्रावश्यक समस्ता है।

<sup>1</sup>वीसवीं णताव्दी के खरतरगच्छीय महान गीतार्थ श्राचार्य श्री जिनकृपा-चन्द्रमूरिजी ने श्री बुद्धिसागर सूरिजी को वतलाया था कि श्रानन्दघनजी सूलतः खरतरगच्छ में दीक्षित हुए एव उनकी परंपरा के यित उनके समय में थे। उनका उपासरा मेड़ते में विद्यमान है जो उस खरतरगच्छ संघ के ही श्राधीन था।

²ग्रानन्दघनजी का दीक्षावस्था का नाम लाभानन्द था। उसमें जो 'ग्रानन्द' नामांन पद है उसका प्रयोग खरतरगच्छ की चौरासी निन्दयों (नामांत पदों) में होता रहा है। लाभानन्दजी नाम के एक ग्रीर भी मुनि खरतरगच्छ में १६वीं णताब्दी में हुए हैं। ग्रर्थात् लाभानन्द ऐसे नाम रखने की परम्परा खरतरगच्छ में ही रही है।

मोतीचन्द कापड़िया लिखित ग्रानन्दघनजी ना पदों की प्रस्तावना पृष्ट २१ की टिप्पग्।

२. 'लाभानन्द की जगह कईयों ने लाभविजय जी लिख दिया है, वह गलत है। लाभानन्दजी लेख वाला हमें १ पद भी मिल गया है।

तीसरा एक समकालीन महत्त्वपूर्ण लिखित उल्लेख मुभे ग्रीर प्राप्त हो गया है। १८वीं शताब्दी की खरतरगच्छीय वीकानेर भट्टारकीय गद्दी के श्री पूज्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को मेड़ता से एक पत्र उपाध्याय पुण्यकलश, मुनि जयरंग चारित्रचन्द्र ग्रादि ने सुरत भेजा था। वह पत्र ग्रागम प्रभाकर स्वर्गीय मुनि श्री पुण्यविजयजी के संग्रह में हमें देखने को मिला। उस पत्र में लिखा है —"पं० सुगुराचन्द भ्रष्टसहस्री\* लाभारांद श्रागद्द भराई छड । श्रद्ध रइ टाराइ भणी। घणुं खुसी हुई भगावई छई।"-इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि लाभानन्द, उपाच्याय पुण्यकलण ग्रादि से दीक्षा में छोटे थे। इसलिए उनके नाम के श्रागे कोई विशेषणा नहीं लगाया गया । पं० सुगूणचन्द्र उस समय लाभानंदजी के पास ग्रष्टसहस्री ग्रंथ पढ़ रहे थे। ग्राघा करीव लाभानंवजी उन्हें पढ़ा चुके थे। वहुत प्रसन्न होकर वे पढ़ा रहे थे, इसका उल्लेख जिनचन्द्रसूरिजी को सूचना देने के लिए इस पत्र में किया गया है। उस समय मूनिगए। प्राय: अपने ही गच्छ के विद्वान से पढ़ते थे श्रीर जिस रूप में लाभानंदजी का इस पत्र में उल्लेख किया है उससे वे मूलतः खरतरगच्छ के ही सिद्ध होते हैं। यद्यपि उनको गच्छ का कोई राग या आग्रह नहीं था पर केवल उनकी परंपरा वतलाने के लिए ही मैंने उपर्युक्त विवर्ण दिया है क्योंकि तपागच्छ वाले \* उपाघ्याय यशोविजयजी से आनंदघनजी का मिलना हुआ था, इस बात को लेकर उन्हें तपागच्छीय वतलाते रहे हैं। म्रतएव वास्तविक स्थिति जो ऐति-हासिक तथ्यों के ग्राधार से मुफ्ते विदित हुई है, वही पाठकों के सामने यहां उपस्थित की गई है।

### श्रानन्दघन-यशोविजय मिलन

उपाध्याय यशोविजयजी महात् विद्वात् थे । उनने ग्रानंदघन से मिलकर अष्टपदी में जो प्रसन्नता प्रकट व्यक्त की है वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है । ग्रष्ट-

<sup>×</sup> इससे ग्रानंदघन केवल योगी व साधक ही नहीं, वड़े विद्वाद सिद्ध होते हैं।

कि जैनतत्वादर्श के उल्लेखानुसार पं० सत्यविजय श्रानंदघनजी के साथ कई वर्प वनादि में विचरे थे कहा जाता है पर पं० सत्यविजय रासादि में उल्लेख नहीं होने से वह कथन प्रामाणिक नहीं लगता।

पदी के ग्रतिरिक्त एक ग्रन्यपद से भी उन दोनों महापुरुषों का मिलन सिद्ध होता है। विवेचन में यह पद उद्धृत किया है—

> मेरो निरंजन यार कैसे मिले । दूर देखूं तो दिरया हूंगर, ऊंचे श्रंबर घरिए तलै ।।मे०।। घरिए गहूं तो सूभी नहीं, श्रगन तपूं तो देही जलै ।। 'श्रानन्दघन' 'जसां' सुन वातैं, सोई मिल्यां मेरो फेरी टलै ।।मे०।।

इसमें 'ज्सा' शब्द का प्रयोग उपाध्याय यशोविजयजी के लिए ही किया गया प्रतीत होता है।

( यह प्रस्तुत ग्रन्थ का पद नं० ११६ है। ) यशोविजय रचित वावीसी बालावबीव

सं० १७६७ कार्तिक सुदि २ को पाटन में उपाघ्याय यशोविजय की रचनाग्रों की सूची का एक पत्र लिखा गया था। उसमें नं० ११ पर 'ग्रानन्द—घनजी वावीसी वालाववोध' का भी नाम है। ग्रर्थात् यशोविजयजी ने ग्रानन्दघनजी के वाईस स्तवनों पर विवेचन लिखा था, पर खेद है उपाघ्याय यशोविजयजी जैसे महान् विद्वान् की रची हुई जैसे ग्रीर भी ग्रन्य बहुत सी रचनाएं ग्रप्राप्य हो चुकी हैं, वैसे ही यह ग्रानन्दघन वावीसी वालाववोध भी भ्रव कहीं प्राप्त नहीं होता। यदि यह कहीं मिल जाता तो ग्रानन्दघनजी के विपय में ग्रवश्य ही कुछ महत्त्वपूर्ण वातें जानने को मिलती। एवं स्तवनों का सही पाठ व भाव ग्रधिक स्पष्ट होता। जैन गुर्जर कवियो, भाग २ पृष्ठ २५ में पाटण भण्डार के उस पत्र का उल्लेख है जिसमें यशोविजयजी की रचनाग्रों में वावीसी वालाववोध का भी नाम है।

### बावीसी या चौवीसी?

ग्रानन्दघनजी की वावीसी के स्तवनों पर ग्रभी जो सबसे पहला विवेचन प्राप्त है वह ज्ञानविमलसूरि रिचत है। पर उन्हें भी यशोविजयजी का वह विवेचन प्राप्त नहीं हुग्रा था। इसीलिए उनका विवेचन वहुत साघारण ग्रीर कहीं-कहीं गलत भी हो गया है, इसका उल्लेख ज्ञानसारजी ने ग्रपने विवेचन में ग्रमेक जगह किया है। यशोविजयजी, ज्ञानविमलसूरि ग्रीर ज्ञानसारजी सभी की ग्रानन्दघन जी के वाईस स्तवन ही प्राप्त थे, इसलिए ग्रन्य जो दो प्रकार के दो-दो स्तवन पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन ग्रानन्दघनजी के नाम से प्राप्त होते हैं, उनमें दो तो श्रीमद् देवचन्द्रजी रिचत हैं । यह ज्ञानसारजी के विवेचन में स्पष्ट लिखा है। ग्रतः वाकी जो दो स्तवन ग्रीर रह जाते हैं, मेरी राय में वे यशोविजयजी के रचित हो सकते हैं। क्योंकि जिस तरह ज्ञान-विमलसूरि भीर ज्ञानसारजी ने वाईस स्तवनों का विवेचन लिखने के वाद पूर्ति के रूप में ग्रन्तिम दो स्तवन ग्रपनी ग्रोर से वनाकर चौवीसी की पूर्ति की थी उसी तरह यशोविजयजी ने भी वावीसी पर विवेचन लिखने के वाद ग्रन्तिम दो स्तवनों को स्वयं बनाकर पूर्ति की होगी। श्रीमद् देवचन्दजी को भी ग्रानन्द-घनजी के बाईस स्तवन ही मिले। इसलिए उन्होंने ग्रन्तिम दो स्तवन स्वयं वनाकर चौवीसी की पूर्ति की। हमारे संग्रह के एक गुटके में ग्रानन्दघनजी की चीवीसी लिखी हुई है उसमें ग्रन्तिम दोनों स्तवनों के रचयिता स्पष्ट रूप में देवचन्द्रजी को वतलाया है । सौभाग्य से हमें ग्रानन्दघनजी के वावीस स्तवनों की एक प्राचीनतम प्रति भी मिल गई है जिसमें वावीस स्तवन ही लिखे हुये हैं। कारए कुछ भी रहा हो पर इन सब बातों से स्पष्ट है कि ग्रानन्दघनजी ने वाईस स्तवन ही बनाये थे। पीछे के पार्श्वनाथ और महावीर के स्तवन अन्य जैन कवियों ने वनाकर चौवीसी की पूर्ति की है।

## पू० सहजानन्दजी की पूर्ति चैत्यवंदन एवं स्तुति

यहाँ एक नई सूचना भी देना आवश्यक समक्तता हूँ कि आनंदघनजी ने धाईस स्तवन ही बनाये थे पर मन्दिरों में स्तवन से पहिले चैत्यवन्दन और स्तवन के बाद स्तुति भी (अन्य नमोत्थुएं जय वीयराय आदि के साथ) बोली जाती है। अतः चैत्यवन्दन और स्तुति की पूर्ति के रूप में पूज्य सहजानंदजी ने २४ चैत्यवन्दन और २४ स्तुतियां भी आनंदघनजी के भावों के साथ ताल-

में प्रस्तुत ग्रन्थ में २२ स्तवनों के वाद जो पार्श्वनाथ ग्रीर महावीर स्तवनों को जो ज्ञानविमल सूरि के कहे जाते हैं लिखा है वे वास्तव में श्रीमद् देवचन्दजी के हैं। ज्ञानविमलजी ने पूर्ति रूप जो दो स्तवन बनाये हैं उनको मैंने तो ज्ञानविमल नाम दिया है।

मेल वनाने वाली वनादी है, जो 'सहजानंद पदावली' ग्रादि में प्रकाशित भी हो चुकी है।

### पद बहुतरी

श्रानंदधनजी की दूसरी प्रमुख रचना है-गीत द्वपद या श्राध्यात्मिक पदावली । योगीराज ने समय-समय पर ग्रपने हृदयोद्गार ग्रौर ग्रनुभृति के व्यक्तिकरण रूप जो पद-भजन बनाये हैं, वास्तव में वे एक ही समय पर नहीं वने थे इसलिए पद-संग्रह का नाम 'वहोत्तरी' ग्रादि उनकी ग्रोर से नहीं रखा गया था। प्राचीन प्रतियों में वहोत्तर (७२) पद मिलते भी नहीं हैं, किसी में चालीस-पंतालीस के करीव हैं. किसी में साठ-सत्तर । श्रतः उन्नीसवीं शताब्दी में किसी संग्रहकर्ता ने - ग्रानंदघनजी के प्राप्त पदों का संग्रह किया ग्रीर उनकी संख्या चौहत्तर-पचहत्तर के लगभग हो गई तव शायद पद संग्रह का नाम वहोत्तरी रख दिया गया। संवत् १८५७ की लिखी हुई प्रति हमें प्राप्त हुई है जिसमें ७४-७६ पद है पर उसमें पद संग्रह का नाम वहोतरी नहीं दिया है परन्तु ग्रानंदघनजी के सर्वाधिक ममंज्ञ श्रीमद् ज्ञानसागरजी ने ग्रानंदघनजी के श्रनुकरण में जो चीहत्तर पद बनाये हैं उनका नाम उन्होंने 'बहोतरी' रखा है। श्रतः उन्नीसवीं शताब्दी में श्रानंदघनजी का पद संग्रह 'वहोतरी' के नाम से प्रसिद्ध हो गया मालूम देता है । \* इसके बाद चिदानन्दजी ने भी समय-समय पर जो पद स्तवन बनाये उनकी संख्या भी बहत्तर (७२) तक पहुँच गई। श्रतः चिदानंदजी की वहोतरी प्रसिद्ध हो गई। वहत्तर (७२) सख्या का श्राक-पंगा ग्रठारहवीं शताब्दी से रहा है। जिनरंगसूरिजी ने वहत्तर पद्यों वाली एक रचना को जिनरंग वहोतरी नाम दिया जो अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की रचना है।

### स्तवनों एवं पदों के समर्थ विवेचक ज्ञानसारजी

श्रीमद् ज्ञानसारजी ने श्रानंदघनजी के स्तवनों श्रीर पदों पर वर्षों तक गंभीर चिंतन किया था। चौबीसी वालाववोध में ज्ञानसारजी ने स्पष्ट लिखा

१. क्में प्रवर्त्तक कांतिविजय के सग्रह की सं० १८० की प्रति में वहुतरी नाम लिखा मिला है। इससे पहले की सं० १८७१ की वनारस की प्रति के श्रन्त में 'बहुतरी' लिखा है। दे. जै. गु. क. भाग ३

है कि सं० १८२६ से मैंने ग्रानंदघनजी के स्तवनों पर जितन करना प्रारम्म किया। ३७ वर्ष तक जितन चलता रहा, ग्रनेकों से पूछा पर संतोप नहीं हुग्रा। ग्रन्त में वृद्धावस्था ग्राने लगी देखकर सं० १८६६ में किशनगढ़ में चौमासा करते हुए ग्रानन्दघनजी के वावीस स्तवनों पर उन्होंने 'वालाववीव-भापाई टीका एवं विवेचन' लिखा। उसमें उन्होंने ग्रानंदघनजी का ग्राशय ग्रति गहन-गंभीर है। उनके भाव को ठीक से समभने की मेरी पहुँच नहीं है, यह स्पष्ट लिखा है। योगीराज कविजी की महानता ग्रौर ग्रपनी लघुता तथा पूर्व वालाववीव के लेखक ज्ञानविमलसूरि की ग्रसमर्थता पर उन्होंने ग्रनेक जगह उल्लेख किया है।

ज्ञानसारजी ने एक वार विवेचन लिखकर ही सन्तोप नहीं किया । उन्होंने कई वार इसमें संशोधन, परिवर्द न किया है। हमें उनके वालाववीय की दो तरह की प्रतियाँ मिली है जिनसे मालुम होता है कि सं० १८६६ के वाद उन्होंने अपने वालाववीय में जगह-जगह पर आनंदघनजी की उक्तियों के साय-साथ अपनी और से भी बहुत से दोहे आदि बनाकर (यदुक्ति के उल्लेखन) आनंदघनजी के भावों को अधिक स्पष्ट और सुवोध बनाने का प्रयत्न किया है। खेद है, भीमसी माएोक आदि ने ज्ञानसारजी के विवेचन को मूलरूप में प्रकाशित नहीं कर संक्षेप कर दिया और भापा भी वदल दी। हमने मूल विवेचन की प्रतिलिपि कर रखी है यदि आधिक सहयोग मिना तो उसे प्रकाशित करने का विचार है। ज्ञानसारजी के पदादि में आनंदघनजी का प्रभाव व अनुकरण स्पष्ट है। आ. जयसागर मूरिजी ने ज्ञानसागर जी को "लघुआनंदघन" वतलाया है।

ज्ञानसारजी ने ग्रानंदघनजी के स्तवनों के साथ-साथ उनके पदों का विवेचन भी लिखना प्रारम्भ कर दिया था पर संम्भवतः वे सव पदों पर विवे-चन लिख नहीं पाये। पद विवेचन की हमें दो-तीन प्रतियाँ मिली उनमें तो

<sup>+</sup> हमारे संग्रह में सं० १८६६-७१ की लिखित वालाववीय की प्रति के पत्र मी हैं, जिनमें लिखा है कि ज्ञानसारजी की स्वयं लिखित प्रति से नकल की है। बड़े संस्करण की भी हमारे यहाँ प्रति है।

केवल तेरह पदों का ही वालाववोघ था। पर ढूं ढते-ढूं ढते एक प्रति ऐसी मिली जिसमें ग्रीर भी १८ पदों का विवेचन मिल गया। फिर भी श्रीजिन कृपाचन्द्र सूरिजी ने जिस जैतारए। की प्रति की सूचना दी थी उसमें करीब ४० पदों का विवेचन था। वह प्रति हमें प्राप्त न हो सकी। ग्रभी हमें ३१ पदों से ग्रधिक का विवेचन ही मिल गया है। उसमें एक पद के विवेचन में ज्ञानसारजी ने लिखा है कि ग्रानंदघनजी पहिले वैष्णव संप्रदाय में थे फिर जैन में दीक्षित हुए। 2

यदि ज्ञानसारजी रचित ग्रानंदघनजी के पदों का विवेचन, परवर्ती विवेचक वुद्धिसागर सूरि को मिल गया होता तो ग्रवण्य ही उनका विवेचन ग्रीर ग्रधिक ज्ञानवर्द्ध क वन जाता । वुद्धिसागर सूरिजी को ५० पदों की गम्भीरविजय विवेचन की एवं मार्गकलाल घेलाभाई की ३६ पद-विवेचन की नोट बुक मिली थी।

मैंने कही उल्लेख पढ़ा था कि ग्रानंदघनजी के कुछ पदों पर विवेचन पं० लालन ने भी लिखा था पर वह मुफे प्राप्न नहीं हो सका। फुटकर रूप से तो कुछ पदों का विवेचन ग्रन्य विद्वानों का भी किया हुग्रा मिलता है पर समस्त पदों का विवेचन योगनिष्ठ बुद्धिसागर सूरिजी व मोतीचन्द कापिड़या का ही प्रकाशित हुग्रा है। इन दोनों में कापिड़यजी का विवेचन काफी विस्तृत ग्रीर ग्रन्छा है क्योंकि गम्भीरिवजयजी जैसे विद्वान का उन्हें सहयोग मिल गया था। वहुत से पदों का सिक्षप्त विवेचन गम्भीरिवजयजी ने किया उसे कापिड़याजी या उनके साथियों ने नोट कर लिया था उसे ग्रपनी ग्रोर से ग्रिषक विस्तृत कर दिया। देशाई संग्रह में पद विवेचन की हमें एक नकल मिली है सम्भवतः वह विवेचन माग्रकलाल घेसाभाई का हो।

१. 'बुद्धिप्रभा' सन् १६१२ जनवरी-फरवरी ग्रंक।

२. वैट्लाव संप्रदायी भक्त किव श्रानंदघन, जैन श्रानंदघन से बहुत पीछे हुए हैं। इनके समय में १०० वर्ष का श्रंतर है। संभवतः नाम साम्य के कारण श्री ज्ञानसारजी को श्रम हो गया हो। (सम्पादक)

३. कापड़िया को १ अपूर्ण १ पूर्ण वालोववोध सहित प्रति मिली जिसका उपयोग उन्होंने किया । यह ज्ञानसारजी कृत ही होगा ।

### पाठभेद

ग्रानंदघनजी के स्तवनों के पाठ में भी भिन्न-भिन्न प्रतियों में काफी पाठ-भेद मिलते हैं। मुनि श्री जम्बुविजयजी ने कई प्रतियों के ग्राधार से पाठ-भेद सिहत प्रेस कॉपी तैयार की थी ग्रीर उसकी वे प्रकाशित करने वाले भी थे। मुफे नौ स्तवनों का प्रूफ भी उन्होंने एक वार भेजा था पर पता नहीं क्यों उसका प्रकाशन स्थिति कर दिया। हमने भी कई प्रतियों के पाठ भेद ले रखे हैं। मूलपाठ का निर्णय ग्रोर ग्रन्तिय रूप देने का काम हमने पूज्य गुरुदेव श्री सहजानन्दघनजी को सौंपा था पर वह पूरा नहीं हो पाया। स्तवनों का प्रथम सर्वश्रेष्ठ हिन्दी विवेचन।

पूज्य गुरुदेव ने हमारे अनुरोध से आनन्दधनजी के स्तवनों पर मननीय विवेचन लिखना प्रारम्भ किया था पर वीकानेर के निकटवर्ती उदरामसर के घोरों की गुफा में सोलह-सतरह स्तवनों पर ही विवेचन लिख पाये, उसके बाद जो काम रक गया, वह रका ही रहा। अनेक बार अनुरोध किया पर पूरा होने का संयोग नही था। गुरुदेव कहते रहे कि जो पहले लिखा गया है वह भी ज्यों-ज्यों अनुभव और मनन बढ़ता है त्यों त्यों उसमें और संशोधन परिवर्तन की आवश्यकता मालुम देने लगती है। इसीलिए हमें किये हुए विवेचन की भी नकल करने का सुयोग नहीं दिया और अब वह किसके पास रहा इसका भी पता नहीं चल रहा है। हिन्दी में यह सबसे पहला और अच्छा विवेचन लिखा जा रहा था पर वह पूरा और संशोधित परिवर्धित नहीं हो पाया, इसका बढ़ा खेद है।

श्रानंदघनजी के कई पदों पर पूज्य सहजानंदघनजी ने कई प्रवचनों में विस्तृत विवेचन किया था पर खेद है वह भी लिखा नहीं जा सका।

पूज्य श्री को हमने कई प्रतियों की नकलें करके भेजी तो उन्होंने एक काम अवश्य किया कि आनंदधनजी के ६० पदों का वर्गीकरण १० भागों में करके उन पदों की विषय-सूचक नामावली की सूची हमें लिखकर भेज दी जो आज भी हमारे पास मौजूद है। अभी तक ऐसा प्रयास किसी ने नहीं किया श्रीर एक आत्मानुभवी ने यह काम करके हमें भेज दिया, इसे भी हम अपना सौभाग्य ही समभते हैं।

पूज्य सहजानन्दजी की विशेष प्रेरणा से हमने 'ज्ञानसार ग्रंथावली' का प्रकाशन किया था पर खेद है कि कलकत्ते के हिन्दू-मुस्लिम दंगे में मूल ग्रन्था-वली के फर्मे मुसलमान जिल्दसाज के पास ही रह गये, इसलिए बीकानेर में इसका करीब ग्राधा मैटर ही छपाकर प्रकाशित करना पड़ा। ग्रच्छा यही हुग्रा कि जीवनी ग्रादि के प्रारम्भिक फर्में हुमें सुरक्षित मिल गये, वे पूरे दे दिये।

इसके बाद उन्होंने हमें श्रीमद् देवचन्दजी की भाषा बद्ध पद्य रचनाओं का गुद्ध पाठ हस्तलिखित प्रति के ग्राघार से तैयार करने का काम सींपा था श्रीर वह ग्रन्थ हमने तैयार करके ग्रन्तिम रूप देने के लिए उन्हें भेज भी दिया था पर स्वास्थ्य श्रनुकूल नहीं रहने से वे उस काम को भी कर नहीं पाये श्रीर समाधिमरए। प्राप्त हो गये।

तीसरा काम ग्रानंदघनजी का सौंपा था। हमने ग्रपनी ग्रोर से प्राचीन-तम प्रतियाँ हूं ढ कर नकल करने श्रौर पाठभेद लेने में यथाशक्ति प्रयत्न भी किया पर वह प्रयत्न भी पूज्य गुरूदेव के चले जाने से पूर्ण सफल नहीं हो पाया। पूज्य गुरूदेव की सूचनानुसार ज्ञात हुग्रा कि श्री ग्रानन्दघनजी मेड़ते के एक वैश्य के तीसरे पुत्र थे। कुछ सामग्री का उपयोग करने के लिए हमने श्री महताव चन्दजी खारेड़ को भेजी थी। पर वह देरी से मिलने से उसका पूरा उपयोग होना रह गया।

### म्रानन्दघनजी के पदों की संख्या

जैसा कि ऊपर लिखा गया है आनंदघनजी के पदों की संख्या बहत्तर मानते हुए श्री खारेड़जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में पद संग्रह व विवेचन को तीन भागों में वाँट दिया है इसमें से पहले विभाग का नाम 'आनंदघन वहोतरी' उन्होंने रखा है। जिसमें तेहतर (७३) पद विवेचन सहित दिए गए हैं। दूसरे विभाग में स्फुट पद के रूप में उन्होंने तीन विभाग कर दिये है जिनमें से पदांक ७४ से ६३ वाले पदों को तो उन्होंने आनंदघनजी का मानकर विवेचन किया है।

इसके वाद णंकास्पद पदों वाला विभाग है। उनके संबंध में उन्होंने लिखा है कि "ये पद हमारी प्रति में तो नहीं किन्तु मुद्रित प्रतियों में है इनकी भाषा श्रीर शैली श्रानंदघनजी के पदों से भिन्न है। ये पद किसी श्रन्य जैन कवि के या ग्रीर किवयों के हो सकते हैं। पदांक ६४ के बाद खारेडजी ने लिखा है कि "श्री ग्रानंदघनों के पदों में ग्रन्य किवयों के वे पद जो ग्रानंदघन नाम की छाप के हैं ग्रीर हमारी प्रितियों में है, यहाँ मूलमात्र दिये जाते हैं।" पदांक ६६ के बाद में उन्होंने लिखा है कि 'ग्रव इसके ग्रागे के वे पद दिये जा रहे हैं जो हमारी किसी प्रति में नहीं हैं किन्तु मुद्रित प्रतियों में है, किन्तु वे पद ग्रानंदघन जी के नहीं हैं, ग्रन्य किवयों के है।" उनमें से कई पदों के वास्तिवक्त रिचयता कौन हैं, इस पर भी उन्होंने विचारणा की है। पदांक १०६ के बाद वे फिर लिखते हैं कि "यहाँ वे पद दिये जा रहे हैं, जो हमारे पास हस्तिलिखत प्रतियों में है किन्तु ग्रव तक की प्रकाशित प्रतियों में नहीं है।

इस तरह श्री खारेड़जी ने ग्रपनी ग्रीर से प्राप्त पदों के विषय में काफी विचार और खोज की है पर वे ग्रपने निर्णय में पूर्ण सफल नहीं हो पाये हैं। ग्रमी तक प्राचीनतम प्रतियों की खोज ग्रावश्यक है तभी मूल ग्रीर वास्तविक पाठ का निर्णय हो सकेगा। हमें ग्रव तक जो प्राचीन प्रतियां मिली है उसके ग्राचार से यह कह सकता हैं कि पद संख्या ७८, ६५, ६६, ६७, ११२, ११३, १९८ ये पद तो निश्चित रूप से ग्रानंदवनजी के ही हैं क्योंकि वे प्राचीन १८वीं ग्रताब्दी की प्रतियों में प्राप्त हैं। कुछ ग्रन्य पद भी हमें ग्रानंदवनजी के ही लगते हैं पर वे उन्नीसवीं शताब्दी की प्रतियों में मिले हैं ग्रतः निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इस ग्रन्थ में काफी परिश्रम से जो मूलपाठ दिया है उसमें भी कही-कहीं परिवर्तन की ग्रावश्यकता लगती है। हमारी खोज ग्रभी जारी है। ग्रत: मूल गुद्ध पाठ ग्रीर ग्रानंदघनजी के मूल कृतित्व के सम्बन्ध में ग्रागे कभी निर्णय किया जा सकेगा।

इस ग्रन्थ में ग्रानंदघनजी के १२१ पद छपे हैं। १५ हमें ग्रप्रकाणित ग्रीर मिले हैं। इन सब में से ग्रन्थ किवयों एवं संदिग्ध के बाद देने पर भी करीब १०० पद ऐसे रह जायेंगे जो ग्रानंदघनजी के रिचत होने संभव है।

## स्तवनों श्रौर पदों की प्राचीतम प्रतियाँ

ग्रानंदघनजी के स्तवनों की हमने वीसों प्रतियां देखी है उनमें से एक प्रति तो हमें ऐसी भी प्राप्त हुई है जो निश्चित रूप से कागज, स्याही श्रीर श्रक्षरों को देखते हुए श्रठाहरवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की है। हमारी राय में तो वह श्रानदघनजी की विद्यमानता के समय की ही है क्योंकि प्राशानाथ सम्प्रदाय के 'निजानन्द चरित्र' से श्रानंदघनजी का स्वर्गवास संवत् १७३१ में मेड़ता में हुग्रा, यह निश्चित हो गया है। इस प्रति में श्रानंदघनजी के वावीस स्तवन ही लिखे हुए है।

पद संग्रह की ग्रनेकों प्रतियाँ हमने देखी हैं उनमें से सबसे प्राचीन प्रति संवत् १७०० के श्राम-पास की लगती है। वह एक गुटके के रूप में हमारे श्रमय जैन ग्रन्थालय में है। कविवर बनारसीदास के मित्र कंवरपाल की रचनाएं श्रीर हस्ताक्षर भी इसमें हैं। कई रचनाग्रों के ग्रंत में लेखक संवत् १६८३ दिया हुग्रा है। पर उस गुटके के जिन पिछले पन्नों में किव रूपचंद ग्रीर श्रानंदघन के पद लिखे हुए है उनकी स्याही ग्रीर श्रक्षर कुछ पीछे के हैं। स्याही के दोप से ग्रानंदघनजी के पदों वाले कई पत्र तो टुकड़े हो गये, नष्ट हो गये फिर भी हमने प्रति की उपलब्धि के समय ही पदों की नकल करवा ली थी जिमसे ३८ पद तो सुरक्षित मिल गये बाकी के पत्र टूट जाने के कारण पदों की पूरी नकल करना सम्भव नहीं हो सका। इस प्रति में श्रानंदघनजी के ६० से श्रिष्क पद है।

इसके बाद हमें संवत् १७५६, १७६२, १७६८ के संवतोल्लेख वाली श्रठारहवीं शताब्दी की श्रानंदघनजी के पदों की तीन प्रतियाँ श्रीर मिल गई। श्रीर इन प्रतियों के भी पहले से लिखे हुए गुटके में कुछ पद श्रीर मिल गये।

जॅन गुजंर कियों में जैन साहित्य महारथी स्व० मोहनलाल देसाई ने भ्रानंदघनजी के स्तवनों व पदों की प्रतियों का विवरण भाग २ श्रीर ३ में दिया है। उनमें स्तवनों की संवतोल्लेख वाली सबसे प्राचीन प्रति संवन् १७५८ की श्री सीमंघर ज्ञान भण्डार में होने की सूचना है पर वह भण्डार कहाँ का है, स्थान का उल्लेख नहीं किया इसलिए हम उस प्रति को प्राप्त नहीं कर सके।

पूज्य मुनि श्री जंदूविजयजी को हमने कई वार पूछा कि श्रापने कहाँ-फहाँ की किस सं० की प्रतियों का पाठ भेद लेने में उपयोग किया है, इसकी सूचना हमें दें पर उन्होंने इसका स्पष्टीकरण नहीं किया। मेरी राय में ग्रानंदघनजी के स्तवनों का जो पाठ जानविमल सूरि ग्रीर जानसारजी ने अपने बालाववीघों में ग्रहण किया है एवं इसी तरह पदों के विवेचन में ज्ञानसारजी ने पदों का जो पाठ ग्रहण किया है उसे ग्रठ:रहवीं शताब्दी का पाठ मानते हुए प्राथमिकता दी जा सकती है। प्राचीनतम प्रनियों के पाठ का तो उपयोग करना ही चाहिए। गुद्ध पाठ होने पर ही ग्रथं ठीक हो सकेगा।

# श्रानंदघन चौवीसी पर श्राघुनिक विवेचन

ज्ञानिवसलसूरि ग्रीर ज्ञानसारजी के पुराने विवेचन संक्षेप व ग्राधुनिक ग्रन्थ में छप चुके हैं। इनके ग्राधार से ग्रीर स्वतंत्र रूप से भी वीसवीं शनाव्दी में चौवीसी पर कई विवेचन लिखे गये हैं। जिनका यहाँ संक्षिप्त परिचय दे देना ग्रावण्यक समस्ता हैं। स्वेदी माग्यकलाल घेलाभाई के प्रकाशित ग्रन्थ तो मेरे देखने में नहीं ग्राये पर जैन वर्म प्रसारक समा, मावनगर से संवत् १९५२ में प्रकाशित 'ग्रानंदघनजी कृत चौवीसी ग्र्ययुक्त' नामक ग्रन्थ मेरे ग्रन्थालय में है उसकी प्रस्तावना में लिखा है कि ज्ञानविमलसूरि कृत बालाववोच इसमें दिया गया है। पर वास्तव में वालाववोच जिस रूप में प्राप्त है उसी स्प में तो यह छपा नहीं है। इसी प्रस्तावना में छपाया यहाँ ग्रक्षरणः छापा गया है। ग्रतः शब्दार्थ, भावार्य ग्रीर परमार्थ रूप जैली व गुजराती भाषा में माग्यकलाल भाई ने ही इस विवेचन को ज्ञानविमलसूरि के बालाववोच के ग्राधार से तैयार किया मालूम होता है।

श्रीमद् रायचन्दजी ने चीवीसी पर विवेचन लिखना प्रारम्भ किया था पर केवल प्रथम स्तवन का ही वे लिख पाये। पता नहीं उसमें भी दूसरी गाथा का विवेचन कैसे छूट गया। यदि श्रीमद् जी चौवीसी पर पूरा विवेचन लिख पाते तो अवश्य ही बहुत महत्त्व का होता। ग्रागे का काम डॉ॰ नगवानदास मेहता ने प्रारम्भ किया और संवन् २००० से २००८ तक में दूसरे और तीसरे स्तवन का विस्तृत विवेचन लिखा, जो 'जैन धर्म प्रकाश में क्रमश: प्रकाशित होता रहा। इसमें दूसरे स्तवन के विवेचन का नाम 'दिव्य जिनमार्ग दर्शन' श्रीर तीसरे स्तवन के विवेचन का नाम 'प्रमु सेवा नी प्रथम भूमिका' रखा गया है। दोनों स्तवनों का विवेचन स्वतंत्र पुस्तक रूप में संवत् २०११ में २३२ पृष्टों में छपा है। इसके परिणिष्ट में श्रीमद् रायचन्द्र लिखित प्रथम स्तवन का विवेचन भी दे दिया गया है। डॉ॰ भगवानदास मेहता ने जितने विस्तार से विवेचन लिखा है, उतना श्रीर किसी ने नहीं लिखा।

श्री प्रभुदास वेचरदास पारेख ने भी चौबीभी का विवेचन वहुन ग्रच्छा लिखा है, जिसकी प्रथम ग्रावृति सं० २००६ में प्रकाशित हुई। उसमें वहुत परिवर्तन करके जो नया विवेचन उन्होंने तैयार किया वह द्वितीयावृति २०१४ में जैन श्रेयस्कर मण्डल मेहमाना से प्रकाणित हुई है। ४०० पृष्ठों का यह ग्रथ भी पठनीय है।

स्यानकबासी सम्प्रदाय के मुनि संतवालजी ने चीवीसी का विवेचन लिखा है पर वह ग्रभी तक प्रकाणित नहीं हुग्रा । उसका उल्लेख इसी सम्प्रदाय के हिन्दी में विवेचन लिखने वाले मुनि गवूलालजी ने किया है । गवूलालजी का हिन्दी विवेचन भी प्रकाणित नहीं हुग्रा । उसका गुजरानी ग्रनुवाद पण्डित मंगलजी उथवजी शास्त्री ने किया, जो ग्रहमदावाद से सं० २००७ में प्रकाणित हुग्रा है ।

ग्रानंदघनजी के पदों पर विस्तृत विवेचन लिखने वाले श्री मोतीचन्द फापड़िया ने ज्ञानविमल मूरि के ग्राघार पर विवेचन लिखा, जो महावीर विद्यालय वम्बई से प्रकाणित हो चुका है। वहीं से कापड़िया लिखित पदों के विवेचन के दो भाग इससे पहिले महावीर विद्यालय से प्रकाणित हुए हैं।

जिस तरह पूज्य सहजानन्दजी ने चौवीसी पर ग्रवूरा विवेचन हिन्दी में लिखा, उसी तरह प्रो. श्री जवाहरचन्दजी पटनी भी हिन्दी में विवेचन लिख रहे हैं पर वह ग्रभी पूरा नहीं हो पाया है।

हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध विद्वान प्रो. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'ग्रानंद-घन ग्रीर घनानंद नामक' पुस्तक प्रकाशित की थी, उसमें से घनानंद की तो स्वतंत्र पुस्तक वे निकाल चुके थे। ग्रानंदघनजी संबंधी ग्रन्थ हनुमान मंदिर न्यास, कलकत्ता से २०२६ में प्रकाशित किया है। उस 'ग्रानंदघन' पुस्तक में विवेचन तो नहीं, पर चौवीसी श्रौर पदों का मूल पाठ देने के साथ-साथ नीचे टिप्पणी में विशेप शब्दों के श्रर्थ हिन्दी में दे दिए गए हैं।

### ग्रानन्दघनजी की जीवनी सम्बन्धी दो ग्रन्थ

वैसे तो ग्रानंदघनजी संबंधी विशेष वृतांत नहीं मिलता जो कुछ जानने सुनने में ग्राया वह बुद्धिसागर सूरिजी, मोतीचन्द कापिडया ग्रादि विवेचन लेखकों ने ग्रपने ग्रन्थों में दे दिया। पर ग्रानंदघनजी संबंधी दो स्वतंत्र ग्रन्थ भी गुजराती में प्रकाशित हुए हैं। इनकी जानकारी प्रायः लोगों को नहीं है इसलिए उनका उल्लेख कर देना ग्रावश्यक समभता हूँ।

' ग्रव से लगभग ५० वर्ष पहिले शतावधानी पं० धीरजलालजी शाह ने 'वाल ग्रन्थावली' के कई भाग तैयार करके प्रकाणित किये थे, इनमें ग्रानंदघनजी संवंधी एक छोटी पुस्तक भी है।

वम्बई के सुलेखक स्व श्री वसन्तलाल कान्तीलाल ने ग्रानंदघनजी संबंधी निवंध 'जैन सत्य प्रकाण' में पहले प्रकाशित किया था फिर उन्होंने स्वतंत्र पुस्तक 'महायोगी ग्रानंदघन' के नाम से प्रकाशित की । सन् ६६ में प्रकाशित यह पुस्तक १०४ पृष्ठों की है। इस ग्रंथ में ग्रानंदघनजी संबंधी प्रवादों को सुन्दर शैली में उपस्थित किया गया है।

### ग्रानन्दघनजी के चित्र

श्रानंदघनजी जैसे योगी का परिचय ही नहीं मिलता तो समकालीन चित्र मिलने की तो सभावना ही नहीं है पर लोगों की मांग श्रवश्य रही, श्रतः नवीन चित्र वनाकर श्रीमद् बुद्धिसागर सूरिजी के 'ग्रानंदघन पद संग्रह भावार्थ' ग्रन्थ की द्वितीयावृति सं० २००८ में प्रकाशित हुई तब ग्रानंदघनजी के जो कई प्रवाद प्रचलित हैं उनके ग्राघार से कई चित्र वनाकर इस ग्रावृति में प्रकाशित किये हैं। इन्हीं चित्रों को मेरे वड़े भ्राता श्री मेघराजजी ने वीकानेर की रेल दादावाड़ी में भित्ति चित्र के रूप में चित्रित करवाये हैं।

### श्रानन्दघनजी की स्तुति

समकालीन जैन विद्वानों में उ. यशोविजयजी ने ग्रष्टपदी रूप ग्रानंद-घनजी की भव्य स्तुति की है श्रीर विशेष कुछ नहीं लिखा। २०वीं शती में योगनिष्ठ बुद्धिसागर सूरिजी ने लम्बी स्तवना की है। डा० भगवानदास मेहता ने भी स्तुति बनाई है।

### २२ स्तवनों के गाने के तर्ज रूप देसियों का उद्धरश

स्व. मोहनलाल देसाई ने श्री महावीर रजत स्मारक ग्रंथ में ग्राघ्यात्मी श्री ग्रानन्दघन श्रने यशोविजय नामक महत्वपूर्ण निवन्घ प्रकाशित किया था उसमें प्रकाशित ग्रानन्दघन चौवीसी के प्रारम्भ में जिन देसियों का उल्लेख हुआ है, उनके सम्बन्घ में खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया है। श्री महताबचन्दज़ी खारेड ने उस प्रयास को 'चमत्कारी' बताया है पर वास्तव में उन देसियों का प्रयोग ग्रानन्दघन जी ने ग्रपने स्तवनों में नहीं किया था। बह तो प्रतियों के लेखकों ग्रीर स्तवनों के गायकों ने कीनसा स्तवन कीनसी प्रचलित तर्ज में गाया जाय, इसको बतलाने के लिए उन देसियों के नाम लिख दिये है। ग्रानन्दघन जी के वाईस स्तवनों की जो प्राचीनतम प्रति हमें मिली है उसमें किसी भी स्तवन की 'देसी' लिखी हुई नहीं है तथा देसियों के ग्राधार से ग्रानन्दघनजी के समय का जो विचार किया गया है, वह सफल प्रयास नहीं है।

### एक भ्रम का निवारए

श्रीसाराभाई मिए।लाल नवाव ने 'ग्रानन्दघन पद रत्नावली' नामक पुस्तक सन् ४४ में प्रकाशित की। इनमें स्तवन श्रीर पद प्रकाशित करते हुए निवेदन में लिखा है कि उनकी मान्यतानुसार श्री यशोविजय जी श्रीर श्रानन्द-घनजी एक ही थे, पर उनकी यह मान्यता सर्वथा गलत है। यशोविजय जी ने तो श्रानन्दघन वावीसी पर वालाववोघ लिखा है। उन्होंने श्रष्ट पदों में ग्रानन्दघनजी की महत्वपूर्ण स्तुति की है। इससे दोनों के मिलन की वात तो ज्ञात होती है पर दोनों के एक होने के तो विरुद्ध पड़ती है।

# श्रानन्दघन जो के पदों में कबीर का एक श्रौर पद

कई वर्ष पहले मैंने 'सन्त कबीर ग्रीर श्रानन्दघन' नामक लेख प्रकाशित किया था, उसमें ग्रानन्दघनजी के नाम से प्रकाशित तीन पदों को कबीर का

1 1

वतलाया था । उनमें मे दो पद तो समयनुन्दरजी के लिखे हुए एक पत्र में
मुन्दे निने थे, जिसके अन्त में कवीर का स्पष्ट नाम था। अतः मैंने उस पत्र
में प्राप्त पाठ से आनन्दबन बहोतरी में प्राप्त पाठ की तुलना कर दी थी। श्री
विश्वनाय प्रसाद और खारैंड जी ने भी उन पदों को कवीर का वतलाया है।
पर इसी तरह एक तीसरा पद और है, वह प्रस्तुत संग्रह पद न. ६६ में भी
छपा है और कवीर के रिचित होने की सम्मावना भी की है पर वह कवीर ग्रंथाबली में नहीं मिलने के कारण निश्चय नहीं कहा जा मका। श्री मोहनलाल
देसाई ने अपने निवन्य में लिखा है कि कवीर का एक पद एक प्राचीन हस्तलिखित पत्र में से मैंने उतारा है जो आनन्दघन बहोतरी के १०६ वें पद में
निलता है। उन्होंने तुलना के लिए पाठ मी दे दिया है यथा:—

कवीर का पद, (राग सारंग)

नमरा ! कित गुन भयो रे उदाती ।
तन तेरो कारो मुख तेरो पीरो, सबहें फुलन को सुवाती —
क्या कित बैठिह सुवातही लीनी, सो कित गई रे निशती—
कहेत कबीरा सुन माई सावों ! जइ करवत ल्यो काती ।

श्रानन्दघनकी का १०६ वाँ पद राग नट्ट किन गुन भयो रे उदासी, भमरा ! किन, पंत तेरी कारी, मुख तेरा पीरा, सब फुलनको वासी-मनरा सब किलयन को रस तुम छीना, सो बयूं लाय निरासी— श्रानन्दघन प्रमु तुमारे मिलन कुं, लाय करवत त्यू कासी। इस ग्रंथ में प्रकालित पद नं. ११८ ग्रानन्द (बढ़ न) का है, ग्रानन्दवन जी का नहीं है।

क्या म्रानन्दघनजी मर्मी या रहस्यवादी थे ?

श्रानन्दवनदी के सम्बन्ध में जैनेतर विद्वानों में सबसे पहले सन्त साहित्य के नर्मन बंगाली विद्वान लितिनोहन सेन ने 'बीएगा' में लेख प्रकाणित किया। उसमें उन्होंने श्रानन्दधन को 'मर्मी' या रहस्यवादी कवि बताया पर हिन्दी साहित्य के विद्वान विश्वनायप्रसाद मिश्र ने अपने श्रानन्दयन प्रन्थ के प्रारम्भ में लिखा है कि ग्रानन्दघन में श्रघ्यात्म जैन धर्म का ही श्रध्यात्म है, निर्गु िएयों सन्तों में जो सूफियों का रहस्यवाद घुस गया है उसका प्रभाव श्रन्य जैन साधुश्रों की रचनाश्रों में चाहे हो भी पर इन जैन ग्रानन्दघन में उसका प्रभाव बहतर स्थान पर शतादिक पदों में एकत्र होकर ही डाला है। जैन श्रानन्दघन को मर्मी सिद्ध करने के निए श्री सेन ने लिखा है पर इनकी प्रवृत्ति में वैसा नहीं जान पड़ता।

### म्रानन्दघनजी के म्रप्रकाशित पद

आनन्दघनजी के पदों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए, उनमें से ज्ञान-मुन्दरजी की 'ग्रानन्दघन पद मुक्तावली' में तो करीव ६५ पद ही हैं। भीमसी मारोक ने ग्रानन्दघनजी ग्रीर चिदानन्दजी की वहोत्तरियों के संग्रह एक साथ पाँकेट साइज श्रीर पुस्तक साइज में प्रकाशित किये। उनमें श्रानन्दघनजी के पदों की संख्या १०७ तक पहुँची । बुद्धिसागर सूरीश्वरजी के पद संग्रह भावार्थ में १०८ पद मूल में श्रीर ४ पद प्रस्तावना में, कुल ११२ पद छपे। प्रस्तुत संग्रह ग्रन्थ में इनकी संख्या १२१ तक पहुँच गई है। भद्रं कर मूरीजी के शिष्य पुण्यविजय जी सम्पादित 'भक्ति-दीपिका' नामक ग्रन्य में चीवीसी के बाद १०६ पद छापे हैं और उसके वाद सज्काय संग्रह के नाम से ६ स्तवन-सज्काय श्रीर दे दिये गये हैं। उनमें कई तो स्पष्ट रूप से आनन्दघनजी के नहीं है वास्तव में जिस तरह सूर, कवीर, मीरां, तुलसीदास भ्रादि प्रसिद्ध कवियों के नाम से परवर्ती किव सक्या वृद्धि करते रहे हैं । इसी तरह ग्रानन्दघनजी के पदों में भी वहुत श्रभिवृद्धि होती रही है। हमने अनेक हस्तिलिखित प्रतियों में से समय-समय पर अप्रकाणित पदों की नकल की तो १५ पद ऐसे हमें और मिल गये जो अभी तक कहीं भी प्रकाशित हुए देखने में नहीं ग्राए। इनमें कुछ पद तो दूसरों के रचित लगते हैं ग्रीर कुछ ग्रानन्दघनजी के भी हो सकते हैं। इसलिए उन ग्रप्रकाशित पदों को यहां प्रकाशित किया जा रहा है-

## (१) राग-ग्रासाउरी

माई प्रीति के फंद परो मत कोई । लाज संकुच सुधि बुधि सब विसरी, लोक करे वदगोई ।।मा०।।१।। असन वसन मन्दिर न सुहावै, रैन नैन भरि रोई। तींद न आवै विरह सतावै, दुख की वेलि मैं वोई।।२ मा०॥ जेता सुख सनेह का जानौ, तेता दुख फिर होई। "लाभानंद" भले नेह निवारई, सुखीय होइ नर सोई।।३मा०॥ = . . (इति प्रीति निवारण सिकाय। १५वीं शती की लिखित प्रति से)

(२)

राग विहाग चोतालो। हे नेनां तोहे वरजो, तू नहीं मानत मोरी सीख ।।ने०।। टेक वरज रही वरजो नहीं मानत, घर-घर मांगत रूप भीख ।।ने०१।। चित चाहे मेरे प्यारे को स्वरूप रूप, स्थाम के वदन पर वरसत ईख आनन्दघन पिया के रस प्यारो, टारि न टरत करम रीख ।

(सं० १८७३ प्रति १६ कान्तिविजयजी संग्रह, बड़ीदा)

# (३) राग मारु

हां रे आज मनवो, हमेरी ब्राऊरो रे ।।टेका। आप न आवे पिया लखहु ने भेजे, प्रीत करन उतावरो रे ।।आ०।।१।। आप रंगीला पियो क्षेजहुँ रंगीली, और रंगीलो मेरी सांवरो रे ।।आ०।।२

"आनन्दघन" वावो निज घर आवे तो मिटै संतावरो रे । आ० ३।। . (उपरोक्त सन् १८७३ लिखित कान्तिविजयको की प्रति से)

# (४) राग-काफी

चेतन प्यारा रे मोरा तुम सुमित संग क्यूं न करो, रही न्यारा ।।चेतन॰ पर रमणी से वहुत दुःख पायो सो कछु मन में विचारा । या अवसर तुहि आय मिल्यड है, भूले नहीं रे गिवारा ।। तुम कछु समझ समझ भरतारा ॥चे॰ ।१। आप विचार चले घर अपने और से कियो निस्तारा । चेतन सुमता माहि मिले दोड खेलत है दिन सारा ॥ आनन्द ह्यां लियो भवपारा ॥चे०।।१॥

(५) राग काफी

आज चेतन घर आवै, देखो मेरे सहिओ। आ०
काल अनादि कियो परवण ही अव निज चित ही चितावे ॥दे० १॥
जनम-जनम के पाप किए ते सो निधन मांहि वहावै।
श्री जिन आजा सिर पर धर के परमानन्द गुण गावै।।दे०॥२॥
देत जलांजिल जगिह फिरण कुं, फिर के न जगत में आवै।
विलसत सुख पर अखंडित 'आनन्दघन' पद पावै।।दे०।३॥

(६) राग काफी
कव घर चेतन आवेंगे ।।क०।। सखिरी री लेउं वलैया वार वार ।क०।
रयण दिना मैनुँ ध्यान तुपाढ़ा, कवहुक दरश दिखावेंगे ।। मे०।।१।।
विरह दिवानी फिरुं ढूँ ढती पिउ पिउ करत पुकारेंगे ।
पिऊ जाय मिले ममता से काल अनंत गमावेंगे ।।मे०।।२।।
करुं उपाय णक में उद्यम अनुभौ मित्र बुलावेंगे ।
आय उपाय करके अनुभव नाथ मेरा समझावेंगे ।।मे०।।३।।
अनुभव मित्र कहे सुनि साइव अरज एक अवधारेंगे ।।मे०।।४।।
अनुभव चेतन मित्र मिले दो सुमति निसाण घुरावेंगे ।
विलसत सुख आनन्द लीला में अनुभव आप जगावेंने ।। मे०।।४।।

राम रस मुहंगा है रे भाई, जाको मोल सुनत घर जाइ।।रा॰ जेणे चाख्या सोइ जाणे, मुख सुं कहे सो झूठ।
या हम तुम से वहुत कही परमाव सारो ही कूड़।।रा॰।१।।
दर्शन-दर्शन भटिकयो, सिर पटक्यो सो वार।
वाट वटाउ पूछ्यिउ पायो न ए रस र सार।। रा॰।।२।।
तप जप किरिया थिर नही ज्ञान विज्ञान अज्ञान
साधक वाधक जाणियेउ और कहा परमाण।।रा॰।।३।।
द्वेत भाव भासे नहीं ग्राहक घर ही जान।
द्वेत ध्यान वृथा सही है इक होय मुजान।।रा॰।।४।।
हाय कामना वश तुम्हें मंत्र जंत नहीं तंत।
अनुभव गम्य विचारिये पावे आनंदघन विरतंत।।रा॰।।४।।

(=)

कूड़ी दुनीहंदा वे अजब तमासा।
पाणी की मींत पवन का यंमा, बाकी कब लग आसा ।।कूड़ी।।१।।
झटा दधार भये नर मुनी, मगन भय जेसा मेंसा।
चंदड़ी उपर खाख लगाई, फिर जैसा का तैसा ।।कू०।।२।।
कोड़ी-कोड़ी कर एक पहसा जोड्या, जोड्या लाख पचामा
बोड़-जोड़ कर काठी कीनी, संग न चल्या इक मासा ।।कू०।३।।
केड़ नर विणजे सोना रूपा, केइ विणजे जुग सारा।
'आनन्दघन' प्रमु तुमकुं विणज्या जीत गया जुग सारा।।कू०।।४।।
(इति ग्रच्यात्म सज्काय।-विनय सागर जी के पुटकर पत्र से)

### $(\epsilon)$

प्यारा गुमान न करिये, संतो गुमान न धरिये । प्या०॥ थोड़े जीवन नें मान न करिये, जनम-जनम करि गहिये ॥१॥प्या०॥ इस गन्दी काया के मांही मनता तज रहिये ॥२॥ प्या०॥ 'आनन्दघन. चेतन में मूरित भक्ति सुंचित हित वरिये ॥३॥प्या०॥

### ( ६० ) राग काफी

नैनां नेरे लागे री, ज्याम सुन्दर वृजमोहन पिय सुं नैना मोहे लागे री विन देखे नहीं चैन सखि री, निज दिन एक टक जागे री ॥नै०॥ नोक लाज कुल कान दिसारी ह्वाँ ही सों मन लागे री ॥नै०॥ 'आनन्ददन' हित प्राप पपीहा, कुह कर प्राण पागे री ॥नै०॥

### (११)

कुण खेले तोसुं होरी रे संग लागोजी आवै । अपने-अपने नंदर निकसी, कांड सांवली कांड गोरी रे ॥सं० ॥१॥ चोवा चंदन अगर कुंकुंमा, केसर गागर घोरी रे ॥सं० ॥२॥ भर पिचकारी रे मुंह पर डारी (भी) जगई तनुं सारी रे ॥सं० ॥३॥ 'आनन्दघन' प्रमु रस भरी मूरत, आनन्द रहि वा झोरी रे ॥सं० ॥४॥

### ( १२ )

वनड़ो भलो रीझायो रे, म्हारी सुरत सुहागन सुघर वनी रे।। चोरासी में भ्रमत-भ्रमत अवके मोसर पाओ। अवकी विरीयां चूंक गयो तो कीयो आपरो पावो ॥१॥वनडोः। साधु संगत कीयां केसरिया सतंगुरु व्याह रचाओ साधु जन की जान वनी है, सीतल कलश वंदाओ ।।२।। वनड़ो।। तत्व नाम को मोड बंधावो, पडलो प्रेम भराओ पांच पचीसे मिली आतमा हिलमिल मंगल गायो ॥३॥ वनड़ो॥ चोराबी का फैरा मेटी परण पती घर आओ निरभय डोर लगी साहव सूं जव साहिव मन भाओ ॥४॥ वनडो़॥ करण तेज पर सेज विछी हैं, तां पर पोढे मेरा पीवे 'आनन्दघन' पीया पर में पल-पल वारूं जीवे ।। १।। वनडो़॥

(इति गंदम्, अजमेर की पद संग्रह प्रति के ग्रन्त में)

( १३ )

मैं कवहु भव अन्तर प्रभु पाइ न पूजै। अपने रस वसि रीझ के दिल वाढ़े दूजे ।।१।। मैं०।। वंछित पूर्ण चरण की मैं सेव न पाई। तो या भव दुखिया भयो, याहि वनि आई ॥२॥ र्मै०॥ मन के मर्म सुं मन ही में ज्यों कूप की छैयां। 'आनन्दघन' प्रभु पास जी अव दी जै वैयां ।।३।। मैं०॥

(इति जिन पदो, प्रति हमारे संग्रह में)

( १४ ) राग भैरव

नाटकीयानां खेल से लागो मन मोरो और खेल सब सेल हैं पण नाटक दोहरो ।।१॥ ना०॥ ज्ञान का ढोर वजाव के चौंहटें वाजी मांडु। काम क्रोग्र का पुतला सोजी ने काढू ।।ना॰ ।।२।। नर न वांधुले सुर सत ए ऐसा खेल जमाऊं। मन मोयर आगे धर्रु कछु मो नां पाऊं ।।ना०।।३॥

अणि कटारी पेहर के तजुं तन की आसा।
सरत वांधु वगने चढुं देखां तरां तमासा।। ना॰।।४।।
सेल खेल धरती तणुं, सोना मोना न सुहाइ।
वांशमरत विनाखेल है, ऐसा सुख जचा है।।ना॰।।५।।
उलट सुलट गृह खेल कुं, ताकुं सीस नमाउं।
कहे 'आनन्दघन' कछु मांगहुँ बेगम पद पाउं।।ना॰।।६।।
(१६ वीं शताब्दी लिखित फुटकर पत्र-हमारे संग्रह में)

( १५ )

हठ करी टुक हठ के कभी, देत निनोरी रोई ।।१।।
मारग ज्युं रंगाइ के रीही, पिय सदि के 'द्वारि ।
लाजडागमन में नहीं, का नि पछेवड़ा टारि ।।२।।
अनि अनुभव प्रतिम विना, काहु की हठ के नइ कतिल कोर ।
हाथी आप मते अरे, पावे न महावत जोर ।।३।।
सुनि अनुभव प्रीतम विना, प्रान जात इन ठाविहि ।
हे जिन आतुर चातुरी, दूरि 'आनन्दघन' नाहीं ॥ हठीली ।।४।।

(संग्रह प्रति नं० ५०३२ संवत १८५६ लिखित)\*

<sup>\*(</sup>१)-१,३,४,५,७,८,६,१२,१३, श्रीर १४; इन संख्याश्रों के पदों के संवंघ में निश्चयात्मक रूप से कुछ, कहा नहीं जा सकता है। भविष्य की शोध से ही निश्चय हो सकेगा।

<sup>(</sup>२) पद सं०२ ग्रीर १०; भक्त कवि ग्रानंदघन के हैं। देखो-श्री विश्वनाथप्रसाद मिश्र संपादित "घनानंद ग्रानंदघन" ग्रंथावली के पु० ३२५ पर स्फूट पद ११ तथा पु० २२२ पर पद सं०-१२६।

<sup>(</sup>३) पद सं० ६ सुखानंद कविका है। इसमें सुखानंद की छाप है।

<sup>(</sup>४) पद सं० ११ भक्त किव ग्रानंदघन का होना चाहिये। प्रकाशित पदों में यह मिला नहीं। निर्णय ग्रागे ही हो सकेगा।

<sup>(</sup>४) पद सं० १५ अ़घूरा है। ऊपर की पंक्ति इसमें नहीं है। ये पंक्तियां प्रस्तुत ग्रंथावली के पृ० ७५ के पद सं० ३३ की हैं। (सम्पादक)

यानंदघनजी महान् योगी थे। उनकी अनुभूतियों को ठीक से समभना बहुत कठिन है। साधना की गहराई में पहुँचने और डुवकी लगाने पर ही तत्व प्राप्त हो सकता है। प्रस्तुत ग्रंथ तो केवल जिज्ञासुओं की भूख को जगाने वाला है हिन्दी में ग्रव तक ऐसा कोई प्रकाशन नहीं हुआ। इसलिए इसकी उपयोगिता निविवाद है। पर प्रकाशित पाठ और उसका ग्रर्थ अभी और संशोधनीय है। ग्राशा है गुजराती में जिस तरह आनंदघनजी पर कई लोगों ने यथामित लिखा है, हिन्दी में भी ऐसे प्रयास होते रहेंगे।

ग्रानन्दघनजी के स्तवन श्रीर पदों को घीरे-घीरे लय श्रीर तालबढ़ गाते हुए उसके अर्थ में अपने को रमाते हुए स्रोना व गायक ग्रानन्दविभीर हो सकेंगे। एक-एक पंक्ति या कड़ी को गाकर उस पर गहरा चिन्तन किया जायगा तो श्रवण्य ही श्रानन्द की गंगा लहराने लगेगी। ऐसे महापुरुप की रचनाग्रों से प्रेरगा प्राप्त करके हम अपने जीवन को पवित्र एवं निर्मल बनावें, इसी शुभ कामना के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हैं।

# प्राग वाच्य

सावना का महत्वपूर्णं ग्रंग घ्यान है। उसके दो प्रकार हैं—संभेद-प्रिण्यान ग्रोर ग्रभेद-प्रिण्यान। संभेद-प्रिण्यान पद के ग्रालम्बन से होने वाला पदस्य घ्यान है। महर्षि पतंजित ने इसे जप कहा है। ' जैन सावना-पद्धित के ग्रनु-सार यह भावना का एक प्रकार है। भावना के द्वारा घ्यान की योग्यता प्राप्त होती है। उसके चार मुख्य प्रकार हैं —ज्ञान भावना, दर्गन भावना, चरित्र भावना ग्रीर वैराग्य भावना। पदस्य घ्यान या जप दर्गन भावना के ग्रन्तगंत हो सकता है। ग्रहंत् का श्रात्मा के साथ ग्रभेद स्थापित कर 'स्वयं देवो मूत्वा देवं घ्यायेत्'— स्वयं देव होकर देव का घ्यान करे—इस प्रकार सर्वात्मना घ्यान करना ग्रभेद-प्रिण्यान है।

भक्ति का विकास संभेद-प्रशिवान के ग्राघार पर हुग्रा है। इसकी दो वाराएं हैं—ग्राटनवादी ग्रीर ईंग्वरवादी। ग्राटमवादी वारा के ग्रमुसार ग्राटम-स्वरूप का ग्रमुसन्वान करना भक्ति है। ईंग्वरवादी वारा के ग्रमुसार ईंग्वर के प्रति सम्पित होना भक्ति है। जैन परम्परा में भक्ति विषयक साहित्य प्रसुर मात्रा में मिलता है। ग्राचार्य कुंदकुंद की स्वतन्त्र कृति 'दशभक्ति' से इस घारा का प्रारंभ हुग्रा ग्रीर वह क्रमण: बढ़ती चली गई।

रामानुज, निम्बार्क, माध्य, चैतन्य श्रीर बल्लम इन सभी सम्प्रदायों ने मिक्त की अतिशय प्रतिष्ठा की । ईग्वर की शरणागित के विना मोल नहीं हो सकता, इस भावना की सशक्त घारा प्रवाहित हो गई। कुछ तकों श्रीर वाद विवादों से कवी हुई जनता इस सरल श्रीर आकर्षण मार्ग की श्रोर आकर्षित हुई। नारतीय मानस भक्ति-मार्ग से श्रोत प्रोत हो गया। जैन परम्परा में भक्ति- तत्त्व नान्य था। पर भगवान के श्रनुग्रह का पुष्टिमार्गीय विचार उसे स्वीकार्य

१. योगदर्शन, १।२८: तज्जपस्तदर्थमावनम् ।

<sup>्</sup>र-्. स्थानशतक २०-३४।

नहीं था। मोक्ष मार्ग की त्रयी— सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान ग्रीर सम्यक् चारित्र — की स्वीकृति के कारण केवल भक्ति को ही मोक्ष का साधन नहीं माना जा सकता था। इस स्थिति में जैन ग्राचार्य भक्ति की वैसी घारा प्रवाहित नहीं कर सके, जैसी वैप्णव ग्राचार्यों ने की।

श्रानंदघनजी ने भक्ति भागें का श्रवलंबन लिया ? शराणागित या सिद्धान्त उनके लिए श्रपरिचित नहीं था। 'श्ररहंते सरणं पवज्जािम, सिद्धे सरणं पवज्जािम, साहू सरणं पवज्जािम, केवलिपण्णात्तं धम्मं सरणं पवज्जािम' इन चार शराणों की स्वकृति जैन परम्परा में बहुत पुरानी है।

श्रानदघनजी ने शरणागित का उपयोग इस सिद्धान्त के श्रालोक में किया कि भगवान में श्रपनी चित्तवृत्तियों को लीन करना ही शरणागित है। भगवान से श्रमुग्रह की श्राणा करना शरणागित नहीं है। वे भगवदू-लीला में विश्वास नहीं रखते थे। उन्होंने लिखा है—

> 'कोई कहें लीला ललक ग्रलख तणी, लख पूरे मन ग्रास । दोय रहित नै लीला निव घटै, लीला दोख विलास ।। 4,

जैन परम्परा मे भगवान् की पित के रूप में उपासना करने की पद्धिति नहीं रही है। फिर भी ब्रानदघनजी ने इसका उपयोग किया है। इसमें भक्ति मार्गीय वैष्णाव धारा का प्रभाव उन पर रहा है। उन्होंने लिखा है —

> 'ऋषभ जिल्लेसर प्रीतम माहरो, श्रीर न चाहूं कंत । रींक्यो साहव संग न परिहरे, भांगे सादि श्रनन्त ॥ २

प्रस्तुत पुस्तक में ग्रानंदघनजी के चार ग्रंथ प्रकाशित है—१. ग्रानंदघन बहुत्तरी २. स्फुटपद ३. ग्रन्थ रचनाएं ४. ग्रानंदघन चौवीसी । इनमें चौवीसी (चौवीसी तीर्थकरों की स्तुति बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है । इसमें भक्ति की ग्रजस्र धारा प्रवाहित है। उसमें तत्त्वज्ञान ग्रीर ग्रध्यात्म के स्रोत भी सम्मिलित हैं । स्तुतिपदों में इस प्रकार का योग विरलता से ही मिलता है । इनकी तुलना कवीर के पदों से की जा सकती है । सोनहवीं ग्रती के उत्तरवर्ती भक्त कवियों

१. ऋषभजिनस्तवन, ५, पृष्ठ २५६।

२. ऋपभजिनस्तवन, १ पृष्ठ २५६।

की रचनाग्रों में बहुत साम्य है, इसलिए उनमें मिश्रण भी हुग्रा है। संग्रहकार ने इस मिश्रण को विविक्त करने का प्रयास भी किया है। पर वह ग्रीर ग्रियक विमर्श मांगता हैं। ग्रानंदघनजी की भाषा केवल राजस्थानी नहीं हैं उसमें गुजराती का मिश्रण है। ग्रान्य भाषाग्रों का मिश्रण भी उसमें है।

### ग्रंथकार परिचय

ग्रानंदधनजी विक्रम की १७ वीं शताब्दी के महान ग्रध्यात्म योगी थे। वे भ्वेताम्वर जैन परम्परा में दीक्षित हुए। उनका नाम लाभानंद था। ग्रध्यात्म साधना की प्रखरता ने उनका नाम वदल दिया। वे लाभानंद से ग्रानंदधन हो गए। उनमें ग्रध्यात्म योग श्रीर भिक्त का मिण्कांचन योग था। इसलिए उन्होंने भिक्त को वीतरागता से विमुक्त नहीं किया। भिक्त प्रेम का उदात्तीकरण है। वह वीतरागता से विमुक्त होकर राग के विन्दु पर भी पहुँच सकती है। इस समस्या को वही भक्त समाहित कर सकता है, जो वर्मानुराग को भी वीतरागभाव से प्रभावित रखता है।

कोई भी अध्यात्मयोगी वीतरागभाव से दूर नहीं जा सकता और वह किसी साम्प्रदायिक आवेश में भी नहीं उलभ सकता । आनंदघनजी में ये दोनों विशेपताएं थीं । वे अपनी रचनाओं में समूची जैन परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं । उनका अध्यातमपरम्परा का प्रतिनिधित्व भी असंदिग्ध है । उन्होंने अपनी इस विशेप क्षमता के कारण 'उपाध्याय यशोविजयजी' जैसे महान् प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् को असाधारण रूप से प्रभावित किया था । उन्होंने आनदघनजी के विषय में अनेक वार अपने उद्गार व्यक्त किए हैं—

ऐरी श्राज श्रानंद भयो मेरे, तेरो मुख निरख निरख

रोम रोम शीतल भयो हांगों हांग

शुद्ध समजण समतारस भीलत, श्रानंदघन भयो श्रनंत रंग—ऐरी ऐसी श्रानंददशा प्रगटो चित्त श्रंतर, ताको प्रभाव चलत निरमल गंग वाहो गंग समता दोड भिल रहे, जसिंडय भीलत ताके संग—ऐरी<sup>२</sup>

<sup>\* \* \* \*</sup> 

१. देखें, पृ० २१६।

२. ग्रष्टपदी

श्रानंदघन के संग सुजस ही मिले जब

तब श्रानंद सम भयो सुजस,
पारस संग लोहा जो फरसत, कंचन होत ही ताके कस।
उपाध्याय यशोविजयजी ने श्रानंदघनजी की चौवीसी में से २२ पदों
पर गुजराती में वालवबीय लिखा था। वह उपलब्य नहीं है। पर योगिप्रवर
श्रानंदघनजी श्रीर प्रतिभा सम्पन्न यशोविजयजी के मिलन ने श्रघ्यात्म श्रीर ज्ञान
के समन्वय की श्रनूठी घारा प्रवाहित की। वह श्राज भी वहुत मूल्यवान है।
संग्रहकार श्रीर संपादक ने उसमें से एक स्रोत को गितशील कर जनता के लिए
कल्यासा का कार्य किया है। परिमार्जन की अपेक्षा होने पर भी प्रस्तुत श्रम के
मूल्य को कम नहीं श्रांका जा सकता।

ग्रगुत्रत विहार, नई दिल्ली मुनि नथमल

# भूमिका

[संक्षिप्त परिचय—श्रीमद् श्रानन्दधनजी १७ वीं शताब्दी उत्तराई के घ्वेताम्वर जैन किव थे। इनका मूल नाम लाभानन्द था। इनकी विहार-भूमि गुजरात बज प्रदेश एवं राजस्थान थी। मेड़ता (राजस्थान) में इनका स्वगंवास हुया था। इनके काव्य में ज्ञान-भक्ति श्रीर थोग का मबुर मेल है। जैन दर्गन की रत्नवयी-सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चारित्र का सरल तथा सरम विवेचन इनके काव्य में दर्शनीय है। जैनागमों का सार इनके काव्य में भरा हुया है। वे मन्त परम्परा के महान किव थे। इनकी मिक्त प्रेम-लक्षणा है। भिक्त की भूमिका है:—श्रमय, श्रद्धेष, श्रवेद। यह तभी संभव है जब मिक्त निरुपाधिक हो। श्रानन्दधनजी ने भगवान को 'सकल जंतु विसराम' बताया है। इनके समस्त काव्य में भगवान का 'श्रानन्दधन' स्वरूप प्रकट हुश्रा है। योग हिए से वे क्वीर के इ्छिक निकट है। वस्नुतः इन्होंने योग को सम्यक् चारित्र के हन में प्रकट किया है। इनके मुख्य ग्रन्थ हैं:

१. ग्रानन्त्रयन चौवीसी, २. ग्रानन्द्रयन वहोतरी। चौवीसी में २४ जैन तीर्थकर देवों की स्नृति की गई है। ये स्तवन गीत है, जो सगुगा भक्ति के परिचायक हैं, ग्रानन्द्रयन दहोतरी में निगुर्ग भक्ति विषयक पद हैं। सगीत-साधुर्य उनके समस्त काव्य में भरपूर है। ग्रुगार ग्रीर ज्ञान्त रस में गीतों की रचना हुई है। ग्रुगार की विप्रलम्भ चारा मधुर क्लनाद करनी हुई ज्ञान्त रस सागर में मिल गई है। ग्राचार्य क्लितिमोहन सेन ने इनको 'मर्मी' कवि कहा है। श्रीमद् ग्रानन्द्रयनजी के विषय में ग्रनुसंघान की ग्रत्यन्त ग्रावश्यकता है।

भक्ति कल्पलता की जड़ है श्रद्धा, प्रेम फूल है, सेवा मुगन्य है, ग्रानन्द फल हैं। सदाचार जल है जिससे मक्ति कल्पलता का सींचन होता है। ग्रतः भक्त गन कहते हैं कि मनुष्य जीवन ग्रमुख्य हीरा है, इसे कचरे में मत फेंकिए। परन्तु संसार की माया तृष्णा में उलमा हुम्रा मनुष्य हीरे को स्त्रो रहा है। संत धर्मदास ने एक पद में कहा है:

म्हारो हीरो गंवायो कवरा में ।।
इन पांच पचीको रे सगरा में ।
म्हारो हीरो गंवायो कचरा में ।।
कोई कहे रे हीरो पूरव-पश्चिम में ।
कोई कहे रे उत्तर दखाणो में ।।
पंडित वेद पुराण वतावें ।
उलक गये रे सब रगड़ा में ।।
म्हा े हीरो गंवायो कचरा में ।
काजी रे कीताव कुरान वतावे ।
उलक गये सब नहारा में ।।
म्हारो हीरो गंवायो कचरा में ।।
म्हारो हीरो गंवायो कचरा में ।।
प्रमंदास कहे गुठजी हीरो बतायो।
वांच लियो निज ग्रंचरा में ।।

हीरे की पहचान हो जाय तो भगड़ा रफा दफा हो जाय, परन्तु विडम्बना यह है कि मनुष्य ग्रजानांधकार में हीरे के बदले में कांच के दुकड़ों को पाकर फूला नहीं समा रहा है। सचमुच देखा जाय तो मनुष्य क्षिणिक सुलों की चका-चींघ में भ्रमित है। वासन्ती पवन की सुगंधित लहरों में मनुष्य यह भूल जाता जाता है कि यह क्षरण भंगुर जीवन श्रोस-वूंद के समान है जरा-सी वायु का भोंका ग्राया कि घूल में मिल जायगा। इसीलिए योगीराज ने चेतावनी देते हुए कहा है:

वया सीवे उठि जाग वाउरे। 1.

श्रंजिल जल ज्यूं घाउ घटतु है, देत पहुरिया घरी घाउ रे ॥ क्या॰ ॥ १॥ इन्द्र चन्द्र नागिद मूर्गिद चले, कौन राजा पितसाह राउरे । भ्रमत-भ्रमत भव जलिंघ पाई तें, भगवत भगित सुगाव नाउरे ॥ क्या॰ ॥ २॥

१. योगिराज म्रानन्दघन रचित पद: राग-वेलावल

कहा विलंब करै श्रव बोरे, तरि भव-जल-निधि पार पाउरे। 'ग्रानन्दधन' चेतनमय मूर्गत मुद्ध निरंतन देव ध्याउ रे ॥ वया ० ॥३॥

'र्नन ग्रोस की कूँद कुमा की नोक पर लटकती हुई थोड़ी देर तक ही टहरती है, वैसे ही मनुष्यों का जीवन भी ग्रत्यन्त ग्रस्थिर है, भी ग्र नष्ट हो जाने वाला है, इसलिए हे गीवम ! अस्तमात्र भी प्रमाद न कर । र

प्रसिद्ध सायागास्त्री येनियर विनियम्स के अनुसार मिक्त गव्य की व्युत्सित 'मज्' से की जा सकती है। इसके आवार पर यह कहा जा सकता है कि मिक्त-भावना, आर्थों के दार्शनिक एवं आव्यात्मिक विचारों के फलस्करूप, क्रमणः श्रद्धा-टपासना से विकसित होकर उपास्य भगवान के ऐप्दर्थ में भाग लेना (मज् = माग तेना) जैसे व्यापक भाव में परिग्रत हुई। इस ऐप्दर्थ में कोई भी माग के सकता है, इसके लिए संसार को आजा-नृष्णा छोड़कर ज्ञान-सुवारम पीना होगा, अन्यया ईज्वरीय ऐज्वर्थ की सलक भी नहीं विकाई देगी। इस ऐद्दर्थ का उपमोग करने के लिए पात्रता चाहिए। श्री आनन्दयन ने यह नुस्ला बताया है:

## (राग ग्रामावरी)

श्रासा श्रीरन की कहा के ले, ज्ञान-सुधारस पीर्ज ।।

भटकै द्वारि-द्वारि लोकन कै, कूकर श्रासाधारी ।

धातम श्रमुभव रस के रिसया, उतरद न कदहु खुमारी ।।श्रा०।।१।।

श्रासा दासी के ले कार्य, ते लन का के दासा ।

श्रासा दासी करे के नायक, लायक श्रमुभी व्यासा ।:श्रा०।।२।।

ब्रब्याय : मक्तिकाल-पूर्व पीठिका : पृष्ट मंस्या ७२.

२. कृसमी नह श्रीमिन्दृए, योदं चिद्ठह लंबमागुए एवं मणुवासा चीवितं, समयं गोयम! या प्रमायए।

<sup>---</sup>महाबीर बाखी : वेचरटाम दोजी : पृष्ठ ६६, . हिंदी साहित्य का इतिहास : सम्पादक डॉ. नपेन्द्र :

मनसा प्याला प्रेम मसाला, ब्रह्म श्रगिन परजाली ।।
तन भाठी अवटाइ पीय कस, जागे अनुभी लाली ।। श्रा० ।।३।।
श्रगम पीयाला पीथ्रो मतवाला, चिन्हे श्रध्यात्म वासा ।
'श्रानन्दघन' ह्वं जग में खेलें, देखें लोक तमासा ।।श्रा०।।४।।
संसार की श्राणा निराणा है, श्राणा दासी की संतान जगत् की गुलाम
है। भक्त जन कहते हैं कि श्राणा-तृप्णा के बन्धन तोड़ कर मुक्त हो जाग्रो।
श्रात्म-सुल में लीन हो जाना ही स्वाधीनता है।

ग्रज्ञान, जिसे जैन दर्शन मिथ्यात्व कहता है, जीवारमा को ५४ लाख जीव-योनियों में भटका रहा है। मिथ्यात्व, जीवारमा को सत्य से विमुख रखता है। संसार-यात्रा में पथभ्रष्ट करने वाले मिथ्यात्व के प्रभाव को देखिये कि इसके वशीभूत होकर जीवारमा मोह-जाल में फंसती है, तृष्णा के खारे जल को पीकर ध्रतृष्त रहती है, दु:ख-ग्राह के मुख में पड़कर ग्रान्ताद करती है श्रीर क्षिणक दैहिक सुख को गाश्वत समभकर दुर्गति की खाई में गिरती है। मिथ्यात्व जिनत ग्रभिशाप का विश्लेपण करते हुए लंकास्टर विश्वविद्यालय के दर्णनशास्त्र के प्रोफेसर निनिग्रन स्मार्ट लिखते हैं:—

'मनुष्य के लिए मुख्य बाघा पाप नहीं है वरत् श्रघ्यात्म विषयक श्रज्ञान (मिथ्यात्व) है। श्रज्ञान के श्रावरण में लिपटे रहने के कारण मनुष्य, सत्य के दर्णन नहीं कर पाता; फलस्वरूप वह संसार की मोह-फांस में फंसा रहता है। ४

V. The trouble with man is not in essence sin, so much as spiritual ignorance. The truth is veiled from man's sight because of his immersion in the world; and conversely, spiritual ignorance keeps him bound to the world.

<sup>--- &#</sup>x27;The Religious Experience of mankind':

Author; Ninian Smart:

Chapter: Jainism: Page 103.

मनुष्य को ग्रन्धकार से प्रकाश में ले जाने के लिए ब्रह्मजानी परोपकारी सन्तों ने सतत प्रयास किया है। कवीर, श्रानन्दघन, मीरांवाई, चैतन्यमहाप्रभु, देवचन्द्र, यशोविजय, चिदानन्द प्रमृति भक्तों ने ग्रपनी पीयूपवाणी से
मनुष्य को भव पंक में पंकज की तरह खिले रहने का उपदेश दिया है। यह
कथन ग्रतिशयोक्ति पूर्ण नहीं है कि ग्रानन्दघन की वाणी में कवीर का ज्ञानमसाला, मीरांवाई की तन्मयता, नरसी मेहता की प्रेम-माधुरी, चैतन्य महाप्रभु
की मस्ती, देवचन्द्र की सारगिंभता, यशोविजय की सहजता तथा चिदानन्द की
खुमारी है। इसे ज्ञान-सुघारस कहिये या प्रेम-पंचामृत, यह वस्तुतः ग्रानन्दघन'
से वरसने वाला ग्रानन्दर्स है जिसे पीकर कौन ऐसा है जो नहीं भूमता, जो
तुच्छ सांसारिक सुखों से मुंह नहीं फेरता जो 'प्रेम-वाण' से घायल होकर प्रिय
के विरह में व्याकुल नहीं होता। प्रेम-वाण से घायल प्रिया का यह ग्रात्म निवेदन क्या कंत नहीं, सुनेंगे?

# (राग-सोरठ) ं

कंत चतुर दिल ज्यानी हो मेरो कंत चतुर दिल जानी।
जो हम चीनी सों हम कीनी, प्रीत ग्रधिक पहिचानी हो।। मेरो०।।१।।
एक बूंद को महिल बनायो, तामें ज्योति समानी हो।
दोय चोर दो चुगल महल में बात कछु निह छानी हो। मेरो०।।२।।
पांच श्रव तीन त्रिया मन्दिर में, राज कर रजधानी हो।
एक त्रिया सब जग बस कीनो, ज्ञान खड्ग वस श्रानी हो।।
चार पुष्प मन्दिर में भूखे, कबहू त्रिमृत न श्रानी हो।।
इक श्रसील इक श्रसली बूक्ते, बूझ्यो ग्रह्म जानी हो।।
चार गित में फलतां बीते, करम की किनहु न जानी हो।
'श्रानन्दधन' इस पद कू बूक्ते, बूझ्यो भविक जन प्राणी हो।।मेरो०।।५।।
वियोगावस्था में निरावलम्बता के कारण वियोगिनी को श्रनेक कष्टों का सामना करना पड़ता है। विरह-पीडित ग्रात्म-प्रिया, दुष्टों के काले-कार-सामों का अण्डाफोड़ श्रपने प्रियतम को कर रही है। प्रिया, चिकने घड़े के समान

ढीठ, माया-जाल के ग्राकर्पण में फंसाने वाले, कुशल पडयंत्र से ग्रात्म-खजाने के गुणं-रत्नों को चुराने वाले 'राग-द्वेप' नामक दो विकट चोरों की, ग्रपने राजराजेण्वर ग्ररिहंत प्रभु से णिकायत करती है। इन चोरों की सहायतार्थं चार दुष्ट ग्रीर बैठे हुए हैं—ये राग-द्वेप रूपी महाचोरों के उच्चाधिकारी हैं जिनका काम है प्रिया (ग्रात्म-ललना) को इनकी माया-जाल में फंसाये रखना क्योंकि इन्हें यह पता है कि माया का पर्दा हटते ही इन्हें कूच करना पडेगा; ग्रतः इन्होंने भयकर कुचक फैला रखा है। प्रियतम शक्तिणाली है, वह इन विकराल चोरों से प्रिया को वचाने में सब प्रकार से योग्य है। बीतराग देव 'राग-देप' नामक विकट ग्रसुरों से ग्रात्म-प्रिया का उद्धार कर मकते हैं, ग्रन्य किसी में यह णक्ति नहीं है।

संन ग्रानंदघनजी ने रूपक ग्रलंकार द्वारा हृदयिवदारक दृश्य प्रस्तुत किया है। राग—द्वेपादि महा चोरों के उच्च ग्रफ़्सर—वोडी-गार्डस—ग्रंगरक्षक हैं—त्रोय, मान, माया ग्रीर लोग। राग सम्राट है, द्वेप उसका महामंत्री है, कोघ, मान, माया ग्रीर लोग हैं—कुणल प्रणासक। यह नौकर णाही जीवन-महल में घुमी हुई है, इसी कारण इतनी 'हायतोवा' मची हुई है। भगवान महाबीर ने इसीलिए कहा है:

कोहं माए च मायं च, लोभं च पाववड्ढएां। वमे चत्तारि दोसेउ, इच्छन्तो हियमप्पणो।।

[जो मनुष्य श्रपना हित चाहता है, उसे पाप को बढ़ाने वाले कोघ, मान, माया श्रीर लोभ, इन चार दोपों को सदा के लिए त्याग देना चाहिए।] रागी स्वामी की शरण से मुक्ति की श्राशा करना नादानी है। ग्रतः श्रानन्द-घनजी महाराज ने वीतराग देव की मुखदायिनी शरण में जाने के लिए उपदेश दिया है। प्रमु की दिव्य शरण में जाने के लिए निर्मल प्रेम-भक्ति होनी चाहिय। निर्मल मन-मंदिर में ही मन मोहन पवारेंगे, ग्रतः प्रिया संकल्प करती है:—

महावीर वाग्गी : वेचरदास दोशी कसाय-युत्तं : पृष्ठ सं. ११६

(राग-वेलावल)

ता जोगे चित ल्याऊं रे बहाला ।
समिकत दोरी सील लंगोटी, घुलघुल गांठ घुलाऊं;
तत्त्व-गुफा में दीपक जोऊं, चेतन-रतन जगाऊं रे बहाला ।
प्रष्ट-करम कडे की घूनी, ध्याना प्रगन जलाऊं;
उपसम छुनने भसम छएगऊ, मिल-मिल अंग लगाऊं रे बहाला प्रादि गुरु का चेला होकर, मोह के कान फराऊ;
धरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुएग नाद बजाऊ रे बहाला ।
इह विध योग-सिहासन बैठा, मुगतिपुरी कू ध्याऊं;

'श्रानन्दघन' देवेन्द्र से योगी, बहुरि न किल में श्राऊ रे बहाला ।

शुद्ध श्रद्धा श्रीर शील से विभूषित होकर प्रिया ने प्रियतम-मिलन की
बात सोची है। ज्ञान-दीपक से श्रात्म-रतन को जगमगाकर वह श्रपने मन मोहन
को निमंत्रण भेजेगी। करुणा में नहाकर, धर्म एवं शुक्ल ध्यान में रमकर वह
मुक्ति-महल में प्रिय से भेंट करेगी। उसे यह ज्ञात हो गया है कि उसका प्रिय
से वियोग श्रष्ट-कर्मों के वन्धन के कारण है। राग-द्वेष एवं काम, क्रोध, माया
तथा लोभादि श्रष्ट-कार्मों ६ के प्रवेश-द्वार ७ हैं। इनको शुद्ध चारित्र द्वारा वंद

रचियताः श्रीमद हरिभद्र सूरीश्वरजी हिंदी मनुवादः श्रीभानु विजयजीः पृष्ठ ७८

६. ग्रष्टकर्मः--ज्ञानावरण, २. दर्णनावरण, ३. वेदंनीय, ४. मोहनीय, ४. श्रावुष्य ६. नामकर्म, ७. गोत्र कर्म. द ग्रंतराय कर्म।

७. इन कर्मों के बन्धन होने में कारए।भूत हैं मिथ्यात्व, हिसादि की श्रविरति, क्रोधादि कपाय वगैरह जिन्हें श्रास्तव (श्राश्रव) तत्त्व कहते हैं। (श्रास्तव = जिससे श्रात्मा में कार्यों का स्रवण हो। इन श्रास्तव-द्वारों को ढंकने वाले, श्रास्तवों को रोक देने वाले सम्यक्तव-त्रत-उपशम भाव श्रादि हैं। इनके साधक समितिगुष्ति, परिसह, यतिधर्म, भावना श्रीर चारित्र को संवर तत्त्व कहते हैं। इससे नये कर्मवन्ध एक जाते हैं। प्राचीन कर्म वंधनों का क्षिय करने वाले वाह्य-श्राभ्यन्तर तप को निजरा कहते हैं।

<sup>---</sup>ललित विस्तरा:

करूंगी । कर्म-वन्धन टूट जाएंगे, फिर प्रिय से मेंट निश्चित है। पिवत्र वाइविल में करुणा एवं गुद्ध जीवन को ईश्वर मिलन का साधन वताया है:—

Blessed are the merciful: for they shall obtain mercy.

Blessed are the pure in heart; for they shall obtain mercy.

-The Sermon on the Mount.

करुणामय जीवन में करुणासागर निवास करते हैं। कारण स्पष्ट है— जिसके हृदय में करुणा है वह प्राणीमात्र के साथ मैत्रीभाव रखता है। करुणा-लता पर विश्व-प्रेम के पुष्प खिलते हैं। करुणा की दिव्य-सुगन्ध से राग-द्वेप की दुर्गन्ध समाप्त हो जाती है, प्रेमधारा बहने लगती है आनन्दधन बरसने लगते हैं। करुणा आनन्दधन को बुलाने की 'प्रेम-पाती' है।

निर्मल प्रेमरंग में रंगी प्रिया (जीवात्मा) र्प्यंगार करती है, ग्रनेक गुण-रत्नों से सजधज कर वह अपने शशिकान्त के दर्शन कर लेती है। मुग्वा नायिका कहती है:

### (राग मारु)

सनसा नट नागर सुं जोरी हो, मनसा नट नागर सुं जोरी।
नट नागर सुं जोरी सिख हम, ग्रीर सबन सें तोरी।।म०।।१।।
लोक लाज नाहिन काज, कुल मरजादा छोरी।
लोक बटाऊ हसो विरानी, ग्रापनों कहत न को भोरी।।म०।।२।।
मात तात सज्जन जात, बात करत सब चोरी।
चालै रस की क्युं करि छूटै, सुरजन सुरिजन टोरी।।म०।।३।।
श्रीरहानों कहा कहावत ग्रीर पै नाहिन कीनी चोरी।
काछ कछ्यो सो नाचत निबहै, श्रीर चा चरि चरि फोरी।।म०।।४।।
ज्ञान सिन्धु मथित पाई, प्रेम पीयूष कटोरी।
मोदत 'श्रानंदघन' प्रभु शशिधर, देखत दृष्टि चकोरी।।म०।।४।।

ज्ञान-समुद्र का मंथन करने से प्रेम-पीयूष की कोटरी प्राप्त हुई, प्रेम-सुधा का पान करने से 'ग्रानन्दघन-चन्द्र' के दर्शन हुए। प्रिया-चकोरी मंत्र-मुग्ध होकर ग्रपने चन्द्र को देख रही हैं।

प्रेम-भक्ति की भूमिका है:

'सेवन कारएा पहेली मूनिका रे, श्रभय श्रद्धेष श्र**ले**ट।'प

'महामंत्र की अनुप्रेक्षा' में श्रीमद् भद्रं कर विजयजी गिएवर लिखते हैं:-'जहाँ ग्रभेद वहाँ अभय-यह नियम है। भेद से भय एवं अभेद से अभय-यह अनुभव सिद्ध है। भय ही चित्त की चंचलता रूप बहिरात्मदणा रूप ग्रात्मा का परिएाम है। अभेद के भावन से वह चंचलता दीप नष्ट होता है एवं अन्तरात्मदणा रूप निश्चलता गुरा उत्पन्न होता है।

श्रभेद के भावन से श्रभय की तरह श्रद्धेप भी साधित होता है। द्वेष श्ररोचक भाव रूप है, वह श्रभेद के भावन से चला जाता है। श्रभेद के भावन से जैसे भय एवं द्वेप टल जाते हैं वैसे ही खेद भी नष्ट होता है। खेद प्रवृत्ति में श्रान्त रूप है। जहाँ भेद वहाँ खेद एवं जहाँ श्रभेद वहाँ श्रखेद श्रपने श्राप श्रा जाता है ।

श्रानन्दघनजी महाराज कहते हैं कि स्वामी कितने उदार हैं कि जो उनकी सेवा निर्मल भाव (श्रभय, श्रद्धेप, श्रखेद भाव) से करता है उसको वे श्रपने समान बना लेते हैं।

वे प्रेममूर्ति है; उनका प्रेम समस्त प्राणियों के लिए है। वे केवल ग्रादर्श रूप ही नहीं हैं ग्रपितु संकट काल में उवारने वाले, भक्त के समीप सदैव रहने वाले भक्तवत्सल दीनवन्धु हैं। वे हैं सुदर्शनचक्रधारी भगवान जो दु:ख-दरध

संभव देव ने घुर सेवो सवेरे, लही प्रभु सेवन भेद;
 सेवन कारण पहेली भूमिका रे, ग्रभय ग्रह्वेष ग्रखेद।

<sup>—</sup>श्रीमद् ग्रानन्दघन रचित श्री सभवनाथ जिन स्तवन राग-सामग्री

६. महामंत्र की ग्रनुप्रेक्षाः पृष्ठ ११.

भक्त की तुरन्त वाह पकड़ लेते हैं। मोह-पंक में फंसे हुए, तृष्णा रूपी ग्राह के दांतों में कराहने वाले दु:खी जीव को ग्रपने सुदर्शनचक्र से बचाने में वे विलम्ब नहीं करते। वे भक्त की प्रेमपुकार शीघ्र सुन लेते हैं उनका सुदर्शनचक्र है-सम्यक् दर्शन। सुदर्शचक्रधारी जिनेश्वर देव की भक्ति से सम्यक् दर्शन। सुदर्शचक्रधारी जिनेश्वर देव की भक्ति से सम्यक् दर्शट प्राप्त होती है, हिय की श्रांख खुल जाती है, तृष्णा ग्रौर मोह के फदे दूट जाते हैं श्रौर जीवात्मा का उद्घार हो जाता है। श्रीमद् ग्रानन्दचनजी ने वीतराग स्वामी का तारणहार रूप प्रकट किया है। कुरान शरीफ में तारणहार कैलोक्य पूजित प्रभु के विषय में यह वर्णन मिलता है:—

### वलम् यकुल्लह कुफोवन ग्रहद ।

(उस सर्वविभूति सम्पन्न, सर्वशक्तिसमर्थ एवं कृपा-करुणा के सागर के समान श्रीर दूसरा कोई नहीं है।) उनकी सेवा से जहर श्रमृत वन जाता है, सपं-पुष्प माल वन जाती है, वेडियां कट जाती हैं, दिरद्रता मिट जाती है, रोग नष्ट हो जाते हैं, शौर जीवन के कांटे मुन्दर फूल वनकर महकने लगते है। इसीलिए सत णिरोमणिश्रखंड विश्वास के साथ कहते हैं:—

### (राग मल्हार)

बुःख दोहग दूरे टल्यां रे, सुख-संपदशुं भेट; घींग घणी माथे कियो रे, कुरण गंजे नर खेट।

।। विमल जिन० ।।१।।

.चरणकमल कमला वसे रे, निर्मल थिर पद देख; समल श्रथिर पद परिहरे रे, पंकज पामर पेख। ।। विमल जिन०।।२।।

मुज मन तुज पद पंकजे रे, लीनो गुरामकरंद;
.... रंक... गरा मंदर-घरा रे, इंद चंद नागिद।
विमल जिन०।।३॥

साहित्र समस्य तुं घर्णी रे, पाम्यो परम उदार; मन विसरामी वाल्हो रे, श्रातमचो श्रायार।

विमल जिन् ॥४॥

दरिसरा क्षेत्रे जिनतर्युं रे, संशय न रहे वैघ; दिनकर करभर पसरतां रे, ग्रंघकार प्रतिषेय।

विमल जिन ।।१।।

ग्रमिय भरी मूरती रची रे उपमा न घटे कीय; शांत सुवारस भीलती रे, निरखत तृपति न होय।

विमल जिन् ।।६॥

एक अरल सेवक ताली रे, अववारी जिन देव; कृपा करी मुक्त दीनिये रे, 'ब्रानस्टबन पद सेव।

विमल जिन् ।।७।।

श्रानन्दघनजी महाराज कहते हैं कि 'साहेव' समर्थ हैं, ऐसे स्वामी के सम्मुख रहने पर कोई भी दृष्ट नहीं नता सकता। दुःख-वरिष्ट्य तो उनके दर्गन नाव से दूर हो जाते हैं। उनकी सेवा ने नृष्णा क्षय हो जाती है, महत्वाकांक्षा निट जाती है; फनस्वरूप मेरावंत की समृद्धि एवं इन्ह्र का वंभव भी नृण्यवत् जगते हैं। प्रमु के ऐन्वर्य के नामने ये सब नाचीज हैं. तुच्छ हैं।

भगवान करुणा सागर, ग्रिरहंत एवं वीतराग हैं। करुणा की कोमलता के कारण ही इन्द्र उनकी स्तुति में कहते हैं, 'पुरिसवरपुंडरीग्राणं-ग्रयीत् पुरुषों में पुंडरीक कमल के समान। पुंडरीक कमल कोमलता का प्रतीक है। वे ग्रिरहंत हैं ग्रयीत् अत्रुओं का नाम करने वाले। ग्रिर कौन? राग-हेपादि। उनकी तील्लाता १० के सामने ये विकट अत्रु टिक नहीं पाते। उनकी कठोरता के सामने दु:ल-दास्त्रिय क्षण मर भी नहीं रुकते। वे वीतराग हैं-तटस्य, माध्यस्य वृत्तिवाले, समतारत्न के सागर। ग्रामन्दयनजी महाराज इसीलिए उन्हें 'जान्त-

१०. देवेन्द्र उनकी स्तुति में कहते हैं:—पुरिसमीहार्ग = पुरुषों में सिंह के समान, नमत्युगं-शकस्तव सुत्र

सुधारस सागर' कहते हैं। भगवान की कोमलता, तीक्ष्णता तथा उदासीनता के गुणों की 'ललित त्रिभंगी' विचित्र है:

शीतल जिनवित लिलत त्रिभंगी, विविध भंगी मन मोहे रे; फरुणा कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोहे रे। सर्वजंतु हितकरणी कठिणा, कर्म विदारण तीक्षण रे; हानादान रहित परिणामी, उदासीनता वीक्षण रे।

(ग्रानन्दघन कृत श्री शीतलनाथ जिन स्तवन से)

प्रभु की 'सर्वजंतु हितकरणी करुणा' का उल्लेख सकलाईत् सूत्र में इस प्रकार हुया है:

### कोमलता

प्राणियों के परमसुख रूप ग्रंकुर को प्रकट करने के लिए नवीन मेघ-समान, तथा स्याद्वादरूप ग्रमृत को वरसाने वाले श्री शीतलनाथ भगवान तुम्हारी रक्षा करें। १९

श्रपराध किये हुए प्राणियों पर भी दया से भूकी हुई (श्रांख की) पुतली वाले श्रीर थोड़े श्रांसुश्रों से भीगे हुए नेश्र वाले श्री महावीर भगवान महामंगल-कारी है। १२

#### तीक्ष्णता

राग द्वेप ग्रादि भीतर के मत्रुग्रों को हटाने के लिए किये गये ग्रिघिक कोप से मानो लाल ऐसी पद्मप्रभु स्वामी की कान्तियां तुम्हारी लक्ष्मी को वढावें। 93

११. सकलाईत सूत्रः स्तुति संख्या १२;

१२. स्तुति २७;

१३. स्तुति ५;

### उदासीनता

ग्रपना ग्रपना उचित-योग्य कार्य को करते हुए कमठ नाम के दैत्य पर ग्रीर घरऐोन्द्र पर समान भाव वाले श्री पार्श्वनाथ मगवान तुम्हारा कल्याग्। करें। १४

उदासीनता वीतरागता की प्रतीक है। वीतराग स्वामी का स्वरूप वताते हुए श्रीमद् भन्न करविजयजी गिएवर 'महामंत्र की अनुप्रेक्षा में लिखते हैं:—

'वीतराग ग्रथीत् करुणानिघान एवं माध्यस्य गुण के भण्डार, तथा वीतराग ग्रथीत् ग्रनम्तज्ञान, दर्शन स्वरूप केवल ज्ञान एवं केवल-दर्शन के स्वामी सर्ववस्तु को जानने वाले एवं देखने वाले होते हुए भी सभी से ग्रलिप्त रहने वाले, सभी के ऊपर स्वप्रभाव को डालने वाले, पर किसी के भी प्रभाव में कभी भी नहीं ग्राने वाले प्रभु । देवाग्रिदेव करुणासागर की ग्रभय गरण ग्रथहरुणी, दु:ख नाग्रिनी एवं मुख-सम्पत्ति प्रदायिनी है।' भ भगवान का वचन है:—

### 'न मे भक्तः प्रस्कवित'

मेरे भक्त का कभी नाग नहीं है अर्थान् मेरी दृष्टि से दूर नहीं होता है।
श्रीमद् ग्रानन्दघनजी ने जिनेश्वरदेव का तारणहार स्वरूप जनता के
सामने रखकर इस भ्रम का निवारण कर दिया है कि वे केवल मार्गदर्शक एवं
श्रादर्शस्य ही है। उनकी चरण-सेवा सुख-सम्पत्ति एवं सम्यन्नता प्रदान करती
है; अनेक मंगल होने लगते हैं श्रीर ग्रानन्द के वाजे वजने लगते हैं। इमीलिए
श्रानन्दघनजी ने दीन।नाथ को 'वींगवणी'—समर्थ स्वामी कहा है।

श्रीमद् ग्रानन्दधनजी ने समन्वय-हिष्ट से भगवत्स्वरूप को प्रकट किया है। जैन दर्शन श्रनेकान्त दर्शन है। श्रनेकान्त ग्रयीत् निष्पक्ष हिष्ट से देखने पर भगवान भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देते हैं। उनके भिन्न-भिन्न नाम उनके विशिष्ट गुणों के कारण हैं। वे निर्जु ण होते हुए भी दिव्य गुण-रत्नों से विभू-

१४. स्तुति २५;

१५. महामंत्र की ग्रनुप्रेक्षा : पृष्ठ ४६.

पित है; वे निरजन होते हुए भी समस्त प्राणियों से प्रेम-सूत्र से वंचें हुए हैं।
प्रभु के विविध नामों की महिमा में श्रीमद् ग्रानन्दघनजी कहते हैं:

श्री सुपास जिन वंदीए सुख सपत्ति नो हेतु । ललना० शांत सुघारस जलनिघि, भवसायर मां सेतु ।। ललना० श्री सु० ।।१।। सात महाभय टालटो, सप्तम जिनवर देव । ललना० सावधान मनका करी, धारो जिनपद सेव ।। ललना० श्री सू० ।।२।। श्रलख निरंजन बच्छलु, सकल जंतु विसराम । ललना० श्रभयदान दाता सदा, पूरण ग्रातमराम ॥ ललना० श्री सु० ॥३॥ चीतराग मद कल्पना, रतिप्ररति भय सोग । ललना० निद्रा तंद्रा दूरदसा, रहित प्रवाधित योग ।। ललना० श्री सू० ॥४॥ परम पूरुव परमात्मा, परमेश्वर परधान । सलना० परम पदारथ परमेव्ठी, परमदेव परमान ललना० श्री स्० ॥ १॥ विधि विरंचि विश्वंभर, हृवी हेश जगन्नाथ। ललना० ग्रघहर त्रघमोचन घर्गो, मुक्ति परमपद साथ ।।ललना० श्री सु० ।।६।। इम प्रनेक प्रभिधा घरे, प्रनुभव गम्य विचार । ललना० जो जारो तेहने करे, श्रानन्दघन श्रवतार ॥ ललना० श्री सु० ॥७॥ प्रभु 'सकल जत् विसराम' है। जिस प्रकार मां की गोद में शिशु प्रानद पूर्व क सोता है, उसी प्रकार भगवान की ग्रभय शरण मे समस्त प्राणी सुख पाते है। वे ब्रह्मा, विष्णु, महेण है, वे जगन्नाय है, वे पाप-क्लेश का नाश करने वाले ग्रधमोचन है।

ई० १७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ढ में भारत में श्रीरंगजेव का शासन काल था। उस समय धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू-मुसलमानों के बीच श्रलगाव था। साम्प्रदायिक संकीर्णता ने समाज में विषमता उत्पन्न कर दी थी। श्राधिक पिछड़ेपन के कारण जनता में घोर निराशा थी। पालडी घर्म के नाम पर भोली भाली जनता को ठगते थे। हरिजनों की दणा दयनीय थी। धार्मिक कर्म-कांडों में घर्म क्रैंद था। ऐसे समय में सन्त ग्रानन्दघनजी ने भेद भाव को दूर करने के लिए सत्प्रयास किया। उन्होंने घोषणा की कि राम-रहीम कृष्ण-करीम, महादेव एवं पारसनाथ एक ही भगवान है:

राम कही रहेमान कही, कोउ कान्ह कही महादेव री।
पारसनाथ कही कोउ बह्या, सकल ब्रह्म स्वयमेव री।।राम०।।१।।
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृतिका रूप री।
तैसे खंड कल्पनारोपित. श्राप ग्रखंड सरूप री।।राम०।।२।।
निज पद रमें राम सों कहिये, रहम करें रहमान री।
करषें करम कान्ह सो कहिये महादेव निरवाण री।।राम०।।३।।
परसे रूप पारस सो कहिये, ब्रह्म चीन्हें सो ब्रह्म री।
इह विघ साघो श्राप 'ग्रानन्दघन' चेतनमय निःकमं री।।राम०। ४।।
मिट्टी के पात्र भिन्न-भिन्न रूपो में वनते हैं, परन्तु मिट्टी एक ही है;

मिट्टी के पात्र भिन्न-भिन्न रूपों में वनते हैं, परन्तु मिट्टी एक ही हैं। रग-विरंगे लैम्पों में ज्योति रंग-विरंगी दिखाई देती है, पर ज्योति का स्वरूप तो सभी लैम्पों में ज्योति रंग-विरंगी दिखाई देती है, पर ज्योति का स्वरूप तो सभी लैम्पों में समान है। निज स्वरूप में रमण् करने वाला राम है, जो रहम प्रथवा दया करता है वह रहमान है; जो कर्मों का कर्पण कर ग्रात्म स्वरूप को प्रकट करता हैं वह कृष्ण है; महादेव वह है जो निर्वाण प्राप्त कर लेता है। जो निज स्वरूप को परस ले वह पारसनाथहै। ग्रानन्दघन वहीं है जो गुढ़ चेतनमय है। जैन दर्शन के स्यादवाद (ग्रनेकान्त-दर्शन) के मर्मज्ञ संत ग्रानन्दम् घनजी ने भगवान का सर्वव्यापी सहज स्वरूप जन साधारण को वताकर महोपकार किया है। इस महान संत ने धर्मांवता, संकीर्णता, ग्रसहिष्णुता, एव दुराग्रह से पीडित मरणोन्मुख मानव को एकता का ग्रमृत पिलाया। उन्होंने समाज में व्याप्त नैराश्य ग्रघंकार को दूर कर ग्राशा का दीपक जलाया। जो धर्म मठाधीशों एवं वगुला भक्तों के ग्राडम्बर रूपी कीचड़ में फंस गया था, उते मुक्त कर सामान्य जन-मानस में कमल की तरह खिला दिया।

संत ग्रानन्दघनजी ने कर्मकांड का खंडन किया है परन्तु णुद्ध किया का समर्थन किया है क्योंकि यह मोक्ष प्राप्ति का साधन है। वे घोपणा करते हैं:

> निज स्वरूप जे किया साधे, तेह ग्रध्यात्म लही रे; जे किरिया करी चउगति साधे, ते न ग्रध्यात्म कहीए रे। (श्री श्रोयांम जिन स्वयन)

जिस किया से, जिस चरित्र से, जिस जीवनचर्या से निजस्वरूप की प्राप्ति होती है वही गुद्ध किया है; जिस किया से-ग्राडम्बर युक्त कर्मकाण्ड से चार गितयों (देव, मनुष्य, तिर्यंच, नारकी, में ग्रमग्ग करना पड़े, वह ग्राघ्यारिमक किया नहीं कही जा सकती, उस जीवन को कोई भी पवित्र नहीं कहेगा।

णुद्ध किया की ग्राधार णिला है शुद्ध श्रद्धा-सम्यक्दर्णन (Right Faith)
णुद्ध श्रद्धा से निर्मल भक्ति उत्पन्न होनी है। प्रमु सेवा में उमंग रहती है, ग्रानन्द
धारा बहती रहती है। भक्त के सारे कार्य-क्ताप सहज हो जाते है। यान्त्रिक
नहीं। शुद्ध श्रद्धा श्राने पर ग्रन्तर्ह िट खुल जाती है, प्रमु का शुद्ध स्वरूप समभ
में ग्रा जाता है, धर्म-ग्रधमं का विवेक हो जाता है मोह का पर्दा हट जाता
है। शुद्ध श्रद्धा शिव का त्रिनेत्र है जिसकी प्रखर ग्राग्न-ज्वाला में ग्रज्ञान भव्म
हो जाता है। शुद्ध श्रद्धा के विना मुक्ति-मन्दिर पहुँचना ग्रसम्भव है। श्रद्धा
हीन कियाएँ निष्फल होती हैं:

'गुद्ध श्रद्धान विरा सर्व किया करे, छारपर लींप छुं तेह जारा।।'१६ श्रद्धा विहीन भक्त की समस्त क्रियाएँ राख पर लीपन के समान है। राख पर लीपना व्यर्थ है।

शुद्धे श्रद्धा (सम्यक्दर्शन) ग्राने पर भक्त का सारा जीवन, उसका समस्त ग्राचरण ग्रानन्दघन के चरणों में चढ़ने वाला पुष्प वन जाता है। देखिये, श्रद्धावान मस्त फकीर का यह रूप:

मेरे प्रान ग्रानन्दघन तान ग्रानन्दघन ।।
सात ग्रानन्दघन तात ग्रानन्दघन ।
गात ग्रानन्दघन जात ग्रानन्दघन ।। मे० ।।१॥
राज ग्रानन्दघन काज ग्रानन्दघन ।
साज ग्रानन्दघन लाभ ग्रानन्दघन ।। मे० ।।२॥
ग्राभ ग्रानन्दघन गाभ आनन्दघन ।
नाभ ग्रानन्दघन लाभ ग्रानन्दघन ।। मे० ।।३॥

१६. ग्रानन्दघन कृत श्री ग्रनंतनाथ जिन स्तवन से उद्धत ।

महर्षि ग्ररविंद कहते हैं:

'तुम भगवान के दिव्य रूप को अपने जीवन में प्रकट करो । तुम प्रभु-मय बनो, उसके प्रकाश में चमको, अपने कार्यकलापों में उसकी दिव्य शक्ति प्रदर्शित करो, उसके श्रानन्द में रमएा करो। प्रभु के आनन्द में, उसकी महिमा में, उसके सौंदर्य में, जीवन को रंग दो।' <sup>९ ७</sup>

संत साईवावा विश्वास पूर्वक वताते हैं :

जीवन वृक्ष के समान है। प्रभु के प्रति श्रद्धा वृक्ष की जड़ है। हमारे सारे सम्बन्ध वृक्ष की शाखाएँ हैं। वृद्धि सुगन्धित फूल है। ग्रानन्द फल है। उस फल का रस है चरित्र। १ म

निर्मल श्रद्धायुक्त भक्त का जीवन प्रभुमय वन जाता है। उसकी समस्त कियाएँ विमान की तरह उड़कर उसे ग्रानन्दसागर के पास पहुँचा देती है। इसी-लिए सन्त छोटमजी डंके की चोट कहते हैं:

> श्रानन्दसागर सोई संतो भाई श्रानन्द सागर सोई; जीहां द्वेत रहे नहीं कोई, संतो भाई श्रानन्दसागर सोई। सोह हस जीहां लय पावे श्रनहद ज्योति समावे; अ।नन्दसागर जो जन पावे. सो भव में न श्रावे।।

it is to discover God as thyself and reveal him to thyself
 in all things. Live in his being, shine with his light,
 act w'th his power, rejoice with his bliss. Be that joy
 and the greatness and that beauty.

<sup>-</sup>The Hour of God: Shri Arvinco; Page 11

<sup>Que life is like atree, Faith in God is the root of the tree. Our relations are its branches. The intellect is like a fragrant flower. Its fruit i; bliss. The juice of that fruit is caracter.</sup> 

<sup>—</sup> Saint Saibaba: The Illustrated Weekfy of India Vol. XC: 21-3-71

निर्मल श्रद्धा से निर्मल जीवन बन जाता है; द्वैतता मिट जाती है; भक्त श्रीर भगवान एकाकार हो जाते हैं; भक्त के जीवन की ग्रानन्दघारा ग्रानन्दसागर में मिल जाती है। भक्त को ग्रानन्दघन के चरण-कमलों में स्थान प्राप्त हो जाता है।

ज्ञान-भक्ति योग के समन्वय से निज स्वरूप का वीघ हो जाता है। संसारी जीव की तीन ग्रवस्थाएँ हैं : १. वहिरात्मा. २. ग्रन्तरात्मा, ३. परमात्मा वहिरात्मा देह को ही ग्रात्मा मानता है, वह दैहिक सुख में रचा-पचा रहता है। ग्रानन्दघनजी महाराज वहिरात्मा को 'श्रघरूप' मानते हैं । ग्रपने सुख को जुटाने में व्यस्त वहिरात्मा अनेक कुकर्म करके दुर्गति में गिरता है। अन्तरात्मा वे हैं जो मोह-निद्रा से जागकर निज स्वरूप प्रकट करने के लिए प्रत्यनशील हो जाते हैं। ग्रपनी गुद्ध सावना से ग्रात्माराम परमात्म-पद प्राप्त कर लेते हैं। जब मोह नींद टूट जाती है तव जाग्रत जीव को यह मान हो जाता है कि देह ग्रीर ग्रात्मा भिन्न हैं । <sup>९६</sup> योग में इस ग्रवस्था को जागृति कहते हैं; जैन दर्शन इसे 'सम्य<del>क्त</del>व' प्राप्ति कहता है। 'सम्यक्त्व' गुद्ध श्रद्धा की कहते है। जैन दर्शन में 'चौहद गुरा स्थानों का वड़ा महत्व है। यह 'मुक्ति-सोपान' है जिस पर जीवात्मा चढ़कर मुक्त मन्दिर में पहुँचती है। मुक्ति-सोपान की १४ पायडियां हैं। प्रथम तीन पायडियाँ मोहावृत्त हैं। इन पर चढ़ते हुए जीवात्मा मायावरण में वेभान रहती है । चौथी पायडी (सम्यनत्व गुएास्थान) पर पाँव घरते ही उसे ग्रपने मनमोहन के स्वरूप का भान हो जाता है । तात्पर्य यह है कि चौथे गुर्णस्थान से जीवात्मा मुक्तिमन्दिर की वास्तविक यात्रा का शुभारम्भ करती है। ग्यारह गुणस्थानों पर पहुँचते-पहुँचते जीवात्मा को मोह-माया जन्य ग्रनेक विघ्न-बाधःग्रों से जूफना पड़ता है। वारहवीं पाँवड़ी (संक्षीण कपाय गुणस्थान) मुक्ति मन्दिर की प्रवेश पाँवड़ी है। १३ वीं पाँवड़ी (सयोगी केवली गुरणस्थान) पर चढ़ते ही अन्त-र्टीष्ट पूर्णतया खुल जाती है । यही है केवल ज्ञान या ब्रह्म दर्शन । मुक्ति सोपान की ग्रन्तिम पाँवड़ी है अयोगी केवली गुरास्थान । यह है सिद्धावस्था । आत्मा

१६. श्रन्नो जीवो ग्रन्नं सरीरं २।१।६ सूत्रकतांगसूत्र (ग्रात्मा ग्रीर है, शरीर ग्रीर है।)

परमात्मा में समा जानी है। जीवात्मा का आनन्दघन के चरणों में चिर निवास हो जाता है। श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज कहते हैं कि वे मनुष्य कभी नहीं फिसलते जो निर्मल प्रेम-भक्ति से प्रभु को भनते हैं। 'साहेव' की भक्ति के लिए न पांडित्य की आवश्यकता है और न पैसों-टकों की। ऊँच-नीच, जांति-पांति का भी कोई भेदभाव नहीं है। उस 'अमोलक रतनधन' को पाने के लिए निरूपाधिक-निस्वार्थ प्रेम चाहिए। भक्त प्रेम-भाव से अपने साहेव को विनती करता है:

श्रवधू वया मांगु गुनहीना, वे तो गुनगन गगन प्रवीणा ।।

गाय न जानुं वजाय न जानुं ने जाग्रु सुर भेवा ।

रींभ न जानुं रीजाय न जानुं ने जानु पव सेवा ।। श्रवधू०।।१।।

वेव न जानु कतेव न जानुं जानुं न लच्छन छंदा ।

तरक वाद विवाद न जानुं, न जानुं किव फंदा ।। श्रवधू०।।२।।

जा। न जानुं जुवाव न जानुं, न जानुं कथ बाता ।

भाव न जानुं भगित न जानुं, जानुं न सीरा ताता ।।श्रवधू०।।३।।

ग्यान न जानुं विग्यान न जानुं, न जानुं भजनामा ।

श्रानन्दधन प्रभृ के घर द्वारे, रटन करूं गुराधामा ।। श्रवधू०।।४।।

इस पद में प्रभु सेवा का सरल नुस्खा बताया गया है । भित्त में विनय
भाव का महत्व है । विनय भाव समर्पण की भूमिका है । प्रभु के श्रभय चरणों

में समर्पण से भक्त भगवान के ऐश्वयं को पा लेता है । मामान्य व्यक्ति के लिए
भी यह खजाना खुला हुग्रा है । भगवान महावीर स्वामी कहते हैं :

धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है श्रीर उस मूल में से प्रकट होने वाला उत्तमोत्तम रस मोक्ष है। विनय से ही मनुष्य कीर्ति, विद्या. श्लाघा-प्रशंसा श्रीर कल्याण शीघ्र प्राप्त कर लेता है। <sup>२०</sup>

श्रीमद् ग्रानन्दघनजी महाराज कहते हैं कि सम्यक् ज्ञान मुक्तिदाता है। ज्ञान प्राप्ति के साधन है: सत्शास्त्र, सुगुरू एवं सत्संगति। सत्शास्त्र को सम-

२०. एव धम्मस्स विराग्नो, मूलं परमो से मोक्खो । जेरा किंचि सुयं सिग्घं, निस्सेसं चाभिगच्छइ ॥ (दशवैकालिक सूत्रः ग्र. ६ उ. २ गा. २)

भने के लिए ग्रन्त है िट चाहिये। सुगुरू के विना ज्ञान मिलना सम्भव नहीं। सत्संगित भी इस किलकाल में दुर्लभ है। इनका ग्रकाल सा पड़ गया है। भाग्य विना इनकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसी परिस्थित में दीनानाथ वीतराग स्वामी की भक्ति ही कल्पतरू के समान है। भक्ति से सब साज-सामान सहज उपलब्ध हो सकते हैं। इसीलिए श्रीमद् ग्रानन्दधनजी निर्मल भाव से (ग्रभय, ग्रहें प, ग्रखेद भाव से) प्रभु सेवा का उपदेश देते हैं।

संसार में भ्रमण का कारण है ममता। भव-भ्रमण से मुक्त करने वाली है समता। भगवान समतावंत हं—रागद्धेप से रहित हैं। समरस में रमण करने वाली वीतराग देव की सेवा-भक्ति से समता प्राप्त होगी। समरस ग्रणीत् शान्त रस के क्षीर सागर में शेपनाग (सुपुम्ना) की सेज पर सोने वाले लक्ष्मीरमण (मुक्ति लक्ष्मी के स्वामी) सिच्चदानन्द की सेवा-पूजा से ममता मिट जायगी ग्रीर समता-बार प्रवाहित होगी। ग्रानन्दघनजी महाराज समता-रंग में रमन करने का उपदेश देते हैं:—

### (राग-श्राशावरी)

साधो भाई समता संग रमीजे श्रवधू ममता संग न कीजै। साधो०।।
संपत्ति नाहीं नाहीं ममता में, रमता माम समेटे।
खाट पाट तजी लाख खटाउ, श्रन्त खाख में लेटे।। साघो०।।१।।
घन घरती में गाडे वौरा, घूरि श्राप मुख ल्यावे।
मूपक सांप होइगो श्राखर, तातें श्रलच्छी कहावे।। साघो०।।२।।
समता रत्नागर की जाई, श्रनुभव चंद सुभाई।
का॰कूट तजी भव में श्रेणी, श्राप श्रमृत ले जाई।।साघो०।।३।।
लोचन चरन सहस चतुरानन, इनतें बहुत डराई।
श्रानन्दघन पुरुषोत्तग नायक. हितकरी कंठ लगाई। साघो०।।४।
श्रात्मित्रया कहती है कि ममता हजारों नेत्रों से, मुभे देख रही थी,
हजारों पाँवों से दौड़कर मेरा पीछा कर रही थी, चारों श्रोर मेरी घात लगाए
हुए थी। परन्तु मैंने समतारस घारी प्रभु की श्रभय शरण पकड़ ली श्रतः उसके
सारे पासे उत्टे पड़े। इस संसार में नवरस प्रवाहित हैं परन्तु साघुजन समता
रंग में श्रपने को रंगते हैं। नव रसमय संसार की भांकी देखिये:—

- १. दु:ख दृष्टि से संसार करुणारस से मरपूर है।
- २. पाप हिट से संसार रौड़ रस से भरपूर है।
- ३. ग्रजान दृष्टि से संसार भयानक रस से भरपूर है।
- ४. मोह दृष्टि से संसार वीभत्स और हास्य रस से भरपूर है।
- ५. सजातीय दृष्टि में संसार स्नेहरस से भरपूर है।
- ६. विजातीय दृष्टि से संसार वैराग्य रस से भरपूर है।
- ७. कर्म हिट्ट से संसार अद्भुत रस से भरपूर है।
- वर्म दृष्टि से संसार वीर श्रीर वात्सल्य रस से भरपूर है।
- ६. ग्रात्मदृष्टि से संसार समतारस से भरपूर है।
- १०. परमात्म दृष्टि से संसार भक्तिरस से भरपूर है।
- ११. पूर्ण दृष्टि से सभी रसों की समाप्ति जान्तरस में होती है।

जैसे मूर्य के श्वेतवर्ण में सप्तरंग होते हैं, वैसे सभी रस तृष्णा क्षय रूप, शमरस रूप, स्थायी भाव, विभावानुभाव, संचारी भाव प्राप्त कर शान्तरस में परिएात हो जाते हैं। <sup>२९</sup>

नवरसमय संसार में भक्तजन समतारस में ही रमते हैं।

सम्यक् दर्णन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र से मोक्ष की प्राप्ति होती है। भक्ति-ज्ञान एवं कर्म की सावना से भगवत्स्वरूप प्राप्त हो जाता है। श्रीमद् आनन्द्यनजी महाराज के अनुसार योग ही सम्यक् चारित्र है। किलकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य ने योग को सम्यक् चारित्र माना है। आनन्द्यनजी महाराज कालिकाल सर्वज्ञ की परम्परा के पहुँचे हुए महारमा थे। भगवद् भक्त अपने जीवन को प्रभु का पावन मन्दिर बना लेता है। प्रिय मिलन के लिए प्रिया ने अपने जीवन को अत्यन्त पवित्र बना लिया है। उसका श्रुंगार देखिये:—

श्राज सुहागन नारी, श्रीषू, श्राज सुहागन नारी। टेक मेरे नाय श्राप सुघ लीनी, कीनी नीज श्रंग चारी ।।श्रीष्० ।।१।। प्रेम प्रतीत राग रूचि रंगत, पहिरे जीनी सारी। महिंदी भक्ति रंग की राची, भाव श्रंजन सुखकारी ।।श्रीष्ठ० ।।२॥

२१. श्रीमद् भद्रंकर विजयजी महाराज के सदुपदेश से प्राप्त ।

सहज स्वभाव चूरी में पेनी, थीरता कंगन भारी।

ध्यान उरवसी उर में राखी, पियगुन माल श्राधारी।।श्रीष्० ।।३।।

सूरत सिंदूर मांग रंगराती, निरते वेगी समारी।

उपजी ज्योत उद्योत घट, त्रिभुवन, श्रारसी केवल कारी।।श्रीष्०।।४॥

उपजी घूनी श्रजपा की श्रनहद, जीत नगारे वारी।

भडी सदा 'श्रानन्दधन' वरखत, वन मोर एकनतारी।।श्रीष्०।१।

प्रेम की रग-विरंगी चुनिरया श्रोढ़कर भक्ति की मेंहदी रचाकर, सहज स्वभाव की चूडी पहनकर श्रीर प्रिय के गुएा-रत्नों की माला (सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्गन, सम्यक् चारित्र—रत्नत्रयी) से सजकर प्रिया-श्रभिसारिका वनठन कर प्रिय मिलन हेतु उल्लामपूर्वक चल पड़ी है। प्रिया के इस रूप को निहार कर प्रिय क्यों नहीं रीभते ? णुढ़श्रात्मदर्पण में मनमोहन का रूप छलक उठा।

श्रीमद् ग्रानन्दघनजी महाराज ज्ञानी, प्रेम योगी एवं समदर्शी संत थे। **उन्होने प्रमु दर्णन के लिए श्र**प्टांग योग को प्रवल साधन माना है । परन्तु उनकी दृष्टि में योग श्रीर सम्यक् चारित्र एक ही है। योग दर्शन के अनुसार योग के म्राठ ग्रंग हैं : १. यम, २. नियम, ३. ग्रासन, ४. प्राखायाम, ५. प्रत्याहार, ६. घारणा, ७, घ्यान, ८. समावि । समाधि ग्रवस्था में योगी का ब्रह्मरंध्र खूल जाता है ग्रीर उसे दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है। इस ग्रवस्था में सहस्रदल कमल खुल जाता है ग्रीर उससे मकरंद विंदु टपकती है । कुंडलिनी मकरंद विंदु (सुघारस) का पान कर ब्रह्मानन्द में लीन हो जाती है। महाकुंडलिनी नाड़ी शक्ति (Divine Energy) का निवास है ग्रन्निचक । व्यक्ति में प्राण के साथ यह शक्ति जन्मना ग्राती है। ग्रग्निचक के कपर मूलाघार चक्र, स्वाविष्ठान चक्र, मिए।पुर चक, ग्रनाहत चक, विणुद्धारुयचक, ग्राज्ञाचक ग्रीर सहस्रारचक हैं। ग्रंतिम को गून्य चक्र या कैलाग भी कहते है। यहाँ सदा अमृत भरता है। योगी का कर्त्तंन्य, साधना (सम्यक् चारित्र) द्वारा कुंडलिनी को जगाकर क्रमशः इसी चक्र तक ले जाना भ्रौर भ्रमृत पिलाना है। कुंडलिनी से ऊपर उठने पर **णव्द होता है जिसे नाद कहते हैं। नाद से प्रकाश होता है जिसके प्रकट** रूप को विदु कहते हैं। यही है नित्यानन्द ग्रवस्था। यही है ब्रह्मदर्शन, केवल ज्ञान या Eternal Bliss । यही है समतारस, यही है ब्रह्मानंद । योगिराज ग्रानन्द-घनजी का यह पद ग्रष्टांग योग का दिग्दर्शन कराता है:—

श्रातम श्रनुभव प्रेम को, श्रजव सुण्यो विरतंत ।

तिर्वेदन वेदन करे, वेदन करे श्रनन्त ।

महारो बालुडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ।।१।।

इडा पिंगला मारंग तज जोगी, सुखमना<sup>२२</sup> घर श्रासी ।

श्रह्मरंश्र मधि श्रासण्पूरी बाबु, श्रनहद नाद बजासी ।।२।।

जम नियम श्रासन जयकारी, प्राणायाम श्रभ्यासी ।

प्रत्याहार धारणाधारी, ध्यान समाधि समासी ।।३।।

मूल उत्तर गुण मुद्राधारी, परयंकासन चारी ।

रेचक पूरक कुंभक कारी, मन इन्द्री जयकारी ।।४।।

स्थिरता जोग युगति श्रनुकारी, श्रापो श्राप विचारी ।

श्रातम परमातम श्रनुसारी, सीजे काज सवारी ।।४।।

इस पद से यह सुविदित हो जाता है कि योगिराज श्रीमद् श्रानन्दघनजी

इस पद से यह सुनिदित हो जाता है कि योगिराज श्रीमद् ग्रानन्दघनजी महाराज ग्रण्टांग योग के ममंज्ञ थे । उनका सम्पूर्ण जीवन ज्ञान-भक्ति ग्रीर योग का त्रिवेगी संगम था ।

इस विरले संत के विषय में अनेक चमत्कार-कथाएं प्रचलित हैं। जोध-पुर की महारानी से महाराज रूठ गये। महारानी चिंतत रहने लगी। उसने सुना कि जोधपुर के समीपवर्ती हूंगर में अनिन्दधन नामक योगी भगवद भक्ति में लीन रहते हैं। उनकी कृपा से दुःख-दुविधा मिट जाती है। महारानी ने उनके दर्शन किये। वह प्रति दिन उनके दर्शनार्थ जाने लगी। एक दिन उसने योगिराज को अपनी मनोव्यथा सुनाई। संत ने एक कागज के पर्चे पर लिखा 'राजा-रानी दो मिले उसमें आनन्दधन को क्या'। रानी को वह पुर्जा देकर

२२. शरीर में ६२ हजार नाड़ियां हैं, ईडा, पिंगला, सुपुम्ना ग्रादि । सुपुम्ना शम्भवी शक्ति है ।

<sup>—</sup> हिंदी साहित्य कोशः प्रकाशक ज्ञान मंडल लिमिटेड, वनारसः पृष्ठ ६११.

कहा कि इसे तावीज मे डाल कर वांघ लेना । सिद्ध पुरुष की कृपा से राजा रानी प्रसन्न रहने लगे ।

इस सिद्ध महात्मा के श्राशीर्वाद से श्रासपास ग्रानन्द मंगल होने लगे। उनकी गुफा में मिह श्रा जाते थे, सर्प घूमते थे, परन्तु किसी में हिमक भाव नहीं था। यद्यपि ये चमत्कार लगते हैं परन्तु दिन्य पुरुषों के लिए ये स्वाभाविक घटनाएं हैं। इन चमत्कारों का वैज्ञानिक श्राघार क्या है?

रेडियो के सिद्धान्त के ग्रनुसार महात्माग्रों के चमत्कार सत्य प्रतीत होते हैं। रेडियो केन्द्र से प्रसारित कोई भी कार्यक्रम-भापण, गीत, नाटक ग्रादि की ब्रह्मांड में व्याप्त गाश्वत रेडियो तरंगें ग्रहण करती हैं। रेडियो सेट उन तरंगों में प्रसारित कार्यक्रम को 'रिसीव' करते हैं। इसी प्रकार योगी-महात्मा रेडियो केन्द्र के समान हैं। उनकी दिव्यता (विद्युत शक्ति) के कारण उनके दिव्य विचार, मन्तव्यादि ब्रह्मांड में व्याप्त रेडियो तरंगों पर तैर्ते हैं। उन्हें प्रकृति, पग्रु-पक्षी, मानव ग्रपनी-ग्रपनी विद्युत शक्ति के कारण ग्रनजाने ही ग्रहण करते हैं। यही कारण है कि जहां सिद्ध महात्मा विचरते हैं, वहां का वातावरण कोमल एवं प्रेम पूर्ण हो जाता है। पग्रु-पक्षियों के पारस्परिक वैर भाव लुप्त हो जाते हैं। ग्रतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रीमद् ग्रानन्दघन के मंगलमय ग्रामीविद से राजा के मन के परमाग्रु वदल गये ग्रीर रानी के भाग्य खुल गये।

जीवन का विद्युद्ध गिक (Electto dynamics) सिद्धान्त भी इस मत की पुष्टि करता है। वैज्ञानिकों की यह सम्मित्त है कि मनुष्य सदा अनेकानेक अहभ्य शक्तियों के (जिनमें विद्युत् शक्ति भी एक है) स्पंदी सागर में तैरता रहना है और उसके गरीर के अंग 'रिसीवरों' और 'ट्रांस्फॉर्मरों' की भूमिका अदा करके इन शक्तियों को अपनी सामर्थ्य और आवश्यकतानुसार ग्रहण करते रहते हैं। जीवन के विद्युद्ध गिक सिद्धान्त के ग्रनुसार सारे ब्रह्मांड में व्याप्त विद्युत्त क्षेत्र सब जीवों को प्रभावित करता है और जीवन इस विद्युत क्षेत्र से प्रभावित होते हुए स्वयं भी उसे प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक जीव, प्रत्येक मानव सारे ब्रह्मांड से इस विद्युत्-क्षेत्र से जुडा हुग्रा है। इस प्रकार वह पृथ्वी के चुंवकीय क्षेत्र ग्रीर उसके माच्यम से सूर्य और चन्द्र के विद्युत् क्षेत्र से भी

संवंवित है। उसके ग्रंग-प्रत्यंग भी रिसीवरों एवं ट्रांस्फार्मरों का काम करते हैं। वह ग्रन्य दिव्यात्माग्रों की विद्युत् मिक्त से भी प्रमावित रहता है क्यों कि प्रत्येक जीवात्मा दूसरी से विद्युत् मिक्त से जुड़ी हुई है। जिम जीव में विद्युत मिक्त की जितनी प्रवलता होगी वह ग्रन्य जीवों को उतना ही प्रमावित कर सकेगा। महापुरुषों के चमत्कारों का कारण भी यह विद्युत् मिक्त है। उनकी विद्य मिक्त का क्षेत्र विभाल एवं व्यापक होता है। वे जहाँ विचरते हैं, वहाँ का क्षेत्र ग्रनेक मंगलों से परिपूरित रहता है। प्रकृति सरस वन जाती है एवं जीवात्माग्रों में कोमल भावों का प्रस्फुटन हो जाता है।

संत-महात्माओं के विचारों को विद्युत् तरंगें दूर-दूर तक ले जाती हैं। प्रचण्ड एवं प्रखर मनोबल के कारण उनका मन्तव्य संवंधित व्यक्ति को अचूक वान के समान वेषता है। विज्ञान के विद्युद्ध गिक सिद्धान्त के अनुमार चमत्कार महात्माओं की दिव्य विद्युत् एवं चुम्बकीय अक्ति के कारण घटित होने हैं। श्रीमद् ग्रानन्दघनजी पहुँचे हुए योगी थे, ग्रतः ये चमत्कार उनके दिव्य एवं सहज जीवन के परिचायक हैं। ग्रानन्दघनजी के जीवन का सर्वोत्कृष्ट चमत्कार है—समता भाव।

श्रानन्दघनजी ने विविध राग-रागिनियों में गीतों की रचना की है। ये विभिन्न राग श्रात्म ललना की जागृति, विरहोन्माद, मिलनोत्कठा, मिलन की खुमारी एवं दर्गन मुख श्रादि भाव-दगाशों को प्रकट करते हैं। श्री ऋपम देव स्वामी का प्रयम स्तवन मारू राग में गाया गया है। मारू राग युढ़ोत्साह जगाने के लिए उपयुक्त है। राग-द्वेपादि विकट शत्रुश्रो से जूभने के लिए श्रदम्य उत्साह एवं गाँगं चाहिए। श्री श्रजितनाथ जिन स्तवन में श्राणावरी राग है। मोह-नींद के पश्चान् जागृति के प्रमात में प्रिय मिलन की श्राणा का संचार होना स्वामाविक है। इसी प्रकार स्तवन गीतों एवं पदों में विविध राग-रागिनियां का प्रयोग सप्रयोजन हुआ है। समस्त गीतों में संगीत की मधुरता श्रात्म विमोर कर देती है।

श्रीमद् ग्रानन्दघनजी के समस्त गीत ग्रनुभव रसामृत से भीगे हुए हैं। उन्होंने जैन दर्शन का सागर ग्रपने काव्य-कलश में भर लिया है। इनकी शैली मूरज की किरए के समान है। किरए में सप्त रंग हैं, परन्तु वह स्वेत रंग

वाली दिखाई देती है। वैमे ही श्रीमद् आनन्दधनजी ने अपने संक्षिप्त काव्य में जैन दर्शन का ममन्वयकारी रूप प्रस्तुत किया है। समस्त घर्म उसमें समाये हुए हैं। उनका काव्य यह प्रकट करता है कि जैन दर्शन किसी वर्ग, सम्प्रदाय या जाति विशेष की सपत्ति नहीं है, यह आत्म दर्शन है जिससे मानव मात्र दु.ख दारिद्रय से मुक्त होकर शाश्वत सुख को प्राप्त कर सकता है। अन्तरंग दृष्टि से देखने पर आनन्दधनजी का काव्य रत्नाकर के समान लगता है। अन्तर्द्षिट वाला काव्य ममंत्र एवं भक्त हृदय ही इसके रत्नों को पा सकता है। मैं तो इस दिव्य मागर-तट पर खड़ा-खड़ा चन्द्र ज्योत्स्ना में कीडा करती उत्फुल्ल लहरों को देख कर ही तृप्त हैं।

मैं ग्रत्पन्न हूँ । भिक्त वंश कुछ ग्रटपटे शब्द-पुष्पों को भूमिका के रूप में श्रीमद् ग्रानन्दघनजी महाराज के चरगों में चढ़ा रहा है।

'ग्रानन्दघन ग्रंथावलि' में 'ग्रानन्दघन चौवीसी' 'ग्रानन्दघन बहोतरी' तथा ग्रन्य पदों के सरलार्थ श्रीर सुवोध भाष्य हैं। लेखक ने निष्ठा से कार्य किया है। योगिराज के गीतों में निहित भावों को प्रकट करने के लिए भन्तर्द ष्टि चाहिये; जैन दर्शन का विशद एवं ग्रन्तरंग ग्रघ्ययन चाहिये तथा काब्यात्मा में प्रवेश के लिए कवि हृदय चाहिए। साथ ही चाहिये भिनत रंग में रंगी दृष्टि।

मेरी दृष्टि में लेखक का प्रयास स्तुत्य है 'ग्रानन्दघन ग्रंथावलि' जनता में ग्रियकाधिक लोक प्रिय होगी इसमें कोई सन्देह नहीं है।

णिवमस्तु सर्व्वजगतः

फालना (राजस्थान) दिनांक 15, 5, 74

जंबाहरचन्द्र पटनी एम. ए, (हिन्दी एवं अंग्रेजी)

उप प्राचार्य - श्री पार्श्वनाथ उम्मेद महाविद्यालय, फालना

## श्री ग्रानंदघनजी के जीवन प्रसंग

श्री ग्रानंदयनजी १७ वीं शताब्दी के ग्रन्तिम भाग ग्रीर ग्रठारहवीं शती के ग्रारम्भिक तीन दशकों में विद्यमान थे। उनके गच्छ, दीक्षागुरु, तथा सहयोगियों के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी नहीं मिलनी है। किन्तु यह निश्चित है कि इनका उपाच्याय श्रीयशोविजय से मिलाप हुग्रा। विशिष्ठ पुरुषों की जीवन घटनाग्रों का इतना महत्व नहीं होता जितना महत्व उनकी वाणी का होता है। वाणी द्वारा वे सदा विद्यमान रहते हैं।

श्री ग्रानंदघनजी जैनागमों के ममंज, न्याय, तर्क, छन्द, ग्रलंकार श्रीर संगीत के उत्कृष्ट विद्वान थे। उनकी जीवनचर्या, विचारघारा श्रीर मान्यता के दर्जन स्थान-स्थान पर उनकी वाणी में भरे पड़े हैं। जो व्यक्ति उनकी कृतियों का मनन श्रीर श्रनुजीलन करेगा, वह उनके रहन-सहन, तत्कालीन घामिक परिस्थिति श्रादि से सुचारू रूप से परिचय पालेगा।

श्री ग्रानंदघनजी जैनागमानुसार स.बुचर्या का पालन करते थे। उनके माबुत्व का ग्रादर्ग इस ग्रागम वाक्य के ग्रनुसार था —

"लाभालाने मुहे दुक्ते जीविये मरिए तहा ।
सनीनिंदा पर्ससामु, तहा मणावमाणग्रो ।।"
उनकी ग्रात्मध्विन उनकी वाणी से भी मुन लीजिये—
मान ग्रपमान चित सम गिरए, सम गिरए कनक पाषारए रे ।
वंदक निंदक सम गिरए, इस्यो होय तूं जाण रे ।।
सर्व जग जन्तु सम गिरए, गिरए तृण मिरए भाव रे ।
मुक्ति संसार वेहु सम गिरए, मुरए भव-जलिनिंव नाव रे ।।
(श्री शान्तिनाय स्तवन)

इस प्रकार श्रात्मा में रमण करते हुये अपने आराध्य के प्रति उनका 'कपट रहित आत्मापंण था। वे सदा 'अभय, अद्धेप और अखेद' में लीन रहते थे। यही योग की उत्कृष्ट स्थिति है और यही साधना का उच्चतम मार्ग है। पर वस्तु को अपनी समभना ही भय का कारण है। अज्ञान दशा (मोह दशा) ही भय है। अपने स्वरूप का ज्ञान होना अभय है। इस दशा का नाम ही योग है। स्व पर का भेद ज्ञान ही मुख्य है। स्वभाव रमणता ही अभय, अद्धेप और अखेद की द्यांतक है।

श्री ग्रानंदघनजी का तत्कालीन समय में साधुग्रों में फैले हुये णिथिला-ंचार की ग्रोर ध्यान गया। इस स्थिति की उन्होंने भत्सेना भी की है—

> गच्छना भेद बहु नयए निहालतो, तत्त्वनी बात करता न लाजे ।। उदरभरएगदि निज काज करता थकां, मोह निहया किलकाल राजे ।। पुक्ष परम्पर अनुभव जोवतां रे श्रन्थो श्रन्थ पलाय । वस्तु विचारे जो श्रागमे करी रे, चरण धरएग नहीं ठाय ।!"

उनका तो स्पष्ट मत था-

'श्रातम ज्ञानी श्रमण कहावे, बीजा तो द्रव्यांतगी रे। वस्तुगते जे वस्तु प्रकाशे, 'श्रानदघन' मति सगीरे॥'

किन्तु इस भरसंना ग्रादि का कोई परिणाम न निकलने से वे ग्रघ्यात्म ग्रन्थों के स्वाध्याय एवं ग्रात्मध्यान में विशेष ग्राक्तष्ट हुये। स्वाध्याय घ्यान द्वारा ग्रात्मानंद में लीन रहने लगे। उनकी दृढ़ धारणा थी कि राग-द्वेष ही संसार का मूल कारण है। साधु जीवन स्वीकार करने के बाद भी राग-द्वेष के खटराग में ही फंसा रहना तो ग्रात्मा से विमुख होना है, ग्रपने ध्येय से गिरना है। वे इन सबसे उदासीन होकर ग्रपने घ्यान-स्वाध्याय में लीन रहने लगे।

### सेठ के लिये व्याख्यान-प्रतिवन्ध

गुजरात के किसी नगर में श्री आनंदघनजी का चतुर्मास था। उस नगर में ऐसी परम्परा चल पड़ी कि अमुक सेठ के आये विना साधु व्याख्यान श्रारम्भ नहीं कर सकते थे। पर्वाधिराज पर्यूषण के अवसर पर श्री आनंदघन

जी यथा समय व्याख्यान श्रारम्भ करने लगे, तव सेठ की माता ने कहा कि मेरे पुत्र के ग्राये विना ग्राप व्याख्यान ग्रारम्भ नहीं कर सकते। कुछ समय श्री श्रानंदघनजी ने प्रतीक्षा की । लोगों ने सेठ को जल्दी ग्राने के लिये सूचना भिज-वाई किन्तु सेठ ग्राया नहीं । पुनः व्याख्यान ग्रारम्भ करने लगे, तव फिर लोगों ने भी कहा सेठजी को भ्रा जाने दीजिये, नहीं तो वे नाराज होंगे। इस पर म्रानंदघनजी विचार करने लगे कि इस प्रकार श्रावकों के प्रतिवन्ध से श्रागम विरुद्ध होना योग्य नहीं है। श्रागम के श्रनुसार स्वाध्याय काल का साधु को घ्यान रखना ही चाहिये। ग्रागम विरुद्ध मुक्ते तो नहीं जाना चाहिये, चाहे कोई नाराज हो या खुण हो । ऐसा विचार कर उन्होंने कल्पसूत्र का व्याख्यान भ्रारम्भ कर दिया। सेठ को जब यह समाचार मिला तो वह बहुत क्रोवित हमा। क्रोव में भरे हए वह उपाश्रय में माया सेठ मानंदयनजी से कहने लगा, "मेरे आये विना आपने व्याख्यान कैसे आरम्भ कर दिया।" श्री आनदघनजी ने उत्तर में कहा-- "ग्रागर्मों के ग्रनुसार स्वाध्याय काल में ही मूत्र-वाचन होता है. ग्रन्य समय नहीं। इसलिये मैंने व्याख्यान आरम्भ कर दिया।" सेठ ने कहा-"भेरे उपाश्रय में तो परम्परानुसार ही व्याख्यान होगा।" श्री श्रानंदघन जी ने कहा-- "मुफे तो आगमों के अनुसार ही व्यवहार करने की आवश्यकता है, ग्रन्य वातों की मुफ्ते कोई ग्रावश्यकता नहीं है। यह उत्तर सुनकर सेठ ग्रीर भी कोघ में भर कर वोला — "मेरे उपाश्रय में रहना हो तो मेरे श्रनुसार ही चलना होगा, नहीं तो मेरे उपांश्यय में नहीं गृह सकते । सेठ के इस प्रकार कहने के पश्चात् ग्रीर कल्पसूत्र का व्याख्यानं पूंर्णं होने के वाद श्री ग्रानंदघनजी ने विचार किया कि इस प्रकार के प्रतिवन्व में मुक्ते तो आगमों के अनुसार साधुचर्या में तत्पर रहकर विचरना चाहिये। इस निश्चय के श्रनुसार श्री श्रानंदघनजी ने समिति-गुप्ति में सजग रहते हुये एकान्त स्थानों में (गिरि कंदराश्रों श्रीर श्मसान में) रहकर साधना ग्रारम्भ कर दी। इस तरह रहते हुये उन्होंने प्रकृति के कोप श्रीर सर्प सिंह ग्रादि के उपसर्ग ग्रानन्दपूर्वक वहनं किये। इन उपसर्गों से तनिक भी विचलित नहीं हुये। निसंगता बढ़ने लगी। इससे ऐसे योगी महात्मा को विणिष्ट शक्तियां प्राप्त हो गई हों तो कोई 'म्राश्चर्य की वात नहीं।

श्री योगीराज ग्रानंदधनजी के संबंध में कई चमत्कारपूर्ण किंवदंतियां सुनी जाती हैं। इन प्रवादों के सत्यासत्य के विषय में निर्णय होना तो संभव नहीं है किन्तु योगीराज चमत्कारी पुरुष थे. इसमें कोई सदेह नहीं है। हम लोग उनके ग्रनुयायी भक्त ग्रपने श्रद्धेय के प्रति चाहे किंतनी भी उच्च कोटि की भावनायें रखें, वह प्रामािणक नहीं मानी जा सकती हैं किन्तु ग्रन्य धर्मावलिवयों के उल्लेख ग्रधिक विण्वमनीय माने जा सकते हैं। परणामी संप्रदाय के संस्थापक श्री प्राणालालजी, ग्रानंदधनजी के समसामियक थे। उनके जीवन चरित्र में यह उल्लेख मिलता है—

"श्री प्राण्लालजी एक समय सं. १७३१ से पूर्व मेड्ता गये थे। उनका मिलन श्रीर शास्त्रार्थ श्री ग्रानंदघनजी से हुग्रा जिसमे उनका (श्रानंदघनजी) पराभव होने से उन्होने फुछ प्रयोग श्री प्राण्लालजी पर किये किन्तु उससे उनका कुछ भी विगाड़ नहीं हुग्रा। जब वे दूसरी बार मेड़ते गये तब उनका (ग्रानंदघनजी का) स्वगंवास हो चुका था।"

इस उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री ग्रानंदघनजी का स्वर्ग-वास स. १७३१ में हुग्रा था तथा वे चमत्कारी योगी थे।

मैं यहां उनके सम्बन्ध की किवदंतियों का संकलन संक्षिप्त में देना समीचीन समभता हूँ जिससे पाठको को उन्हें समभने का पूरा-पूरा ग्रवसर मिल जावे।

## उ. श्रीयशोविजयजी श्रीर ग्रानंवघनजी का मिलन

उपाध्याय श्रीयशोविजयजी श्रीर श्री ग्रानंदघनजी का मिलन तीन बार हुग्रा, कहा जाता है। नीचे उनके मिलन की घटनायें दी जा रही है।

#### ( ? )

सतरहवीं ग्रीर ग्रठारहवी शती मे जैन साधुग्रों में उपाध्याय श्री यशो-विजयजी बहुश्रुत, जैन न्याय के प्रसिद्ध व्याख्याता, विवेचन कर्ता विद्वान थे। उनकी व्याख्यान शैली ग्रनुपम थी। उनका व्याख्यान सुनने के लिये सैंकडों की संख्या में श्रावक-श्राविका एवं साधु साध्वियां एकत्रित होते थे।

एक समंय की घटना है कि उ. यशोविजयजी का व्याख्यान ग्रध्यातम विषय पर हो रहा था। उस समय श्रोताग्रों में सभी प्रकार के व्यक्ति उपस्थित थे। व्याख्यान भैली और विषय विवेचन से श्रोतागरा मृग्व हो रहे थे। एक ण्लोक के विवेचन ने तो कमाल ही कर दिया था। श्री ग्रानंदयनजी उन दिनों उसी स्थान पर थे। उन्होंने भी उ. श्री यशोविजयजी की विवेचन शैली की प्रशंसा सुनी थी। उस दिन व्याख्यान में वे भी एक कोने में उपस्थित थे। व्याख्यान समाप्ति पर श्री उपाच्यायजी ने चारों ग्रीर दृष्टि फैलाई। उन्होंन एक कोने में एक वृद्ध ग्रौर सीधे-सादे साधु को देखा। उन्हें ऐसा लगा कि इस साधु पर व्याख्यान का कोई प्रभाव नहीं हुग्रा। श्री उपाध्यायजी ने इस सीघे-सादे सायु की ग्रोर दृष्टिकर पूछा - ' मुनिराज ! ग्रापने व्याख्यान ठीक ढंग से सूना या नहीं ? श्राच्यात्म ज्ञान के इस व्याख्यान में श्रापको कुछ समक पड़ी या महीं ?" इस प्रश्न के उत्तर में वह सरल सत वोला - "ग्राप श्री के ग्राघ्यारिमक च्याख्यान में उत्तम विवेचन-दक्षता प्रगट हुई है।" श्री उपाध्यायजी उस सत के मुख की श्रोर वरावर दृष्टि किये हुये थे। उन्हें ऐसा लगा कि यह साधू विशेष ज्ञानी ग्रौर योगी होना चाहिये। उन्होंने साबु से नाम पूछा। उत्तर में जब "ग्रानंदघन" सुना तो वे तत्काल ही ग्रपने स्थान से उठकर थी ग्रानद-घनजी के पास ग्राये । उनका बहुत सम्मान किया । ग्रादर सिहत उन्हें वहां से उठाकर जहां वे वैठे थे वहां ले ग्राये ग्रीर उनको उच्चासन पर वैठाया। श्री उपाध्यायजी ने श्री ग्रानंदघनजी की प्रसिद्धि पहिले से ही सुन रखी थी किन्तु उनसे सांक्षात्कार का ग्रवसर कभी नहीं मिला था। ग्राज ग्रवसर मिलते ही ग्रपना हृदय खोल कर उनके चरणों में रख दिया। ग्रीर वार-वार जिस इलोक का उपाघ्यायजी विवेचन कर रहे थे उसका विवेचन करने के लिये प्रार्थना की। इस पर ग्रानंदघनजी ने तीन घंटे तक उस श्लोक का विशद विवेचन किया। श्रोतागए। मुग्व भाव से वैठे मुन रहे थे। किसी को समय का भान ही न रहा। सव के हृदय में ज्ञान व वैराग्य की घारा वह निकली। इसी अवसर

१. इस घटना के लिये कोई इसे आबू में हुई कहते हैं, कोई मेड़ता हुई कहते हैं।

पर उपाध्यायजी ने ग्रण्ट पदी स्तुति था ग्रानदघनजी के सम्मुख उपस्थित की । ऐसे थे ग्रध्यात्म ज्ञानी ग्रीर योगी ग्रानदघनजी ।

(२)

कुछ व्यक्तियों का कहना है कि श्री ग्रानंदघनजी ग्रपनी सावना में लीन थे ग्रीर ग्राबू के ग्रासपास विचरण कर रहे थे। उस समय यह 'ग्रप्टपदी' वनाई गई थी। घटना इस प्रकार बनाई जाती है कि एक समय श्री उपाघ्यायजी एक दंग ग्रन्य साधुग्रों सहित श्री ग्रानंदघनजी के दर्णनाधं उन्हें दूं ढते हुये ग्राबू के पास के मन्दिरों में गये। इनको श्री ग्रानंदघनजी एक मन्दिर में चौबीस तीर्थ-करों को स्नवना में मस्त दिन्वाई पड़े। वे लोग जुपचाप एक ग्रीर खड़े होकर स्तवना सुनने लगे। श्री उपाघ्यायजी की स्मरण शक्ति इतनी तेज श्री कि एक दक्ता सुनी हुउ बात कभी भूलते नहीं थे। बाबीस तीर्थंकरों की स्तवना पूर्ण हो गई। तेबीसवें तीर्थंकर भगवान पाश्वंनाय की स्तवना ग्रारम्भ करने वाले थे कि उन्हें ग्रपने पीछे कुछ खटका हुग्रा सुनाई दिवा। वे पीछे की ग्रीर देखने लगे। इन्हें एक कोन मे उपाध्यायजी नजर ग्रायं। वे तत्काल ही वहां से उठकर उनके पास ग्राये। कुछ लोग यह भी कहते है कि वे वहां से उठकर बाहर चले गये। इसके पश्चान् उनका ग्रापस मे वार्तालाप हुग्रा ग्रीर प्रप्टरपदी की रचना हुई।

( 3 )

श्रीर भी दो घटनायें थी यानंदघनजी ग्रीर थी उपाध्यायजी के सम्बन्ध में कही जाती हैं। थी ग्रानदघनजी ने अपनी बृद्धावस्था जानकर उ. यशोविज-यजी को योग सम्बन्धी कुछ रहस्य की वार्ते बताने के लिये बुलाया। थी उपाध्यायजी ग्राये। उन्हें ग्राये कुछ समय व्यतीत हो गया किन्तु थी ग्रानंदघनजी ने कुछ कहा नहीं। थी उपाध्यायजी ने विचार किया कि शायद मुभे बुलाने की वात विस्मर्ण हो गई है। ग्रतः प्रातः काल उन्होंने थी ग्रानंदघनजी को को स्मर्ण कराया। तब ग्रापने उत्तर में कहा—"ग्रव मुभे कहने जैसा कुछ है नहीं। मुभे इस वात का खेद है कि ग्राप में ग्रभी तक बैयं ग्रीर स्थिरता की कमी है। यह तो ग्रापको ध्यान रखना ही चाहिये था। मैने जब ग्रापको कुछ कहने के लिये बुलाया था तो ग्रवसर देखकर ही कहता। जब तक ग्राप में

स्थिरता ग्रीर वैर्य की पूर्णता न हो तब तक योग के गूड़ रहस्य वताने का प्रसंग ही उपस्थित नहीं होता । ग्रभी तो यह सब मेरे साथ ही जावेंगे ।

दूसरी घटना इस प्रकार कही जाती है कि एक बार उ. श्री यजोविजय जी श्री ग्रानंदघनजी के निकट 'स्त्रणं सिद्धि' लेने गये। इस योग विद्या को बताने के लिये श्री ग्रानंदघनजी किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुये। कारण यह या कि वे उपाच्याय जी को इसके योग्य नहीं समस्ते थे।

मेरे समक में यह बात नहीं आती है कि उपाध्यायजी जैसे महान् स्थिति प्रज्ञ और चारित्र में सजग रहने वाले के लिये स्वर्ण सिद्धि की इच्छा करना कहां तक उचित है। यह वात किसी मक्त की कल्पना ही जात होती है।

### ज्वर को दस्त्र में प्रवेश करके वार्तालाप करना

एक समय की घटना है कि श्री श्रानंदघनजी जीयपुर राज्यान्तर्गत किसी गांव के बाहर ठहरे हुये थे। एक व्यक्ति श्रयवा जीयपुर नरेश उनके दर्गनार्थ वहां श्राया। उस समय श्री श्रानंदघनजी जीव ज्वर से पीड़ित थे। उन्होंने ज्वर को एक वस्त्र में छोडकर, उस वस्त्र को श्रयने निकट ही रख दिया और श्रागन्तुक से बातचात कर उसे उनदेश दिया। उपदेश श्रवण करते समय श्रागन्तुक की बातचात कर उसे उनदेश दिया। उपदेश श्रवण करते समय श्रागन्तुक की बिट उस किम्पत वस्त्र की श्रोर गई। उसे श्राश्चयं हुशा कि यह वस्त्र कैसे किम्पत हो रहा है! वह श्रयनी उत्मुकता दवा नहीं सका और श्री श्रानंदघनजी से प्रश्न कर ही बैठा। स्वामीनाथ! यह वस्त्र कम्पित क्यों हो रहा है? श्रयम तो उन्होंने उत्तर नहीं दिया। वे मुस्कराते रहे, फिर उन्होंने कहा—"मैं तीत्र ज्वर से पीड़ित था। बातचीत का श्रवसर जान मैंने श्रयने ज्वर को इस वस्त्र में रयाग कर श्रवग रख दिया। यह वस्त्र ज्वर के प्रनाव से कम्पित हो रहा है। यह उत्तर मुनकर योगिराज के प्रति उसके हृदय में विशेष श्रद्धा मिक्त उत्तर हुई। वह विनयवन्त हो वन्दन नमस्कार कर फिर दर्शनार्थ श्राने के लिये कह कर चला गया।"

१. श्री कापडियाली ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि श्रीमान हेमचन्द्राचार्य, श्री हरिमद्र नूरि श्रीर श्री हीरिबजय मूरि के विषय में भी उक्त प्रवाद सुनने में श्राया है। (प्रयम संस्करण की भूमिका पृ. ३६)

### मृतपित के साथ सती होने वाली स्त्री को बोघ

एक समय विहार करते हुये श्री श्रानंदघनजी मेड़ते श्रा रहे थे। उन्होंने मेड़ते के वाहर शमसान के निकट एक स्त्री को 'सती' होने के लिये जद्यत देखा। जैसे ही उस स्त्री की दिष्ट उन पर पड़ी वह उनके निकट श्राकार चरणों में श्रुक्कर कहने लगी—"वावाजी महाराज! मैं श्रुपने पित के साथ सती हो रही हैं, मुक्ते श्राणीर्वाद दीजिये।" इतने में ही उस स्त्री के सम्बन्धियों ने श्राकर कहा—"महाराज:! इसे समभाडये हमने तो इसे वहुन ही समभाया किन्तु यह मानती ही नहीं है। सती होने के लिये हठ कर रही है।" इस पर श्री श्रानंदघनजी ने इस स्त्री को समभाने के लिये कई तरह से उपदेश दिये। संसार का स्वरूप श्रीर सम्बन्ध समभाया शरीर श्रीर श्रात्मा का सम्बन्ध बताया। श्री ऋपभदेव जिनेश्वर का स्तवन वड़े ही सरस स्वर से गाकर सुनाया। स्त्री के श्रीर सुनने वालों के श्रन्तर चक्षु खुल गये। स्त्री शान्त श्रीर प्रसन्न वित्त से लौट गई। ऐसे थे मार्मिक उपदेशक श्री श्रानंदघनजी।

#### राजा-राणी दो मिले उसमें भ्रानंदघन को क्या ?

इस घटना के लिये भिन्न भिन्न लेखकों ने भिन्न-भिन्न स्थानों का उल्लेख किया है। किसी ने मेड़ते शहर का, किसी ने ग्रावू पर्वत का ग्रीर किसी ने जोधपुर के निकट की पहाड़ी गुफाग्रों का।

कहा जाता है कि एक समय श्री ग्रानंदघनजी ग्रात्मस्थ बैठे हुये थे। एक स्त्री जनके पास ग्राकर प्रशाम कर कहने लगी— 'महाराज मैं जोवपुर की महारागी हूँ। महाराज जोघपुर मुक्त से रुव्ठ होकर मेरे महलों में नहीं प्रधारते हैं। कोई ऐसा मन्त्र-यन्त्र बताइये, ग्राणीर्वाद दीजिये जिससे महाराजा प्रसन्न होकर मेरे महलों में ग्राने लगे" श्री ग्रानंदघनजी ने कोई उत्तर नहीं दिया। बैसे के वैसे बैठे रहे। कुछ देर पश्चात् एक कागज का दुकड़ा उठाकर उसमें कुछ लिखकर ग्रीर मोडकर राशी को दे दिया। राशी ने समक्ता कि महात्मा ने प्रसन्न होकर मुक्ते तावीज दिया है। राशी ने कागज को ग्रादर से ग्रहण किया। प्रशाम कर वहां से चली गई। महलों में ग्राकर उसने एक सोने के यन्त्र में रखकर गले में पहिन लिया। संयोग की वात कि इसके पश्चात् राजा प्रसन्न होकर, राशी के महलों में ग्राने लगे। इससे राजा

की ग्रन्य रागियां ईपी रखने लगी ग्रीर राजा के कान भरने लगी। एक दिन राजा ने भी इम स्थित पर विचार किया ग्रीर रागी के महलों में जाकर रागी के गले से तावीज निकाला ग्रीर खोलकर पढ़ा, पढ़ते ही राजा को स्थित स्पष्ट हो गई। वह खिल खिलाकर हंमने लगा। तावीज में लिखा था—"राजा रागी दोउ मिले, उसमें ग्रानंदघन को क्या।" इन गव्दों को देखकर राजा को अत्यन्त ग्राग्चर्य हुग्रा। साथ ही श्री ग्रानंदघनजी की निसंगता या ग्र रममग्नता पर श्रद्धा हुई।

#### स्वर्ग सिद्धी रसायण

एक ममय श्री थानंदघनजी थावू के पहाड़ पर योग साधना में तल्लीन होकर विचरण कर रहे थे। एक दिन ग्रकस्मात् एक व्यक्ति हाथ में शीणी लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुग्रा। वह उम शीणी को उनके चरगों में रन्व कर कहने लगा-"ग्रापके माथ सावना करने वाले ग्रापके वाल मित्र इद्राहिम साहव ने यह रसायिएक मिद्धि भरी शीशी भेजी है। इस शीशी के रसायरा की एक वूंद मात्र, यदि पत्यर पर डाली जावे तो पत्यर सोना वन जाता है। इससे सम्पूर्ण संमार ग्रापके वर्ण में हो जावेगा। यह कह कर उम ग्रागत व्यक्ति ने शोशी से एक बूंद पत्थर पर डाली जिसके प्रभाव से वह पत्थर स्वर्ण हो गया । स्वर्ण ग्रीर पापाण में एक वृत्ति रखने वाले श्री ग्रानंदघनजी के हृदय में एक वड़ा विचार ग्राया । उन्होने शीशी को पापाग शिला पर पटक कर तोड डाला। यह देखकर उम शीणी वाहक व्यक्ति के कीव का ठिकाना नहीं रहा। उसने श्री श्रानंदघनजी को श्रनुचित कठोर शब्द कहे। वे शान्त मुद्रा से खड़े रहे फिर एक ग्रोर होकर उन्होने लघु गंका की । जिस शिला पट्ट पर उन्होंने लघुगंका की थी वह स्वर्ण वन चुकी थी। यह देखकर वह व्यक्ति चिकत रह गया। लज्जित होता हुम्रा श्री यानंदघनजी के चरगों में गिर कर वार-वार क्षमा माँगने लगा। जाता जाता कह गया -- "जिसके पेशाव में स्वर्ग रसायगा है उसे ग्रीर रसायगा की क्या ग्रावश्वकता है। ग्राप वन्य है।"

## राजा को पुत्र प्राप्ति

कहा जाता है कि जोवपुर के राजा को लंवे समय तक कोई पुत्र

उत्पन्न नहीं हुग्रा । इसलिये उसे उत्तराधिकारी के विषय में चिन्ता रहने लगी । उनके प्रधान मन्त्री ने उन्हें चिन्तित देखकर, कहा-पुत्र होना, पूर्व जन्म के णुभाणुभ कर्म पर निर्भर है । फिर भी एक जैन साधु महायोगी श्रीर चमत्कारी है । उनका नाम ग्रानन्दघनजी है । वे ग्राज कल यहीं ग्रास-पास हैं । महा-राज, प्रधान मंत्री के कथन पर विश्वास कर शुद्ध ग्रन्तः करण से श्री ग्रानन्दघन जी की श्रद्धापूर्वक सेवा-भक्ति करने लगे । नित्य दर्शनार्थ ग्राना, उपदेश सुनना श्रीर उस पर ग्राचरण करने लगे । संयोग की वात कुछ ही दिनों में महाराज को विश्वास हो गया कि ग्रव पुत्र रत्न की प्राप्ति में देर नहीं हैं । यथा समय उन्होंने पुत्र का मुख देख लिया । ऐसे थे श्रीग्रानन्दघनजी जिनकी सेवा-भक्ति से मनोकामनार्ये पूर्ण होती थी ।

## राज की दो विधवा पुत्रियों को बोध

एक राजा की दो पुत्रियां थी। संयोग से वे दोनों ही विधवा हो गई। वे वैधव्य से दुखी पुत्रियां हर समय रुदन करती रहती थीं। राजा को इससे बहुत ही कण्ट होता था। उसने कई प्रकार के उपाय किये किन्तु उन पुत्रियों का शोक हल्का नहीं हुआ। राजा ने किसी विश्वस्त कर्मचारी से सुना कि श्री आनन्दधनजी सिद्ध पुरुप है। वे इनके शोक दूर करने में समर्थ हैं। राजा ने उनसे प्रार्थना की शीर उन दोनों पुत्रियों को उनके पास ले गया श्री आनन्दधन जी ने उन्हें 'संसार की क्षरा मंगुरता मार्मिक शब्दों में समक्काई। आत्मा का असली स्वरूप बताया। संसार के आपसी संम्वन्धों के विषय में अनेक उपदेश दिये। उनका शोक दूर हुआ श्रीर रुदन बंद हो गया। अब तो वे नित्य ही उपदेश सुनने के लिये शाने लगी। कुछ ही दिनों में उनकी चित वृत्तियां शांत हो गईं श्रीर वे उन उपदेशों के अनुसार अपना जीवन सुधारने में लग गईं।

### शाहजादे का स्तंभन

एक समय श्रीग्रानन्दघनजी वीकानेर में थे। उन्हीं दिनों दिल्ली के वादशाह का शाहजादा वहां ग्राया हुग्रा था। वीकानेर में उस समय ग्रन्य जैन साधु भी थे। जब वे कहीं जाते ग्राते तो मार्ग में जब शाहजादा उन्हें मिल जाता तो वह उनकी हंसी-मजाक किया करता था। इस से वे साधु लोग वहुत

ही जिल मना हो गये थे। एक दिन उन मवने मिलकर श्री ग्रानन्दयन जी की प्रार्थना की कि इस विपत्ति से छुटकारा दिलाइये। तब श्रीग्रानन्दवनजी बीकानेर के वाहर जहां वह जाहजादा बोहे पर बैठकर कर घुमने जाता या गये। गाहजादे ने जैसे ही उन्हें देखा वैसे ही अपनी आदत के अनुसार उनकी भी मजाक उहाई। इस पर श्रीग्रानन्दवनदी ने उस से कहा-"वाटगाह का वेटा खड़ा रहे।" इतना कहते ही शाहजादे का बोद्या खड़ा रह गया। अनेक प्रयत्न करने पर भी वह चल नहीं सका । (टस से मस नही हुआ) इतने में ही शाहजादे के साय के घुडसवार वहां भ्रा पहुँचे। योजा स्तंनित खडा था। उन्होंने भी होहे को चलाने के प्रयत्न किये, किन्तु ग्रसकत ही रहे। जाहजाबा भी घोड़े से इतर नहीं सका । इवर ग्रानन्दघनजी ग्रपने स्थान पर ग्रा गये । गाहजादे के उन मायियों ने जहजादे साहव से पूछा कि यह कैसे ही गया। ग्राप कोई वात हुई हो तो फरमाइये । गाहजादे ने उत्तर दिया—"मुन्ने तो घोड़े के न चसने का कोई सदव नजर नहीं आता, लेकिन एक बान अवय्य हुई है। मैंने एक प्वेत वस्त्र वारी सायू की मनाक जरूर उडाई थी।" उसने कहा था-"वाटमाह का वेटा बड़ा रहे।' महबादे के उन साथियों की समफ में द्राया कि हो न हो, उस साधु ने ही कुछ कर दिया है। शाहजादे के साथियों के कहने मे वीकानेर के राजा ने सामुग्रों से पुछवाया । ग्रन्त में पता लगा कि यह काम श्री ग्रानन्दवन जी का लगता है। श्राप लोग उनके पास जाइये। तव वे खोजते हुए श्री श्रानन्दवनजी के पास श्राये । उन लोगों ने उनकी बहुत ही श्राजीजी की तब तव श्री ग्रानन्दयन की ने कहा-"वादकाह का वेटा, साधु संतों को सताता है श्रीर उन की हंसी नजाक करता है उसका फल उमे मिले तो श्राम्वयं ही क्या ?" ग्रन्त में श्री ग्रानन्दवनजी ने वादजाह के बेटे से कहलवाया-"दादजाह का देटा चलेगा।" माहनादे ने कैसे ही यह गज्द लोगों के सुल से सुने जैसे ही उनका घोड़ा चलने लगा गाहडादे ने यह चनत्कार देखकर, तत्काल वह उनके दर्भनार्थ वहां ग्राया । विनय मक्ति प्रदर्शित कर उसने कहा-'ग्राप तो ग्रोलिया हैं, मेरा क्नूर मुझाफ फरमावें।"

#### पत्थर के सेर का स्वर्ण खंड

एक समय मारवाड़ में विहार करते हुये किसी ग्राम में किसी दीन व्यक्ति के घरश्रीग्रानंदघनजी कुछ दिन ठहरे। एक दिन वह दीन व्यक्ति चिन्तातुर होता हुमा उनकी सेवा में वंदन कर मा वैठा । वह दुखी तो था ही, उसकी ग्रांखें डवडवा ग्राई। श्री योगीराज ने उसे रोने का कारए। पूछा। उसने रोते हये अपनी गरीवी की सम्पूर्ण कथा उसको सूना दी। उन्होंने उसे सांत्वना देते हये समभाया कि अपने कृतकर्म तो भोगने ही पड़ते हैं। खैर, तुम्हारे पास कोई पत्थर का लोढा हो तो लाग्रो । उस व्यक्ति ने एक सेर वाला पत्थर लाकर उनके सम्मूख रख दिया । 'दूसरे दिन प्रातः काल वह वहां श्राया । श्रीग्रानंदघनजी उसे वहां दिखाई नहीं दिये । उसने उन्हें इधर-उधर देखा, फिर भी वे दिष्टगत नहीं हये। जहां वे पहिले दिन बैठे हये थे. वहां उसे पत्थर के सेर के स्थान पर सोने का डला देखा। उसे बहुत ही ग्राश्चर्य हुया। जब उसने उस स्वर्ण के डले (खंड) को उठाकर देखा तो उसे बहुत ही पश्चात्ताप हुन्ना क्योंकि वह स्वर्ण खंड तो वही पत्थर का सेर था, जो उसने उनके (योगीराज के) सामने लाकर रखा था । वह विचारने लगा, यदि मैं इससे वड़ा पत्थर लाकर रखता तो कितना ग्रच्छा होता। ग्रव तो रमते राम योगीराज कहीं के कहीं पहुँच चुके थे।

#### श्रक्षय लहिध

१७वीं और १८वीं शती में राजस्थान में मेडता नगर व्यापार का वड़ा केन्द्र था। वहां कई लक्षाघीश सेठ थे। एक समय श्रीग्रानंदघनजी का वहां पदापंग्रा हुग्रा। वहां की जनता ने उनके उपदेशों का वहुत लाभ उठाया। एक विघवा सेठानी—जिसके पित का कुछ समय पूर्व देहान्त हो गया था—श्री ग्रानंदघनजी की परम मक्त थी। उनके प्रति उसका घर्मानुराग ग्रनुकरणीय था। उसके पुत्र थे। घर में करोड़ों की सम्पत्ति थी। उन्हीं दिनों जोधपुर नरेश को किसी कारणवश द्रव्य की ग्रत्यन्त ग्रावश्यकता हुई। धन एकत्रित करने के लिये जोधपुर नरेश के उच्चाधिकारी और सिपाही मेड़ता नगर ग्राये। उन लोगों ने घनपितयों से द्रव्य की मांग की ग्रीर उनकी कोठियों पर

सिपाहियों को बैठा दिया। उस विवदा की कोठी पर भी सिपाही आ बैठे। यह देवकर उस विववा स्त्री का हृदय, वैठने लगा। जब वह श्री ग्रानन्दवन ती के दर्जन करने माई तब उसने श्रीमानंदवनजी को मपनी विपत्ति की सम्पूर्ण गाया इन् सुनाई और उमकी निवृत्ति का उपाय पूछा । उन्होंने कुछ देर मीन रहकर उम स्त्री से कहा-"'तुम्हारे घर में जितने प्रकार के सिक्के हों उनकी प्रलग-भ्रत्रग वहीं में रखकर यहां ले भावी । वह स्त्री वर श्राई । उसने स्वर्ण का निक्का एक ग्रह्म घड़े में रक्का और रजत का सिक्का ग्रलम घड़े में रखा। टन दोनों घडों के मूंह कपड़े से टक कर और उन्हें बांबकर श्रीत्रानंदवनजी के पान के बाई। श्रीक्रानंदघनकी ने कुछ बोलकर प्रपना हाय उन घड़ों के कार फिराया और कहा-"इनको ले जावो, इनमें से सिक्के निकाल-निकाल कर देती जावो ।" घर ग्राकर उसने ग्रावेगानुसार ग्राचरण किया । सिपाही नीग जितने गाड़े लाये ये वे सब एक ही स्थान से भर गये। वे पुष्कल धन पाकर वहां मे विदा हो गये। उनके जाने के पश्चान उस स्त्री ने घड़ों में हाथ डालकर देखा नौ घडों में एक-एक ही सिक्का था। अब तो उसके आस्वर्य का कोई टिकाना नहीं रहा। यह चमत्कार देखकर श्रीग्रानंदयनजी के प्रति रसका पूर्व की अपेका हजार गुना अद्धा-मिक्त माब बढ़ गया। इस चमस्कार की बात सम्पूर्ण नगर में फैल गई। लोगों के सुरह के मुख्ड उनके दर्शनार्थ ग्राने जगे श्रीर दर्शनकर ग्रयने ग्रापको बन्य समस्ते लगे । ऐसे ये वर्ग प्रमावना करने वाले आतंदवनजी ।

इन प्रवादों के विषय में हुछ कहा नहीं जा सकता है किन्तु वर्म प्रमान्वना के निये योगीराज श्रीम्रानन्दवनजी ने हुछ चमत्कार दिलाये हों या हो हो गये हों तो इन्हें प्रमाणामान में अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता । इन से पूर्व के जैनावायों ने भी समयोजित चमत्कार पूर्ण कार्य वर्म प्रमानना के लिये किये थे । अय ग्रानन्दवन

महताव चन्द खारैड

१. ये चनत्कारपूर्ण घटनार् श्रीकापिडयात्री, श्री बृद्धिसागरत्री, श्रीवसंत्रतालत्री, श्रीकांतिलालती श्रीर श्रीईव्यरलालती की पुस्तकों से ली गई हैं । मैं सनके प्रति शासार प्रवर्णित करता हैं ।

## पद-ऋम दर्शक

== विवरण-पत्र

## विवरण-पत्र भिन्न भिन्न

इस संख्या	पदो का ग्रकारादि क्रम ` 2		। संख्या प्रस्तुत ग्रंथावर्ल	क.म श्राभाम सिह मार्गक था म्कापड़िया श्री ग्रा. बुद्धि सागर	० कम संख्या क्ष प्रति
1.	ग्रग जोवंता लाख	साखी	71	90	71
2.	धनन्त ग्ररूपी ग्रविगत सासतो		13	71	12
3,	श्रनुभौ (श्रनुभव) तू है हितु हमारो		40	14	46
4.	अनुभी (अनुभव) नाथ को क्यूंन जगावे		28	8	32
5.	अनुभी (श्रनुभव) प्रीतम कैसे मानसी		29	50	33
6.	भनुभी (भ्रनुभव) हम तो रावरी दासी		43	13	50
7.	अपना रूप जब देखा		7	66	2
8,	ग्रव चलों संग हम।रे काया		119		-
9.	ग्रव मेरे पति गति देव निरंजन		8	60	3
10.	ग्रब हम भ्रमर भये न मरेंगे		100	42	
11.	ग्ररी मेरो नाहेरी ग्रति बारो		92	96	
12.	ग्रवधू ग्रनुभव कलिका जागी		60	23	70
13.	अवधू ऐसो ज्ञान विचारी		101	49	<u>~</u>
14.	ग्रवधू क्या मांगूं गुराहीना		10	26	5

## प्रतिंधों में पदों का क्रम

। प्रति	प्रति	प्रति	नय जयपुर संख्या	श्री र	ाहटा, वीव की क्ष. सं.	गनेर	
क कम संख्या आ	कम संख्या इ	०० कम सख्या उप्रति	थी जिनदत्त पुस्तकालय जयपुर ० की प्रति की क्षम संख्या	_ मुक्ष्य प्र. 44 पद	ा ए, ४५ पद	रा बी. 34 पद सं. 1762	ध्य सी. 38 प सं. 1798
62	54	59	52		23		
12	72	30	70		30	31	
45	29'	50	27	21		25	
34	26	_	-	20		24	_
74	5	5	5		27		29
36	28	51	28	22		26	_
53	45	77			16		22
		-	Place In		_		
75	6	6	6		28		
-			_		_		_
	•	-			•		des Prints
21	23	46	23	1		18	36
			<del>,</del>			-	
29	21	14	21	10	45	16	37

1	2		3	4	5
15.	श्रववू क्या सोवै तन मठ में		57	7	43
16.	श्रवघू नटनागर की वाजी		59	5	88
17.	भ्रवघू नाम हमारा राखे		11	29	6
18.	म्रवघू राम नाम जग गावे		97	27	81
19.	म्रवधू वैराग्य वेटा जायो		102	105	
20.	भ्रवधू सो जोगी गुरु मेरा		103	98	-
21.	श्रा कुवृद्धि कूवरी कवन जात		70	74	54
22.	थाज सुहागन नारी श्रववू		86	20	
23.	द्यातम अनुभव प्रेम को,	ग्राखी	74	6	74
24.	म्रातम मृतुमव फूल की स	ाखी	28	8	32
25.	ग्रातम अनुमव रस कथा, प्याला ग्रजव विचार, स	ाखी	53	_	67
26.	ग्रातम भ्रनुभव रस कथा, प्याला पिया न जाय, स	ाखी	35	70	39
27.	म्रातम मनुभव रीति वरी री		53	11	67
28.	बाशा श्रीरन की कहा कीजै		58	28	82
29.	ए जिनके पाय लाग रे		87	102	
30.	ऐसी कैसी घर वसी		45	79	57
31.	कंत चतुर दिल ज्यानी		69		48
32.	करेजा रेजा रेजा रेजा		25	35	26
33.	कित जाण मते हो प्रारानाय		80	31	56
34.	कुण ग्रागल कहूँ खाटो मीठो	1	12		
35.	<b>क्रुबुद्धि कूवरी कुटिल गति</b> सार	बी	56	12	85

6	7	8	9	10	11	12	13
26	18	11	18	14	-	13	16
30	22	15	22	40		17	35
32	24	47	26	2	_	19	
28	20	13	20	9	-	15	
		_		_			
_		-	~		_		
				34	-	_	
	-						-
5	7	16	- 1	2 के. सार्ख	î —		
34	26	29	26	12, 20		24	-
		19	1	2 के. साख	ती —	_	
38	30	53	30 1	2,29 "	1	_	24
19	11	19	11	7	_		9
27	19	12	19	13	_	14	1
_					_	_	
66	58	63	56			_	-
50	42	45	41	*	13		26
				39	43	-	17
18				_			_
8	10	18	10	44	_	8	8

1	2	3	4	5
36.	क्यां रे मुनै निचने म्हारो संत सनेही	5	25	23
37.	न्या सोवे टठ दाग वाटरे	I	1	76
38.	चेतन प्रापा कैसे सहोई		55	
39.	चेतन ऐसा हान विचारी	106	81	_
40.	वेतन चतुर चौगान लग्न ग	52	46	65
41.	वेतन मुद्धातम को व्यावी	105	80	
42.	नेतन सकन वियायक होई	82	89	86
43.	छदीले लालन नरम कहे	35	70	39
44.	होरा नै क्यूं नारै हैरे हैंग	67	17	60
45.	वर प्राप्ता जंदीर की	साची 57	7	83
46.	लगत गुरु नेरा नैं जगत का चेरा	6	78	1
47.	दिन चरेंगे चित त्याऊँ रे नना	81	95	80
48.	जिय जाने मेरी सफल घरी	3	3	77
49.	ठगोरी मगोरी लगोरी लगोरी	17	45	18
50.	तत मन हरि विमुखन को संग	109	108	
51.	तरस की इड़ को दई की सवारी री	76	39	53
52.	ता दोगे चित त्याग्रो रे न्हाला	104	37	_
53.	तुम ज्ञान विभो पूली वसंत	108	107	
54.	देरी हूँ देनी हूँ ऐनी कहूँ री	14.	44	15
55.	दच्यो जु महा मोह-दावामल	111	_	
. 56.	दरसग् प्राय जीवन नोहि वीजै	24	92	25

6	7	8	9	10	11	12	13
7	9	17	9	6		7 .	7
1	1	1	1	41	40	1	2
-	-				**********	-	
		-					
20	12	20	12		-	9	10
			_		24		
71	63	68	61	24	82		
38	30	53	30	29	4		24
_	On court			-			-
26	18	11	18	14		13	16
70	62	67	60	_	.23	12	
			<b></b>	-	-		
3	3	3	3	43	41	3	3
.23	15	23	15		_	11	13
	_	_		-	_		_
67	59	64	57		~		20
-				-	_		
**************	-				-		
24	16	24	16				14
17				-			_
54	46	32	44		17		

1	2	3	4	5
57.	दुलहन री तू वड़ी वाबरी	85	19	
58.	देखो त्राली नटनागर के सांग	21	34	22
59.	देख्यो एक ग्रपूरव खेला	55	57	69
60.	नाथ निहारो ग्राप मता सी	46	9	58
61.	निरंजन यार मोय कैसे मिलेंगे	119		
62.	निराचार केम मूकी, श्याम	88	94	
63.	निसाणी कहा बताऊं रे	61	21	89
64.	निसि दिन जोऊँ वाटडी	31	16	35
65.	निस्पृह देश सुहामणों	75	83	66
66.	परम नरम मित और न भावै	15	10	16
67.	पिय विन कौन मिटावे रे	27	65	31
68.	पिय माहरो जोसी हूँ पिय री जोसएा	110		
69.	पिया तुम निठुर भये क्यों ऐसे	44	32	51
70	पिया विन निसि दिन भूरूं खरी री	16	47	17
71.	पिया विन सुध-बुध भूली हो	26	41	30
72.	पिय विन सुष-बुषमूंदी हो	32	62	36
73.	पूछीइ माली खबर नई	37	88	43
74.	प्यारे ग्रव जागो परम गुरू	83	64	52
75.	प्यारे ग्राइ मिलो कहा ऐते (ऐंठे) जात	78	58	42
76.	प्यारे प्रान जीवन यह सांच जान	79	76	55
77.	प्यारे लालन विन मेरो कोएा हवाल	68	75	41

6	6	8	9	10	11	12	13
7			_				
48	40	43	39		11		_
51	43	74	42	Charles	14		_
37	29	52	29			27	
					-		-
_						28	_
46	38	41	77	24	9	<b>—</b>	_
58	50	40	48	19	19		27
11	71	29	69		38	30	-
22	14	22	14	_			, 12
43	35	35	35	25	6	*******	
16					-		
55	47	33	45		18	_	_
21	13	21	13		-	10	11
61	53	76	51	-	22	_	
60	52	57	50		21	_	
41	33	56	33	33	4		32
			-	28			
				31			-
				35		-	
*****							-

1	2	3	4	5
78.	प्रमु तो सम ग्रवर न कोइ खलक में	89	82	
79.	प्रमु भजने मेरा दिल राजी रे	94	103	
80.	प्राणी मेरो खेले चतुर गति चौपर	56	-12	85
81.	प्रीति की रीति नई हो प्रीतम	48	69	61
82.	वांतूडी अवला जोर किसों करे	41	56	50
83.	वेहेर वेहेर निह ग्रावे ग्रवसर	84	100	
84.	भमरा किन गुण भयो रे उदाती	99	106	28
85.	भादु की रात काती सी वहइ	34	51	38
86.	भोरे लोगा फूरूं हूं तुम भल हासा	19	73	20
87.	नगरा क्रपर कलमा बैठा	120	-	
88.	मनसा नटनागर सुं जोरी हो	49	38	62
89.	मनु प्यारा मनु प्यारा रिखभदेव मनु प्यारा	93	101	
90.	मायडी मूर्न निरपख किएा ही न नूकी	66	48	
91.	माहरो वालूडो सन्यामी	74	6	74
92.	माहरो मौन कव मिलसी नन मेनू	12	24	8
93.	मिलण रो वानक भ्राज बन्यो छै दी	113	~	
94.	मिलापी बान मिलाग्रो रे	30	33	34
95.	मीठो लागै कंतडो नै खाटो लागै लोक	50	40	63
96.	मुर्न माहरा मार्वविया नै निलवानो कोड	23	93	24
97.	मुदन योडो रे नाई व्यावडो घलेरो	64	54	84
. 98.	नेरी तुं मेरी तुं काहे डरे री	42	43	49

6	7	8	9	10	11	12	13
					g-10 <sup>-7</sup> 10-710	proposition.	
	Principal	_			-		
8	10	18	10	44		8	8
49	41	4	40		12		25
13	73	7	71		31	32	
-	7	81	75		-	-	
42	34	73	34	36	5		33
57	49	39	47	27			
		_					
59	51	31	49		20	-	21
	_				-		
-		82	76			29	
5	7	16	7	4		5	5
6	8	*****	8	5		6	6
80			-	and to deliver			
45	37	37	37	38	8		
69	61	66	59	-			
65	57	62	55	18	منسيحم		
79	68	10	66		35	23	
25	17	25	17		po.,		15

1	2		3	4	5
99.	मेरी सुं मेरी सुं मेरी सुं मेरी सौं मेरी	री	51	61	64
100.	मेरे ए प्रमु चाहिये		117	108बु	
101.	मेरे घट जान भानु भयो भोर		73	15	73
102.	मेरे प्राण ग्रानन्दधन तान ग्रानन्दधन		72	52	7
103.	मेरे मांकी मजोठी सुए। इक वाता		20	72	21
104.	मोको कोऊ कैसई हू तको		9	59	4
105.	मीने कोई मिलावो रे कंचन वरगो नाह	22	49	23	
106.	या पुद्गल का क्या विसवासा	107	97		
107.	राम कहो रहिमान कहो		65	67	79
108.	राश गशी तारा कला	साखी	27	65	31
109.	रिसानी ग्राप मनाग्रो रे		36	18	40
110.	रे घरियाली वाचरे मत घरिय वजावें		2	2	72
111.	रे परदेशी भ्रमरा		116	~-	29
112.	लागी लगन हमारी जिनराज		91	84	
113.	वारी हूँ बोलडे मीठडे		18	85	19
114.	वारूं रे नान्ही बहु ग्रै मन गमतुं की बूं		71	90	71
115.	वारे नाह संग मेरो		90	36	
116.	वारो रे कोई पर घर रमवानो ढाल		47	91	59
117.	विचारी कहा विचारे रे		62	22	87
118.	विवेकी वीरा सह्यो न परे	-	39	87	45
119.	व्रजनाय से सुनाथ विग्		95	63	11

6	7	8	9	10	11	12	13
68	60	65	58				19
		_	_			-	38
72	64	69	62		25		28
		71			44.		23
56	48	38	46	26		_	
15	75	34	73	_	33	34	
64	56	60	54	17	_	_	_
	_	_	_		_		
78	69	9	67	_		22	
43	35	35	35	25	6	_	_
44	36	36	36	23	7	_	
2	2	2	2	42	39	2	
_	76	80	74				
		_		-	_	_	_
14	74	26	72	11	32	33	18
62	54	73	52	15	_		
البيرينيي <b>ن</b>			_			_	
63	55	61	53	16			-
47	39	42	38		10		
40	32	54	32	32	3		31
9		28		-	36		

1	2	3	4	5
120.	सरसती सामी करो रे पसाय	115		_
121.	सलूने साहिव ग्रावेंगे मेरे	38	86	44
122.	सहैं में किसके किमके बोला			27
123.	सांइडा दिल लगा है वंजीवारे सू	98	53	9
124.	साबु संगति विनु कैसे पड्ये	63	68	75
125.	सावो भाई समता रंग रमीजै	4	30	78
126.	मुण चरला वाली	114		
127.	मुहागिन जागी ग्रनुभव प्रीत	54	4	68
128	हठीली ग्रांख्यां टेक न मेटे	33	104	37
129.	हमारी लौ लागी प्रमु नाम	77	77	14
130.	हरि पतितन के उद्घारन	96		10
131.	हैं तो प्ररामूं सद्गुरु राया रे	121		

नोट—(1) ग्रंथावली में सन्पूर्ण पद 121 ही हैं, किन्तु यहाँ 131 संख्या होने का कारण यह है कि इसमें 8 साखियाँ भ्रोर 2 परिवर्तित पद भी सिम्मिलित हैं।

6	7	8	9	10	11	12	13
						-	-
39	31	54	31	30	2		30
52	44	74			15	-	
				-			
77	67	8	65	termings.	34	21	_
33	25	48	25	3		20	34
-							-
4	4	4	4	8	42	4	4
76	66	27	64		29	-	
73	65	70	63		26		*****
10	70	78	68			-	<del></del>
	-	_		_	—		

#### टिप्पगाी:--

- (2) ऋम सख्या 7 का पद मुद्रित प्रतियों में "साथो भाई" शब्द से श्रारम्भ होता है।
- (4) ऋम संख्या 8 का पद केवल ग्राचार्य श्री बुद्धिसागर जी के "ग्रानन्दघन पद संग्रह" की भूमिका पृष्ठ 158 पर ही है।
- (5) ऋम संख्या 27 पद के साथ 'ग्र' ग्रीर 'उ' प्रतियों में ऋम संख्या 25 की साखा है।

- (6) कम संख्या 38 ग्रीर 42 के पद थोड़े से अन्तर से एक ही पद हैं।
- (7) ऋम संख्या 44 का पद "ज्ञान सारजी" कृत टब्बे में भी प्राप्त है।
- (8) कम संख्या 61 का पद केवल ग्राचार्य श्री बुद्धिसागर जी के "श्रानन्दघन पद संग्रह" की भूमिका पृष्ठ 173 पर ही है।
- (9) ऋम संख्या 119 का पद "हरि पतितन के उद्धार" के साथ हैं।
- (10) कम संख्या 122 का पद इस ग्रन्यावली के "देखो एक ग्रपूरव वेला" पद का उत्तरार्ढ़ है।
- (11) कम संख्या 130 का पद "व्रजनाथ से सुनाथ विराण" पद के साथ है।
- (12) ऋम संख्या 131 का पद श्री साराभाई मिएलाल नवाव द्वारा सम्पादित "श्री ग्रानन्दघन पद्य रत्नावली" से साभार लिया गया है।
- संकेताक्षर: क, का = मोतीलाल गिरवर कापडिया, वि = विश्वनाय, व, वु = ग्राचार्य श्री बुद्धिसागर जी, च = चानतराय, मं = मंगल जी उद्धव जी, मा = मालेकलाल घेलाभाई।

# 🕸 आनन्दघन ग्रन्थावली 🖇

## \* कहाँ क्या \*

ऋम						ģ	53
₹.	अपनी बात		प्रमरावचन्द जरग प्रहताबचन्द खारैड		१	से	१५
٦.	प्रासंगिक वक्तव्य	,, s	।गरचन्द नाहटा		38	से	४३
₹.	प्राग् वाच्य	मुनि	श्री नथमलजी स्व	ामी	<b>አ</b> ጸ	से	४७
٧.	भूमिका	श्री जवाहरचन्दजी पटनी			४५	से	७३
				एम. ए.			
ሂ.	आनन्दघन के जीवन प्र	संग	श्री महतावचन्द	बारैंड	७४	Ę	क्षे द६
Ę.	पद-क्रम दर्शक विवरण	पत्न	****	****	?	से	१६
७.	आनन्दघन वहुत्तरी		****	****	8	से	१७७
ҕ.	स्फुट पद व अन्य रचन	ायें	****	****	१८१	से	२५६
8.	आनन्दघन चौवीसी		***	••••	२५६	से	३६६

## \* आनन्दधन बहुत्तरी \*

चेतावनी

8

राग-वेलावल

क्या सौवे उठि जाग बाउरे। 'म्रंजिल जल ज्यू' म्राउ घटतु है, देत पहुरिया घरी घाउरे। १। क्या०।। १ ११

इन्द्र चन्द्र नागिद मुनिद चले, कौन राजा पितसाह राउरे। भ्रमत भ्रमत भव जलिश पाई तैं, भगवंत भगित सुभाव नाउरे।।

कहा विलंब करे अब बारि, तरि भव-जल-निधि पार पाउरे।
'ग्रानन्दचन' चेतनमय मूरति, सुद्ध निरंजन देव ध्याउरे।।
।। क्या ।। ३।।

पाठान्तर — जाग = (अ) जागि। (उ) वाउरे = वावरे। श्रंजिल = '(इ) श्रंजिर। क्षांठ, पहुरियां, घरी, घाउरे = (इ, उ)। आयु। पोहरिया। घरिय। घाव। कोंन (इ) कुए।। पाई तै ≠ (उ) पायकै। तरि = (इ) तर। घ्याउरे = (अ, इ) गाउरे। इन्द्र चन्द्र नागिन्द मुनिन्द चले = (क वि) इन्द्र, चन्द्र, नागिन्द्र, मुनि चले। (ब) इन्द्र, चन्द्र, नागिन्द्र, मुनि चले। (ब) इन्द्र, चन्द्र, नागिन्द्र, मुनि चले। भगवंत भगति सुभाव नाउरे = भगवंत भजन विन भाउ नाउरे। बोरे = (क, व, वि) बाउरे।

शब्दार्थ — वाउरे = भोले, पागल । श्रंजिल = चुल्लू, हाथ से बना हुआ सुम्पुट । आउ = आयु, उस्र । पहुरिया = पहरायती, घड़ियाल बजाने बाला । घरी = घरियाल, घड़ावल, पीतल था काँसे की एक गोल वस्तु विशेष जिस पर हण्डे से चीट मार कर समय सूचित किया जाता है । घाउ = चीट । नागिन्द्र = नागेन्द्र, नाग नामक देवों का इन्द्र, घरणेन्द्र । मुनिन्द = मुनियों के इन्द्र, तीर्थंकर । कीन = किस गणना में है । पितसाह = वादशाह । राउ = राजा, राणा । भ्रमत भ्रमत = भ्रमण करते हुथे, डोलते डोलते । भव-जलिय = संसार समुद्र । पाई तैं = तूने पाकर । सुभाउ = स्वभाव । नाउ = नाव, नौका । विलंब = देर । तरि = तैर कर । भव-जलियि = संसार समुद्र । पार पाउरे = दूसरा किनारा प्राप्त कर । निरंजन = मल रहित, गुद्ध, निर्दोष, परमारमा ।

उक्त पद के अर्थ से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि जीव का ह्रास विकास कम क्या है? जैन दर्शन के अनुसार अनादि काल से यह जीव संसार-समुद्र में वस रहा है। सर्वप्रथम यह अव्यवहार राशि में होता है, वहां कोई पुरुपार्थ नहीं करता। जिस प्रकार नदी के जल प्रवाह में कुछ पत्थर काल प्रभाव से गोल हो जाते हैं, वैसे ही काललव्ध प्राप्त कर यह जीव व्यवहार राशि में आता है और विकास करते करते मानव जीवन प्राप्त करता है। किन्तु यह जीव इस दुर्लभ मानव जीवन को अनंती बार प्राप्त कर खो चुका है। अव पुनः मानव जन्म मिला, तो फिर यह ऐसे ही व्यर्थ न चला जाये, अतः श्री योगीराज आनन्दधन जी सचेत कर रहे है:—

अरे भोले मानव! मोह निन्द्रा में क्या पड़ा है ? उठ, सचेत हो, प्रमाद त्याग कर जागृत हो, तेरी आयुष्य अंजिल के पानी के समान घटती जा रही है। पहरेदार घड़ियाल पर टंकार मार-मार कर तुभे सचेत कर रहा है। इस प्रकार घड़ियाल पर चीट करते फरते उस स्थान पर घाव-सा दिखाई पड़ने लग गया है परन्तु तेरे हृदय पर जरा भी इसका असर नहीं हुआ है। तू सचेत (सावघान) नहीं होता है।।१॥

देवताओं का राजा इन्द्र, चन्द्रलोक का स्वामी चन्द्र, नागलोक का स्वामी घरऐन्द्र और मुनियों के स्वामी तीर्थं द्ध्रर भगवान भी जब इस देह को त्याग कर चले गये तब राजा, वादशाह और चक्रवर्ती की बात ही क्या है? फिर तेरी तो विसात (सामर्थ्य) ही क्या है। संसार-समुद्र में भटकते भटकते यह मानव शरीर मिलकर भगवान की भक्ति रूप स्वाभाविक नाव प्राप्त हुई है। भवसागर से पार पाने के लिये उस स्वभाव रूपी नाव का प्रयोग करके अपने लक्ष स्थान पर जा पहुँच।।।।

नोट—"भगवंत भजन विन भाउ नाउरे" पाठान्तर के अनुसार यह अर्थे होगा—भगवान के भजन के अतिरिक्त (सिवाय) अन्य कौनसी भाव-नौका तुभे भाष्त होगी जिससे तू इस संसार समुद्र का उल्लंघन कर सकेगा।

अरे वावले ! अव देर क्यों करता है। विषय-वासना, राग द्वेप रूपी समृद्र से तैर कर पार होजा। आनन्दघन जी कहते हैं— घनीभूत आनन्द के घर, चैतन्य स्वरूप, कर्म मल विहीन, राग-द्वेप रहित शुद्ध देव का ध्यान कर, उसी का गुणगान कर, जिससे तू भी चैसा ही हो जाय।।३।।

विशेष—जीव (आत्मा) का चैतन्य स्वरूप व प्रभु (भगवान) का चैतन्य स्वरूप एकसा (समान) ही है। जीव जब प्रभु-भक्ति करता है—उसके गुणगान करता है तो उसे निज गुणों से गाढ़ परिचय होता है इसिल्ये प्रभु-भक्ति से बढ़ कर संसार समुद्र से पार पाने का अन्य कोई साधन नहीं है। संसार के सारे धर्म इसमें एकमत हैं। इसमें कोई नतनेद नहीं है। इसिलय है आतनत ! तू भगवान की स्मरण कर, इसमें जरा भी देर न कर। उमर का कुछ भी भरोगा नहीं है। कोई भी अमर पट्टा लिखाकर नहीं आया है। तीर्थ द्वर, चक्रवर्ती ही नहीं रहे तो अन्य प्राणियों की क्या गिनती हैं, इसिलये तिनक भी विलम्ब किये विना भगवान का भजन-स्मरण कर। अर्थात् चंतन्य स्वरूप, कर्म-मल रहिन, शुद्ध आत्म स्वरूप की ध्यान कर, जिससे तृ अपनी स्वामाविक अवस्था को प्राप्त ही सके।

ज्ञान घड़ी

U

राग विलाउल इकतारी

रे घरिग्रारे वाडरे, मत घरीय वजावै । नर सिर बांधै पाघरी. तू क्यों घरीय बतावे ॥ रे घरिन ॥ १ ॥ केवल काल कला कलें, पै तूं ग्रकल न पावै । ग्रकल कला घट में घरी, मुक्त सो घरी मादै ॥ रे घरिन ॥ २ ॥ श्रातम श्रमुनव रस मरी, यामें ग्रीर न मादे । 'ग्रानन्दघन' ग्रविचल कला, विरला कोई पावै ॥ रे घरिन ॥ ३ ॥

पाठान्तर—घरीआरे = घरीणर्र (इ, उ) । वाटरं = वावरे (त) । मत = मित (क्षा) । वनावै = बलावै (इ) । क्लै = करे (छ, इ) । पार्वे = क्हावै (इ) । मुक्त = मुहि (इ) । पार्वे = गावै (छ) ।

शन्दार्थ—घरीग्रारं = घड़ीबदानेंदालां । पादरी = पगईा, पाद घड़ों । काल कला कर्लं = समय जानने की युक्ति । पै = परन्तु । प्रकल = मद कलाग्रों से शनग (चनन गक्ति) । नार्वं = पसन्द हैं। श्रांतम = स्वरूनानुमव रूपी जानांतन्द रम में भरी हुई । मार्वं = ममाता है । श्रविचन=अवन, स्थिर ।

प्रथम पद में प्रमाद त्याग कर जागृत होने की वैतावनी के

पश्चात इस पद में घड़ी वजाने वाले को उद्देश कर श्री आनंदघनजी ज्ञानघड़ी के उपयोग के संबंध में कहते हैं :—

म्रायं—हे नादान! पगले! घडी वजाने वाले! तू% घडी मत वजा, अर्थात् तू क्यों घडी बजा वजा कर समय सूचित करता है? तेरा यह प्रयास व्यर्थ है। देख, मनुष्य ने तो स्वयं ही अपने मस्तक पर पा घडी (पगडी) अर्थात पा (पाव) घडी वांघ रखी है जिमसे समय की उपयोगिता पर वह वरावर हर समय सचेत रह सके। मस्तक पर पा घडी (पगडी) वांघने का मतलव ही उसका यह है कि वह हर दम यह जानता है कि समय (काल) मेरे मस्तक पर है। फिर अब तू उमे वार वार समय क्या वता रहा है। (यहां श्री आनंदघनजी ने पाघडी पर बहुत वडा व्यंग किया है)।।१।।

हे घडियाल बजाने वाले ! तू तो केवल समय वताने की ही युक्ति जानना है। परन्तु तुभेः जरा भी ऐसी बुद्धि नहीं है जिससे तू

क्ष्रियाचीन काल में ग्राजकल जैसी घड़ियां नहीं थी। उस समय, समय की जानकारी के लिये इस प्रकार के साथन थे:—

<sup>(</sup>१) घूप घड़ी — जिससे घूप की परछाई से समय जाना जाता था।

<sup>(</sup>२) जल घड़ी—पानी से भरे बड़े वरतन में एक छोटी कटोरी में वारीक छेद कर पानी में रख दिया जाता था, कटोरी के पानी में हुव जाने पर निर्वारित समय जान लिया जाता था।

<sup>(</sup>३) रेत (वालू) घड़ी—काँच के दो जुड़े हुये लट्दुशों में वालू भर दी जाती थी। इन दोनों लट्दुशों के मुँह छिद्र सहित जुड़े होते थे। वालू वाले भाग को ऊपर करके रख दिया जाता था। वालू घीरे घीरे नीचे के लट्दू में एक घड़ी श्रर्थात् चौवीस मिनिट में था जाती थी। दुवारा फिर इसी प्रकार यह किया की जाती थी, जिससे समय जाना जाता था।

उस-सव कलाओं से अलग, समय के सदुपयोग कराने वाली ज्ञानघडी को-जो हृदय में ही है-बता सके। मुफ्ते तो वही घडी (ज्ञान घडी) अच्छी लगती है अर्थात प्रिय है।।२॥

यह घडी आत्मानुभव रस से (निज स्वरूप को वताने वाले गुणों से) पूर्ण-लवालव भरी हुई है। इसमें और कोई वस्तु (विजातीय द्रव्य-रागद्वेपादि) नहीं आ सकती है—नहीं समा सकती है। यही घडी सचेतक है। श्री आनंदघनजी कहते हैं कि इस अचल, अवाधित, आनंददायिनी घडी की कला को विरला भाग्यवान मानव ही—लाखों में से एक—प्राप्त कर सकता है।

वैराग्य

3

राग-विलावल

जीउ जानै मेरी सफल घरी।

सुत विनता घन यौवन मातो, गरभ तागी वेदन विसरी।।जीउ०।।१।।

स्रित श्रचेत कछु चेतत नाही, पकरी टेक हारिल लकरी।

स्राइ श्रचानक काल तोपची, गहैंगो च्यू नाहर बकरी।।जीउ०।।२।।

सुपन राज साँच करि राचत माचत छांह गगन बदरी।

'श्रानंदघन' होरो जन छारै, नर मोह्यो माया केंकरी।।जीउ०।।३।।

पाठान्तर – जी  $\sigma$  = जी  $\sigma$  ( $\sigma$ ), जिय ( $\sigma$ ) जी  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । जाने = जा  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । यौवन = जोवन ( $\sigma$ ) । अति = अति ह ( $\sigma$ ) । अति = अति ह ( $\sigma$ ) । अति = चेत ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति  $\sigma$  वेत =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । अति =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । जिल्ला =  $\sigma$  ( $\sigma$ ) । उत्त =  $\sigma$ 

नोट-क, व, व प्रतियों में प्रत्येक पंक्ति के ग्रन्त में "री" है।

शब्दार्थ - जीउ = जीव । मातो = मस्त होकर । विसरी = भूल कर । यनेत = ग्रसाववान, वेसुघ । टेक = हठ । हारिल = ग्रपने चंगुल में लकड़ी का टुकड़ा लिये रहने वाला पक्षी ग्रीर टेढ़ें (तिरछा) चलते हुये लकड़ी कहीं ग्रटक जाती है तो वह पक्षी उल्टा लटक जाता है, पीड़ा से चिल्लाता है पर लकड़ी नहीं छोड़ता है । तोपची = तोप चलाने वाला, तोप में वत्ती लगाने वाला । गहैगा =: पकड़ेगा । नाहर = सिंह । माचत = मग्न होता हैं । छाँह = छाया । वदरी = वादल । छारै = छोड़कर । ककरी = कंकड़ ।

नोट — दूसरे पद की प्रथम पंक्ति किसी किसी प्रति में "ग्रिति ग्रचेत""" लकरी" तीसरे पद की प्रथम पंक्ति के साथ है श्रीर तीसरे पद की प्रथम पंक्ति अथम पंक्ति प्रथम पंक्ति के साथ है।

म्पर्थ—धन यौवन पाकर यह जीव (मानव) अपने आज के समय को अर्थात मनुष्य जन्म को सफल समभने लगता है। गर्भावस्था की सब वेदना (दुख) को भूलकर, स्त्री, पुत्र, धन और यौवन में मग्न रहता है, और अपने आपको सुखी मानने लगता है॥१॥

हे भोले मानव ! तू अत्यन्त असावधान है, जरा भी सचेत नहीं होता, नूने तो हारिल पक्षी की लकड़ो पकड़ने के हठ (जिद) के समान मोह माया में रच पच रहने की टेक (हठ) पकड़ली है। जिस प्रकार सिंह एकाएक (अचानक) आकर वकरी को पकड़ लेता है, उसी प्रकार कालकृपी तोपची तुभे आ पकड़ेगा, इसकी भी तुभे कुछ खबर है ?।।२।।

हे मूढ़ ! तू स्वप्न में मिले हुये राज्य की सत्य समभ कर उसी में मग्न हो रहा है। अरे भोले मानव ! तू तो आकाश में छाई हुई वदली की छाया में ही प्रसन्न हो रहा है। क्या तुभे, मालुम नहीं कि

1	2	3	4	5
57.	दुलहन री तू वड़ी वावरी	85	19	
58.	देखो ग्राली नटनागर कें सांग	21	34	22
59.	देख्यो एक प्रपूरव खेला	55	57	69
60.	नाथ निहारो ग्राप मता सी	46	9	58
61.	निरंजन यार मोय कैसे मिलेंगे	119		(Departed)
62.	निराधार केम मूकी, श्याम	88	94	
63.	निसाखी कहा वताऊं रे	61	21	89
64.	निसि दिन जोऊँ बाटडी	31	16	35
65.	निस्पृह देश सुहामगाों	75	83	66
66.	परम नरम मति और न भावै	15	10	16
67.	पिय विन कौन मिटावे रे	27	65	31
68.	पिय माहरो जोसी हूँ पिय री जोसएा	110		
69.	पिया तुम निठुर भये क्यों ऐसे	44	32	51
70	पिया विन निसि दिन भूरूं खरी री	16	47	17
71.	पिया विन सुघ-बुघ भूली हो	26	41	30
72.	पिय विन सुघ-वुघमूं दी हो	32	62	36
73.	पूछीइ भ्राली खवर नई	37	88	43
74.	प्यारे ग्रव जागो परम गुरू	83	64	52
75.	प्यारे ग्राइ मिलो कहा ऐते (ऐंठे) जात	78	58	42
76.	प्यारे प्रान जीवन यह सांच जान	79	76	55
77.	प्यारे लालन विन मेरो कोएा हवाल	68	75	41

और कीन है ? इसी मस्ती में भूल जाता है कि मुक्ते भी मरना है।
यह सव कुछ छोड़ कर मुक्ते भी खाली हाथ जाना है। मैं किस समय
चला जाऊं, इसका जरा भी ध्यान नहीं रखता है। इस जीवन में
जो कुछ सुख सीभाग्य मिला है, वह स्थिर नहीं है, वादल की छांह
के समान है फिर भी हारिल पक्षी के लकडी की तरह इनको छोड़ने
को तत्पर नहीं है। इन अस्थिर वस्तुओं में ही लुब्ध है। ऐसे भ्रमित
विलुब्ध मानव को थी आनंदधनजी वैराग्य भाव की ओर उन्मुख
करते हुये कहते है कि परमानंदरूप हीरे को त्याग कर मानव मोह
माया रूप कंकर-पत्थर में मोहित हो रहा है अर्थात अनंत सुखदाता
हीरे को छोड दुखदाई पत्थर ग्रहण करता है। इसलिये सावधान
करते है—परभावरूप कंकरों को त्याग कर स्वभाव रूप हीरे को
ग्रहण करो।

समता भाव

४

राग-श्रासावरी

साधो भाई समता संग रमीजै, श्रवधु ममता रंग न कीजै।।
संपित नाहि नाहि ममता में, रमतां माम समेटै।
खाट पाट तिंज लाख खटाऊ, श्रंत खाक में लेटै।।श्रवधु०।।१।।
धन धरती में गाडै वौरा, धूरि श्राप मुख लावै।
मूषक सांप होइगो श्राखर, तातै श्रलिख कहावै।।श्रवधु०।।२।।
समता रतनागर की जाई, श्रनुभव चंद सु भाई।
काल कूट तिंज भव में सेग्गी, श्राप श्रमृत ले जाई।।श्रवधु०।।३।।
लोचन चरण सहम चतुरानन, इन ते बहुत डराई।
'श्रानंदघन' पुरुषोत्तम नायक, हितकरि कंठ लगाई।।श्रवधु०।।४।

पाठान्तर—संग = संगि (ग्र), रंग (इ, छ)। रंग=संग (इ, छ)। कीर्ज = कीजइ (ग्र)। रमतां माम समेटे = ममता मां मिसमेटे, (क, ब), रमता राम समेटे (वि), ममता मांम सब मेटे (ग्र)। (इ प्रति में 'माम' गट्य नहीं है) खटाऊ = पटाऊ (छ)। ग्रंत = ग्रंति (ग्रा), ग्रंते (छ)। जाक = खाख (ग्र, इ, छ)। घरती = घरनी 'छ)। घूरि = घूलि (छ)। मुखि = मुखक (ख)। सांप = साप (ग्रा, इ, छ)। होइगो = होयगो (इ), होइजो (छ)। तातै = ताथें (इ), तामें (छ)। कहावै = कहावइ (ग्रा)। रतनागर=रतनाकर (क, बि), रतनागर (व)। कालकूट = काल कूटि (ग्र)। भव = भाव (इ)। के = लेई (इ, छ)। चरगा = वरगा (ग्र)। सहस = सहिस (इ)। तह = तें (ग्र, इ, छ)। हितकरि = हितकर (इ)।

शब्दार्थ—समता= राग-हेप रहित माव । रमी जै=रमण करो, आनन्द करना, घूमना-फिरना साथ रहना । ममता = ममत्व, प्रिय वस्तु पर राग । माम = ममत्व । समेटे = लफ्ट लेता है, एकत्रित करता है । खाट =: पलंग । पाट = चौकी, तस्त ग्रादि वैठने की वस्तु । लाख खटाऊ = लाखों रुपया पैदा करने वाला । खाक = मिट्टी । वोरा = वावला, पागल । ग्रलछि = अलक्ष्मी । रतनागर = रत्नों का खजाना, समुद्र । काल-कूट = हलाहल विप । भव में सेणी = ग्रुद्ध भाव रूप श्रेणी (पंक्ति), ग्रुद्ध पिग्णाम की घारा । लोचन चरण सहस = लोचन (नेत्र) सहस (हजार) इन्द्र; चरण सहस = सूर्य। चंतुरानन = चार मूख वाला ब्रह्मा ।

श्रथं —हे सः घु पुरुषों ! समना के साथ रम जावो—राग-हे प को छोड़कर समभावी वन जावो। हे अवधु आत्मा ! ममता के रंग न पड़ो। स्त्री पुत्रादि, घन आदि-वैभव और यौवन में लुब्ब न हो। ममता से किसी भी प्रकार की उन्नति संभव नहीं है। इसमें रमने से (साथ रहने से) तो अपनी आत्म संपत्ति सिमट कर वहुत थोड़ी हो जाती है। समता भाव से लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नित होती है और ममत्व भाव से यह ज्ञाता-हृष्टा आत्मा अपने अहं में संकुचित हो जाता है। अक्ष लाखों के कमाने वाले अपनी रत्न जटित सोने की शैंटपा और वैठने के सिहासन को यहीं छोड़ कर अंत में खाक (मिट्टी) में जा लेटे अर्थात् जिस मिट्टी से पैंदा हुये थे उसी में समा गये ॥१॥

भोले लोग धन को मिट्टी में गाडते हैं । यह धन-पर मिट्टी होलना नहीं है, अपने ही मुख पर मिट्टी उडेलना है क्योंकि जिनकी धन-दोलत पर अत्यन्त आसक्ति होती है, वे ही धन-दोलत को जमीन में गाडते है। इस दृढ़ आसक्ति से मर कर वहीं सर्प या मूषक (चूहे) होते हैं। शकुन शास्त्रवेत्ता सांप व मूषक को अलक्ष्मी कारक कहते हैं, अतः जमीन में धन गाडना अपने मुख पर धूल डालना है। वास्तव में यह धन-दौलत लक्ष्मी नहीं है, अलक्ष्मी है। यदि यह लक्ष्मी होते तो सर्प-मूपक जन्म क्यों प्राप्त होता। असली लक्ष्मी तो आतिमक गुण है, जिससे वास्तविक सुख प्राप्त होता है।।।।

वैदिक मतामुसार सपृद्र से चौदह रत्न निकले थे इसिलये उसे रत्नाकर कहा जाता है। मोती, मूंगा आदि अनेक रत्न अब भी उसमें से निकलते है। इन रत्नों से जीव का आत्मिक उत्थान नहीं हो सकता है, इसिलये ये द्रव्य रत्न हैं। भाव रत्न तो क्षमा, सन्तोष, ऋजुतादि—जो मनुष्य के अन्तर से प्रकट होते हैं। इसिलये मनुष्य का हृदय ही भाव रत्नाकर है। श्री आनन्दधनजी कहते हैं—

हिं एक प्रति में 'रमता राम सनेटे' पाठ है, जिसका ग्रर्थ—इस रमते राम ग्रात्मा की शक्तियाँ सीमित हो जाती हैं।

समता हृदय रूपी रत्नाकर (समृद्र) की पुत्री है। अनुभव रूपी चन्द्रमा इसका श्रेष्ठ भाई है। यह समता आर्त रौद्र ध्यान रूपी हलाहल विष को त्याग कर शुभ परिणाम—धर्म-शुक्ल रूपी अमृत को स्वय ले आती है।।३॥

समता रूपी लक्ष्मी हजार चरण, हजार नेत्र व चार मुख वाले व्यक्ति को देख कर भयभीत होती है। अर्थात् मोह रूपी महा-राक्षस—जिसके कोंघ, मान, माया और लोभ रूपी चार मुख हैं; जिसके हजार नेत्र और पाँव हैं जिनसे वह समता का नाश करता रहता है—को देख कर डर जाती है। श्री आनन्दघन जी कहते हैं, आनन्द स्वरूप राग-द्वेष रहित पुरुषों में श्रेष्ठ वीतरागदेव ने प्रेमपूर्वक समता को गले से लगा लिया, अर्थात् समता से जो व्यक्ति स्नेह रखते हैं वे ही परमपद के अधिकारी होते है।।।।

विशेष—उक्त पद के चोथे पद में एक वैदिक रूपक बहुत ही परिष्कृत रूप में है। वह इस प्रकार है—अमृत प्राप्त करने के लिये देव और दानवों ने मिलकर समृद्र का मंथन किया। सुमेरू पर्वत को 'रई' (भेरना) बनाया गया, शेष नाग से रस्सी का कार्य साधा गया। समृद्र मथ गया। समृद्र से चौदह रत्न प्राप्त हुये। वे चौदह अनुपम वस्तुयें इस प्रकार हैं—(१) लक्ष्मी, (२) कौतुभ रत्न, (३) पारिजातक पुष्प, (४) सुरा, (५) घन्वतिर वैद्य, (६) चन्द्रमा, (७) कामधेनु, (८) ऐरावत हाथी, (६) रंभा देवांगना, (१०) सात मुख वाला उच्चैश्रवा अश्व, (११) काल-कूट [जहर], (१२) धनुष, (१३) पांचजन्य शंख और (१४) अमृत।

थीगीराज ने श्रद्धा से मानी जाने वाली इस कथा का अर्थन्ति वृद्धिगम्य मुन्दर रूपक दिया है। किन की करूपना अद्भुत, प्रकृत, वृद्धिगम्य व अर्थन्त उपदेशप्रद है। किनराज कहते हैं कि हृदय में अनेक भाव उत्पन्न होते हैं और विलय होते है, इसलिये यह समृद्ध मुख्य हैं।

धुद्धि द्वारा हृदय की मंथन होता है। सद् असद् वृत्तियां इसें इघर उधर खेंचती हैं। सद् वृतियां देव क्ष है; असद् वृत्तियां असुरं रूप हैं। इस हृदय-मंथन से ही समता रूपी लक्ष्मी प्रकट होती है। हृदय मंथन से ही अनुभवं रूपी चंद्रमा प्रकट होता है, जिसके प्रकाश में यह जीव जड़ भाव व चेतन भाव को समक्ष कर देहाध्यास त्यागता है। समता, आत्त रीद्र परिणाम रूप कालक्षट विष को त्याग कर जान रूप अमृतरस को ग्रहण करती है।

स्व० श्री वासुदेव शरण अग्रवाल ने "करुपवृक्ष" नामक पुस्तक में इस रूपक का भाव इस प्रकार दिया है :—समुद्र मंथन का यह छपाख्यान आध्यादिमक पक्ष में मनुष्य की देवी और आसुरी वृत्तियों के संघपं का विवेचन करता है। मनुष्य का मन उसकी सर्व श्रेष्ठ निधि है, मननात्मक अंश ही मनुष्य में देवी अंश है। शरीर का भाग पार्थिव और मन का भाग स्वर्गीय है। अथवा यों कहें कि शरीर मृत्यु और मन अमृत है। शरीर का सम्बन्ध नश्वर है, मन का कल्पान्त स्थायी। किसी भी क्षेत्र में देखें, मन की शक्ति शरीर की स्वयेक्षा वहुत विशिष्ट है। (कल्पवृक्ष पृ० १०,११)

सतसंग विरह

X

राग-रामगिरि

षयां रै मोनइ भिलस्यै संत सनेही।

संत सनेही सुरजन पालै, रालै न घीरज देही ।। क्याँ०॥१॥ जरा जरा ग्रागिल ग्रंतरगतिनी, बातड़ी करिये केही ।

"ग्रानंदघन" प्रभु वैद वियोगै, किम जीवै मधुमेही ।। वयाँ०॥२॥

पाठान्तर—मोनइ = मोन (अ, इ, उ)। ग्रागिल = आगल (इ, उ)। क्रिंगि = नीज (अ), किंगि (उ),

शब्दार्थ — क्यारे = कब, किस समय । सुरजन = सगा सम्बन्धी, स्वजन । पार्च = पक्ष में, लगाव में, विना, विरह में । देही = देह (गरीर) चारण करने वाला, ग्रात्मा । जगा जण ग्रागिल = प्रत्येक के ग्रागै । ग्रन्तर-गितनी = मन की । वातडी = वात । मधु मेही = मधु प्रमेह वाला रोगी जिसके मूत्र में शक्कर निकलती है ।

प्रयं—संत पुरुषों से स्नेह करने वाला आस्मस्वरूप मुक्ते कव प्राप्त होगा। अर्थात् मुक्ते आस्म बोव कव होगा। संतजन से स्नेह रखने वाले स्वजन के लिये शरीर का धारण करने वाला देही (आत्मा) को अब जरा भी धैर्य नहीं है। अब विरह को सहन करने की शक्ति नहीं है। मिलन की उत्कट इच्छा बढ़ती ही जाती है।।१॥

हरेक के सामने अपने हृदय की वात कैसे कहूं ? कैसे वता हैं ? आनंदघन जी कहते हैं कि किस प्रकार मधु प्रमेह वाला व्यक्ति विना धैद्य के जीवन यापन नहीं कर सकता है, अर्थात् नहीं जी सकता है, उसी प्रकार आनंद के समूह (आत्म स्वरूप) के वियोग में अब मैं कैसे जी सकता हूं, अर्थात् यह जीवन व्यर्थ है। मुसे तो आत्मस्वरूप प्राप्त परने की उत्कट इच्छा है।। रा। इस पद का अर्थ इस प्रकार से भी हो सकता है -

सुमित अनुभव से कहती है कि संत पुरुषों का स्नेही मेरा आहम स्वरुप मुभे कब प्राप्त होगा? उसके बिना सब सूना सूना है, मुभे कुछ अच्छा नहीं लगता है। उसके बिना में बेचैन हो रही हूं। अत्यन्त ही दुख पा रही हूं। संतों से स्नेह करने वाले मेरे स्वजन (संबंधी) के लिये शरीर धारण करने वाले मेरे प्राण धीरज नहीं रख पाते है अब वियोग सहन नहीं किया जाता है।।१॥

हे अनुभव ! हर व्यक्ति के सामाने अपने मन के दुख को कैसे प्रकट किया। जिस प्रकार मधु प्रमेह से दुखित व्यक्ति वैद्य के विना नहीं जी सकता है, उसी प्रकार आनंद के समूह आत्मस्वरूप स्वामी के विना में कैसे जीवन चला सकती हूं। इस लिये मुभे बता कि मेरे आत्म रूप स्वामी मुभे कैसे प्राप्त होंगे।।२।।

कहते है कि श्री आनंदघनजी से उक्त पद सुनकर जन समुदाय भक्ति विभोर होकर उनका परिचय जानने के लिये, उनकी परम्परा के विपय में प्रश्न करता है। उत्तर में योगीराज आगे का पद कहतें मालूम होते है।

परिचय '६ राग-श्रासाउरी (रामगिरि)

जगत गुरु मेरा, मैं जगत का चेला,

मिट गया वाद विवाद का घेरा ॥ जिल्॥१॥
गुरु के रिधि सिधि सम्पति सारी,

चेरे के घर में खपर श्रंधारी॥ जनारा

शुरु के घर सब जरित जरावा,
चेरे की महिया में छप्पर छावा ।। ज॰।।३॥
गुरु मोहि मारे सबद की लाठी,
चेरे की मित अपराधिन काठी।। ज॰।।४॥
गुरु के घर का मरम म पावा,

श्रकथ कहारेंगी 'श्रानंदघन' बावा ।। जं०।।५।।

पाठान्तर—चेला = चेरा (ग्र, इ)। मिट = मिटि (ग्रा)। गया = गइ (उ)। घेरा = गेरा (इ), भैरा (उ)। रिधि सिधि = रिध सिध (इ), ऋढि सिढि (उ)। खपर = खधर (इ)। छावा = छाया (इ), "चेरे" छावा" = चेरे के घर में काया में छपर छाया (उ)। खपर = निपट (बु, वि), म = मै (ग्र), मौ (उ)। वावा = पाया (वु), भाया (वि)।

शब्दार्थ —वाद विवाद कर्क, शास्त्रार्थ, कहा मुनीं। घेरा क्सीमा। रिधि = ऋद्धि, समृद्धि, सफलता। खपर = मिट्टी का भिक्षा पात्र। मिट्टया = रहने का स्थान, भींपड़ी। जरित जरावा = जड़ाव जड़े हुए। सबद = शब्द, वचन, शास्त्र वचन। काठी = कठिन, मजबूत। ग्रकथ = जो कही नहीं जा सके।

भ्रयं—यह संसार सद्गुणों की शाला भूत है। इस ससार से मुभे कुछ न कुछ शिक्षा सदा मिलती रहती है। इसलिये सम्पूणं. संसार ही को मैं अपना गुरु मानता हूं और अपने को उसका शिष्य। इस प्रकार करने से सर्क वितर्क या वाद विवाद की सारी परिधि ही समाप्त हो जाती है।।१।।

जगत रूपी गुरुं के घर में सब प्रकार की ऋदि सिद्धि और समृद्धि विद्यमान है। वह सद् गुणों व ज्ञान का भंडार है, उसमें कोई कमी नहीं है। लेकिन मुक्त शिष्य की कुटियों में अंबकार (अज्ञान) छाया हुआ है तथा मेरे पास मिट्टी का भिक्षापात्र है।।२॥ गुरु के घर में (संसार में) सब प्रकार के रत्न जंटित आभूपण है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप आभूपण किन्तु मेरी (शिष्य कां) कुटिया में तो मात्र छप्पर ही छाया हुआ है। (मेरे तो कर्मों का आवरण ही आवरण है) ॥३॥

(इस पद में किव ने सामूहिक शक्ति—संघ शक्तिं का वर्णन किया है एवं व्यक्तिगत शक्ति का वर्णन कर निरिममानता का पाठ पढ़ाया है)

गुरू मुभे शब्द रूप (उपदेश) लाठी से ताड़ना करते हैं किन्तु मेरी बुद्धि तो घोर अपराधिनी है व कुण्ठित है। मुभ पर तो उन सदुपदेशों का प्रभाव पडता ही नहीं है।।४॥

आनन्दघन जी कहते हैं कि गुरू के घर का भेद पाना कठिन है अर्थात् उनके जान, उपदेश आदि का मर्म प्राप्त करना कठिन है उसकी तो कथा हो अकथनीय है ॥ ॥

(इस पद को मुनकर जनता की उत्कण्ठा और वढ़ती है और उनका विशेष परिचय (मम्प्रदाय आदि) जानने के लिये प्रश्न करती है। उसके उत्तर में आगे का पद कहते विदित होते हैं)

राग ग्रासाउंरी

(साधो भाई) श्रपना रूप जब देखा।
करता कौन करनी फुनि कैसी, कौन मांगेगो लेखा ।।श्रपना ।।१॥
साधु संगति श्रौर गुरु की, क्रिपा ते मिटि गइ कुल की रेखा।
'श्रानंदघन' अभु परचो पायो, उत्तर गयो दिल भेखा ।।श्रपना०।।२॥

्र पाठान्तर—ग्रयना = साधो माई ग्रयना (उ) । देखा = देख्या (ग्र, आ) । करणी फुनि कैसी = कौन फुनि करणी (ग्रा) । किपा = कृपा (ग्र, उ) । परचो = परचौ (ग्रं, इ, उ) । उतर = उत्तर (इ, उ) ।

शब्दायँ - फुनि = पुन:, फिर । लेखा = हिसाब । रैखा = लकीर, चिन्ह, मर्यादा । परचो = परिचय । उतर गर्यो = दूर हट गया । भेखा = वेप, रूप ।

प्रमें—(हे संज्जनो!) जब मैंने अपने आप का स्वरूप देखा, अपने को पहिचाना अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप को जाना तो प्रश्न हुआ, कर्ता कौन है? करणी (कमं) क्या है? और इसका हिसाव (अंक्छे दुरे कार्य का हिमाव) मांगने वाला कौन है? मैं स्वयं ही कर्ता हूं, मेरे कार्य ही करणी है, और इनका लेखा मांगने वाला भी मैं ही हूं। जैसी करणी (कमं) की है, उसका भोक्ता मैं ही हूं। कोई दूसरा मेरी करणी का हिसाव मांगने वाला नहीं है विहक मैं स्वयं ही हूं। उस मेरी करणी के अनुसार ही मुभे फल मिलता है। श्रीमद राजचन्द्र ने कहा है—परमार्थ से यह जीव (आत्मा) स्वभाव परिणति की अपेक्षा निज स्वरूप का कर्ता है, व्यवहार में द्रव्य कर्म का कर्त्ता है और उपचार से घर नगर आदि का कर्ता है।

मन तो कभी निश्चल रहता नहीं है, कुछ न कुछ (संकल्प, विकल्प) करता ही रहता है किन्तु इन कार्यों में जब तक राग-द्वेप है तब तक बन्च है। राग-द्वेप रहित करणी इस जीव को बन्धन में नहीं फँसा सकती। जिस प्रकार विष खाने से विष का फल और अमृत पीने से अमृत का फल मिलना है, इसमें हिसाब रखने वाले की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार शुभाशुभ करणी के हिसाब की आवश्यकता नहीं है।।१॥

शुद्ध साधुओं की संगति करने से, उनके वचनामृत पान करने से, अर्थात् उनके सदुपदेशों के अनुसार आचरण करने से और गुरू की कृपा से दीर्घ काल के जमे हुये संस्कार नष्ट हो गये। अर्थात् जाति, कुल (वंश), वेप आदि का अभिमान नष्ट हो गया। आनन्द के समूह (आत्मा) से मेरा परिचय हो गया—जान-पहिचान हो गई,—आत्मा को जान लिया, अनुभव कर लिया तो मेरे हृदय से चाह्य रूप का मोह दूर हो गया।

'जाति वेपनो भेद निहं, कह्यो मार्ग जो होय। सावे ते मुक्ती लहे, एमां भेद न कोय।।" (श्रीमद् राजचन्द्र)

## द राग-भन्यासी (सारंग)

भटकूं कहां कहां सिर पटकूं, कहा करूं जन रंजन ।।भवा।।१॥ खंजन हम हम नांहि लगावुं, चाहुं न चित वित भ्रंजन । संजन घट श्रंतर परमातम, सकल हुरित भय भंजन ।।भवा।।२॥ एहि काम-गवि, एहि काम घट, एहि सुघारस मंजन । 'श्रानंदघन' घटवन केहरि, काम मतंगज गंजन ।।भवा।।३॥

पाठास्तर - श्रव = अवर (आ) । भटकूं = भटकों (अ) । पटकूं = पटकों (अ) । करूँ = करों (अ) । हम हम हम हम हम (इ, छ), हम िक्ष (अ) । नाहि = न (इ), निह (उ) । लगावुं = लगावों (अ) । चाहुँ = । जाहों (अ), धाउ (उ) । चितवित = चितवन (व), चितवन (व) । संजन

घट ग्रन्तर = संजन अन्तर (ग्रा)। एहि = एह (इ)। घट = घट घट (ग्र), प्रभु घट (इ), घटे (उ)।

शब्दार्थं—गति = ग्रवलंब, सहारा। निरंजन = दोष रहित। रंजन = प्रसन्न। हम = नेत्र, हिष्ट। चितवित = चित्त (मन) का धन। संजन = सिज्जित। घट ग्रन्तर = ग्रंतःकरए, हृदय। दुरित = पाप। काम गवि = काम-धेनु गाय। काम घट = काम कुंभ। मंजन = स्नान। केहरि = सिंह। मतंगज = मस्त हाथी।

अपने शुद्ध स्वरूप को पहिचानने के पश्चात् कवि के उद्गार-

म्रथं—ज्ञान सारजी महाराज ने इस पद पर टब्जा लिखा है, उन्हीं के आगय अनुसार इसका अर्थ किया जाता है कि कियाज लाभानन्द जी उपनाम आनन्दघन जी कहते हैं—निश्चय नय से कर्म मल रहित मेरा निरंजन आत्मा ही मेरा आराध्यदेव हैं, यह आत्मा ही मेरा स्वामी है। इसका ही मुक्ते अवलंबन है। इसलिये तीर्थादिक में किस लिये भटकूँ, कहाँ कहाँ मस्तक भुकाऊँ, किस किस व्यक्ति को प्रसन्न करता फिक्टँ।।१।।

वन्ध मोख नहि हमरै कवही, नहिं उत्पात बिनासा।
सुद्ध सरूपी हम सब कालै, ज्ञान सार पदवासा॥
(ज्ञानसार जी)

परमात्म स्वरूप को प्रत्यक्ष करने के लिये (देखने के लिये) खंजन पक्षी के नेत्र समान लम्बे सुन्दर नेत्र सुक्षे नहीं चाहिये और न मुक्षे उन नेत्रों को सुन्दर बनाने के लिये जो उनका धन है, ऐसे अंजन की आवश्यकता है क्योंकि समस्त पापों व भयों को दूर करने वाला परमात्मा तो मेरे घट में ( हृदय में ) ही मुशोभित है, चैठा है ॥२॥

यह परमात्पा ही मेरे लिये मनवं च्छित फल देने वाली काम-घेनु है, यही मेरे लिये कामकु भ है, यही अमृतरस का स्नान है। ( मुफ्ते अन्य वस्तुओं की इच्छा क्यों हो ? अर्थात् नहीं है।) आनन्द-धाम आत्मा मेरे शरीर रूपी वन के केसरी सिंह है जो काम. रूपी मदोन्मत्त हाथी का गंजन ( नाश ) (चूर चूर) करने वाला है।

६ राग-कल्यारा

मोकु कोऊ कैसइह तको।

मेरे काम इक प्रान जीवन सुं, ग्रौर मार्च सो बको।। ।।मोकुं।।१।।
हूँ श्रायो प्रभु शररा तुम्हारी, लागत नाहि धकी।
भुजनि उठाइ कहुं ग्रोरनिसों, करहो जुकरिह सकौ ।।मोकुं॥२॥
श्रपराधी चितठानि जगत जन, कोरिक भांति चकौ।
'श्रानन्दघन' प्रभु निहर्च मानो, यह जन रावरो थकौ ।।मोकुं॥३॥

पाठाःतर - गैसइ = कैमे (ग्र. प्र ), कैहसे (उ) । हु तको = हि ककी (अ) । सो = सु (ग्रा) । सुम्हारी = तुहारी (ग्र), तुम्हारे (३), तिहारे (उ)।

नोट—योगिराज जब मबंसंघ परित्याग कर अकेले रहने लगे (विशेष साधना के लिये) तो इनके निपय में लोग शंका करने लगे और तरह तरह की वार्ते फैलाने लगे। यह समाचार इनके कानों तक भी पहुँचे। वे विचार करते है कि संसार की भी क्या विचित्र गित है! उसे दूसरों की वार्ते धनाना (निन्दा करना) ही श्राता है। यह कुछ भी कहें, कुछ भी समभें, युभे तो अपने श्राराध्य से काम है। युभे श्रात्तरिक शांति चाहिये, वह संसार की ओर लक्ष्य देने से नहीं मिलेगी, प्रभु को सर्वस्व वर्षण से ही मिलेगी। इस ही भाव को इस पद में व्यक्त किया है।

भुजिन = भुजिन (इ), भुवजिन (उ) । ग्रोरिन = ग्रोरन (अ), ग्रोरिन (इ. उ) । सों = सुं (आ) । करहोजु = करहुजु (ग्र), करहुज (ग्रा)

मन्दार्य—तको = देखो, समभो। भाव = जो दिल में ग्रावे, इच्छानुसार। बको = कहो। धको = धक्का। चकौ = देखो, ग्राशंका करो। रावरो=
ग्रापका। थको = हो चुका।

श्रर्थ— मुभे कोई कैसी ही हिट से देखो, मुभे तो मेरे जीवन श्राण प्रभु (आराध्य) से काम है, संसार के लोग भले ही मेरे लिये कुछ ही कहा करे ॥१॥

है प्रभो ! हे स्वामी ! मैं आपकी शरण में आ गया हूं। संसार की निन्दा—स्तुति मुक्ते धक्का नहीं दे सकती हैं। मुक्ते भेरे ध्येय से हटा: नहीं सकती हैं। मैं तो हाथ उठाकर (पुकार पुकार कर) और लोगों से कहता हूं कि अपनी शक्ति भर जो कर सकते हो, करो गरेगा

संसार के लोग मुभे अपराधी समभकर भले ही नाना प्रकार की दृष्टि से देखें, मन में करोड़ों तरह की आशंकायें करें, मुभे इसकी जरा भी चिन्ता नहीं है। हे आनन्दधाम प्रभो! आप यह निश्चय मानो कि यह सेवक तो आपही का हो चुका है।।३॥

इस पद का अर्थ सर्वस्व समर्पण करने वाले भक्त की उक्ति के ऊपर किया गया है। किन्तु यदि यह उक्ति सुमित अथवा चेतना की मानें तो भी अर्थ संगत ही रहता है।

श्रातम<sup>े</sup> निवेदंन १० राग-ग्राशावरी. भवधू-क्याःमांगुं:गुन-होना, बै-तो गुन गगन प्रवीनाः।। गाइ-न जानुं बजाइ-न जानूं; नै जाणु सुर मेवारे । रींभ न जानुं रींभाइ न जाणु, नै जाणु पर सेवार ।।।ध्यवः।।१।। वेद न जाणुं कतेव न जाणुं, जाणुं न लक्षरा छन्दा।
तरकवाद विवाद न जाणुं, न जाणुं किर्वि फंदा ।। ग्रं०'1।२।।'
जाप न जाणुं जुग्राव न जाणुं, न जाणुं कथ वाता रे।
भाव न जाणुं भगति न जाणुं, जाणुं न सीरा ताता '।। ग्रं०।।३।।
ग्यान न जाणुं विग्यान न जाणुं, न जाणुं भजनामा।
'ग्रानंदघन' प्रभु के घरि द्वारं, रटनं करूं गुन धामां ।। ग्रं०।।४।।

पाठान्तर—'तो' 'ह' प्रति में नहीं है। गुन गगन = गुन गनन '( मा, का ), गुग गगन ( उ ), गुन गनिन ( च ), सुर = स्वर (इ. छ)। भेवा = देवा (उ) रींक = रीक (मा), रीकाइ = रीकाइ (च) रिकाइ (मार्ड.)। लक्षण = लग्छन (इ), लच्छन (उ)। जाप = आप (मा), जुमान = जुमाप (मा), जवाव (इ), जवाप (उ)। कथवातारे = कथावातारे (आ), कथवात (इ), कथावतारे (उ)। सीरा = सीला (उ)। ग्यान = जानं (म्र)। विग्यान = विज्ञान (म्र)। च = नइ (म्रा), नै (म्र) भज = भजि (मा)। चरि = घर (इ. उ)।

शब्दार्थ — गगन = ग्राकाण । प्रवीन = चतुर । भेषा = भेद । शैं भ = प्रसन्तता । रीं भाड = प्रसन्त करना । पद सेवा = चरग्रसेवा, चारित्रसेवा, स्वरूप सेवा । तरकवाद = न्यायणास्त्र । विचाद = उत्तर प्रस्तुत्तर क्र्रना, भगडना । कवि फन्दा = कथित्वकला, कविता बनाना । सीरा ताता = ठण्डा गरम । विग्यान = ग्रनुभव जन्य जान । भिजनामा = भजन की रीति । गुग्रधामा = गुग्रों के घर ।

प्रथं—इस पद में किव आत्म निवेदन में अपनी लघुता दिखाते हुगे, अपने अहंभाव का निराकरण करते हुगे कहते हैं—हे अवधू ! में गुणहोत क्या मांगूं ? वे प्रभु तो आकाश के समान अनंत गुण वाले चतुर हैं। मांगने के लिये, मैं न तो गायन जानता, न ( प्रसन्न करने के लिये) अनेक वाधन्त्र वजाना जानता, न मैं ५डज, ऋषभ, गांवार, मध्यम, पंचम, घैवत और निपाद बादि स्वरों के मेदों को जानता, न अपनी प्रसन्नना प्रकट करना जानता, न प्रभु को हाव . भाव व वचन चातुरी से प्रसन्न करना जानता और न प्रभु के . चरणों की सेवा विधि ही जानता ॥१॥

चारों वेदों को—(ऋगवेद, यष्ट्रवेंद; सामवेद और अथर्ववेद).
मैं नहीं जानता, शास्त्र ज्ञान मुक्ते नहीं है। न पिगल शास्त्रानुसार हंदों के लक्षण जानता, न्याय शास्त्र व वादिववाद (शास्त्रार्थ) करना भी मैं नहीं जानता, न किवयों जैसी वाक चातुरी मुक्त में है।।रा।

न में जाप करने के नेदों को जानता, (शब्द व मानस दो प्रकार के जाप है)। इनमें नंदावर्त, शंखावर्त, छ वृत्त, हीं वृत्त आदि अनेक मेद हैं। योग की विदियें जानने वाले शरीर के विविध भागों में कमलों की कल्पना कर, उन पर अनेक अक्षर व पद स्थापित कर जाप किया करते हैं। किसको किस भांनि कहना चाहिटे—जवाब देना चाहिये, यह विद्या भी हुक्त में नहीं हैं। न उत्तामोत्तम मनोरंजक कथा-वार्ता कहना ही मुक्ते आता है। भावों को उल्लिख करने की शक्ति भी मुक्ते नहीं हैं। न में भक्तिभाव करना ही जानता हूं। क्या वात किसको शांन कर देगी, कोनसा व्यवहार उत्ते जित कर देगा—यह भी में नहीं जानता ॥३॥

न मुक्ते सामान्यज्ञान है, न विशेष ज्ञान है और न भजन कीर्तन की रीति ही का ज्ञान है। आनन्दघन जी कहते हैं-मैं तो केवल मात्र आनन्द स्वरूप गुणों ने निधान प्रभु के घर के दरवाजे पर ( राग-द्रेप रहित, इच्छा रहित होना ही प्रभु का घर द्वार है ) उनके गुणों का स्मरण करता हूं ॥४॥

सारांश यह है कि मांगने वाले में भी योग्यता होनी चाहिये। किव कहते हैं—उक्त प्रत्येक वात में मुक्तसे अधिक सैकड़ों ही व्यक्ति हैं फिर में मांगने का कैसे साहस करूं। वह प्रभु तो घट घट को जानने वाला है। योग्यता होने पर प्राप्ति में देर नहीं लगती। इसलिए प्रभु से याचना क्या करूं। उसका स्मरण करते हुये अपना कर्तव्य पालन करते रहना ही श्रेष्ठ साधन है। इस ही में सिद्धि है। प्रभु से योग्यता के वल पर कुछ भी मांग न करने से फलाशा वढ़ती है और सफलता फल की आशा त्यागने में है। योगीराज ने निस्वार्थ भाव से प्रभु का स्मरण करते हुये अपने आचरण द्वारा कार्य करने का मार्गदर्शन किया है।

श्रातम निरूप्ण ११ राग-श्राशावरी
श्रवधू नाम हमारा राखै, सोइ परम महारस चाखै।।
ना हम पुरुष ना हम नारी, वरनन भांति हमारी।
जाति न पांति न साधु न साधक, ना हम लघु नहि भारी
।। श्रव०।।१॥

ना हम ताते ना हम सीरे, ना हम दीरघ ना छोटा।
न हम भाई, न हम भगनी, ना हम वाप न घोटा ॥ अव०॥२॥
ना हम मनसा ना हम सबदा, ना हम तन की घरणी।
न हम भेष भेषघर नाहीं, ना हम करता करणी॥ अव०॥३॥
न हम दरसन ना हम फरसन, रस न गंघ कछ नाहीं।
'श्रानन्दघन' चेतन सय सूरित, सेवक जन बिल जाहीं॥ अव०॥४॥

पाठान्तर—सोड = सोई (क), सो सो (ड) । महा बन्द 'इ' प्रति में नहीं है। ना = निह (ड)। मांति = मांत (ड)। जानि न पांति न सानु न सायक = जानि न पांति न सान न सायक, ना हम नष्टु निह मानी (क्रा) जान न पांत न साटक नाहीं, निह हैं लड़ु निह मानी (ड), जानि न पांति न्यादु निह सादुक, ना हम नष्टु ना हम मागे (उ) जानि न पांति न सायन मायक, नहीं हम तष्टु नहीं मानी (क. व. वि), माधु न सायक = सिद्ध नहीं सायक (वेहरापाचीनां की प्रति)। ना = निह (ड)। ना हम बीरय न छोटा = न हम बीरय—छोटा (प्र), नहीं बीरय नहीं छोटा (ड), ना हम बीरय ना हम छोटा (ट)। ना = निह । मार्ड = मगनी (इ)'। मगनी = मार्ड (इ)। ना = नहीं (इ)। ना = नहीं (इ)। वाप = वाद (उ)। घोटा = वेटा (ट)। ना = नहीं (इ)। न = ना (उ), नहीं (ड)। ना = नहीं (इ)। न = ना (उ), नहीं (ड)। ना = नहीं (इ)। करसन = परसरा (प्र), परसन (इ)। वित्त जाहीं = बन्द वाइ (इ)।

गत्वार्य—प्रवच्च = आतमा, चेनन । परम महारम = झानानन्द । वरत = रूग, वर्ण ( द्वाह्मण, क्षिय, वेष्ट्य, जूड़ )। भीति = मेद । भीति = पीक्ति । साधु न मावक = साखु न आवक ( साधना करने वाला गृहस्य ) । घोटा = पुत्र, वेटा । मनमा = मन, कामना, इच्छा । तन की = ग्रागिर की । घरणी = धारण करने वाली भूमि । मेषबर = वेश को धारण करने वाला । दरसन = हब्य वस्तु ।

श्रये—अववू (आत्मा) के नाम से जो हमें पहिचानेगा, यह नाम जो हमारा रखेगा, वही अमृत रस का स्वाद श्राप्त करेगा, मुक्तको शरीर समक्षते वाले तो अनेक विपत्तियाँ सहन करेंगे, मुक्ते आत्मा समक्षते वाले इन सबसे (विपत्तियों से) मुक्त रहेंगे क्योंकि आत्मा आनन्द स्वरूप है, अविनाशी व अनन्त शक्ति सम्पन्न है।

मैं (आत्मा) न पुरुष हूं, न स्त्री । इसका लाल, पीला आदि कोई रंग नहीं है। रंग तो इन्द्रिय गोचर पदार्थों में होता है, यह

(बात्मा) इन्द्रिय ऋगोचर है। अथवा आत्मा का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णों में से कोई वर्ण नहीं है। न छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का ही भेद है। इसकी न कोई जाति है, न पंक्ति है, अर्थात् एकेंद्रिय, हेंद्रिय आदि जाति की पंक्ति में यह नहीं है। न मैं (आत्मा) साधु हूं, न साधना करने वाला हूं। न मैं (आत्मा) छोटा हूं और न मैं भारी हूं।।१।।

मैं (आत्मा) न गरम हूं न ठंडा, न मैं (आत्मा) बड़ा हूं न छोटा, न मैं (आत्मा) किसी का भाई हूं न किसी की बहिन, न मैं बाप हूं और बेटा हूं। (आत्माः) नित्य है—न यह कभी उत्पन्न हुआ, न किसी को उत्पन्न कर सकता है, इसिलये किसी का भाई बहिन, पिता-पुत्र नहीं हो सकता है। यह शरीर ही उत्पन्न होता है, इसिलए इसही के संग यह सब सम्बन्ध घटित होते हैं।।२।।

न मैं (आत्मा) मन से उत्पन्न हूं, न शब्द से। न मैं मन हूं, न शब्द हूं। न मैं (आत्मा) शरीर के धारण करने वाले पंच महाभूत से उत्पन्न हूं कि मेरा (आत्मा का) कोई वेष है, जिससे मैं वेष-धारी कहलाऊँ। न मैं (आत्मा का) कर्ता हूं, न में करणी हूं। जिस करणी (कर्म) को करता हुआ यह जीव दिखाई पड़ता है, परमार्थ से यह उसका कर्ता नहीं है, उपचार से कर्ता है ।।३।।

न मैं (आत्मा) देखा जा सकता हूं, न स्पर्श किया जा सकता हूं। न मेरा (आत्मा का) स्वाद लिया जा सकता है, न मेरी गंध ली जा सकती है। अर्थात् आत्मा के रूप, रस, गंध; स्पर्श कुछ भी नहीं है। आनन्दघन जी कहते हैं—चैतन्य गुण युक्त यह आत्मा (मैं) है, अनंत ज्ञान, दर्शन, आनन्द व वीर्य पुक्त आत्मा है, सत्, चित

भा)। करणी फ़ुनि कैसी = कौन फ़ुनि करणी (श्रा)। क्रिपा = क्रुपा (श्र, अ)। परची = परची (श्र, इ, उ)। उत्तर = उत्तर (इ, उ)।

शब्दार्थ — फुनि — पुनः, फिर । लेखा — हिसाब । रैखा = लकीर, चिन्ह, मर्गादा । परचो = परिचय । उतर गयो = दूर हट गया । भैंखा = वेप, रूप ।

म्रंभ — (हे सज्जनो!) जब मैंने अपने आप का स्वरूप देखा, अपने को पहिचाना अर्थात अपने चैतन्य स्वरूप को जाना तो प्रश्न हुआ, कर्ता कौन है? करणी (कमें) क्या है? और इसका हिसाब (अंच्छे बेरे कार्य का हिसाब) मांगने वाला कौन है? मैं स्वयं ही कर्ता हूं, मेरे कार्य ही करणी है, और इनका लेखा मांगने वाला भी मैं ही हूं। जैसी करणी (कमें) की है, उसका भोक्ता मैं ही हूं। कोई दूसरा मेरी करणी का हिसाव मांगने वाला नहीं है बिल्क मैं स्वयं ही हूं। उस मेरी करणी के अनुसार ही मुक्ते फल मिलता है। श्रीमद राजचन्द्र ने कहा है—परमार्थ से यह जीव (आत्मा) स्वभाव परिणति की अपेक्षा निज स्वरूप का कर्ता है, व्यवहार में द्रव्य कमें का कर्ता है और उपचार से घर नगर आदि का कर्ता है।

मन तो कभी निश्चल रहता नहीं है, कुछ न कुछ (संकल्प, विकल्प) करता ही रहता है किन्तु इन कार्यों में जब तक राग-द्वेष है तब तक बन्ध है। राग-द्वेष रहित करणी इस जीव को बन्धन में नहीं फँसा सकती। जिस प्रकार विष खाने से विष का फल और अमृत पीने से अमृत का फल मिलता है, इसमें हिसाब रखने वाले की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार शुभाशुभ करणी के हिसाब की आवश्यकता नहीं है।।१॥

क्षानन्दघन जी कहते हैं—है प्रभो ! मन मिले विना तो कोई चेलां — शिष्य भी पास नहीं आता है ॥२॥

विशेष—सम्भव है किसी के प्रश्न करने पर कि आप शिष्य करेंगे या नहीं ? योगीराज को इस पद की स्फुरणा हुई हो। तात्पर्य यह है कि जब नक मन के अनुसार योग्यता बाला कोई न मिले, तब नक योगीराज उमे दीक्षित करने की इच्छा नहीं रखते। शिष्य बना कर उमे योग्य न बनाना नो बुरा है और शिष्य बन कर गुरु में श्रद्धा भाव न रखना और भी बुरा है। परस्पर का सम्बन्ध ही फलदायक है।

यि इस पद को चेतना या सुमित की उक्ति मानें तो चेतना कहती है कि जिससे मेरा मन मिल जावे ऐमा मन मिलापी प्रिय मुभे कव प्राप्त होगा अर्थात् मुभे गुद्ध स्वक्ष आत्म-दर्शन कव प्राप्त होगा ? (आगे पद का भी इमी प्रकार अर्थ होगा)

सिद्ध स्वरूप उनके ३१ गुरा १३ राग-ध्राशावरी

श्रनन्त श्ररूपी श्रविगत सासतो हो वासतो वस्तु विचार ।
सहज विलासी हासी निव करें, श्रविनाशी श्रविकार ।।श्रनंत०।१।।
ज्ञानावरणी पंच प्रकार नी, दरसण रा नव भेद ।
वेदनी मोहनी दोइ दोइ जाणीइ रे, श्राउखो चार विछेद ।।श्र०।२।।
शुम श्रशुम दोउ नाउँ वखाणीय, ऊँच नीच दोय गोत ।
विद्यन पंचक निवारी श्राप थी, पंचम गित पित होत ।।श्र०।३।।
जुग पद माची गुण जगदीसना रे, एकत्रीस मित श्राणि ।
श्रवर श्रनन्ता पंरमागम थकी, श्रविरोधी गुण जािण ।।श्र०।४।।

सुन्दर सरूपी सुभग सिरोमणी, सुणि मुभ झातम राम। तनमय तल्लय तसु भजने करी, 'भ्रानन्दघन' पद पाम।।भ्र०।४॥

पाठान्तर—वस्तु = बसत (ग्रा) । दरसण रा = दरसण ना (इ) । जाणीइ रे = जाणिये रे (ग्र, इ) । विछेद = विच्छेद (ग्र) । दोउ नाउं = दोऊ नांव (इ), दोऊ नाम (उ) । ऊँच = उँच (ग्रा) । दोइ = दोय (इ) । निवारी = निरवारी (ग्रा), निरवार्या (उ) । ग्राप थी = ग्रापथी रे (इ, उ) । जुग पद = युग पद (ग्र, उ) । मित = मिन (ग्रा), मन (इ, उ) । श्राणि = श्राण (ग्र) । ग्रिवरोधी=ग्रिहरोधी (ग्र) । सिरोमिण=सिरोमिण रे (ग्र), सिरोमणी रे (इ, उ) । सुण = सण (इ, उ) । भजनै = मजनइ (ग्र), भक्ते (ब. वि.) ।

शब्दार्थ — ग्ररूपी = रूप-रंग रहित, जो इन्द्रियों द्वारा. न जाना न देखा जा सके। ग्रविगत = ग्रनिर्वचनीय, जिसका वर्णन न हो सके। सासती = ग्राइवत, नित्य, ग्रविनाशी। वासती = निवास करते हैं, रहते हैं। सहज विलासी = स्वभाव सुख में रमण 'करते हैं। ग्रविनाशी = विनाश रहित। ग्रविकार = विकार रहित। ग्राउखो = ग्रायुष्य कर्म। विछेद = भेद, प्रकार। विघन = ग्रन्तराय कर्म। पंचम गित = मोक्ष। जुग पद = एक ही क्षण में उत्पन्न ज्ञान, दर्शन। सरूपी = स्वरूप वाला। सुभग = मुन्दर, सुखद। तन्मय = तदाकार, एकाग्र। तल्लय = तल्लीन, निमग्न।

श्रथं —योगीराज आनन्दघन जी कहते हैं — सिद्ध परमात्मा अनन्त है, अरूपी है — इन्द्रियों द्वारा जाने नहीं जा सकते, इनके स्वरूप का पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता। वह शाश्वत है। सिद्ध शिला पर निवास करते हैं। सम्पूर्ण वस्तुओं के तथा उनके भावों के जाता है। सहज मुख में विलास करते हैं। किन्तु कभी किसी से हँसी नहीं करते अर्थात् गम्भीर हैं क्योंकि विकार रहित और अविनाशी है।।१॥

मति, श्रुति, अवधि, ममपर्यंव तथा केवल-इन पाँच प्रकार

के ज्ञान पर आवरण करने वाले कर्म को ज्ञानवरणी कर्म कहते हैं। दर्शनावरणी के नौ भेद हैं—चक्षु दर्शनावरणी, अचक्षु दर्शनावरणी, अविध दर्शनावरणी, निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला तथा स्त्यानगृद्धि। साता, असाता वेदनी से, वेदनी कर्म के दो प्रकार, दर्शन मोह और चारित्र मोह—ये मोहनी कर्म के दो भेद हैं। आयुष्य कर्म चार प्रकार का है—नरकायु, तियंचायु, मनुष्यायु और देवायु॥२॥

शुभाशुभ प्रकार से नाम कर्म के दो भेद, उच्च गोत्र और नीच गोत्र—ये गोत्र कर्म के दो भेद हैं। दान, भोग, उपभोग, लाभ व वीर्य में विघ्न पहुँचाने वाले पाँचों अन्तराय कर्मों को अपने से दूर कर, हटा कर पंचम गित मोक्ष के स्वामी होते है।।।।

जगत के स्वामी सिद्ध भगवान् में एकसाथ एक ही समय में इकतीस गुण होते है। सिद्ध परमात्मा में और भी अनन्त अविरोधी गुण है जिन्हें परमागम से जानना चाहिये। (१) ज्ञानावरण के नाश से अनन्त ज्ञान प्रगट होता है, (२) दर्शनावरण के नाश से अनन्त दर्शन, (३) वेदनीय कर्म के नाश से अन्यावाध सुख-अनन्त सुख, (४) दर्शन मोह कर्म के नाश से क्षायिक सम्यकत्व तथा चारित्र मोह के नाश से स्वरूप रमणता रूप क्षायिक चारित्र प्रकट होता है, (५) नाम कर्म के नाश से अरूपीपन, (६) गोत्रकर्म के नाश से अगुरु लघु गुण प्रकट होता है, (७) अन्तराय कर्म के नाश से अन्तवीर्य शक्ति प्रकट होती है, (६) आयु कर्म के नाश से अक्षय स्थित प्राप्त होती है। इस प्रकार ये इकतीस गुण सिद्धों में प्रकट होते हैं ॥४॥

है सुन्दर व सुखंद वस्तुओं के सिरताज ! शिरोमणीं! मेरे आतम राम सुन, तूं भी एकाग्र भाव और तल्लीनता से सिद्ध भगवान् के गुणगान कर जिससे आनन्ददायक परमानन्द प्राप्त हो, तदाकार वृत्ति से सिद्ध भगवान् में तल्लीन होकर भजन कर, जिससे परमानंद दायक परमपद प्राप्त होवे ॥ ॥

त्रिया प्रलाप

१४

राग-तोड़ी (टोड़ी)

तेरी हूँ तेरी हूँ एतो कहूँ री। इन वातन कू दरेग तू जाने, तो करवत कासी जायं गहूँ री।। ।। तेरी०।। १।।

वेद पुराण कतेव कुरान में, श्रागम निगम कछु न लंहूँ री । चाचरि फोरि सिखाइ सब निकी, मैं तेरे रस रंग रहूँ री ।। ।। तेरी० ।। २ ।।

मेरे तो तूं राजी चहीय, श्रीर के बोल में लाख सहूँ री।
'स्नानन्दघन' प्रभु वेगि मिलो प्यारे, नहिं तो गंग तरंग वहूँ री।।
।। तेरी०।। ३।।

पाठान्तर—तेरी हूँ तेरी हूँ एती कहूँ री = तेरी हूँ एती कहूँ री (ग्रा), तेरी हूँ (ग्र, च)। क्तेच = कितेब (उ)। देरा = दगो (ग्र, इ)। जाने = ज्यने (ग्र, इ)। कतेच = कितेब (उ)। चाचरि = वाचरि (इ), चाचर (उ)। फोरि = कोरी (उ)। सिखाइ = सिखाय (उ)। सब निकी = सवन की (इ, उ), सेवन की (क, व)। निह = नाहीं (ग्र, ग्रा)।

शब्दार्थ — दरेग = कमी फर्क, । कतेव = किताव, धर्मग्रंथ । ग्रागम = जैन धर्म शास्त्र । निगम = ग्रर्थ निर्धारण करने वाले ग्रंथ, वेद । चाचरि =

फाल्गुन में गाया जाने वाला गीत, एक राग । सब निकी = सबने भली भाँति । रस-रंग = प्रेम के रंग में, ग्रानन्द में ।

श्चर्य—सद्बुद्धि कहती है—हे चेतन! तू निश्चयपूर्वक जान कि मैं तेरी ही हूं। मैं अनेक बार कह चुकी हूं कि मैं तेरी हूं, मैं तेरी ही हूं, अब फिर कहती हूं कि मैं तेरी हूं। इस मेरी बात में कुछ कमी या फर्क समभता हो तो मैं काशी जाकर करवत ले सकती हूं॥१॥

हे चेतन ! चारों वेदों, अठारह पुराणों, कुरान, जैनागमों, उपनिपदों में तेरे वर्णन के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाती हूं । वाणी के हेर-फेर से, भाषा परिवर्तन से, वचन चातुरी से गा गा कर इन सब ने भले प्रकार से तेरी ही सेवा के विषय में कहा है। हे चेतन ! मैं तो तेरे ही रस-रंग (प्रेम) में रहती हूं ॥२॥

मुक्ते तो तेरी प्रसन्नता चाहिये (तू मेरे उन्मुख रहे) फिर तो मैं लोगों के लाख लाख ताने, अपशब्द भी सहलूँगी । हे प्रिय आनन्दधाम प्रभो ! तुम्हारा विरह अब सहा नहीं जाता है अतः आप शीघ्र आकर मिलो । देखो, मैं विचार रूपी गंगा के प्रवाह में वही जा रही हूं ॥३॥

प्रिया प्रलाप १५ राग-तोड़ी (टोड़ी)

परम नरम मित श्रौर न भावै। मोहन गुन रोहन गित सोहन, मेरी बेर श्रैसे निठुर लखावै॥ ॥ परम०॥ १॥ चेतन गात मनातें न एते, मूर्ल वशात जगात बढ़ावै।
कोऊ न दूती दलाल वसीठी, पारखी पेम खरीद बगावै॥
॥ परम०॥ २॥
जाँघ उघारि श्रपनी कही एती, विरह जार निसि मोहि सतावै।
एती सुनं 'ग्रानन्दघनं' नावतं, ग्रीर कहा कोऊ हू ड बजावै॥
॥ परम०॥ ३॥

पाठान्तर—ग्रीर = ग्रवर (ग्र)। मार्व = ग्राव (इ)। वेर = वैरन (इ), विरम्म (७)। जगात = लगान (७)। पेम = प्रेम (इ, ७)। खरीद = खरादि (ग्रा), खरीदि (ग्र)। जांघ उघार ग्रपनी कही एती = जांघ उघार प्रणत कहै ऐती (७), जांघ उघार ग्रापनी कही एती (इ)। हुंड = हुंडि (इ, ७)।

शब्दार्थ—ग्रीर = ग्रन्य, माया ममता ग्रादि । गुन रोहन = गुणों में पर्वत के समान । गित = चाल । सोहन = ग्रोभायमान, सुन्दरं । वेर = समय, वार, दफा, मरतवा । लखावै = देखने में ग्राता है । गात = गायन कर । मूल वगात = मूल वस्तु से जगात—महसूल (कर, टैक्स) वढ़ा लेता है । वसीठी = सन्देश वाहक । विरह जार = वियोग की ज्वाला । नावत = नहीं श्राता है । हुंड = डोंडी, डोल ।

भ्रथं—हे गुणवाम ! सुन्दर गति वाले मनमोहन चैतन ! माया, ममता, विभाव, घन, वैभव, कुटुम्व परिवार आदि सांसारिक भोगों का प्रसंग जब उपस्थित होता है तव तो अत्यन्त न इता से उन सब में रस लेने लगते हो—रच-पच जाते हो और मेरी वार— सम; दम, सन्तोप, समता आदि के संमय आप ऐसे निष्ठुर वन जाते हो कि मेरे से आपका कोई सम्बन्ध ही नहीं है ॥१॥

समुति श्रद्धा से कहती है—हे सिख ! मैं चेतन देव की अत्यन्त मधुर शब्दों में विनती करती हूं, गा-गा कर प्रसन्न करने की चेष्टा करती हूं कि आप मूल वस्तु से हांसिल (टैवस) क्यों वढ़ाते हो । कोई ऐसा दूत नहीं है, न कोई ऐसा दलाल है, न कोई ऐसा सन्देश बाहक है जो उन्हें समभा कर परीक्षा पूर्वक प्रेम का सीदा वना देवे ॥२॥

जंघा उघाड़ कर, लज्जा त्याग कर, वेपर्दा होकर अपनी कथा इसलिये कह रही हूं कि मुक्ते आत्म-विरह की ज्वाला रातों सताती रहती है। इतना सुनकर, समक्त कर भी आनन्ददायक, स्वरूपानन्द के स्वामी (चेतन) मेरे पास नहीं आवें तो क्या डोंडी पिटाऊँ? ।।३।।

विरह दशा

१६

राग-तोड़ी (टोड़ी)

विया विरा निस दिन भूक बरीरी।

लहुड़ी वड़ी की कानि मिटाई, द्वार ते श्राँखें कबन टरी री।।
॥ पिया०॥१॥

पट भूषरा तन भौकन उठै, भावै न चोकी जराव जरी री। सिव कमला श्राली सुख न उपावत, कौन गिनत नारी श्रमरी री॥ ॥ पिया०॥ २॥

सास विसास उसास न राखै, निग्व निगोरी भोरै लरी री। श्रौर तबीब न तपति वुभावै, 'श्रोनन्दघन' पीयूष भरी री॥ ॥ पिया०॥३॥

पाठान्तर—पिया = प्रिय (ग्र)। लहुडी = लहुरी (इ)। द्वार = द्वारि कव न = कवहुन (उ)। उठै = उढई (ग्र), ग्रीढ़ै (६), उढ६ (उ)। भावै = भावइ (ग्रा)। सुख न उपावत = सुम उपावत (ग्र)। भोरै = भोर (इ)। पीयूप = पीऊप (इ)।

शब्दार्थ — भूं रू = अत्यन्त सन्तप्त । लहुडी = छोटी । कानि = मर्यादा । टरी = हटना, टलना । पट = वस्त्र । भूषण = गहने, आभूषण, जेवर । भौकन = भभका । भावै न = अच्छी नहीं लगती । जरी = जड़ी हुई । सिव कमला = मोक्ष लक्ष्मी । उपावत = पैदा करती है । अमरी = देवांगना, अप्सरा, सुरवाला । विसास = विश्वास । उसास = श्वासोश्वास जितना । निगोरी = निगोड़ी, दुष्ट । भोर = सवेरे । तबीब = हकीम, वैद्य । तपति = दाह, जलन । पीयूष = अमृत । भरी = भड़ी, वर्ष ।

भ्रथं—सुमित कह रही है—प्राण प्यारे चेतन के बिना दिन-रात मैं संतप्त रहती हूं। छोटी बड़ी सबकी मर्यादा त्यांग कर मेरी आंखें द्वार से कभी हटती ही नहीं। प्रीतम की (चेतन की) प्रतीक्षा में द्वार की ओर टकटकी लगाये रहती हूं। अपने स्वामी का इन्तजार कर रही हूं। कब मेरे स्वामी मेरे घर आवें।।१।।

(इस वियोगावस्था में) वस्त्र आभूषणों और शरीर से भभका उठता है। बहुमूल्य जड़ाऊ चौकी भी अच्छी नहीं लगती है। चेतना कहती है कि हे सिख श्रद्धा! मोक्ष लक्ष्मी से भी मुभे मुख नहीं है। जब मोक्ष लक्ष्मी से ही मुभे मुख नहीं हो सका तो स्वगं की देवांगनायें तो किस गिनती में हैं। उसकी इच्छा कौन करेगा? चेतना कहती है कि मुभे न स्वगं चाहिये, न मोक्ष मुख चाहिये, मुभे तो अपने स्वामी शुद्धात्मा चेतन्य देव से मिलना है।।?।।

सासू एक क्षण का भी विश्वास नहीं करती है और निगोड़ी ननद सबेरे से ही लड़ना आरम्भ कर देती है। अर्थात् ज्ञानी गुरुजन कहते हैं कि हे सुमते! आयु का एक पल का भी विश्वास नहीं है। तू पूर्ण प्रयत्न कर चेतन से मिल क्यों नहीं लेती? बराबर वाली भी प्रभात में यही स्मरण कराती है कि प्रत्येक प्रभात के संग जीवन का एक दिन कम होता है। इस दुर्लंभ मनुष्य भव में ही तू नहीं मिल सकी तो फिर चेतन से कहां मिलाप होगा। अतिशय आनन्द-मय मेरे स्वामी चेतन देन के मिलने से ही मेरे तन की तनत दूर हो सकेगी क्योंकि मेरे तन का ताप तो उनके मिलाप रूप अमृत भरएो (वर्षा) के अतिरिक्त किसी भी हकीम-वैद्य की औपिंध से जाने वाला नहीं है ॥६॥

प्रिया प्रलाप, ललकार १७ राग-तोड़ी (टोड़ी)

ठगोरी, मगोरी, लगोरी, जगोरी।
ममता माया ब्रातम लै मित, ब्रमुमव मेरी ब्रीर दगोरी।। १।।
भ्रात न मात न तात न गात न, जात न बात न लागत गौरी।
मेरे सब दिन दरसन परसन, तान सुधारस पान पगोरी।। २॥
प्राननाथ विछुरे की बेदन, पार न पावुँ पावुँ थगोरी।
'ब्रानन्दघन' प्रभु दरसन ब्रीघट, घाट उतारन नाव मगौरी।। ३॥

पाठान्तर—गात न जात न = जात न गात न (इ, उ)। मेरे = मेरइ (ग्र)। तान = तात (इ)। पार न पावुं पावुं = पांउ न पावुं न पावुं (ग्र, इ)। पार न पाऊं ग्रथाग (वि)। मगीरी = न गोरी (ग्र), मरोरी (उ)।

शब्दार्थं —ठगोरी = ठगने वाली । भगोरी = भाग जावो । लगोरी = पीछे लगी हुई । जगोरी — जागृत हो । भोर = तरफ, पक्ष । दगोरी = दगा, घोला । जात = सजातीय । गात = शरीर, सगोत्रिय । परसण् = स्पर्णं, चरण् छूना, वंदना, नमस्कार । तान = मधुर स्वर । पगोरी = मस्त, तन्मय रहना । थगोरी = शिथिल, थकना । औघट = विपम, कवड़-खावड़ । मगोरी = मंगाती हैं ।

श्चर्य-आत्मा के पीछे अनादि काल से लगे हुये माया, ममता, विभाव रूप परिणामों ! हे धोखा देने वालो ! अत्र भाग जावो, दूर हटो। हे ठगो! तुम्हारी शिक्षा से अव तक यह चेतन (मेरे स्वामी) मेरे (सुमित के) और अनुभव के संग दगा—धोख़ा करते आये है किन्तु अब मैंने तुम्हारे सब प्रपंचों को जान लिया है। अब तुम्हारी दाल यहां नहीं गलेगी, इसलिये तुम सब यहां से चलते बनो ॥१॥

भाई, मां-वाप, पुत्र तथा अपने शरीर की भी वात अच्छी नहीं लगती है। अव तो निश्चि-दिन चेतन पित के दर्शन और उसके स्पर्श की घुन लग रही है। मुभे तो उसी अनुभव—अमृत रस के पान में (पीने में) मग्न रहना है।।२।।

प्रियतम चेतन के वियोग की वेदना का कोई पार नहीं है। वह वेदना थका देने वाली है। योगीराज कहते हैं कि है आनन्दघन प्रभु! आपकी प्राप्ति का मार्ग वड़ा विषम है, इसलिए पार उतरने के लिये घ्यान रूप नौका मांगती हूं। अर्थात् सतत नाम स्मरण की योग्यता प्राप्त हो, जिससे गुण स्मरण सदैव वना रहे।।३।।

प्रिया प्रलाप-विरह वेदना १८ राग-मालवी गौडी (काफ़ी)

वारी हुं बोलंड मीठडें।

तुभ वाजू मुभ ना सरे, सुरिजन, लागत और अनीठडें। वाकाशा

मेरे जीय कुं कल न परत है, विन तेरे मुख दीठडें।

जैम पीयाला पीवत पीवत, लालन सब दिन नीठडें। वाकाशा

पूछूं कौन कहां घुं ढूंढू, किसंकूं भेजूं चीठडे। 'ग्रानंन्दंघनं' प्रभु सेजडी पानुं, भागे ग्रान बसीठडे।।वा०॥३॥क्ष

पाठान्तर — तुभ वाजू मुभ ना सरै = तुभ वाजू मुभ ना सरइ (ग्र), तुभ वोजे निह वीसरै (इ), तुभ वातु मुभ ना सरे (उ i), तुभ वोलें निहं वीसरे रे (उ ii), तुभ विन मज निह सरे रे (व)। मेरे जीय कु कल = मेरे कु जीय जक (उ i), मेरे मन कु जिक (व), मेर मनवा जक (वि)। दीठड़े = मीठड़े (ग्रा)। 'पीवत' ग्रा प्रति में एक ही वार। 'लालन' उ ii में यह शब्द नहीं है। कहाँ थुं = कहां लूं (इ,उii), कहीं (उ i)। पावुं = पायो (उ ii), पयै (इ)। भागे = भागई (ग्रा), भांगे (उ i)।

शब्दार्थ - वोल ने = वोल , वचन । मीठ हे = मीठे । वाजू = प्रत्येक कार्य में सहायक, वाहु, मुजा । सरै = पार पाना, जिसके विना कार्य न चले । सुरिजन = साधु, ग्राचार्य, सम्बन्धी । ग्रनीठ हे = ग्रानिच्छत, खराव, ग्रानिष्ट । कल = चैन, ग्राराम । दीठ हे = देखें । नीठ हे = कठिनाई से, मुश्किल से । कहाँ घुं = कहां तक । चीठ हे = पत्र, चिट्ठी । सेज ही = शय्या । ग्रान = ग्राने वाले, अन्य । वसीठ हे = दूत ।

ग्रर्थ — सुमित कहती है — हे मिर्फ भाषी ! मैं तरे पर वं तेरे मीठे वचनों पर विलहारी हूं। हे ज्ञानघन ! तू ज्ञानं स्वरूप है, इस लिये तेरा प्रत्येक वंचन अत्यन्त मीठा होता है। तेरा यथार्थ स्वरूप जानने के पंचात्, उसे पूर्णतया अनीवरण किये विना चैन नहीं पड़ता। हे स्वजन ! तेरी सहायता के विना मेरा कार्य नहीं चल सकता। तेरे वीतरागं भाव के अतिरिक्त अन्य रागादि भाव मुभे अनिष्ठकारके लगते हैं।।१॥

श्चिं प्रति में यह पद दो स्थानों पर लिखा हुम्रा है। प्रथम पत्र पांच पर २६वां पद है, फिर पत्र १५ पर ७६वां पद है। यहां दोनों ही पदों के पाठ दिये गये हैं। २६वां पद (उ i), ग्रीर ७६वां पद (उ ii) है।

हे आत्म स्वामिन्! तेरा मुख देखे विना मन को चैन नहीं पड़ता है। तेरे प्रेम का प्याला पी-पीकर ही वड़ी कठिनाई से विरह वे सब दिन निकलते हैं, अर्थात् तेरे मिलन की आशा ही आशा में विरह के दिन विताये हैं॥२॥

सुमित फिर कहती है—बहुतों से पूछ-पूछ कर थक चुकी हूं, अब कहां तक पूछती (प्रश्न करती) रहूं, किस ठिकाने (स्थान पर) तलाश करूं, किसके द्वारा पत्र भेजकर खोज करूं? हे आनन्द के घन स्वामी आत्म प्रभु! आपकी असंख्यात प्रदेश रूप शब्या प्राप्त हो जावे तो अन्य दूतों की आवश्यकता ही नहीं रहेगी ॥३॥

विशेष—योगीराज ने इस पद में बहुत बड़े रहस्य का उद् घाटन कर दिया है। उनका कहना है कि गुद्धारम स्वरूप प्रकट करने के लिए गुद्ध स्वरूप के प्रति अथवा जिसने गुद्ध त्वरूप प्रकट कर लिया है उससे अत्यन्त प्रेम (लगात्र) होना चाहिए। इस उत्कृष्ट प्रेम द्वारा ही निज स्वरूप प्रकट होता है। जैन परिभापा में इसे प्रशस्त राग कहते हैं। इस मार्ग पर चलने वाले विरले ही हुए हैं। जैन साधु संस्था के नियम बहुत कठोर हैं। वे पतन की बोर जाते हुए व्यक्ति को बचा लेते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन ने इसीलिए आनन्दघनजी की साघना को कवीर प्रभृति सहजवादी मरिमयों की साधना कहा है। वे नवस्वर सन् १६३८ की वीणा मासिक के पृष्ठ १० में आनन्दघन के अनेक भाव कवोर और उनके अनुरागी दादु रज्जव प्रभृति के भावों से मिलते हैं। प्रियतम कह कर प्रेम के जोर से उन पर अपना अधिकार वताना, यित और सन्यासी की वात तो नहीं है। यह सव मरमी सन्तों की वात है इसी लेख में वे फिर लिखते हैं—"३६वें पद में लोक-लाज छोड़ कर वे नटनागर के साथ मिलना चाहते है। यह भाव भी मरिमया भक्तों का है। ४६वें पद में जो वीर रस की खड़्न-हस्त साधना का रूपक है वह कवीर, दादू आदि के सुरातम (Heroic) अङ्ग के पदों की साधना के साथ खूव मिलता जुलता है। ये बातें अहिंसा परा-यण जैन साधुओं की नहीं हैं," इत्यादि बहुत से विचार उन्होंने व्यक्त किये हैं।

इस मार्ग का सर्वप्रथम दर्शन गणधर गौतम के चरित्र से होता है। उन्हें सहजात्म-स्वरूप परम गुरु भगवान् मह।वीर के शरीर पर अत्यन्त मोह था। भगवान् उन्हें वार वार चेतावनी देते थे, देह के प्रेम से विलग रहने का उपदेश करते थे। गौतम उस प्रंम के आगे मुक्ति की भी अवगणना करते थे। सारे जैन वाङ्गमय में यह प्रसंग अद्भुत व अद्वितीय है। भागवतकार ने गोपी प्रेम को खूव विस्तृत किया पर जैन वाङ्गमय में यह गौतम स्वामी के अद्भुत प्रेम की चेष्टा दिखाई नही पड़ती। जैन साघु संस्था के नियम अत्यन्त कठोर हैं। मनुष्य का पतन होते देर नहीं लगती, इसी हिष्ट को मुख्य रख कर सव नियम वनाये जाने की कल्पना वहुत से करते हैं। जैन साधु संस्था में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को अधिक स्थान नहीं मिला है। इसी कारण सन्त परम्परा अधिक पनप न सकी। आनन्दघन जी, चिदानन्द जी आदि सन्त साधु संस्था से प्रायः दूर ही रहे। जैनियों में अनेक सम्प्रदाय हो चुके। सन्त-मानस वाड़े बन्दी के घेरे में न रहकर लोक कल्याण ही की भावना भाते है। इसलिए साम्प्रदायिक लोगों का सहयोग उन्हें

नहीं मिलता या कम मिलता है। आजकल जैन जनता या तो व।ह्य किया काण्डों में लगी हुई है या कुछ व्यक्ति शुष्क ज्ञान में लीन हैं। महान् तत्त्ववेत्ता श्री देवचन्द्र जी लिखते हैं:—

"द्रव्य किया रुचि जीव डारे, भाव धर्म रुचि हीन। उपदेशक पण तेहवारे, स्यूँ करे जीव नवीनं॥"

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम लक्षणा भक्ति जैनियों में विरल हो गई है। योगीराज आनन्दघन जी ने सव पदों में उसी प्रेम लक्षणा भक्ति का गुणगान किया है।

प्रिया प्रलाप (विरह व्याकुलता) १६ राग-केदारों भोरे लोगा भूरू हुं तुम भल हासा । सलुणे साहब बिन कैसा घर बासा ।।भो०। १।। सेज सुहाली चांदगी राता, फूलड़ी बाड़ी सीतल वाता। सयल सहेली कर सुख हाता, मेरा मन ताता मुक्रा विरहा माता।। ।। मो०।। २।।

फिरि फिरि लोवों घरखी ग्रगासा, तेरा छिपना प्यारे लोक तमासा। उचले तन तइ लोहू मांसा, सांइडा न ग्राव, धरा छोडी निसासा।।।। भो०। ३।।

विरह कुं भावै सो मुभ कीया, खबर न पावूं घिग मेरा जीर्या। हदीया देवूं वतावै कोइ पीया, ग्रावै 'ग्रानन्दघन' करूं घर दीया।।

पाठान्तर—भोरे लोगा = भोरि लगा (उ) । तुम = तुम्ह (ग्रा) । सलूगों = सलुने (ग्र, इ) । साजन = साजगा (ग्रा) । विन = विगा (ग्रा) । कैसा = केहा (इ) । सेजं = सेभ (इ) । सुहाली = सुंहाली (इ, उ) । फूलडी= फूलनी (ग्र, इ), फूलरे (उ) । सयल = सयली (ग्रा) । सुखहाता = सुहाता इ), सुखहीता (उ) । ताता = तांता (ग्रा) । मुग्रा = मुगा (उ) । जोनों = जोनुं (इ, उ) । तेरा = तेरे (ग्र) । छिन्ना = छिन्गों (इ) । उचले = नवले

(इ, उ)। तइ = ने (ग्र), ते (इ, उ)। लोहू = लोही न (इ, उ)। ग्रावै = ग्रावो (ग्र)। छोडी = तजी (ग्र)। निस्ता = निरासा (ग्रा)।

नोट - 'च' प्रति में तीसरे पद का श्रन्तिम चरेगा इन प्रकार है— (i) सांई नावे धण छोड़ि निरासा, (ii) सांईडा न ग्रावे घरणी छोडी निरासां। विरह = विरहा (ग्र)। खवर = खबरि (ग्रा)। पावूं = पावों (ग्रा), पावो (ग्र), पावां (इ)। मेरा = मोरा (उ)। हदीया = दहीवा (इ), देवों (ग्रा)। नोट—'च' प्रति में 'घर' शब्द नहीं है।

शब्दार्य — भूरूं = दुख से ल्याकुल होना, सूखना। हासा = हँसो। घरव.सा = गृह व.स, गृहस्थी। सुहाली = सुह,वनी। फूलडी = फूलों की। व डी = वगीचा, व.ग। सयल = सव। सुख हाता = सुख हाय में करना। त ता = तप्त गरम। मुग्रा = मुद्रां, एक गाली। माता = मतवाला, मोटा। जोवों = देखती हैं। घरणी = घरती। उचले = उवलते हैं, ग्रीटते हैं। सांइडा = स्वामी। घण = स्त्री। घिग = धिक्कार है। जीया = जी, मन, हृदय। हदया देवूं = हृदय से लगाऊं, छाती से चिनकाऊं। घर दीया = घर में दी.क जलाऊं, खुणी मनाऊं।

अर्थ-गुद्ध चेतन स्वरूप आत्मा के विरह में सुमित कहती है हे भोले लोगो ! स्वजन स्नेहीओ ! तुम भले ही मेरी हंसी (मजाक) करो. में तोदु:ख सेट्याकुल हूं। सलाने साजन (चेतन) विना घर में रहना किस काम का ? मेरी गृहस्थी किस काम की ? विना स्वामी के भी गृहस्थी होती है क्या ? ॥१॥

उद्दीपन साधन सब मौजूद है-चांदनी रात है, पुष्प वाटिका है, मंद-मंद शीतल पवन वह रही है,सुन्दर सुहावनी शय्या विछी हुई है, सब सिखयें मन वहलाव (मनोरंजन) तथा स्वस्थ करने का प्रयास कर रही है। चेतनजी के आने के लिए सब आकर्षक सामग्री है। लेकिन उनके न आने से उनके विरह में मतवाला मेरा मन तप्त हो रहा है, जल रहा है ॥२॥ वारंबार पृथ्वी और आकाश को देख रही हूं। हे प्रिय स्वामी ! तेरा नेत्रों से ओफल रहना मेरे लिए दुखदाई हो गया है तथा लोक में में हुँसी मजाक का कारण बन गई हूं। स्वामी के न आने से लोग यह कहकर हुँसी उडाते हैं कि इस स्त्री को पति ने छोड़ दी है, इससे शरीर में रक्त, मांस उत्रलता है और निक्वासा उठती है।।३।।

विरह को जो अच्छा लागा, वैसी दशा उसने मेरी करदी।
मेरी इस अवस्था की आपको खवर भी न पहुँचे तो मेरे जीवन को
धिक्कार है। मेरे प्रियतम का कोई पता ठिकाना वता देवे तो मै
उसे छाती से लगा लूँ। अत्यन्त आनन्द के समूह रूप मेरे स्वामी
(चेतन) आवे तो घर में दीपावली जगाऊँ।।४।।

प्रिया प्रलाप-विरह व्याकुलता २० राग-केदारो मेरे मांभी मजीठी सुण इक बाता, मीठडे लालन विन न रहुं रलियाता॥ मेरे०॥ १॥

रंगत चूनडी दुलडी चीडा, काथ सुपारी हपान का वीडा। मांग सिंदूर संदल करैं पीडा, तन कठडा कोरे विरहा कीडा ॥मेरे०॥ ॥२॥

जहां तहां ढूंढूं ढोलन मीता, पण भोगी भंवर विन सब जग रीता । रयण विहाणी दीहाडा बीता, अजहुं न आये मुभे छेहा दीता ॥मेरे०। ॥३॥

नवरंगी फूंदे भमरली खाटा, चुन चुन कलियां विछावो वाटा ।
रंग रंगोली पहिनुंगी नाठां, आवै 'आनन्द घन' रहै घर घाटा ॥मेर०॥
॥ ४॥

पाठान्तर— मेरे = मारी (इ), मेरो (उ)। मांभी मजीठी = माभीठी (आ) माभ मजेठी (इ), मांभ मभीती (उ)। इक वाता = ए वाता (अ), इक वात (इ), एक वाता (उ)। रिलयाता = रिलयात (इ)। रंगत = रंगित (आ)। चीडा = वीडा (अ)। काय = काथा (उ)। सुपारी = सोपारी (इ.उ)। ह =

अरु (इ.उ) । मांग = माग (आ), मांगि (अ.इ)। संदल = सदल (अ.इ)। करें = करइ (आ)। विरहा = विरह का (उ)। जहाँ तहाँ = जिहाँ तिहाँ (उ)। दूं दूं ः = दुं दुं (आ), दूं द ढंदोलन (अ), दूं दु ढोलन (उ)। पणा = पाणि(आ), पिणा (इ,उ)। मंवर = भमर (इ.उं)। जग रीता = जुंग वरीता (आ)। रयण विहाणी = रयनी विहानी (अ.इ)। दिहाडा = दिहाडी (उ)। आये = आवइ (आ), आए (अ), आवै (इ)। मुक्त = मुहि (इ)। नवरंगी = नवरंग (इ. उ) फू दे = फूंदे(आ)। भमरली = भमरीली (आ)। खाटा = खाट (इ)। विद्यावो = विद्यावुं (इ), विद्याउं (उ)। वाटा = वाट (इ), वाटां (उ)। पिहिनुंगी = पिहनुं चुंगी (अ), हूँ पिहरुंगी (उ,। नाठां = वाटां (अ), वाट - (इ) नाटा (आ)। आवै = आवइ (आ), आवें (अ)। रहै = रहइ (आ), रहे (उ)। घाटा = घाट (इ), थाट (उां) खाटा (उा)।

शब्दार्थ – मांभी = केवट, नाग खेने गाला, मध्यस्य । मजीठी = मजीठ के समान पक्का लाल रंग, परिपक्ष । रिलयाता = प्रसन्नता पूर्णक । चीडा = रंगत गिशेप । काय = कत्या । संदल = चंदन । काठडा = काप्ठ, कठहरा । कोरे = कुरेदत है, छेदता है । पण = पर, परन्तु । भंगर = पीत्र का प्यार का नाम यहाँ पति के अर्थ में प्रयुक्त है । रयण = रैन, रात्री । रीता = शून्य, खाली । विहाणी = वीत गई, समाप्त हो गई । दिहाडा = दिन । वीता = ग्यतीत हो गये, समाप्त हो गये । छेहा = गियोग । दीता = देने गाले । नगरंगी = नो रंग की । फूंदे = फूंदे लगी हुई । भमरली = खाट की वनागट गिशेप । गाटा = आंगन, मार्ग । नाठां = कठनता से प्राप्त । घर घाटा = ठोर ठिकाना ।

अर्थ—समता अनुभव से कहती है—मेरी जीवन नौका को खेने वाले, पक्के सुन्दर लाल वर्ण वाले अनुभव मित्र! यह वात अच्छी तरह से सुनले, मैं अत्यन्त प्रिय प्रीतम (चेतन) के विना प्रसन्न नहीं रह सकती ॥ १॥

यह चूनड़ी व दुलड़ी रंगत के वस्त्र, कत्था, सुपारी और पान का वीड़ा, मांग की सिंदूर और चन्दन का लेप—ये सब मुक्ते पीड़ा (दुख), देते है क्योंकि श्रीर रूपी काठ को विरह रूपी कीड़ा कुरेदता है। (चेतन के वियोग में सब दुखदाई है)।। २।। मित्र की खोज में इघर उधर जाती हूं किंतु आनन्द भोगने वाले स्वामी के विना सब संसार सूना लगता है। अनेक रात्रियें वीत गई और दिन पर दिन बीत गये किन्तु मुक्ते छेह देने वाले-वियोग देने वाले आत्म-भरतार अभी नहीं आये हैं। (अभी तक चेतन से मेरा मिलाप नहीं हो रहा है) ॥ ३॥

नोरंगी फूं दे लगी हुई भरमली खाट विछी हुई है। फूल की किलयें चुन चुन कर आंगन व मार्ग में विछा रखी है। यदि मेरे अनन्दघन स्वामी आ जावें और अपने स्थान प्रर रहें तो में रंग विरंगे वस्त्र पहिरूंगी अर्थात आनन्द में रहूंगी ॥ ४॥

विशेष—इस पद में योगीराज आनन्दघन जी ने यह प्रति-पादन किया है कि जीव वहिरात्म भाव व अन्तरात्म भाव को समभ कर अपनी कषाय परिणती से सावधान रहते हुए कभी कभी अन्त-रात्म भाव भावे तो वह सुघर सकता है। यह स्थिति भी कोई निराशाजनक नहीं है।

प्रिया प्रलाप, सिंख के प्रति २१

राग-गौडी

देखी श्राली नटनागर के सांग।
श्रीरही श्रीर रंग खेलत ताते फीकी लागत मांग।।दे०।।१।।
उरहानी कहा दीज बहुत करि, जीवत है इहि ढांग।
मोहि श्रीर बिच श्रन्तर एतो, जेतो रूपै रांग।।दे०।।।२।।
तन सुधि खोइ घूमत मन ऐसे, मानु कछ बांई भांग।
ऐते पर "श्रानन्दघन" नावत, कहा श्रीर दीजै बांग।।दे०।।३।।

पाठान्तर—के सांग = को संग (इ), को रंग (उ)। और ही = ओ रही (आ) ओरही ओर ही (इ), ओरही श्रोर (उ)। 'इ' प्रति में रंग शब्द नहीं है। ताते = ताते इ (आ), तात (उ)। मांग = अंग (इ), सांग (उ)। उरहानी = ग्रोरहनो (इ), उरहानो (उ)। जीवत = जीजत (ग्रा), जीते (अ), जीयत (उ)। ढांग = ढंग (इ)। मोहि = मोरे (इ)। विच = विचि (आ) चित (ग्र)।

रूपै - रूपइ (उ) रांग = रंग (आ,इ, उ)। सुघि = सुघ (इ, उ)। खोइ = खोय (इ) घूमत = घुमत (आ)। असे = अइसे (अ)। मांनु = मानुक (उ)। नावत = राचत (उ)। कहा "वांग = कहा और दीजइ वांग (आ), और कहा कोउ दीजे वांग (इ), कहो ओर दीजे वांग (उ)।

शब्दार्थ — नट = गा वजाकर और नाना प्रकार के भेष वनाकर खेल तमाशा दिखाने वाला। नागर = नागरिक, शहरी, चतुर। सांग = स्वांग, वेशभूपा, भेप। मांग = इच्छा, स्त्री के मस्तक में केशों के बीच का स्थान। उरहानी = उपालम्ब। ढांग = ढंग। रूपै = चांदी। रांग = कलई, रांगा। वांग = पुकार।

श्रर्थ—सुमित अपनी सिख (श्रद्धा) से कहती है—हे सिख ! भेरे स्वामी चेतन की नागरिक वेशभूषा तो देखो, उस चतुर नट ने नगर निवासी का भेप बनाकर और ही और रंग (विभाव दशा) में वह रम रहा है, अपने स्वरूप की ओर नहीं देखता, इसिलये इसकी (चेतन की) सब माँगे-इच्छायें फीकी लगती हैं अर्थात खराव है ॥१॥

यह मेरा स्वामी सवका मालिक होकर भी इच्छाओं का दास बना हुआ है। इसको वार-बार कहां तक उपालम्ब देती रहूं—कहां तक सावधान—सचेत करती रहूं। यह इसी भाँति जीवन यापन करता है। इसने तो इच्छाओं के ढेर लगा रखे है, जो कैसे पूर्ण होंगे? इसीलिये तो मैं कहती हूं कि मेरे और अन्य (माया) के मध्य इतना अन्तर है जितना चांदी और रांगा में है।।२।।

मुक्तको किसी सांसारिक भोग की आवश्यकता नहीं, मैं तो चैतन को कामना रहित निज स्थान की ओर लेजाने वाली हूं किंतु यह (चेतन) माया के चक्कर में शरीर की सुध-बुध खोकर घूमता है- मस्त होकर फिरता है मानों भांग पीकर मतवाला (पागल) बन गया हो। (जीवात्मा ने अनादि काल से मोह रूपी भांग पी रखी है जिससे चारों ओर संसार में भटक रहा है) इतना समकाने पर भी यह नटनागर (चेतन) अपने स्वभाव में नहीं आतां है तो फिर इसे जागृत करने के लिए किस प्रकार से बांग दी जावे – किस प्रकार पुरजोर सचेत किया जावे।

प्रिया प्रलाप, मिलनोत्कंठा २२ राग-सोरठ
मौने मिलावोरे कोइ कंचन वरगो नाह।

ग्रंजन रेख न ग्रांखड़ी भावे, मंजन सिर पड़ो दाह ॥मौ०॥१॥
कोग्ग सयग जाणे पर मननी वेदन विरह ग्रथाह।

थर थर देहड़ी धूजै म्हारी, जिम वानर भरमाह ॥मौ०॥२॥
कोइ देह न गेह न नेह न रेह न, भावे न दुहड़ा गाह।

'ग्रानन्दघन' वाल्हा बाहड़ी साहवा निस दिन धरू उमाह ॥मौ०॥३।

पाठान्तर—मीने = मोनइ (आ), मुने (उ)। 'इ', 'उ', प्रतियों में 'मिलाओ' के आगे 'रे' नहीं है। अन्तिम शब्द नाह के आगे 'रे' है। कोइ = कोई (अ); 'इ', 'उ' प्रतियों में इस स्थान पर 'कोई' शब्द नहीं है। बिल्क 'मौने' शब्द के आगे 'कोय' शब्द है। रेख = रेखा (इ,उ)। 'न' शब्द 'अ' प्रति में नहीं है। आँखड़ी = आंख न (इ), आंखड़ी न (उ)। 'भावे' शब्द के आगें 'आ' प्रति में 'मोनइ' और है। वाह = थाह (अ), वाह रे (इ), वाहरे। सयण=प्रजन (अ), सैन (इ), सेण (उ)। जाणे = जाणाइ (आ)। थरथर प्रच महारी = थरथर थरथर देहड़ी घूजइ माहरी (आ)। थरथर घूजे देहड़ी मारी। (इ) भरमाह = भरमाह रे(इ, उ)। कोइ ''रेह न = देह न नेह न गेह न रेह न(इ), कोइ देह न गेह न, रेह न नेह न (अ. उ)। मावे = भावइ (आ)। दुहड़ा गाह = दूहा गाह (इ), ही यह मांहि (उ)। वाल्हा=त्राला (अ), वालो (इ), बाहलो

(उ)। वाहडी = वांहिडी (अ), वांहडी (इ, उ); साहवा = साहिवा (अ)। भालै (इ)। उमाह = उच्छाह (अ), उछाह (इ), उमाहि रे (उ)।

शब्दार्थ-कंचन = सोना, स्वर्ण । वरणो = रंग वाला । मंजन = स्नान । दाह = जलन । भर माह = माघ मास में, खूव ठंड में । गेह = घर । दुहडा = दोहा छंद । वान्हा = प्रिय । वाहडी = हाथ । साहवा = पडकना, सम्भालना ।

म्रथं — अपने स्वामी (चेतन) के विरह से व्याकुल सुमति कहती है कि कुन्दन (सवसे विद्या स्वर्ण का रूप) के समान सुन्दर वर्ण वाले मेरे स्वामी से मुभे कोई मिला देवे तो में उसका अत्यन्त आभार मानूंगी। स्वामी (चेतन) के विरह में आंखों में काजल की रेखा नहीं सुहाती है। (काजल) आंखों में आंसुओं से ठहरता ही नहीं है। स्नान के सिर तो आग लगे, अर्थात् स्नान जलन पैदा करता है।।१।।

विरह की पीड़ा (दुख) अगाध होती है। कोई सज्जन ही (मुक्त भोगी) दूसरे के दिल की व्यथा को समक्त सकता है। जिस प्रकार माघ मास के शीत में वन्दर कांपते हैं उसी प्रकार मैं भी कांपती हूं।।२।।

मुभे अपनी देह की, घर की, स्नेही जनों की कुछ भी सुध-बुध नहीं है और न मुभे दोहे और गाथा आदि काव्य ही अच्छे लगते हैं। अति आनन्द के समूह प्राण प्रिय प्रभु मेरा हाथ सम्भाल लें— पकड़ लें तो मेरी सब व्यथा जाती रहे और उत्साह व आनन्दपूर्वक मेरे रात दिन व्यतीत होवें और मन में अत्यन्त उल्लास बना रहे।।३।। मोने माहरा माधविया नै मिलवानो कोड ।। मोने माहरा नाहिलया नै मिलवानो कोड ।। हूँ राखु मांडी कोई बीजो मोने विलगो फोड ।। मो० ।। १ ।। मोहिनयां नाहिलया पाखें माहरे, जग सिव उजड जोड । मीठा बोला मनगमता नाहज विरा, तन मेन थांग्री चोड ।। मोठ ।।२।।

काई ढौलियो खाट पछ डो तेलाई, भावे न रेसम सीड़ । भ्रवर सबै माहरे भला भलेरा, माहरे 'भ्रानंदघन' सिर मोड़।। मो०।। ३॥

पाठान्तर—मोने = माहरा नाहरा (उ)। माधिवया = नाहिलिया (अ उ)। 'उ' प्रति में 'राखु' शब्द नहीं है। बीजो = बीज ओ (आ) बीज़ (अ), 'उ' प्रति में यह शब्द नहीं है। मोने = मोनई (आ), मौनो (इ), मुने (उ)। विलगो बलगो (आ), विलगै (इ)। नाहलीया = नाहली (अ)। माहरे = माहरइ (आ) मारै (इ)। नाहज=नाहजी (अ) नाहजी (उ)। विग्रु=वीग्रु (अ,इ) विग्र=(इ), वग्रु (उ)। थाऔ=थाअ (इ), थाये (उ, ब, वि)। ढोलियो=ढोलाओ (अ)। पछेडी = पसेडी )अ), पछेवडी (उ)। माहरे = माहरइ (आ), महारे (अ)। भला = भलारे (अ उ), 'इ' प्रति में यह शब्द नहीं है। माहरे = महारे (अ), 'इ' प्रति में यह शब्द नहीं है।

शब्दार्थं—नाहिलियाने = नाथ से, स्वामी से। कोड = चाव, उत्साह।
मांडी = लिखकर, बनाकर। बीजो = दूसरा। विलंगो = पृथक होना, श्रंलग
होना। फोड = फग्डा। नाहज = स्वामी। पाखै = पास। उजड जोड =
उजाड तुल्य, सूनसान समान। चोड = पीडा। ढोलियो = पलंग। पछेडी =
पछेवडी, ओढने का वस्त्र, पीछे का पर्दा। तलाई = नीचे बिछाने की गही।

सौड = ओढने की रुई भरी हुई मोटी रजाई। ग्रवर = अन्य, और, दूसरा। भला भलेरा = भले ही भले है। सिरमौड = सिरमोर, सिर का मुकुट।

अर्थ — विरह अवस्था में विरहणी को कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। विरहणी सुमती कहती है — मुभे मेरे स्वामी से मिलने का वड़ा चाव है। 'उत्कट अभिलापा हैं'। मैंने अपने द्वार पर लिख रखा है कि कोई भी दूसरा भंभट डालने वाला मेरे से दूर रहे, अर्थात आत्मस्वरूप सिवा में दूसरी वातों से अलग हूं — अन्य सब वातें मुभे भंभट भरी लगती है। अतः विभाव की वातें करने वाले मेरे से अलग रहें।।।।। रूच १९००

मनमोहन पतिदेव के मेरे पास न होने पर सब संसार उजाड़ (सूनसान) जंगल के समान लगता है। मिष्टभाषी मन भावन (चेतन) के विना मेरे तन-मन दोनों को चोट लगती है—पीड़ा होती है।।।।

पलंग, खाट, पृछेवड़ी, विछावृनी (ग्रम्या) तथा रेशम की सोड कुछ भी (उपभोग सामग्री) अच्छे नहीं लगते है। मेरे लिये सब ही वस्तुयें, सब ही जीव सब ही मनुष्य भले ही भले हैं किन्तु आनंदधन चेतन ही मेरे सिरमोर है अर्थात् सर्वीपरि हैं ॥३॥

प्रिया प्रलाप विरहवेदन

२४

,राग-कान्हरो

दरसन प्रांन जीवन मोहि दोजै। विन दरसन मोहि कल न परत है, तलफि तलिफ तन छोजै।। दर०।।१।।

कहा कहुं कछु कहत न म्रावत, बिन सइयां व्युं जीजै। सोहु खाइ सिख काहु मनावो म्रापही म्राप पतीजे।।वर०।। २।। द्यौर द्यौरानी सास जिठानी, युंही सबै मिल खीजै। "म्रानंदघन" विन प्रान न रहे छिन, कोरि जतन जो कीजे।।वर०।। . पाठान्तर—मोहि = मुहि (ड)। तलिफ = तलफ (इ उ)। जीजै = जीजइ (म्र), कीजै (उ)। सोहुं=सौहुं (म्रा), सोहूँ (उ)। सौहुं.......मनावो = सम खावो सिख जाय मनावो (इ), सोहुं खाइ सिख काहि मनाऊं (अ), सोहूँ खाइ सिख काहि मनाऊं (अ), सोहूँ खाइ सिख काहि मनाऊं (अ), सोहूँ खाइ सिख काहू मनावे (इ)। पतीजै = पतीजइ (अ)। युंही सबै = यु सबिह (इ), युंहि सब हो (उ)। मिल खीजै = मिलि खीजइ (अ)। रहै = रहइ (आ) कोरि = कोर (इ उ), कोडी (ब), कोड (वि)। जो कीजै = जो कीजइ (अ), कर लीजै (इ)।

शब्दार्थ—कल = चैन, आराम । सङ्यां चपित, स्वामी । सोहु = सौंगन्ध, शपथ । पतीजै = विश्वास करना । सीजै=क्रोध करना, भुञ्भलाना । छिन = क्षराभर । कोरि = कोटि, करोड ।

अर्थ- हे जीवनधन ! मुभे शीघ्र दर्शन दीजिये। आपके दर्शन बिना (देखेविना) मुभे तिनक भी चैन नहीं पड़ता है। तड़फ तड़फ कर मेरा शरीर क्षीण होता जा रहा है।।१॥

पित के बिना स्त्री किस तरह जी सकती है, यह भेद मैं किससे कहूं। मैं तो समभाव में रहने वाली हूं; मुभे कहने का ढंग—वात बनाने की चतुराई भी नहीं है। हे सिख (श्रद्धा) अब मैं सौंगंध खाकर किसे मनावुं! वे (मेरे स्वामी चेतन) मेरे पास कभी आते ही नहीं। पहिले अनेक बार सौंगन्ध खाकर मना चुकी हूं, बार बार कह चुकी कि आपके बिना मेरा जीवन दूभर (कठिन) है। पर मेरे कहने से उन्हें विश्वास ही नहीं होता, उन्हें तो स्वयं अपने आप ही पर विश्वास होता दिखाई पड़ता है।।।।

समता की यह हालत देखकर मैत्री भावनारूपी सासु, वैराग्य-रूपी देवर, ऋजुता रूपी देवरानी और प्रमोद भावना रूपी जिठानी सब मिलकर समभाती हैं, समभाने का कुछ प्रभाव न होने पर कुछ नाराज (क्रोधित) भी होती है। इनका नाराज होना व्यर्थ है। ये

## [ 44 ]

लोग चाहे करोड़ों उपाय करें मेरे प्राण तो स्वामीनाथ आनंदघन के , विना अब नहीं रह सकते ॥३॥

विशेष—किव ने यहाँ वहुत महत्वपूणं वात कही है। किव की चेतना शक्ति आत्म-दर्शन के लिये अत्यन्त व्याकुल है। वह मैत्री प्रमोद आदि भावनायों भाते हैं अर्थात् भावनाओं में लीन रहते हैं, नाना प्रकार की समस्याओं से शरीर को सुखा डाला है, संसार से विरक्त हैं। रात दिन अनेक उपाय करने पर भी चैतन्यदेव से साक्षात्कार नहीं होता है। तब किव प्रतिज्ञा करते हैं चाहे प्राण रहे या न रहे मुझे निरंजन देव का साक्षात्कार करना ही है।

किया है—त्याग, वैराग्य, व मैत्री प्रमोद आदि भावनायें आत्म-दर्शन के साधन अवश्य हैं परन्तु इन्हीं में अटक जानेवाला आतम साक्षात्कार नहीं कर सकता। श्रीमद राजचंदजी ने इसी तत्व को इस प्रकार कहा है—

"वैराग्यादि सफल तो, जो सह भ्रातम ज्ञान । तेमज भ्रातम ज्ञान नी, प्राप्ति तर्णां निदान ॥ ६ ॥ त्याग विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान । भ्रटके त्याग विरागमांतो भूले निज भान ॥ ७ ॥ ज्यां ज्यां जे जे योग्य छै, तहां समभवुं, नेह । त्यां त्यां ते ते म्राचरे, भ्रात्मार्थी जन भ्रोह ॥=॥ (भ्रात्मसिद्धि)

प्रिय प्रलाप विरह व्यथा २५ राग-कानडो

करेजा रेजा रेजा । साजि सिगार बणाइ ग्राम्परा, गई तब सूनी सेजा ॥करे०॥१॥ विरह व्यथा कुछ श्रंसी व्यापत्, मानु कोई मारत नेजा। श्रंतक श्रंत कहालुं लेगो, चाहै जीव तो लेजा।। करें ।। २॥ कोकिल काम चंद्र चतादिक, दैन ममत है जेजा। नावल नागर "श्रानंद्घन" प्यारे, श्राइ श्रमित सुख देजा।। करें ०।। ३॥

पाठान्तर—रेजा शब्द 'आ' प्रति में दो वार ही है। अन्य प्रतियों में पाठ है—करे जारे जारे जारे जारे जा । विणाइ = विणाई (अ), वनाये (इ)। वामूपेण = ग्रभूपेण (अ), भूपेण (इ)। सेजा = सेज्या (इ) लैगो = लेखो (उ)। जाहे = जाहि (उ)। तो = तु (इ)। चूतादिक = आगंदिक (उं) भूतादिक (उंं।)। दैन — जेजा = वे तन मत हैं जेजां (इ), दैन मतन है लेजां (उं) प्यारे = प्यारो (उ)। श्राइ = आय (इ) आई (उ)।

शृद्धार्य —रेजा रेजा = दुकड़े दुकडे। साजि = सज कर, घारण कर। सेजा = शय्या। नेजा = भाला। अंतक = यमराज। घूतादिक = आग्रुफलादि। जेजा = जो जो। नवल = नवीन, सुन्दर, युवा। अभित = अपार।

श्रर्थ—समता सब श्रुंगार कर और आभूषणों से सुज कर (बाह्याडंबर किया रूप श्रुंगार कर) चेतृनराज के पास गई। उन्हें सम भाव रूप श्रुट्या पर नहीं देखा और ममृता के पास गया जानकर उसका कलेजा दुकड़े दुकड़े हो गया।।१॥

इससे उसको (समता को) चेतनराज के विरह का दुःख इस प्रकार हुआ मानों कोई भाला मार रहा हो। अपने स्वामी चेतन की अनुपस्थिति में भी समता उन्हें उद्देश्य कर कहती है—हे स्वामी! मेरे तो आदि, मध्य और अंत सब आप ही हो, इसलिये हे यमराज! मेरा कहाँ तक अन्त लोगे, भले ही तुम मेरे प्राण ले लो किन्तु मुक्ते दर्शन दो।।।

तुम्हें सुख देने वाली कोयल की क्रूक, कामदेव, चन्द्रमा की चांदनी आम्र मंजरी तथा अन्य जो भी वस्तुयें आपको आनंदपूद हैं

## [ キキ ウ

(मानव भव स्वस्थ शरीर, उत्तमकुल, आत्मोन्नति वाला धर्म आदि उद्दीपन विभाव) उन सहित आकर हे नवल नागर आनंद्रघन चेतन-राज, मभे सुख प्रदान करो। तुम् यहं मतं समभो कि मेरे पास आने से तुम्हें ये सब वस्तुयें त्यागनी पड़ेंगी। मैं ती केवल मायावनी मंमता से तुम्हारा छुटकारा चाहती हूं ॥३॥

प्रिया प्रलाप-विरह व्यथा २६

राग-कान्हडो

पिया बिन सुधि बुधि भूली हो। म्रांबि लगाइ दुखे महल के, भरोब भूली हो ।।पिया० ।।१।। हैसती तबेंहु विरानियां, देंखी तन मन छीज्यो ही। समुक्ती तब एती कही, कीई नेह न कीज्यो हो ॥ पिया० ॥२॥ प्रीतमें प्रान पती बिना, प्रिया कैसे जीवें हो। प्रान-पवन विरहा-दशा, भुग्र गिन पोवै हो ॥ पिया॰ ॥३॥ सीतलं पंखां कुमकुमा, चन्दन कहां लावे हो। श्रनल न विरहानल यहै, तन ताप बठांवै हो ॥ पिया० ॥४॥ फागुन चाचरि इक निसा, होरी सिरगानी हो । मेरे मन सब दिन जरे, तन खाक उड़ानी हो ॥पिया०॥४॥ समता महल विराज है, वागी रस द्वेजै हो। बलि जाउ 'ग्रानन्दंघन' प्रभु, ऐसे निठुंर ह्व जै हो ॥पिया०॥६॥

पाठान्तर—विन = विनु (अ-इ)। आंखि = आंख (इ-उ) लगाइ=लगाय (इ-उ)। महल के ≈ महल कइ (ग्र), महिल कइ (इ-उ)। तबहु=तबह (ओ)। समुक्ति = समका (उ)। एती = असी (इ-उ)। प्रीतम् = पीतम (आ)। प्रिया = पिया (आ अ), श्रीया (इ), पीया (उ) । भुवंगनि भुयंगिनी (अ), भूयंगम (इ-उ)। सीतल = शीतल (अ) कहा लावै = कहां लावइ (अ) । विरहानल = विरहान है (उ)। चाचरि = चाचर (इ-उ)। सिरुगानी=सिरगानी (आ), सिरनानी (उ)।

खाक = खाख (इ-उ) । महरु≔निहले (प्र) । विराज≕त्रराज (आ) । द्वैजै≕ह्वै जैं (त्रा), रेजा हो (उ) (जानसार जी महाराज टव्वाकार) । ह्वैजै≕हैजा (उ) । 'इ' प्रति में अंतिम पंक्तियां नहीं है ।

'शब्दार्थ-हँसती=मजाक करती थीं। विरानियां=अन्य स्त्रियें, सौतें छीज्यो हो=क्षीण हो गया। प्रागणवन=प्रागण वायु। भुअंगनी=सर्पणी। कुमकुमा=गुलावजल आदि सुगंधित जल से भरापात्र। श्रनल=प्रग्नि। विरहाग्नि=जुदाई की श्राग। चाचरि=चाचर नाम गायन गाने वाले।

प्रयं—(विरहावस्था में होने वाली दशा का वर्णन) समता कहती है-हे श्रद्धे ! चेतन पित विना अपनी सुध बुध भूल गई हूं। अपनी सार संभाल रखना भी भूल गई हूं। पित वियोग से दुखित में अपने दुख रूपी महल से अपने स्वामी को देखने के लिये दृष्टि लगाये हूं परन्तु वे दिखाई नहीं देते हैं इसलिये भरोखे (बरामदे) में जाकर देखती हूं अर्थात् पित वियोग रूपी दुःख महल के भरोखे से टकटकी लगाये भूल रही हूं।।१।।

श्री ज्ञान सारजी महाराज ने इस पद पर टब्वा (टीका) ि खा है, उसके अनुसार अर्थ सारांश में इस प्रकार है—

सुमती अपनी सखी श्रद्धा से कहती है—'हे सखी' चेतनराम मेरे स्वामी अगुद्धोपयोगी आत्मा से मुक्ते मिलना उचित है या नहीं? इस धार्मिक विचार से में रहित हो गई। यहां पर यह प्रश्न होता है कि जिसका नाम ही 'समता' है अथवा जो सुमित है वह अपने को कैसे भूल गई? जव वही भूल जातों है तो उसका नाम 'समता' युक्ति युक्त नहीं कहा जा सकता? इसका स्पष्टीकरण करते हुये वे कहते हैं—अगुद्धोपयोगी अत्मा के संयोग से में सुबुद्धि की कुबुद्धि हो गई। पित के विदेश गमन रूप वियोग दुःख के करोखे में अश्रुपात करके उसमें स्नान कर लिया। विदेश गमन यहाँ पर परपरिणित रमण, चिन्तवन समक्ता चाहिये। अगुद्धोपयोग में प्रवर्तन

को अश्रुपात समभना चाहिये। अश्रुपान में मै भूल गई अर्थात् इतने अश्रु गिरे कि आँसुओं से मैं भूलसी पड़ी अन्यथा सुबुद्धि को रोने से क्या वास्ता ? किन्तु गुद्धोपयोगी कात्मा के वियोग में मैं अपनी सुध बुच भूल गई।

टब्बाकार का यह अर्थ विचार ने जैसा है। यहां सुमित पित के साथ एकाकार होकर अपनी सुघ बुध खो बैठती है। पित पर पिर-पित में रमण करते हं। अशुद्ध उपयोग में प्रवर्तन करते हैं इससे सुमित दु:ख महल के भरोखे में भूलकर अपने आपको भूल जाती है।।?।।

हे श्रद्धे! पहिले जव मुभे शुद्ध चेतन रूप पति का वियोग नहीं था, उस समय में यह नहीं जानती थी कि वियोग का दुःख कितना होता है। इसलिये पति वियोग से दुखित अन्य स्त्रियों को तन से क्षीण (दुवली) तथा मन से दुखित होती देखकर में उनकी हंसी (मजाक) करती थी किन्तु अब शुद्धात्मा के वियोग-दुःख को समभी तो इतना हो वचन मुख से निकला—"कोई कभी भी प्रेम न करो।।।।

सुमित कहती है कि मेरे प्राणपित शुद्ध चेतन वे विना मैं कैसे जी सकती हूं। वार्जव मार्जव आदि दस यित धर्म रूपी प्राणवायु को विरहावस्था रूपी सर्पणी पीती है। ऐसी अवस्था में शुद्ध चेतन के वियोग में सुमित के प्राण कैसे रह सकते ? क्योंकि सुमित शुद्ध चेतन विना कहां से आ सकती है।।३॥

हे सखी! शीत जोपचार, खस का पंखा, सुगन्वित गुलाब-केवडा जल, वावना चंदन आदि क्यों लगाती है। अरे भोली, यह दाह जबर नहीं है। यह तो मदन जबर है। ये पंखे आदि सुगन्धित शीतल पदार्थ तो प्रीतम की याद दिलाने वाले हैं। इसलिये ये तो काम ज्वर की वृद्धि के हेतु है। इसलिये हे सिख इनका प्रयोग न कर ॥॥।

योगीराज ने इस पद में अद्भुत प्रकार से व्यवहार हिष्ट द्वारा निश्चयका पोषण किया है। श्री ज्ञानसार जी महाराज ने इस पद के टब्बे (टीका) में शीतलोपचार को यथाप्रवृत्तिकरण में गिना है और ये उपचार चालू रहे तो अपूर्वकरण भी आवेगा। तात्पर्य यह है कि अन्तिम यथाप्रवृत्तिकरण तक विरह काल है उसके पीछे नियम से अपूर्वकरण आता है जिसमें राग द्वेप की ग्रंथी का भेद हो जाता है और अनवृत्तिकरण में आत्मा का मिलाप हो जाता है। आत्मा का मिलाप ही सम्यक्तव प्राप्ति है। फिर चारित्रका विरह होता है।।४।।

फाल्गुन के मस्त महीने में चाचर गाने वाले एक रात्रि में होली जलाते हैं किन्तु मेरे मन में तो प्रतिदिन होली जलती रहती है और शरीर की राख (खाक) उडतो रहती है ॥५॥

श्री ज्ञानसारजी महाराज अपने टब्बे में कहते हैं — सुमित कहती है — हे चाचर गाने वालो ! तुम्हारे तो होली जलाने . का दिखावा मात्र है, पर पित विरह में मेरे तो रातदिन होली सुलगती है। इसलिये शुद्ध स्वरूप चितवन रूप मेरा शरीर जलकरराख हो गया है और वह राख भी उड़ गई, रही नहीं, अर्थात् सुमित की कुमित हो गई।

टब्बाकारने 'राख भी नहीं रहीं' यह अर्थ करके रूपक को सांगोपांग बना दिया है।

सुमित कह रही है-हे आनंदघन प्रभु आप ऐसे निष्ठुर मत होनो, मेरे महल में बिराजकर-बैठकर अपनी वाणी का रस तो देनो अर्थात् मुक्त से बातचीत तो कीजिये। मैं आप की बलिहारी जाती हूं—में अपने आपको समर्पण करती हूं ॥६॥

छठे पद का अर्थ श्रीज्ञानसारजी महाराज ने इस प्रकार किया है—''सुमित कहती है - 'हे श्रद्धा मुंक मित के महल में शुद्धो-पयोगी आत्माराम आकर विराजेंगे तब में मित की सुमित हो जाऊंगी। जब तक मैं मित थी मेरा चतुर्गति रूप महल था और जब में मित से सुमित हुई तव शुद्ध स्यादवाद यतानुनायी चिरित्र द्वार प्रवेश मृक्ति महल विराजमान एक अरिहंत, दूसरे सिद्ध, उनमें यहां वेवल अरिहंत का कथन है। उन अरिहंत की वाणी रस के रेजा अर्थात् तरंग ऐसे आनंद के समूह प्रभु की में वलइयां लेती हूं। अब आप पहले जैमा वर्णन किया वैसे अशुद्धोपयोगी मत होनाक्षः। ग्रत्यन्त विरह, तथा प्रिय मिलन की पृच्छा व ज्योतिपी का धैर्यदान साखी— २७ राग-गोडी-जर्कड़ी

राशि शशि ताराकला, जोसी जोइन जोस।
रमता समता कव मिलै, मागै विरहा सोस।।
पिय विशा कोन मिटावेरे, विरह व्यथा असराल।।
नींद निमाशी आंखितेंरे, नाठी मुक्त दुख देख।
दीपक सिर डोले खडो प्यारे, तन थिर धरे न

सिस सराग तारा जगीरे, विनगी दामिनि तेग।
रयनी दयन मतें दगो, मयगा सयगाविणु वेग।।पिया०।।२।।
तन पंजर भूरइ पर्योरे, उडि न सके जिउ हंस।
विरहानल जाला जली प्यारे पंख मूल निरवंश।।पिया०।।३॥
उसास सासै वढाउ कौरे, वाद वदै निसि रांड।
न सिटे उसासा मनी प्यारे, हटकै न रयगो मांड
।।पिया०।।४॥

निमेष ॥पिया०॥१॥

<sup>#</sup> टब्बाकार श्री ज्ञानसार जी महाराज का यह टब्बा श्री अगरचंद जी नाहटा द्वारा संपादित 'ज्ञानसार पदावली' के पृष्ठ स. २३६ में है। उनका यह टब्बा श्री आनंदघन जी के केवल चोदह ही पदों पर मिलता है। क्या ही अच्छा होता यदि अधिक पर मिलता।

इह विवि छैं ने घर घर्गारे, उससूं रहै उदास।
हर विवि म्राइ पूरी करें, 'म्रानन्दघन" प्रभु
म्रास।।पिया०॥४॥

पाठान्तर—जोइन = जोय नै (इ) रमता=आतम (छ)। कद=िकम (छ)।

मिलै = मिलइ (अ)। मार्ग=मागइ (या-अ)। जिरहा = विरही (छ) कोन=कुंग्
(छ)। मिटावरे = मिटावइरे (य-या)। फ्रांकितरे = क्रांकितइरे (आ), श्रांक तेरे
(इ), ग्रांकि तेरे (छ)। देव = देकि (य,छ)। डोले = डोलइ (या)। कडो = खडड (या)। प्यारे = प्यारो (आ)। सिम = मिल (वु.)। चराग् = तिराग् (ग्र),

मिर्ग्ग (क.वु.वि.)। जगी = जगड (य्र)। विनगी = विनगी (य.वि)। दामिति

तेग = वामन तेग (आ.वु.)। वामनि तेज (य्र)। वामनी तेग (इ)। रयनी

वयन = रयन दयन (छ), फूरइ=फूरै (इ.छ)। सकै=सकइ (आ)। जाला=माला
(इ)। पंत्र = पंत्री (इ)। वडाछ = वटाछ (इ.छ)। वाद = याद (वु) वदै = वादै (य्र), वेदे (बु.)। निसि रांड = जो राम (छ)। मनी = ए मिह (छ)।

हटकै = हटकइ (अ)। इहि "" छदास = इह विधि इछि भे घर घगीरे,

उस तई रहड़ छदास (य्र), इह विध छै भे घर वगीरे, उस मूं रहेन छदास
(इ)। एह विधि इछै से भे घर वगीरे, उससूं रहैन छदास (छ) इह विधि इछइ घगीरे छनमुं रहे उदास (या)। आड = प्राय (इ), आऊँ (उ)। पूरी

पूरुं (छ)। करै = करइ (अ)।

शब्दार्थ — राद्य = बारह राद्यिय मीन, मेप आदि । ब्रह्म = चन्द्रमा । कला = अंद्य । जोत = ज्योतिय द्यास्त्र । सोन = बोपण् । अमराल = सर्यंकर । तिमाणी = लाइली । नाठी = माग गई । सराण् = मंद होना, ल्लिपना । विनगी = विनाप्रह्ण् की हुई । रयनी = रात्रि । दयन = देना । मतै दगी = वोखा (दगा) देने का विचार है । मयण्=त्रयन, कामदेव । सयण् = सज्जन, स्वजन, पति । पंजर = पिज्ञा । जाजा = ज्याला । मूल निरवंध = मूल (जड) से ही नष्ट हो गई है ।

समता, श्रद्धा, अनुभव आदि से अपनी व्यथा कह-कह थक गई और चेतन के वियोग से अत्यन्त दुखी हो गई तब विशिष्ट ज्ञानी पुरुष (ज्योतिषी) से अपने स्वामी चेतन से मिलाप की वात पूछती है कि चेतन से मेरा कैसे और कव मिलाप होगा।

ग्नर्थं—समता कहती है—हे ज्योतिषी ! तुम अपनी पोयी, पंचाग द्वारा राशिवल, चंद्रवल, व अन्य ग्रहों का अंश वल देखकर वताओं कि मेरे रमता राथ चेतन जी मुक्ते कव थिलेंगे जिससे मेरा यह विरह शोषण दूर हो ॥साखी॥

मेरे प्रिय पित चेतन विना अथाह एवं विकराल विरह व्यथा को कौन दूर कर सकता है। प्राणो मात्र को प्रिय ऐसी लाडली निद्रा भी मेरा दुख देख कर आंखों से जाती रही। दीपक की शिखा के समान मेरा मस्तक इघर उघर भटक रहा है। मेरा शरीर एक क्षण मात्र के लिये भो स्थिर नहीं रहता। इसलिये हे ज्योतिपी जी! अपना ज्योतिप देखकर वताओं कि पितदेश (चेतन) का मुक्त से कव मिलाप होगा।।१॥

विशेष—वहुत से ऐसे भी जीव देखने में आते हैं जिनको अध्यात्म रुचि तिनक भी नहीं होती पर वे वहुत गंभीर व समभावी होते हैं, पर जब तक आत्मा का आश्रय नहीं मिलता उन्हें वास्तिवक समता नहीं कही जा सकती। व्यक्ति समता युक्त हो, अध्यात्म भी हो, किन्तु आत्मानुभवका आश्रय न मिला हो तो उसमें स्थिरता नहीं भा सकती है। वह दी गक की शिखा समान अस्थिर रहता है।

चन्द्रमा अस्तंगत है, तारें टिमिटिमा रहे हैं। विजली तलवार की भांति चमक रही है। अपने स्वजन के विना रात्रि और कामदेव मिलकर, हे प्यारे चेतन स्वामी! मुभे वेग पूर्वक दगा देने को उद्यत हो रहे है अर्थात् ऐसी कामोद्दीपक सामग्री मुभे प्रियतम की वहुत याद दिला रही है।।२।।

श्री ज्ञानसार जी महाराज ने इसका इस प्रकार अर्थ किया है—"चंद्रमा छिप रहा है, तारे जगमगा रहे हैं और विजली विना ग्रहण की हुई तलवार से मुभे दगा देने का विचार कर रही है क्योंकि जो में अगुद्ध चेतना हूं तो कामोहीपन के कारण कामदेव मेरा सज्जन है किन्तु में तो गुद्ध चेतना हूं इसिंहयं कामदेव मेरा सज्जन नहीं है। अन्धेरी रात, तारा दामिनी तलवार घारण किये हुये मुक्ते कामोहीपन रूप दगा देना चाहते हैं।"

यह हँस रूपी जीव उड़ नहीं सकता क्यों कि तन रूपी पिजड़ें में कंद है। इसलिये इसमें पड़ा पड़ा कष्ट भोग रहा है। विरह रूपी अग्नि की ज्वाला वेग से जल रही है। इस ज्वाला से पंख तो सर्वथा मूल से ही जल गये हैं। इसलिये हे प्यारे चेनन! मैं तो उड़ के भी आपके पास नहीं आ सकती हूं।।३।।

इस पद के अर्थ का सारांश की ज्ञानसारजी महाराज के अनुसार यह है—'हे सिख ! में जुद्धात्मा से मिलना चाहती हूं किन्तु मिलाप होता न दिखने से गरीर रूप पींजरे में पड़ा यह जीव अत्यन्त कष्ट पा रहा है।"

क्वासोक्वास बढ़े हुये हैं। ज्यों ज्यों रात बढ़ती है त्यों त्यों क्वास-प्रकास की गति भी बढ़ती है। मानो रात और क्वास में परस्पर होड लग रही है। हे प्यारे चेतन! मनाने पर भी क्वास की तीव्रता नहीं मिटती और लड़ाई ठाने हुये रात पीछे नहीं हटती है।।४।।

श्री ज्ञान सारजी महाराज के अर्थ का सारांश यह है— उनका पाठ है—'उसासा से वटाऊ कोरे, वाद वदे निसि रांड। न मने ऊसा सामनी, हटके न रयणी सांड॥'

श्वासोश्वास रूप वटाऊ तेज गित से चलने वाले घुमक्कड में व रात्री में वाद चलता है। आत्मा सोपक्रमी आयुष्यवाली है उसकी सातों ही प्रकार से आयु स्थिति टूटने वाली है। चेतना विचारती है कि अन्त समय में ग्रुभ परिणाम होय तो आह्मा से मिलन हो सकता है परन्तु आत्मा की अशुभ आयु स्थिति पहले ही वंब हो चुकी है, अतः मरण समय अशुभ ही परिणामं आवेंगे। अशुभ परिणामी आत्मा से शुद्ध चेतना का मिलाप असंभव ही है। सात प्रकार के उपक्रम में से कोई भी एक उपक्रम लगा कि आयु स्थिति हूटी। इसलिये क्वासो-क्वास को मनाती है किन्तु हठग्राही पन से क्वासोक्वास ने रात्रि में आत्मा को उस गति में नहीं रहने दिया।।

इस प्रकार जिस का गृह स्वामी अगुद्धोपथीग में रमण करता है, जस स्त्री के भाग्य में सुख कहां ? वह तो पित की स्थिति से उदास रहती है। (फिर भी आज्ञा करती है) आनंद के घन परमानंदी प्रभु (चेतन) स्वभाव रूप निज घर में आकर हर प्रकार से मेरी गुण-स्थानारोहण रूप आज्ञा पूरी करेंगे।।।।।

उपालम्ब

२८

रांग-सारंग

साखी - म्रातम भ्रनुभवं फूलकी, नवली कोऊ रीति।
नाक न पकरें वासना, कान गहैं परतीति।।
श्रनुभी नाथ कुं क्युं न जगावै।
मनता संग सुचाइ ग्रजागल थनते दूध दुहावै।।भ्रनु०।।१।।
मेरे कहैं तें खीज न कीजें, तुंही भ्रौसी सिखावै।
बहुत कहें ते लागत ऐसी, भ्रांगुली सरप दिखावै।।
श्रनु०।।२।।

श्रौरन के रंग राते चेतन, माते श्राप बतावै। "श्रानंदघन" की समता श्रानंदघन वाके न कहावै।। श्रनु०।।३।।

पाठान्तर-रीति = रीत (इ.उ)। परतीत = परतीत (इ.उ)। सुचाई = सुवाइ (ग्रा), सुपाइ (इ), सुहाई (उ), सोपाय (क.बु.वि.)। कीजै = कीजड (आ)। अंती = इसी (ग्र), येसी (उ)। ऐसी = जैसी सी (ग्रा), इसी सी (अ),

एसी (उ)। ग्रांगुलि = अंगुली (क.वु), अँगुली (वि)। सरप = सरग (आ.उ)। औरन """वतावै = ग्रीरन रंगि राते चेतन, माते आप वतावै (इ), जो ग्रीरन के रंग राते चेतन, माने आप वतावै (उ), औरन के संग राचे चेतन, चेतन ग्राय वतावै (क.वु.वि)। माते """वतावै = 'माटे ग्रांख वतावै', ऐसा पाठ भी एक प्रति में मिलता है। समता = सुमता। (उ), सुमति (क.वु.वि)। ग्रानंदघन """कहावै = आनन्दघन की सुमति ग्रानन्दा, मिद्ध सरूप कहावै (इ.क.वु.वि)।

शब्दार्थ—नवली = नई, नवीन । वासना = गंघ । परतीति = प्रतीत, हढ़ विश्वास । सुचाइ = इच्छा पूर्वक, भर्ला प्रकार । श्रजागल थन तै = वकरी के गले के स्तन से । खीज = कोघ । माते = मतवाला ।

म्रर्थ- आत्मानुभव रूप पुष्प की कुछ नवीन ही रीति है।
पुष्प की सुगन्ध नाक को आती है, परन्तु कान को नहीं आती। फिर
भी कान अनहत नाद सुनकर प्रतीति करने लंगता है कि आत्मानुभव
पुष्प खिला है।।साखी।।

कितनी प्रतियों में "कान न गहै परतीत" पाठ है। उसका वर्ष होता है—न कानो को शब्द सुनन से उसकी प्रतिति होती है क्यों कि आत्मा को आंखे देख नहीं सकती, न त्वचा स्पर्श कर सकती वर्षात आत्मा किसी भी इन्द्रिय द्वारा जाना नही जा सकता। यह इन्द्रियातीत है। यह स्वयं के द्वारा जाना जाता है। जैन दार्शनिकों ने इन्द्रिय द्वारा होने वाले ज्ञान को इन्द्रिय—प्रत्यक्ष ज्ञान कहा है।

जैन विचारकों (द:र्शनिकों) ने "सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्गः" कहा है। यह सूत्र श्री उमास्वाती के तत्वायं सूत्रका पहला सूत्र हैं, जिस का अर्थ हैं – सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चरित्र-ये तीनों मिलकर मोक्ष के साधन हैं। कहीं कहीं ज्ञान किया को मोक्ष का साधन कहा है। उसका भी तात्ययं यही है क्यों कि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन का अन्योन्याश्रित संबंध है। जहां एक होगा वहा दूसरा अवश्य होगा ये एक दूसरे को छोड़कर नहीं रह सकते, परन्तु सम्यक् चारित्र के साथ उनका साहचर्य नितांत बावश्यक नहीं हैं। इसलिये संक्षेप में ज्ञान-क्रिया (चारित्र) को मोक्ष का साधन कहा हैं। तप को भी मृक्ति का साधन माना है। इसलिये नवपद में उसे भी स्थान मिला है।

जिस प्रकार दर्शन का समावेश ज्ञान में हो जाता है, उसी प्रकार तप का समावेश चारित्र में हो जाता है। इसलिये संक्षेप में ज्ञान व किया को ही मोक्ष का साधन कहा है। जीव को संसार में फँसाने वाली भी दो ही वस्तुयें हैं, व तारनेवाले भी दो ही वस्तुयें हैं। दर्शनमोह और चरित्रमोह—ये दो जीव को संसार में पारेश्रमण कराते हैं एवं ज्ञान व किया ये दो तारते हैं। दर्शनमोह हिण्ट को विगाडता है व चारित्रमोह आचार को। जैसी हिण्ट वैसी सृष्टि, यह कहावत प्रसिद्ध है। हिण्ट विगडती है तो सृष्टि—आचरण अवस्य विगडजाता है। उसी प्रकार हिण्ट सुधरती है तो सृष्टि भी सुधर जाती है, चाहे उसमें विलम्ब लगे, पर सुधरती अवस्य है। इसलिये मोह हिण्ट संसार का हेतु है व ज्ञान हिण्ट मृक्ति का हेतु है ज्ञान हिण्ट प्राप्त होने पर किया की गुद्धि आवश्यक है उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ज्ञान ही मृक्ति का प्रधान हेतु है।

इसलिये सुमित कहती है-हे मित्र अनुभव ! आप नाथ को सचेत क्यों नहीं करते। उन्हें ममता का साथ वहुत ही सुहावना लगता है किन्तु उसका साथ वकरी के गले में लटकते हुए स्तनों से दूध निकालने के समान है।

आपके परम मित्र चेतन के लिए मैं जो बार-बार यह कहती हूं इससे आप नाराज मत होना, क्योंकि आपने ही यह शिक्षा दी थी कि चेतन के लिए ममता के संग में कुछ सार नहीं है। मैं तो चेतनजी (स्वामी) को अनेक वार कह चुकी हूं तो सर्प को अंगुली दिखाने तुल्य, उन्हें अत्यन्त अप्रीतिकर लगता है।।२।।

अन्य विजातीय पदार्थों में चेतन रस ले रहा है यह उसकी उन्मत्त दशा अपने आप ही वता रही। ('माते' के स्थान पर चेतन पाठ भी है-इसका अर्थ होगा कि सांमरिक भोगों में अचेत होकर भी अपने को चेतन कहता है, कैसी विडंबना है)

किव कहते हैं—आनंद के स्वरूप चेतन की वास्तविक परिणित तो आनन्द देने वाली सुमित ही हैं फिर आनंदघन (आनंद स्वरूप चेतन) उसके (ममता के) कैसे हो सकते हैं? अर्थात् नहीं हो सकते है। (जहां "आनदघन की आनंदा, सिद्ध स्वरूप कहावै" पाठ है. उसका अर्थ यह होगा—'आनंदघन चेतन का आनद तो सुमित ही है। जो चेतन को सिद्धत्व प्राप्त कराती हैं इसलिये सिद्धस्वरूप कहीं जातो है।।३॥

प्रिय मिलन कठिनाई, २६ राग-धन्याश्री खोज व उपालम्ब

श्रनुभी पीतम कैसे मनासी।
छिन निरधन सघन छिन, निरमल समल रूप बनासी।। श्रनु०।।१॥
छिन में शक्र तक्र फुनि छिन में देखुं कहत श्रनासी।
विरहजन चीज श्राप हितकारी, निज धन भूंठ खतासी।। श्रनु०॥२॥
तुं हितू मेरो में हितू तेरी श्रंतर काहे जतासी।
"श्रानंदधन" प्रभु श्रानि मिलावो, निह तरकरो धनासी।। श्रनु०।।३॥

पाठान्तर—अनुभी = अनुभव (ग्र. इ. उ)।पीतम = श्रीतम (ग्र. इ. उ)। सधन = सन (आ) । वनासी = वतासी (अ. इ. उ. व)। तक = वक (ग्र), चक (उ)। दे हु कहत=देखी कहित (इ)। विरहजन=विरजन (ग्र.इ.), विरहजन (उ) विरज न (वु), विरचन (क,वि)। चीज=वीज (इ) छीज (उ), विच्च (व.वि)।

बीच्व (क)। निज धन = निघन (ग्रा), निरघन (इ. उ. क.), निर्धन (बु), निरचन (वि)। खतासी = खन।सी (आ. वि.)। वतासी (उ)। हितू = हित (आ)। घनासी = घन्यासी (इ. उ)।

शब्दार्यं—मनासी = मनावेगा, प्रसन्न करेगा । सधन = धन सहित । समल = विकार युक्त । वनासी = वनावेगा । अनासी = अविनाशी । शक = इन्द्र । धनासी = विदा होवो । गायन करनेवाले को जब विदा देनी होती है तो 'धन्याश्रीकरो' कहा जाता है । राग रागनियों में भी अंतिम स्थान 'धनाश्री' राग का है ।

अर्थ —श्री ज्ञानसारजी ने इस पद का अर्थ किया है उसका सारांश यह है—''आत्मा को पुद्गल में लोलीभूत अशुद्धोपयोगी देख-कर अनुभव से शुद्ध चेतना कहती है।

हे अनुभव ! पितदेव (चेतन) किस प्रकार प्रसन्न होंगे ? अपना कहना कैसे मानेगे ? मन के वस वर्तते हुये क्षण में ज्ञानदर्शन रहित निर्धन, उसी भांति क्षण में ज्ञानदर्शन सिहत घनवान, फिर क्षणमें ही निर्मल स्वरूपी ज्ञानी और क्षण में अनंतानुबंधी के उदय से से महा मैला रूप दिखाते है। ऐसे बहुरंगी चेतन को हे अनुभव ! कैसे मनाया जाय ॥१॥

क्षण में यह आत्मा अपने को इन्द्र जैसा समर्थवान मानने लगता है, अर्थात पट् द्रव्य में मेरे जैसा कौन है ? यह महानता धारण करता है और क्षण में तक जैसा-छाछ जैसा निसत्व वन जाता है।

यहाँ श्रीज्ञानसारजी महाराज लिखते है—"आगे के पद का किंचित अर्थ भासता तो है पर रहस्यार्थ सहित पूर्णरूप से नहीं भासता। इसलिए नहीं लिखा। 'शतवद एको मा लिख,' कोई बात लिखने के पहले बहुत विचार करना चाहिये। फिर इन कविराज आनन्दघन जी का आशय अत्यन्त गंभीर होता है परन्तु इन पदों के

शुद्धाशुद्ध अक्षरों के समभे विना अर्थ किसका किया जावे। जब ऐसे महान पुरुप ही आशय को नही जान सके तो मेरे जैसे अहा की क्या विसात है। पर जो कुछ समभा है वह लिख देना ही उचित समभता हूँ। विचारक लोग ठीक सनभें तो ग्रहण कर सकते हैं।

चेतना कहती है कि चेतन अपने को क्षण में इन्द्र जैसा महान समभने लगता है तो क्षण में तक जैसा निसत्व वन जाता है, अथवा तक के स्थान पर वक पाठ रखें तो अर्थ—टेढा व कुटिल हो जाता है। इस भान्ति क्षण क्षण में यह अनेक भाव पलटता दिखाई पडता है। पर संसार से विरक्त ज्ञानियों ने इसे अविनाज्ञी, नित्य व वासना से मुक्त रहने वाला कहा है जो सर्वदा स्वभाव से अपना हित ही करता है किन्तु विभाव परिणामी होने पर यह अपनी ज्ञानादि सम्पति को विपरीत परिणमन करके खोटे खाते खत्यता है अर्थात अज्ञानवग संसार वंबन का खाता खताता रहता है। 'विरचन' पाठ काइस प्रकार अर्थ किया जा सकता है। 'अपने भावों का विरचन-निर्माण करने के बीज इमी मे है, अपना हित आप स्वय ही करने वाला है और विभाव दशा में अपने आदिमक धन को पौद्गलिक खाते में लगा कर अपने अक्षय सुख से विमुख भी स्वयं ही होता हैं'।।२।।

समता अनुभव से कहती है - हे अनुभव ! तू मेरा हित (भलाई) चाहने वाला है और मैं तेरा हित करने वाली हूँ। तुभ में और मुभमें क्या अन्तर है - क्या भेद है, मुभे वता। जहां सुमित, सद बुद्धि, समता, शुद्ध चेतना, ज्ञान चेतना होती है, वहां अनुभव होता ही है। हे अनुभव तेरा मेरा इतना घनिष्ट संवंघ है फिर भी तू विलम्ब कर रहा है। अब कृपा कर आनंद के घन (समूह) सामर्थवान आत्माराम को मुभसे शीघ्र मिलाओ अन्यथा यहां से विदा हो। मैं और कुछ नहीं चाहती हूं। (समता ने निराशा व खीज में यह

वाक्य कहा है -''विदाहो"। दुखी अर्थीजन आवेश में उचित अनु-चित का विचार नहीं करते।

विरहोद्रेक व अनुभव धैर्यदान ३० राग-गौडी

मिलापी ग्रान मिलातो रे मेरे ग्रनुभव मीठडे मीत ।।
चातिक पिउ पिउ करे रे, पीउ मिलावे न ग्रान ।
जीव पीवन पीउं पीउं करें प्यारे, जीउ निउ ग्रान ग्रयान ।।मि०।।१।।
दुखियारी निस दिन रहूं रे, फिल्लं सब सुधि बुधि खोइ ।
तनकी मनकी कवन लहें प्यारे, किसिह दिखावुं रोइ ।।मि०।।२।।
निसि ग्रंथियारी मोहि हंसैरे, तारे दांत दिखाय ।
भादु कादुं मंद्रं कीयउ प्यारे, ग्रंसुमन घार वहाय ।।मि०।।३।।
चित चाकी चिहू दिसि फिरैरे, प्रान मैदो करें पीस ।
ग्रवला सद्रं जोरावरी प्यारे, एतो न कीजै ईस ।।मि०४।।
ग्रातुरता नहीं चातुरी रे, सुनि समता दुक बात ।
''ग्रानन्दघन'' प्रभू ग्राइ मिलंगे ग्राज घरे हर मांत ।।मि०।।१।।

पाठान्तर — चातिक = चातक (इ.उ)। पिउ पिउ करैरे = पिउ पिउ पिउ करहरे (य्र), पीऊ पीऊ करैरे (इ), पीउ पीउ करेरे (उ)। मिलाव = मिलाव (इ)। करै = करइ (ग्रा), करे (उ)। बान ग्रयान = आन अपान (ग्र), आतंए ग्रान (इ), आंएा, अजांएा (उ) दुिखग्रारी = दुिखी आरी (ग्र)। सुिघ बुिघ = मुद्धि बुिद्ध (ग्रा)। खोइ = खोय (इ, उ)। कन = कवहुन (इ), कवन (उ)। लहै = लहइ (ग्र), लंहु (इ)। प्यारे = वारे (उ)। किसिह क्यारे = कैसे दिखाउ रोय (इ. उ)। मोहि हंसैरे = मोहि हसइरे (अ. उ), मुिह हसैरे (इ)। तारे = तारइ (आ) मइ = में (इ.उ)। कीयउ = कियो (इ), कीयो (उ)। वहाय = वहाइ (अ आ)। चाकी = वाको (इ. उ)। फिरेरे = फिरइरे (ग्र ग्रा)। प्रान = मांन (अ)। करै पीस = करइ पीसी (ग्रा), करपीस (इ) करे पीस (उ) सइ = सूं (इ), सें (उ)। कीज = की जइ (आ), ईस = रीस (इ.उ)।

प्रान""पीस = प्रण में दो करे पीस (क), प्रण में दो कर पीस (त्रु)। आनुरता """चानुरीरे = आनुर चानुरता नहीं रे (इ)। मिलेंगे = मिलेंगे प्यारे (इ.च) घरे = घरि (ग्रा), घरी अ.च), घरें (क)। हर = हरि (अ)।

शन्दार्थे-=िमलापी = िमलाने वाला । मीठड़ै मीत = स्नेही मित्र । ग्रान = आकर । पीवन = पीने के लिये । जीउ निउ = प्राग्याम (जीउ = प्राग्या, निउ = नींव)। कवन = कौन । कादूं = कीचड़ ।

प्रयं—सुमित कहती है-हे मेरे परम हित चिन्तक मिलापी मित्र अनुभव ! कृपा कर मेरे प्रियतम (चेतन) को लाकर मुक्तसे मिलावो।

यह पपीहा पिउ पिउ कर रहा है किन्तु पिउ (पित) को लाकर मिलता नहीं। यह तो मेरे प्राण पीने के लिये ही पिउ पिउ करता है और मेरे जीवन घन को ला नहीं सकता।

प्रियतम विना मैं दिन रात दुखी रहती हूँ। अपनी सव सुघ दुव खोकर इघर उघर भटक रही हूं। मेरे तन मन की पीड़ा (दुख) को कौन समभ सकता है फिर रोकर भी किसको अपनी दशा दिखाऊ ॥२॥

वंबेरी रात में तारे चमक रहे हैं वह ऐसे लगते हैं मानों रात दांत दिखलाकर मेरी हंसी (मजाक) कर रही है। (विरह व्यथा से दुखित) मैं आँसूओं की घारा वहाकर अपने समीप भाद्रपदमास के समान कीवड़ कर लिया है।।३।।

मेरी चित्त रूपी चक्की चारों तरफ घूम रही है जिसने मेरे प्राणों को पीस कर मैदा (वारीक खाटा) वना दिया है। इसलिये हे प्रियतम ! हे प्रभो ! मुक्त अवला से इतनी जवरदस्ती मत करो-ऐसी ज्यादती मत करो ॥४॥

## [ ७? [

समता को इस प्रकार अत्यन्त खेद खिन्न देखकर अनुभव उसे आक्ष्वासन देता है-हे सुमते ! जरा मेरी वात मुन, घैंगे रख। इस तरह व्यथित होने और घवडाने में बुद्धिमानी नहीं है। जल्द वाजी से काम नहीं वनता है। आनंद घन प्रभु शीत्र ही अपने घर आकर हर प्रकार से तुम से मिलेंगे ॥ १॥

विरह में प्रतीक्षा व श्रनुभव ३१ राग-केदारो का श्राश्वासन

निसि दिन जोवुं बाटडी, घरि श्रावरे ढोला ।
मुभ सरीखें तुभलाख है, मेरे तुं ही ममोला ॥नि०॥ १
जोहरि मोल करे लाल का, मेरा लाल श्रमोला ।
जिसके पटन्तर को नहीं, उसका क्या मोला ॥नि०॥२॥
पंथ निहारत लोग्रनै. टग लागी श्रडोला ।
जोगी सुरति समाधि में, मानो व्यान भकोला ॥नि०॥३॥
कौन सुर्गं किसकुं कहूँं, किसै मांडु खोला ।
तेरे मुख दीठ टले, मेरे मनका भोला ॥नि०॥४॥
मीत विवेक कहै हितूं, समता सुनि वोला ।
"श्रानंदधन" प्रभू श्रावसी, सेजडी रंग रोला ॥नि०॥४॥

पाठान्तर—जोवुं = जोवुं थारी (इ.ड) । घरि = घर, (इ) घर (उ) । यावरे = यावारे (इ), बावोजी (ठ) । सरीखे = सरिखा (इ.ड) । तुम्म = तोरे (उ) । मनीळा = मानोळा (अ), अमीला (उ) । जोहरि = जीहरी (अ), जौहरी (इ), जुंहरी (उ) । मेरा = मेरे (उ) । ळाळ = मोळ (आ) । अमीळा = अमूला (उ) । जिसके = जिसक इ (ग्रा) निहारत लोग्रने = निहारी ळाजने (अ), निहारत लोग्रने (इ) निहाळित ळोग्रगे (उ) । टग = इग (उ) । सुरित = मूरित (उ) । मैं = रो (उ) । मानो = मुनि (उ) । कौन = कौग्र (ग्र) । किसै = केम (इ) । मनका = मनकी (उ) । मोळा = चोळा (इ) । सनता = सुमता (उ) । बावसी = बावसे (इ.ड) ।

शब्दार्थ — जोवुं = देखना । वाटडी = वाट, रास्ता, राह । ढोला = प्रियतम, पित । सरीखे = समान । ममोला = ममत्व के स्थान, प्रिय । पटंतर = वरावर । लोअनै = नेत्र । अकोला = मस्ती । मांडुं खोला = आंचल पसारू-फैलाऊं। भोला = गोटाला, चंचलता । रंगरोला = रंगरेलियां, चहल पहल ।

म्रथं—सुमित कहती है-हे प्रियतम चेतन ! मैं आपकी रात दिन राह देखती रहती हूं। हे स्वामी ! अब तो आप अपने घर पधारिये। (विभाव दशा को छोड़कर स्वभाव दशा में आइये) मेरे जैसी तो आपके लाखों हैं अर्थात् माया ममता, रित अरित कुटिलता वकता आदि लाखों विभाव दशायें हैं किन्तु मेरे तो आप अकेले ही प्रिय भाजन है-प्रेम के स्थान हैं।।१।।

जींहरी अपने लाल का-माणिक आदि रत्नों का मूल्य आंकता है-करता है किन्तु मेरा लाल तो अमोलख है जिसका कोई पारखी मूल्य नहीं कर सकता। मेरा ज्ञान दर्शन चारित्र रूप लाल चेतन स्वामी तो अमूल्य है। उसका कोई मूल्य नहीं लगा सकता वह तो अमोल है। उसके बरावर कोई भी वस्तु नहीं है फिर उसकी क्या कीमत हो।।२॥

अडोल-अनिमेष आंख से-दृष्टि से-टकटकी लगाकर मैं उसकी खोज में मार्ग को इस प्रकार देखती रहती हूं जिय प्रकार योगी ध्यान की मस्ती से समाधि में एकाग्र-लीन हो गया हो। मैं आप ही के ध्यान में स्थिर चित्त रहती हूं ॥३॥

सुमित चेतनदेव से कहती है-हे स्वामी! आपके सिवा मैं अपना दुख किससे कहूं मेरी व्यथा कौन सुनने वाला है, मैं किसके आगे अपना अंचल फैलाऊं। हे स्वामी! आपके मुख देखने से ही मेरे मन की चंचलता दूर होगी। अर्थात आप मेरे पास रहेंगे तो मैं शांत रहूंगी-आनंद में रहूंगी।।४॥

## [ ७३ ]

सुमित की ये विरह व्यथा युक्त वार्ते सुनकर उसका परम हितंपी मित्र (अनुभव) उसे आश्वासन देते हुये बोला-हे सुमते! मेरी बात ध्यान से सुन, तेरे भरतार आनंदघन चेतन स्वामी अवश्य आवेंगे और स्वभाव रूपी शय्या पर आनंद रूप रंगरेलियाँ करेंगे। मेरी बात का विश्वास रख ॥५॥

विरह व्यथा-उद्गार ग्रौर ३२ राग-मारू ग्रनुभव का ग्राश्वासन

पाठान्तर—िया = पीया (श्रा)। ियन = िवनु (स्रा)। सुधिवुधि सुधवुष (अ) शुद्धिवृद्धि (इ)। मूंदी = मुंदी (आ)। समै= तम इ (अ), समे (उ)। कुंदी = कुंदी (आ, उ)। भोयन = भोयन (स्र), भों अन (इ), भों अन (उ)। िमटी = िमटे (उ)। मूची = संया (स्रा) आज = आजि (अ)। काल्ह = कािल (अ)। काल्ह = किंदि। आजि (इ)। श्रावनकी = आंनकी (इ)। जीउ = जीय (इ) विलूं घी

= विलूंधा (उ) । अथाह है = अथाह हे (उ) । हवीव तबीव = तबीव हवीव (इ), हवीव तबीव (उ) । सुर = सर (इ). सिर (उ) । समेली = सुमेली (उ) । बहाय = वहाइ (अ) । सींचू = सीचौं (ग्रा) सींच्यी (उ) श्रावण भादु = सावण भादू (इ), श्रावण मास (उ) विच = विचि (ग्र), विच (इ) वीच (उ) सिरता ""भरै = सिलता सरस वहैं भरे (आ), सिलता सरवर सव लहै (उ), पपही पिउ पिउ लवइ, जाणै अमी लवूका हो (ग्र) सर = रस (उ) । वनाइ = वनाय (इ. उ.) कहै = कहइ (अ), कहे (इ) । घरौ = घरउ (आ) ।

शब्दार्थ मूं हो = मंद हो गई, ढंक गई है। सुधि वुधि = होश हवास, चेतना। भुगंग = भुजंग, सपं। समं = समय। सेजडी = शध्या। खूंदी हो = पेरों से रोंदना, पेरों से दवा दवा कर श्रस्तव्यस्त करना। शोयन = भोजन कथा = वात। सूधी = सीधी, सच्ची। जीज = जीव, प्राग्ग। श्रास = आशा। विलूं घी = नव्ट हो गई, लुप्त हो गई। नवनेजा = नौ खडे भाले की लम्बाइ जितना गहरा, नौ रस्से की लम्बाई जितना गहरा। हवीव = मित्र। तबीव = हकीम, वैद्य, चिकित्सक। करक = कसक, रुक क्क कर होने वाली पीडा। सुर सिन्धु = दुख स्वर का समुद्र, शोक समुद्र। समेली हो = मिल गई, हव गई। कर बेली = हाथ रूपी बेल। बीज = विजली। भवुका हो = चमकती है। सरिता = नदी। सर = तलाव।

श्चर्य-सुमित कहती है-पित देव (चेतन स्वामी) विना मेरी सुधि-बुधि अच्छादित हो गई है अर्थात् मेरे होश हवास गुम हो गये हैं- खो गये है। मेरा सुमितपना मंद हो गया है। रात्रि के समय विरह रूपी सर्प ने मेरी शय्या को रोंद करअस्त व्यस्त कर दिया है। चेतन की विभाव दशा ने यह भयंकर दशा उत्तरन करदी ॥१॥

खाने पीने की बात ही जाती रही। किसे खाना पीना अच्छा लगता है? अपनी व्यथानी सीधी सच्ची बात किस पर प्रगट करूं? आजकल में ही घर आने की बात थी, वह सब आशा मेरे मन से लुप्त हो गई। अर्थात् चेतन देव स्वामी के आजकल में ही अपने घर (निज स्वभाव में) आने की वात थी किन्तु उनके निजभाव में न आने से वह सब आज्ञा विलुप्त हो गई।।२।।

नौ नेजा गहराई के समान मेरी विरह वेदना अथाह है। ऐसा कौनसा मित्र वैद्य है जो मेरे हृदय की कसक (पीड़ा) को दूर करे ॥३॥

इस पद के द्वारा योगीराज ने सद्गुरु की दुर्लभता वताई है।

गाल पर हाथ लगाकर (विचार मग्न हो कर) शोक समृद्र में गोते खा रही हूं, डूव रही हूं। नेत्रों से आंसूओं को वहाकर गाल पर लगे हुए हाथ रूपी बेल को सींच रही हूं। अर्थात् अत्यन्त दुखी हो रही हूं।।४।।

श्रावण-भाद्रपद की घनघोर घटा के बीच कभी कभी विजली चमक जाती है। (श्रावण-भाद्रपद की घनघोर घटा रूपी विरह दशा में चेतन की विभाव दशा में कभी कभी मेरी ओर उन्मुख होने रूपी विजली चमक जाती है)। ऐसे श्रावण भाद्र पद मास में सब निदयें व सरीवर (तलाव) भर गये है किन्तु मेरा हृदय रूपी तलाव सूखा हो है। (चेतन की विभाव दशा में अशुभ कर्म रूपी निदयें तालाव आदि तो भर गये किन्तु मेरा समभाव रूप तलाव तो सूखा ही रहा)।।।।।।

सुमित को इतनी दुखित देखकर उसका परम हितकारी मित्र अनुभव सुमित की इस विरह दशा के दुख की त्रात चेतनराज से उसकी रुचि अनुसार अनुक्तल भाव से, अंवसर देवकर कहता है और उसे समभाता है। समभाने के परचात अनुभव को आशा होती है और वह सुमित के पास आकर कहता है—हे सुमते! तिनक धैर्य रखो, आनन्दघन प्रभु अब (तेरे पास) आने वाले ही हैं॥६॥ विरह में प्रेमदशा व अनुभव ३३ राग-काफी का श्राश्वासन

हठीली ग्रांख्या टेक न मिटै, फिरि फिरि देखन चाहुं ॥
छैल छबीली पिय सबी, निरखत तृपित न होइ ।
हठकरि टुक हटके कभी, देत निगोरी रोइ ॥ह०॥१॥
मांगर ज्युं टगाइ के रही, पिय सबी के द्वारि ।
लाज डांग मन में नहीं, कानि पछे वडा डारि ॥ह०॥२॥
ग्राटक तनक नहीं काहू की, हटके न इक तिल कोर ।
हाथी ग्राप मते ग्ररइ पावै न महावत जोर ॥ह०॥३॥
सुनि ग्रनुभव प्रीतम बिना, प्रान जात इहि ठांहि ।
हैज न ग्रातुर चातुरी, दूर 'ग्रानंदघन' नांहि ॥ह०॥४॥

पाठान्तर—आंख्या = आंखै (ग्र)। टेकन = टेकिन (अ) मिटै = मेटै (इ. उ)। चाहुं = जाहुं (ग्र), जाई (इ), जाय (उ)। छैल = छयल (इ. उ)। छवीली = छवीला (आ)। सवी = छवी (इ) तुपित = तृपत (अ)। हठ = हट। (ग्रा) हटकै = हठकै (अ. इ. उ)। 'कभी' यह शब्द 'इ, प्रति में नहीं है। मांगर = मारग (ग्रा)। टगाइ = टंगाइ (ग्रा), दुंगांय (इ.उ)। डांग = डांग (ग्रा) मन मैं = मांनै। पछेवडा = पच्छेरा (ग्रा), पिछेडा (इ) पिछेवडा (उ)। डारि = टारि (ग्रा)। डार (इ)। टार (उ)। तनक = तटक (ग्रा), तनेक (उ)। इक तिल = निह तिल। मतै = मतइ (ग्रा)। ग्ररइ = ग्ररै (इ), यरे (उ)। पार्व = पांवइ (ग्रा)। महावत = मावत (इ.उ)। इहि = इन (ग्रा), निव (इ)। ठांहि = ठाविह (ग्रा), ग्राहि (इ)। हैज न = हजीन (इ.उ)। ग्रातुर चातुरी = चांतुर आतरी (इ)। दूर = दूरि (अ.उ)।

शब्दार्थं — टेक = जिद, हठ । सवी = तसवीर । हटकें = हटाना. मना करना । मांगर = मकर, मछली । डांग = लकडी, डंडा । कानि = मर्यादा । पछेवडा = ग्रीढने का चादरा । ठांहि = स्थान ।

म्पर्थ-सुमित की हठीली आंखें अपनी हठ (जिद) छोड़ रही है, बार बार प्रियतम को देखना चाहती है।

अपने मौजी प्रियतम की सुन्दर छिव को देखते हुये तृष्ति नहीं होती है। यदि जवरदस्ती से रोका जाता है तो ये निगोड़ी आंखें रो देती हैं॥१॥

जल वियोग होने पर (काँटे में फंसी हुई) मच्छलो की हिंट जिस प्रकार पानी की ओर लगी रहती है, उसी प्रकार मेरी हिंट प्रियतम के द्वार की ओर लगी रहती है। मुक्ते प्रियतम की छिव की ओर देखने में किसी की लज्जा रूप डंडे का मन में भय नहीं है। और मैंने मर्यादा रूप चादर को उतार कर अलग डाल दिया है।।२॥

अव किसी की जरा भी रोक नहीं है इसिलये ये हठीली आंखें एक तिल भर तो क्या, तिल के अग्रभाग जितना भी हटना नहीं चाहती है। हाथी जब अपन मते (मन माना) हो जाता है तव महा-वत के अंकुश का जरा भी वश नहीं चलता है।।३।।

हे अनुभव मित्र ! मेरी स्वष्ट बात सुनलो, प्यारे प्रियत । के बिना मेरे प्राण इस ही स्थान पर यह देह छोड़ देंगे। यह सुनकर अनुभव राज कहते है—हे सुमते ! जल्द बाजी करना बुद्धिमानी नहीं है। तू धैर्य रख—विश्वास रख कि आनंदघन चेतन तेरे से दूर कहां है ? अर्थात् दूर नहीं है ॥४॥

इस सम्पूर्ण पद में आव्यात्म अर्थ भरा पडा है। चित्त वृत्ति रूपी हठीली आंखें गुद्ध चैतन्य स्वरूप प्रियतम की ओर लगरही हैं। विरहोद्रे क व अनुभव ३४ राग-वसंति का धैर्यवान भादुं की राति काती सी बहद्द, छातीय छिन छिन छीन।।

क्षिप्रलग श्रलग प्रतियों में श्रलग अलग राग है। 'श्र' प्रति में 'नटमलार' 'श्रा' प्रति में 'वसंत,' 'इ,उ' और मुद्रित प्रतियों में 'घमाल' है।

प्रीतम सबी छुबि निरख कइ, पिछ पिछ पिछ पिछ कीन। वाही चवी चातिक करें, प्रारा हररा परवीन।।भा०।।१।। इक निसि प्रीतम, नाडकी, विसरि गई सुधि नीछ। चातक चतुर चिता रही, पिछ पिछ पिछ पीछ।।भ०।।२॥ एक समइ थ्रालाप कें, कीन्हइ थ्रडाने गाव। सुघर पपीहा सुर घरइ, देत है पीछ पीछ तान।।भा०।।३॥ रात विभाव विलात ही, उदित सुभाव सुभानु। समता साच मतइ मिले, श्राए 'श्रानंदघन मानु।।भा०।।४॥

पाठान्तर—छातीय — छाय (अ), श्रा छातीय (आ) छिन = छिन्न (उ)। सबी छिन = छिन सिन (इ). छिन सब (उ)। निरस्न कई = निरिष्त के हो (इ), निरिष्त कहै (उ)। 'पिउ' शब्द 'श्र' प्रिंत में तीन नार ही है। चबी=नाची (श्र), बची (ह) विच (त्रु. वि)। चातिक=चातक (इ)। करै=करइ (अ), करैहो (इ. उ)। हररण = हरै (उ)। परवीन = परचीन (उ)। चिता = विना (त्रु. वि)। पिउ "पीउ = पिउ३ पीउ (श्र)। समइ = सामों (इ), समै (उ)। कै = कई (श्र), कै हो (इ), के है (उ)। की नहइ = की न्हे (अ), की नि (इ. उ)। पपीहा = निर्मा (श्र. श्रा)। घरइ = घर हो (इ. उ)। देतः है = देत हइ (अ), देत हे (इ), देत हो (उ) पीउ पीउ = पिउ पिउ (श्र) पीऊ पीऊ (इ)। रात = राति (आ)। हो = है (श्रा), हो हो (इ. उ)। मतइ मिलै = मतइ मिलई (श्र), मतै मिलै हो (इ. उ)। आए = आइ (अ)।

शान्दार्थ—काती = कटार, करोत, श्रारा । वहई = वहती है, लगती है । छातीय = सीना, छाती । छिन छिन = क्षगा क्षगा में । छीन = क्षीगा करती है, छील डालती है । चवी = कथन, बोली, शब्द । नाउकी = नाम की । विसरिंगई=भूल गई । सुधि = स्मृति । नीउ = नींव से ही, मूल से ही, विल । कुल ही । आलांपक = आलांपलांगा कर । श्रडाने = श्राडे समय पर, वेवक्त, दुख के समय पर । (यह मराठी शब्द है) । रात विभाव विलात ही = विभाव

रूपी रात्रि के विलीन होने पर । उदित सुभाव सुभानु = स्वभाव रूपी सूर्य का उदय होगा । साच मतइ = सच्चे हृदय से, सचमुच, सत्य ही, सम्यक् ज्ञान पूर्वक । मानु = मानो, जानो ।

म्नर्थ-सुमित कहती है कि प्रिय चेतन स्वामी की विभाव दशा रूप भाद्रपद की घनघोर अंघेरी रात्रि मेरी छाती को क्षण-क्षण में करोत के समान छेद रही है-विदीर्ण कर रही है।

प्रिय चेतन की छटा (शोभा) देखकर हृदय प्रेम से विभोर हो उठता है और मुख से "पिया, पिया" शब्द निकल पडता है। पपीहा भी 'पिउ पिउ' शब्द ही बोला करता है। इससे विरहणी को पित की स्मृति ताजा हो जाती है। इसलिए कवियों ने उसे (पपीहें को) वियोगनियों के प्राण हरण करने में चतुर कहा है।।१।।

एक रात्रि को प्रियतम के ध्यान में मैं ऐसी तल्लीन हुई कि प्रियतम के नाम की स्मृति ही खो वैठी । है चातक ! पिउ निउ पिउ की ध्वनि से क्या चेतावनी दे रहा है ? मेरे हृदय में नो निउ (पति) ही वस रहा था, मुक्ते तो नित ही का ध्यान था और पित ही का विचार था, केवल मुख में पित का नाम नहीं था ॥२॥

ध्यान में बहुत वार ऐसी समाधि लग जाती है और दीर्घ अभ्यास से इस ही भांति ध्येय और ध्यान की एकता सिद्ध होती है, फिर ध्याता, ध्यान और ध्येय वे तीनों एक रूप हो जाते है।

ऐसे आडे (दुःख) के समय किसी ने अलाग लगाकर गायन किया। जब ध्यान टूटा तो मालूम हुआ कि चतुर पपीहा मुक्ते ध्यान मग्न देखकर 'पिउ पिउ' की तान लगा रहा है।।३॥

सुमित के साथ यह तान पूरने वाला मन के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? मन और बुद्धि जब एक दिशा में कार्यरत होते हैं तो सफलता निश्चित हैं। सुमित को-मन के इस परिवर्तन से-अनुमान होता है कि विभाव दशा रूपी पूर्य उदय होने वाला है जिससे आनंद के समह चेतन सचमुच स्वेच्छा से आकर मुभसे आ मिलेगे ॥४॥

म्रात्मानुभव रस, विरहोद्रेक, ३५ वसंत-धमार व सिख का धैर्यदान

साली—ग्रातम प्रनुभव रस कथा, प्याला िष्या न जाइ।

मतवाला तो ढिह पर िनमता पर पचाइ।।

छवीले लालन नरम कहै, श्राली गरम करत कहा वात।।

मांके ग्रागइ मामू को, कोइ वरन न करत गवारि।

ग्रजह कपट के कोथरा, कहा कहै सरघा नारि।।छवी०।।१।।

चौगित माहेल न छारही, कैसे ग्राए मरतार।

खानो न पीनो वात में हसत भानत कहा हार।।छवी०।।२।।

ममता खाट पर रमें, ग्रोनीदे दिन रात।

लैनो न दैनो इन कथा, भोरे ही ग्रावत जात।।छवी०।।३।।

कहै सरघा सुनि सामिनी, एतो न कीजे खेद।

हेरइ हेरइ प्रभु ग्रावही, वढे 'ग्रानन्दघन' मेद।।छवी०।।४।।

क्षित्री ज्ञानसारजी ने इस साकी को अलग रता है। यह ग्रानन्दघनजी के मर्म को समक्षते में एक ही है। इन्होंने 'ग्रानन्दनघ' चौवीसी पर वड़ा ही मार्मिक टट्या लिखा है। इन्होंने 'आनन्दघन वहुत्तरी' पर भी टट्या लिखा है। केवल १४ ही पदों पर टट्या मिलता है। या तो इन्होंने १४ कठिन पदों पर ही टट्या लिखा है या और पदों का टट्या नष्ट हो गया हो। लोग इन्हें ल हु आनन्दघनजी कहते थे।

पाठान्तर—ढिह = ढाई (आ)। परै = परेइ (आ)। निमता परै पचाइ
= निमिता परिचाइ (आ), निमता परे पचाय (इ.उ)। आली = आलीरी
(इ.उ)। कहा वात = अहवान (उ)। गवारि = गवार (अ), गिवार (इ),
गमार (उ)। कोथरा = कोधेरा (उ)। नारि = नार (इ.उ)। चौगति =
चउगति (अ), 'इ' प्रति में पद संख्या दो नहीं हैं। 'पीनो शब्द' के आगे बु.वि.
प्रतियों में 'इन' शब्द और है। श्री ज्ञानसारजी महाराज के टब्वे में भी 'इन'
शब्द है। रमै = रमेहो (आ)। ओनीदे = दिन दिन (आ), ओनीदे (अ), श्रोनीदे
(इ). ऊनीदे (उi) उलीमदे (उii), श्रौर निदे (वि. बु, क)। कथा=जथा (उ)।
कहै = कहइ (आ)। सामिनी = स्यामिनी (अ), सांमिनी (इ)। हेरइ हेरइ =
हेरै२ (इ,उ.क,बु), हरै हरै (वि)। वढै = बढइ (अ), वदे (बु.क)। (पद दूसरे
में)-हार = हाड (बु,क.वि.)।

शब्दायं—रस कथा — सरस कथा । मतवाला — मस्त, मताग्रही । दिर परे — लुढक पड़ता है । निमता = निर्ममत्वी, मस्त न होने वाला । छवीले — शोभायमान । लालन — पति, आत्मा । गरम करत कहा वात = किस लिये मुक्ते गरम करती है, क्रोध दिलाती है । कोथरा — थैला । न छारही — नहीं छोड़ती है । हसत = हँसी करके । भानत कहा — किस लिये तोड़ता है । हार = हाड, हड्डी ।

प्रयं—आत्मानुभव रूप रस कथा का प्याला पिया नहीं जा सकता, इसे पीना अत्यन्त दुष्कर है। जो मताग्रही लोग हैं जिन्हें अपने-अपने मत का महत्व है, जो सत्य को न पकड़कर अपने मत का दुराग्रह रखते हैं अथवा सांसारिक मोह माया में पड़े हुए है, वे तो इस प्याले को पी नहीं सकते, अथवा पीकर लुढक जाते है और जो मताग्रह से रहित हैं—सांसारिक बातों से जिन्हें प्रीति नहीं है, जो मेरा, वह सच्चा, यह न समफ्तकर, सच्चा जो मेरा, ऐसा समफते हैं, वह इस आत्मानुभव रस कथा का प्याला पीकर पचा लेते हैं—जीवन में उतार लेते है और अपनी आत्मा में तल्लीन हो जाते है। कोई इस

रस का इच्छुक आता है तो उसे भी पान करा देते हैं वरन् अधिकतर आत्मानंद में ही मग्न रहते हैं। ऐसी अवस्था में जनसाबारण को आत्मानुभव रूप रस वार्ता का पान दुलंग ही है ॥सादी ॥

मुमित और श्रद्धा में वार्ता हो रही है। मुमित कहती है—हे श्रहे ! तू छबीने लाल को-मेरे पित चेतन की नरम कहती है और शास्त्र को साक्षी भी देती है कि आत्मा महा समरसी है पर यह तो सव निरुचय नय की बात है, किन्तु जहाँ तक विभाव दशा है वहाँ तक तो यह कपायों से तप्त है-गरम है। हे सिव ! वता, छंबीने आत्मारान का मोह-ताप रूर गरम वान करने का अन्य क्या कारण है ? हे सिंख ! मां के सामने मामा का-मां के भाई का गुण-दोष वर्णन कोई गैंबार (मूर्ख) ही किया करता है क्योंकि भानजे की अपेक्षा उसकी वहिन उसे अधिक जानती है। इसी ही भांति है श्रद्धे ! मैं तेरी अपेक्षा अपने पति के गुण कविक लानती हूं। तेरा तो प्रत्येक वात पर विश्वास करने का स्वभाव सा हो गया है पर मैं गुग-दोप का मही मांति परीक्षण करती हूं। वह नरम-गरम जैसे भी हैं, ने बच्छी तरह जानती हूं। अरे भोली ! वह अब भी-कपट का थैला है। तू उसका सर्व विरति रूप देखकर उन्हें नरम कह रही है, यह तेरी भूल है। वे अब भी कपट (कपाय आदि) की गठरी वांवे हुए हैं। इंसिटिये हे श्रद्धे ! तू अपने स्त्री मुलभ स्त्रभाव वद्य ही मुक्ते वार-वार यह कह रही है कि छवीले छाल नरम है। मुससे उनके लक्षण कहां छिरे हैं। तू तो विस्वास करना जानती है। परीक्षा करना तूने 'सीखा ही नहीं, इसलिये तू मेरे विना अन्त्री है। संसार में मेरे अनाव में त् अन्वयद्या कहलाती है। यह बात मुन, घद्या अव क्या कहे ॥१॥

-हे थहे ! मेरे भरतार—छदीने लाल चतुर्गतिरूप महल को छोड़ नहीं रहे हैं फिर मेरे पास कैसे बा सकते हैं। इन विरह नी वातों में मुक्ते खाना पीना कुछ बच्छा नहीं लगता है। हे सिख ! 'लाल नरम है' इस तरह हँसी करना भेरी हिंडुयों को चकनाचूर करना है। पित वियोग में रिवर मांस तो पहिले ही जाता रहा, तेरी इस हँसी से अब हाडों का नाश हो रहा है।।।।

सुमित कहती है—मेरे लाल (पित) रात दिन ममता की सेज (शब्या) पर कोड़ा करते हुए सुख मना रहे हैं फिर भी उनींदें ही रहते हैं अर्थात् रात दिन माया में लिप्त रहने से कभी छप्त नहीं होते, हमेशा अष्टप्त ही बने रहते हैं।

कई प्रतियों में 'ओर्रानदे दिन रात' पाठ है, जिसका अर्थ है— ममता की सेज में अत्यन्त लुब्ध है, दिन रात उसी मोह निद्रा में पड़े रहते हैं।

इन बातों में कुछ लेना देना नहीं है अर्थात् ये सब बातें व्यर्थ हैं। प्रातःकाल होता है और चला जाता है अर्थात् काल (समय) यों ही बीता जा रहा है।।३॥

श्री ज्ञानसारजी ने इस तीसरे पद का रहस्यार्थ किया है उस का सार यह है—विभाव रूप रात्री के जाने पर स्वभाव रूप सूर्य के उदय होने से ही चेतन देव आवेंगे। हे सखि श्रद्धे! तेरा यह कहना कि 'लाल' नरम है, अभी आवेंगे, इस वात में कुछ सार नहीं है— कुछ लेने देने जैसी वात नहीं है ॥३॥

मुनि को इतनी अधीर देखकर श्रद्धा उसे आश्वस्त करती है कि हे स्वामिनी! तिनक मेरी वात सुनो, आप इतना खेद न करी। आनन्दधाम आत्माराम उद्यम करने से अवश्य आवेंगे। आप यों शोक करके बैठी रहोगी तो कुछ नहीं होगा। आप मनता की अनुपस्थित (मंदता) में चेतनजी के पास जावो, उधर की निस्सारता दिखाओ। 'इस प्रकार प्रमाद त्यागकर सर्वदा पुरुषार्थं करती रहोगी

तो शनै शनै (धीरे घीरे) चेतन निजस्वरूप में अवश्य आजावेंगे। आपकी सफलता घीरे घीरे उद्यम में ही है। इस प्रकार स्वरूपानन्द रूप-मेद (मोटापन) की वृद्धि होगी अर्थात् आगसे (सुमित से) प्रेम वढ़ता जावेगा ॥४॥

मनुहार व प्रिय मिलन

३६

राग-गौडो

रिसानी श्राप मनावोरे, बीच वसीठ न फेर ॥
सौदा श्रगम प्रेम का रे, परिख न वुम्मै कोइ ।
लै दे वाही गम पढ़े प्यारे, श्रीर दलाल न होय ॥ रि०॥१॥
दोइ वातां जियकी करउ रे, मेटोन मनकी झांट ।
तन की तपत वुभाइये प्यारे, वचन सुधारस छांट ॥रि०॥२॥
नेक कुनजर निहारिये रे. उजर न कीज नाथ ।
नेक निजर मुजरइ मिलै, श्रजर श्रमर सुख साथ ॥रि०॥३॥
निसि श्रं धियारी घन घटारे, पाउं न वाट के फंद ।
करूग कर तो निरवहुं रे. देखुं तुभ मुख चंद ॥रि०४॥
प्रेम जहां दुविधा नहीं रे, निह ठकुराइत रेज ।
"श्रानन्दघन" प्रभु श्राइ विराज, श्राप हो समता सेज ॥रि०॥१॥

पाठान्तर—ग्राप = ग्राय (उ) । मनावोरे = मनावटरे (ग्र) । वसीठ = वसीछि (ट) । फेर = फेर (अ) । फेरा (इ) । ग्रगम = ग्रागम (अ) । परिल = परील (अ), पारल (इ) । कोइ = कोय (इ.उ) । लै "प्यारे = लै दै या ही गम पडइ प्यारे (आ), के दे वाही गम पडेरे (इ.उ) । और = ग्रौर (ग्रा) । होइ = होय (इ.उ) । वोई = दो (इ). दोय (उ) । वातां=वात (आ), वतइं (ग्र), वातां (इ.उ) । जिय = जिये (आ), जी (इ), जीय (उ) । करउरे=करोरे (उ) । मेटोन = मेटउन (अ), मेटो मनकी (इ.उ) । तपत = तपित (ग्रा) । वुक्ताइयै

= बुभाइयइ (अ), बुभाइं (इ) (इ), बुभाइएरे (उ)। नेक कुनजर = नेकु कुन। जिर (आ), नेकुसुनजर (अ), नेक नजर (इ), नेक निजर (उ)। निहारिये रै = निहारीयहरे (अ, आ), निहारिएरे (उ)। कीज = कीजइ (अ, आ)। मुजरइ मिले = मुजरा न ले प्यारे (इ), मुजरो भिलेरे प्यारे (उ)। निसि = निस (अ) निशि (उ) अंधियारी = अंधिआरी (अ)। अंधारी (उ)। फंद = फंदा (आ) फांद (अ)। निरवहुं रे = निरवहौ (व, इ)। चंद = चांद (अ)। प्रेम = पेम (अ.इ) जिहां = तिहां (उ)। नहीं = न (आ)। नहिः रेज मेट कुराही तरेज (इ), नहीं ठकुराइ तेज (उ)। समता = सुमता (इ)

शब्दार्थ—िरसानी = कोधित, रूसी हुई रुष्ट हुई। मनावो = राजी करो, प्रसन्त करो। वसीठ=दूत, दलाल, नध्यस्य। न फेर = न फिर, फेरना नहीं, लाना नहीं। अगम = अगम्य। बुर्फ = जानता हैं परिख = परीक्षा। वाही = उसको ही। गम = खबर। ऑट = ऑटो, उलजन, गांठ। छांट = छिडक कर, डालकर। नेक = तिनक, थोड़ी सी। उजरे = उफ्ज, विरोध। मुजरइ=अभिवादन करते हुये। वाट = मार्ग, राह। निरवहुं = निर्वाह करलूं, पालन करूं।ठकुराइत = बडप्पन। रेज = जराभी. रजमाव भी।

मर्थं—माया के फेर में पहे हुये चेतन को अपनी गलती का कुछ भान होता है! वह श्रद्धा से समता को प्रसन्न करने को कहता है। श्रद्धा उसको बहुत ही सुन्दर उत्तर देती हैं। वास्तविकता यह है कि चेतन जब स्वयं राग-द्वेष विषम भाव छोड़ेगा तब ही उसे समत्व प्राप्त होगा। राग द्वेष छोड़ने से ही आत्म साम्राज्य मिलता है। श्रद्धा होने पर भी जब तक ये विषम भाव छोड़े नहीं जाते तब तक मात्र यह विश्वास रखने से कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। जीव को पुरुपार्थ करके रागादि भाव न्यून करते हुये समत्व प्राप्त करने का प्रवल पुरुषार्थ करना चाहिये। योगीराज ने श्रद्धा के मुख से स्वयं पुरुषार्थ करने का उपदेश दिया है। ममता वश वह अपनी समता को स्वयं भूला है। अब उसे स्वयं ही प्रसन्न करना होगा। श्रद्धा कहती है—हे चेतनराज ! रुप्ट हुई समता को आप ही मनावो-प्रसन्न करो। पित को अपनी पत्नी के व अपने प्रेम के वीच किसी विशिष्ठ (मन्यस्थ) पुरुष को भी नहीं लाना चाहिये क्यों कि यह प्रेम का सौदा (व्यापार) वड़ा ही अगम्य है—वड़ा गहन है। इसे कोई विरला ही पुरुष परीक्षा पूर्वक समक्त पाता है। जो हृदय लिता है व देता है। वहीं इसके ममं को जानता है। अहो चेतनराज! क्याअपनी पत्नी के पास कोई दूती या दलाल भेजे जाते हैं ? अतः आपइस फेर-चक्कर में न पहें, अपनी पत्नी के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं है। दूती व दलाल तो उप-पित्नयों के लिये होते हैं।।१।।

श्रद्धा फिर कहती है—है चेतनराज ! आप यह न समको कि सुदी में काल से समता से अलग रहे हो, वह कैसे प्रसन्न होगी? आपको ध्यान रखना चाहिये कि समता महान पतिवृता है, वह पति का कभी तिरंकार नहीं कर सकती है, न कभी उसको निराश कर संकती है। चेतन फिर प्रश्न करता है कि मुक्ते क्या करना चाहिये। उत्तर में श्रद्धां संक्षेप में कहती है कि हे चेतनरांज ! आप अपने मन की आंट-ग्रंथी को क्यों नहीं मिटा कर समता से अपने हृदय की दो दो वातें कर लेते ? अथवा आप अपने जीव के संबंध में दो वातें करिये। प्रथम तो यहं कि आप अपने मन की परभाव रमण रूप ग्रंथी को खोल डालिये और दूसरी यह कि विषय कापाय जन्य शारी-रिक तपत को (अग्नि को) स्वरूप ज्ञान रूपी अमृत रस की बुंदे छिड़-कर बुक्ता डालिए-शांत कर दीजिये।।र॥

चेतन फिर श्रद्धा से प्रश्न करता है—इन पंचेन्द्रिय के विपयों को कैसे छोड़ा जाय। परभाव रमणता कैसे दूर हो, यह कपाय जन्य मानसिक ताप कैसे शांत हो ?

उत्तर में श्रद्धा कहती है—हे चेतनराज ! आप अनन्त शक्ति-शाली हैं। इस परभाव रमणता व विषय वासना की और थोड़ी भी टेढी हिष्ट रखोगे तो हे स्वामी! ये कुछ भी विरोध न करके अलग हो जावेंगी अथवा हे नाथ ! इस विषय वासनाओं को कुहिष्ट से देखिए, इसमें आप कुछ भी उन्त्र न करे, ये सब पलायन कर जावेंगी। आपकी शक्ति के आगे कौन ठहर सकता है। फिर आपकी तिनक हिष्ट मात्र से ही समता अक्षय व एक रस रहने वाले अव्यावाध सुख के साथ आपका अभिवादन करती हुई, आमिलेगी।।३॥

श्रद्धा द्वारा यह संवाद पाकर समता कहती है-हे सिख़ ! स्वामीनाथ ने स्मर्ण किया है तो में तैयार ही हूं किन्तु अंधेरी रात है और घनघोर घटा छाई हुई है, ऐसे समय में में मार्ग कैसे प्राप्त कुरू है स्वामी! यदि आप ही दया करें तो मेरा निर्वाह हो जावे और आपके चन्द्र मुख का दर्शन हो जावे ॥४॥

योगीराज ने यहां अत्यन्त गम्भीर व मार्मिक वात कही है। उक्त पद का तात्पर्य यह है कि चेतन के पुरुसार्थ से ही सम भाव प्राप्त हो सकता है। अविरति रूप रात्रि प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान किषयों की घनघोर घटा में अप्रमत्त मार्ग कैसे जाना जा सकता है। 'चेतन जब तक अविरति परिणाम, प्रत्याख्यान व अप्रत्याख्यान कषायों को न त्यागे तो समता कैसे प्राप्त हो सकती है।

समता का यह संदेश चेतन को तिनक भी नहीं अखरता है।

मेरे बुलाने पर आप ना आकर मुक्ते ही वहां इबुलाती है ऐसी दिधा

चेतनः को थोड़ी सी भी नही होती है। जहां प्रेम होता है वहां जरा
भी द्वेत भाव नहीं होता। बडप्पन का तिनक भी अभिमान नहीं
होता। आनन्द के समूह चेतन्य प्रभु स्वयं ही समता की सेज (शब्या)

पर आ विराजे अर्थात् अविरति परिणामों को त्याग कर अप्रमत्त
भाव ग्रहण करः लिया।।।।।।।

प्रियतम का समाचार व मिलन ३७ राग--बसंत, धमाल

पूछीइ आली खबरि नई, आए विवेक बघाई ।।

महानंद सुखकी वरिनका, तुम्ह आवत हम गात ।

प्रान जीवन आघार कुं, खेम कुशल कहो बात ।।पू०॥१॥

प्रान अबाधित देव कुं, खेम सरीर लखंत ।

विवहारी घट बढ़ि कथा, निहचं शरम अनंत ।।पू०॥२॥

बंध मोख निहचं नहीं, विवहारी लिख दोइ ।

कुशल खेम अनादि ही, नित्य अबाधित होइ ।।पू०॥३॥

सुनि विवेक मुखते नई, वानी अमृत समान ।

सरघा समता दोइ मिली, लाई "आनंदघन" तान ।।पू०॥४॥

श्र

पाठान्तर—पूछीइ = पूछीयइ (ग्र), पूछीये (इ)। खबरि = खबर (इ. छ)। बधाई = बधाय (इ) वरिनका = बरिनकारे (छ)। नोट-छ प्रति में सब ही पंक्तियों में प्रक्षम विराम में 'रे' है। ग्राधार कुं = ग्राधार की ही (इ)। देवकुं = देवकुं हो (इ)। बिंढ = बढ (इ)। वध (क. बु. वि) कथा = कला (छ)। निहचै = निहचइ (इ) शरम = सरम (इ) परम (छ)। मोख = मोग्न (छ)। निहचै = निहचइ (ग्र)। विवहारी = विवहारे (इ) लिख = लखी (ग्र) लख (इ)। मुख = मुख (आ)। दोइ = दुइ (अ), दो (इ), दोय (छ)। मिली= मिलि (अ. इ), मिलीरे (छ)। तान = तांन (इ). ताम (छ)।

शादार्थ — महानंद — पूर्णानंद । वरनिका — वर्णन । गात = गाती हैं, शरीर । अवल = जो चलायमान न हो, स्थिर । अवाधित = जिसे कोई वाधा (क्कावट) न हो—पीड़ा न हो । खेम = क्षेम कुशल । विवहारी — व्यवहार नय से । घट विद कथा = घटने वढने की बात । निहचै — निश्चय से । शरम — शांति, समभावी । श्री ज्ञानसारजी ने शरम के स्थान पर समर पाठ रखा है श्रीर उसका अर्थ शांत किया है ।

**<sup>%</sup>**श्री ज्ञानसारजी ने इस पद पर टब्बा लिखा है।

म्मर्थ-श्रद्धा कहती है —हे सखि समता ! विवेक महोदय प्रधारे हैं। उनको बघाले—स्वागत करले और कोई न्ये समाचार हो तो पूछले।

विवेक के पास जाकर कहती है कि आपके आगमन से हमें प्व हमारे मन व शरीर की जो महा आनंद प्राप्त होता है, उस महान सुख का वर्णन नहीं किया जा सकता है। आप प्राणनाथ, प्राणधार के कुशल समाचार वर्ताईये।।१॥

्समता का प्रश्न सुनकर विवेक सहोदय उत्तर देते हैं— अचल व अवाधित देव के तो सर्वदा ही कुशलक्षेम देखी जाती, है। वास्तव में तो उनका असंख्य प्रदेशात्मक शरीर तो बाधा रहित निश्चल है। व्यवहार से घटाव क्लाव की, मुख्दुल की, लाभ अलाभ की बात है किन्तु स्वरूपक्षे तो, अनंत हां ति विद्यमान है, ॥२॥

निश्चय से तो वंध मोक्ष नहीं है, व्यवहार से ही वंध और मोक्ष-इन दोनों का विचार देखा जाता है—कहा जाता है। जब निश्चय से वंध-मोक्ष हैं ही नहीं; त्व अनादि से आनन्द ही आनन्द हैं कीम कुशल है, अवाधितपन है। यह आहमदेव शाश्वत है, बाधा रहित है, फिर बंधन कैसा ? दुख कैसा ? संकट कैसा ? पीड़ा कैसो ? अपने आपको अपने आत्मा को भूले हुवों के लिए ही यह सब विष्टन हैं। श्रीमद्राज चन्द्र जी ने कहा है—

> ् छूटेदेहा ध्यासतो, नृहि कर्ता तु कर्म । नृहि भोक्ता तुं तेहनो, क्रेज धर्म नो मर्म ।।११५१। अश्रेज धर्मथी सोक्ष छो, तुं छो मोक्ष स्वरूप । असनत वर्षान ज्ञान तुं, अध्याबाध्य स्वरूप ।।११६।।

देह को ही सब कुछ समभनेवाले विभाव परिणामियों को ही संसार बंघन है। आत्मा की ओर लक्ष देने वाले तो साता -असाता से परे (दूर) रह कर अव्यावाध सुख के अधिकारी होते हैं॥३॥

इस प्रकार विवेकके मुख से यह अमृत समान नवीन वाणी सुन कर श्रद्धा और समना दोनों ने मिलकर आनंद स्वरूप अपने स्वामी ' आत्मदेव को निज स्वरूप की ओर खेंच कर ले आई।।४॥

प्रिय श्रागमन पृच्छा, ३८ राग-वसंत,धमाल व परिवार सम्मेलन

सल्ते साहिब ग्रावेंगे, मेरे बीर विवेक कहाँन सांच ।।
मोसूं सांच कहो मेरी सुं, सुल पायों के नांहि ।
कहानी कहा कहुं उहां की डोले चतुरगित मांहि ।।स० ।।१।।
भली भई इत ग्रावही, पंचम गित की प्रीति ।
सिद्धि सिद्धि रस पाक की, देले ग्रपूरव रीति ।।स० ।।२।।
बीर कहै एती कहा, ग्राए ग्राए, तुम्ह पास ।
कहै सुमत परिवार सों, हम हैं अनुभवदास ।।स० ।।३।।
सरघा सुमता चेतना चेतन ग्रनुभव वांहि ।
सकति फीरि निज रूप की, लीनें 'ग्रानन्दघन' मांहि ।।स० ।।४।।

पाठान्तर—मेरे = मेरे आलीरी (इ.उ)। सुं = सीं (अ)। उहां की = वहां की (आ), कहा कहूँ कहानी ऊंही की (उ)। ग्रावही = ग्रावही हों (इ), आवही हूँ (उ)। सिद्धिः "पाक की - सिद्धि सिधंत रस पाक की हो (इ), सिद्धि रस पाक की हो (उ)। कहा = कहो (इ), कहा हो (उ)। आए ग्राए = ममता ग्राए (उ)। पास = पासि (ग्रा)। सुमता = समता (ग्र.इ)।

सौ = सुं (अ), सौहो (इ), सुंहो (उ)। चेतन = चेतना हो (इ.उ), चेत (आ)। चांहि = आहि (इ.उ)। सकति = सगत (इ)। रूप की = रूप की हो (इ.उ)। सीनै = सीजै (उ)।

शान्दार्थ -सलूने - सुन्दर । मेरी सुं = मेरी शपथ है । उहां की = वहां की । चतुरगित = चारगित (नरक, तियँच, मनुष्य तथा देव) पंचमगित = मोश्र । सिद्धि सिद्धि रसपाक की = पारे (पारद) के रस की सिद्धि, चन्द्रोदय, मकरघ्वज आदि रस को ६४ प्रहरी अग्नि देकर जो सिद्ध किया जाता है उसे रसपाक की सिद्धि कहते हैं । सोना (स्वर्ण) पारा व गंधक का एक-एक अपूर्व ही रूप वन जाता है । यह योग वहुत प्रभावशाली होता है । मृत्यु के मुख में पड़े हुए को भी थोड़े समय के लिये मृत्यु मुख से वचा लेता है । कहा = कथा । चांहि=वहीं पर । सकति = शक्ति । फोर = फोड़कर, उपयोग कर, लगाकर ।

अर्थ-सुमित अपने भाई विवेक से पूछती है-मेरे सलोने साजन (प्रियतम) आत्माराम यहाँ आवेंगे या नहीं ? हेभाई विवेक ! सच-सच वताओ आपको मेरी शपथ है, गृक्तसे सत्य कहो कि वहाँ, उन्हें कुछ प्राप्त हुआ क्या ?

सुमित के वचन सुनकर प्रत्युत्तर में विवेक कहता है—हे सुमते ! वहाँ की कहानी तुम्हें क्या कहूं. कहने जैसी नहीं है। वहाँ वे (चेतन) माया के वज्ञ होकर चारों गतियों में भटक रहे हैं।।१।।

विवेक फिर कहता है कि यह अच्छा हुआ कि अब आत्मराम इघर तेरे सयंम रूप महल में आवेंगे। उघर जाना-चारों गतियों में भटकना है और इघर आना मोक्षरूप पंचम गति की प्रीति है। हे सुमते! तुम्हारी प्रीति स्वरूपानुभव रूप परम सिद्धि रस के परिपाक की सिद्धि है। जो समता को घारण करताहै—इसको वरण करता है। वह तदाकार वृत्ति रूप अपूर्व परिपक्व अवस्था को प्राप्त करता है।

श्री ज्ञानसार जी महाराज के टब्बे में सिद्धि सिद्धांत पाठ है। उसका श्रथं किया है—सिद्धान्त से जो सिद्ध हुआ है ऐसे स्वरूपा-

नुमव संवंबी जो परम रस है उसके परिपाक-की पूर्णना प्राप्ता करता है अर्थात बात्म स्वभाव के अनुभव से आत्म स्वस्प की तदावीर विकास की परिपाक अवस्था को अपूर्व रीति से प्रत्यक्ष करता है।।।।।।

विवेक सुमित से कहता है—में तुम को केवल इतना ही कहता हूं कि तुम्हारे भरतार चेतन तुम्हारे पास आ गये हैं। अरी भोली! इघर उघर क्या देखती है वह तेरे ही हैं। जव-तू सुमित से मित होकर नाना प्रकार की कल्पना जल्पना में उहती है, वह तेरे से दूर प्रतीत होते हैं अन्यथा वह तेरे पास ही है। विवेक से ऐसे मर्म की वात सुनकर सुमित अपने परिवार—श्रद्धा, क्षमा, मार्वव आदि से कहती है कि अपन सब वास्तव में अनुभव के दास हैं।।३।।

श्रद्धा,सुमर्ति और चेतना वहीं होती हैं-जहाँ चेतन अनुभव होता है। अपनी स्वरूप सुविवनी शक्ति लगाकर यह सारा परिवार ज्ञानानेद की सघनता में लीन हों.. गया अर्थातः आनदंशन स्प-होस्स गया ॥१॥

जब तक चेतन को अपनी शुद्ध शक्तियों का वियोग है उसे परमानंद प्राप्ति नहीं-हो-सकती। का कार्य

खपालम्ब च प्रीतम<sup>ें</sup> प्राप्ति ३६ राग-बसंतः घमाल

विवेकी वीरा सह्यो न परें. वरको न श्रापके मीत-।।
कहा निगोरी मोहनी मोहक लाल गँवार ।
वाके घर मिथ्या सुता, रीक परें तुम्ह यार ॥ विं ॥ १॥
कोव मान वेटा नए, देते चपेटा लोक ।
लोन जमाई माया सुता, एह वड्यो परिमोक ॥ विं ॥ २॥
गई दिय को कहा वानए। पूछे समता नाव ।
घर को सुत तेरे मते, कहा लुंकरू वहाव ॥ विं ॥ २॥

तब-समता उदिम कियो; मेट्यो पूर्व साजन । प्रीतिन्परम सु जोरिक, दीन्हो 'श्रानंदेघन' राज ।।विकाशिं।

पाठान्तर-विवेकी = विवेक (आ) । सही = सहनो (उ) । परें = परि (आ), परें आलीरी (इ.उ) । आपके = सवके (उ) । मोहनी = मोहनीहो (इ.उ) । मोहक = मोह कलाल (आ) । गंवार = गिमार (इ) । चर = पर (इ) सुता = सुताहो (इ.उ) । तुम्ह = कहा (इ) । भये = भयेहो = (इ.उ) । जमाई = जवाई (आ) सुता = सुताहो (इ.उ) । परिमोक्त = परिकोक (इ), मिरफोक = (उ) । तिथकी = तिथिको (अ), तिथक्ष (उ), तिथ (इ) । वाभए = वाभए हो । (इ), काभए हो । (उ) । मते = भतेहो = (इ.उ) । कहा लुं = कहा लीं (इ), कर = करत (इ) । कियो = कियोहो (इ.उ) । प्रीति = प्रीतम (इ) । जोरिक = जेरिकेहो (इ.उ) । दीन्हो = दीनी (अ), कीनी (इ) ।

सार्वाचं निरा = भाई। सहा न परे = सहन नहीं होता है, वरदाहत नहीं होता है। वरतो = रोको । मोहनी = मोहनीय कर्म प्रकृति। मोहक = निर्मा कर्म प्रकृति। मोहक = निर्मा करने वाला प्रण, लुभावना। लाल = चेतन रूप । मिथ्यासुद्धा = मिथ्यार मोहनी नामक कन्या। यार = मित्र। चपेटा = तमाचा, थप्पड। परिमोक = परिवार, (टब्बेकार श्री ज्ञानक्षरजी के अनुसार) विस्तार, परम पद, मोक्ष। गई तिथ = गये हुये मुहूर्त को। वाभणे = ब्राह्मण, ज्योतिषी। घर को सुत = स्वरूप घर का पुत्र, ज्ञान गुण। करू बढाव = इससे अधिक बढाकर क्या कहूँ।

मर्थ सुमित विवेक से कहती है है विवेक भाई! मुफी अब सहन नहीं होता है। स्त्री को सोत का दुख मृत्यु से भी अबिक होता है। इसिलये आप अपने मित्र को रोकते क्यों नहीं हो?

निगोंडी- मोहनी, का नया माजना है साहसे हैं.? उसमें कौन सा ऐसा मोहक गुण है.? हे भाई विवेक ! तुम अपने निज

चितन को समभाते क्यों नहीं कि गंवार-बुद्धहीन ही स मोहनी के ' चक्कर में फँसते हैं। उसका परिवार भी कोई, अच्छा नही है। इस मोहनी के मिथ्यात्व मोहनी नामक कन्या है। क्या देखकर उस पर तुम्हारे मित्र चेतन मोहित हो गये हैं।।१।।

इस मोहनी के कोध और मान दो पुत्र हैं। ये दोनों ही पुत्र संसार के लोगों को प्रिय नहीं हैं। ये जहाँ जाते हैं, लोगों से तिरस्कृत होते हैं, लोग इन के अप्पडें लगाते हैं। इस मोहनी ने अपनी मिथ्यात्व परिणति रूपी कन्या का लोग के साथ पाणि प्रहण कर दिया है। लोभ जवाई (जामाता) तथा मिथ्यात्व मोहनी के संयोग से माया नामक कन्या उत्पन्न हुई है। इस प्रकार इस मोहनी के परिवार का तिस्तार फैला हुआ है। (एह बढ्यो परिमोक के स्थान पर 'यह चढ्यो परिमोक' पाठ रखा जावे तो यह अर्थ होगा—स मोहनी ने परम पद मोक्ष के अभिलाबियों पर अपने परिवार सहित चढाई कर रखी है। हे विवेक बन्धु! मोहनी के परिवार पर तुम्हारे मित्र रीभे हुये हैं और व्यर्थ ही जंजाल बढ़ा रहे है। यह मुभे सहन नहीं होता ॥२॥

योगीरांज ने इस पदमें बडे सुन्दर ढंग से जीव की विभाव दशा का वर्णनं किया है। कषायों का यथार्थ स्वरूप दिखाकर जिज्ञासु को चिन्तन के लिये तथा अपने सुधारके लिये सरल शब्दों में प्रेरक सामग्री दी है।

सुमति के यहं वाक्य सुनकर विवेक कहता है — हे सुमते ! विगत तिथि का मृहूर्त ब्रह्मण से क्या पूछती है अर्थात बीते हुये समय 'का वर्णन ज्योतिषी से क्या पूछती है। होना था, वह हो चुका। तेरे लिये यह कितना बड सौभाग्य है कि तेरा पुत्र बैराग्य तो तेरे अधीन है। उसकी प्रशंसा कहाँ तक बढाकर वर्णन करूं। टब्बे में

श्री ज्ञानसारजी ने यह अर्थः किया है—'तेरे स्वरूप रूप घर का पुत्र ज्ञानगुण तेरे मत का ही है—तेरे ताबे हैं इसलिये जब चेतन का तेरें से मिलाप होगा तब ही वह केवल ज्ञान रूप पुत्र का मुख देख सकेगा। इसलिये तू खेद न कर। , चेतन कहाँ तक मोहनी का परिवार वढावेगा यदि उन्हें केवल ज्ञान रूप पुत्र का मुखदेखना होगा तो तेरे पास आना ही होगा-।।३।।

नोट श्री ज्ञानसार जी महाराज ने 'घर को सुत' का अर्थ 'केवल ज्ञान' किया है। इसलिये तीसरे पद के अ'तिम पंक्ति की व्याख्या उनके अनुसार ही की गई है। हमने 'घर का सुत' का अर्थ वैराग्य किया है।

विवेक के उपदेश से समता ने आत्म रूप पति से मिलने का उपाय किया और आत्मा मे रमकर उसके सम्पूर्ण पूर्व के साथ को दूर कर दिया (ख़ुडा दिया) अर्थात् मोहनी और उसके परिवार का साथ छुडा दिया परम तत्व आत्माराम से निरूपाधिक प्रीति जोडकर आनंदघन रूप मुक्ति नगरी का राज्य दे दिया। तात्पर्य यह है कि विवेक प्राप्त होने पर आत्मा में समत्व आ जाता है और उससे कथाय व मोह दूर हो जाता है। इससे परम पद की प्राप्त हो जाती है।।।।

उपालम्ब व मिलन ४० राग-सारंग श्रनुभौ तू है हितू हमारो।

श्राउ उपाउ करो चतुराई, श्रीर को संग निवारो ॥श्रनु०॥१॥ तिसना रांड भांड की जाई, कहा घर करें सवारी । सठ ठग कपट कुटंबिह पोषत, मन में क्यूंन विचारी ॥श्रनु०॥२॥ कुलटा कुटिल कुबुधि संग खेलिके, श्रपनी पत क्युं हारी । 'श्रानन्दघन' समता घर श्रावै, बाजै जीत नगारी ॥श्रनु०॥३॥ ्र प्राठान्तर—ग्रमुकी = ग्रमुभव (६) । न्तू है = तुंहि (उ) । नहितू = हितु । (ग्रा), हितु । (इ.उ) । ब्राउ=ग्राय (६) । उपाउ=उपावः (ब्रा), उपायः (६) । श्रीरको म् अरेरन (६) । यर = प्ररह सवारी (ग्रा), ग्रांसि (छ) । प्रमनरे (विचारो = क्वाको संग निवारो (इ) । में = महं (ग्रा) । संग = संगि (ग्रा) । श्रमंनी = श्रांसिन (ग्रा) । मयुं = न्यूं (६) ।

शब्दार्थं — हित् = हितेच्छु, भलाई चाहने वाला । उपाउ = उपाय . श्रीर = अन्य, माया-ममता । निवारो = दूर करो । तिसना = नृष्णा, संग्रह की लालसा । जाई = उत्पन्न हुई, पैदा हुई, पुत्री । सवारी = सँवारना, संभालना, कल्याण । सठ = शठ, दुष्ट । पौषे = पोषण करती है, पालती है। पित = पत, प्रतिष्ठा, इष्जत, विश्वास ।

मर्थ है: अनुभव ! नुम तो हमारे (मरे व चेतन दोनों के) हिते च्छुहो-भळाई न्करने वाले हो। चेतन ((मरे-स्वामी) के पास जाकर ऐसी-चतुराई या ऐसा उपाय करो जिससे वह (चेतन) माया-असमता का संगः (साय) न करे ॥१॥

्यहातृष्णाः रांड तो भांड की पुत्री है जो नकल करके को गों को प्रसन्न किया करती है। इसने किसके घर में प्रकाश फेल्याहें? किसके घर को सजाया है? यह तो दुष्ट, ठग, कपट आदि अपने प्रपरिवार पका ही पोषण करती रहती है। इइस स्पष्ट और सी बी सच्ची बात को आप मन में क्यों नहीं विचारते हो, सोलते हो ॥ २॥

इस क्लंटा,दुष्ट, नुबुद्धि के साथ खेलकर इस के हाथों की खिलीना बनकर, आप अपनी प्रतिष्ठा क्यों खोते हो प्रथान आप भे हसारा जो विकास हैं। (आप हमारे हिते च्छुहो च्यह विकास, क्यों नष्ट करते हों?) । ब्रानंद के समूह चेतन समता के घर आ जाने तो विजय के नगरे बजने छगें अर्थात सब कार्य सिद्ध हो जोने ।।।।

प्रिया विवशता, व ४१ राग-धन्यासिरी प्रियतम का मिलन

वालूडी श्रवला जोर किसी करें, पीउडो पर घर जाइ।
पूरव दिसि तिज पिच्छम रातडी, रिव श्रस्तंगत थाइ।।वा०॥१॥
पूरण शशि सम चेतन जािणये, चन्द्रातप सननाण।
बादल भर जिम दल थिति श्राणिये, प्रकृति श्रनावृत जाण।।वा०॥२॥
पर घर ममता स्वाद किसी लहै, तन घन जोवन हािण।
दिन दिन दीसे श्रपजस, वाघतो, निज मन माने न कािण ।।वा०॥३॥
कुलवट लोपी श्रवट ऊवट पडें, मन महुता नै घाट।
श्रांच श्रांची जिम जग ठेलिये, कौण दिखावे वाट ।।वा० ॥४॥
वंघु विवेक पीवडी वूभव्यो, वार्यो पर घर संग।
हेज मिलीया चेतन चेतना, वरत्यो परम सुरंग।।वा० ॥४॥

पाठान्तर—पीउडो = पियडौ (ग्र)। घर = घरि (ग्र)। जाइ = जाय (इ.उ)। तिज = जप तप (इ,उ) थाइ = थाय (इ.उ)। पूरण = पूरव (इ) पूनम = (व.वि.) जारु पे = जारु । इ.उ)। नारु = भारु (इ)। ग्रनावृत = ग्रनाहत (अ) भमता = भमतां (आ); भमत (अ)। जोवन = योत्रन (इ.उ) मन = जन (अ)। माने = मांनइ (ग्र)। लोपी = खोइ (इ)। अवट ऊवट पडे = ग्रवट उवट पडइ (उ)। ने = नई (आ)। मन महुता = मान महुग्रा (इ), मन मे हुआ (वि) आंवे = आंघइ (ग्र) जिम जग ठेलिये = जिम ठेलिये (इ,उ)। मिले वे जरु (व.वि.क)। कीरा = कूरु (इ), कुरा (उ)। दिखावे = दिखाडै (इ)। वार्यो = चार्यो (आ)। हेजै " मुरंग = होजइ मिलिया चेतना, वरत्थी परम सुरंग (आ)। हेलै मिलिया चेतन चेतनां, वरत्थी परम सुरंग (अ) ग्रानंदघन' समता घर आगो वाघे नव नव रंग (ब. वि. क)।

नोट—हमारी चारों प्रतियों में ही आनंदघन जी की नाम वाली पंक्ति नहीं है। श्रीर छपी हुई प्रतियों में हमारी श्रंतिम पंक्ति नहीं है, यह श्रागे शोध का विषय है। जब तक कोई श्रन्य प्राचीन प्रति १८ वीं शताब्दी की न मिले तब तक कहा नहीं जासकता है।

शब्दार्थ—वालूडी = वाला, अलप वयस्क । अस्तंगत = अस्त । चंद्रातप = चांदनी । नाएा = ज्ञान । वादल भर = बह्लों का घिराव । दल थिती = कमं दलों की स्थिति । आणिये = जानिये। प्रकृति = स्वभाव । अनावृत = विना ढकी हुई, खुली । भमतां = भूमते हुपे, भटकते हुये। तन = स्वरूप । हािएा = हािन । वाधती = बढता हुआ । कािएा = मर्यादा । कुलवट = कुल की मर्यादा, वंश गौरव । भ्रवट = उलटे रास्ते । ऊनट = ऊवड खावड, भ्रसमतल । महुता = महता, मंत्री । घाट = चक्कर में आना, वशीभूत होना । ठेलिये = धकेलना । वाट = मार्ग । वूभव्यो = समभाया । वार्यो = छुडा दिया, अलग कर दिया ।

प्रथं—बेचारी बाला स्त्री क्या जोर (अधिकार) दिखावे— किस प्रकार कोध दिखलाकर अपने पित को पर घर (ममताकेघर) जाने से रोके। पूर्व दिशा को त्यागकर पिश्चम दिशा से अनुरक्त सूर्य अस्त हो जाता है और अधिकार छा जाता है। अर्थात्— चेतन जब समता रूपी स्व परिणित को छोडकर ममता रूपी पर परिणित में चला जाता है तो उसका ज्ञान प्रकाश अस्त हो जाता है अज्ञानान्धकार छा जाता है।।१॥

पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान चेतन को समभना चाहिये और उस की चांदनी के समान ज्ञान को जानना चाहिये। चन्द्रमा जिस प्रकार बादलों से घिर जाता है उसी प्रकार यह चेतन कर्म दिलकों से आवृत्त हो जाता है - ढक जाता है ॥२॥

दूसरों के घर भटकने से क्या स्वादं मिलता है ? क्या आनंद आता है ? केवल मात्र घन, योवन और शरीर की क्षति है और दिनों दिन अपयश वढता जाता है तया मन अपनी मर्यादा को नहीं मानता है। वेकावू हो जाता है। लाज-शर्म छोड देता है।।३।।

अपने कुल की मर्यादा लोपकर मन रूपी मंत्री के चक्कर में पडकर उल्टे और उवड-खावड मार्ग में-उन्मार्ग में (बुरे रास्ते) चेतन राज जा पडा है। अन्धा मनुष्य अंधे मनुष्य का ही सहारा लेकर चले तो संसार में रास्ता कौन दिखा सकता है। नेत्र हीन व्यक्ति यदि नेत्रवाले का साथ करे तवही वह मार्ग पार कर सकता है।।अ।

समता की वातें सुनकर, विवेक वन्धु ने चेतन स्वामी को समभाया और पर परिणति रूप पर घर का साथ छुंडाया। उस समय चेतन व चेतनां सहज ही मिलगये जिससे सहजानंद रूप परम सुरंग रंग प्राप्त होगया।

श्राश्वासन व प्रियतम केलि ४२ राग-तोडी (टोडी)

मेरी तुं मेरी तुं काहे डरै री। कहें चेतन समता सुनि म्राखर, श्रौर देढ़ दिन भूठी लरै री।। मेरी०।।१।।

एती तो हूँ जानु निहन्नै, री री पर न जराव जरै री।
जव श्रपनो पद ग्राप संमारत, तव तैरै परसंग परै री।।मेरी०।।२॥
श्रीसर पाइ श्रध्यातम सैली, परमातम निज जोग घरै री।
सकति जगाइ निरूपम रूप की, 'ब्रानन्दघन' मिलि केलि करै री।।
मेरी०।।३॥

पाठान्तर—मेरी"""इरैरी = मेरी तुं, मेरी तुं, मेरी तुं काहै डरैरी (अ.उ)। कहै = कहि (इ)। समता = सुमता (इ.उ)। देढ = मेढ (इ)। लरै = लरइ (अ)। तो = तउ (अ), तो (इ.उ)। पर न =

परत (भ्रा)। जरै = जरइ (अ)। पर संग = पद संग (इ)। परै = परइ (अ)। औसर = भ्रवसर (भ्र)। जोग = योग (इ)। घरै = भरइ (भ्र)। सकति = सगित (इ)। जगाइ = जगावे (इ)। मिलिकेलि = मिलकेल (इ), पद केव (उ)। करै = करइ (अ), करी (उ)।

शब्दार्थ — भूठी = व्यर्थ, भूठमूठ ही । निहचै = निश्चय । री री = पीतल । पद = स्वरूप । संभारत = संभालेंगे, याद करेंगे । परसंग = प्रसंग, संगति । ग्रीसर = ग्रवसर, समय । ग्रध्यातम = ग्रात्ना सम्वन्धी । सैली = शैली, रीति, ढंग । निरुपम = अनुपम, अनोखा । केलि = श्रीडा, आनन्द ।

श्रथं—चेतन कहता है—हे सुमते! तू मेरी है, तू मेरी है, फिर क्यों डर रही है, तेरे भय का क्या कारण है? ममता का और मेरा सुदीर्घकाल का सम्बन्ध है, इसको वह (ममता) हटता हुआ—हटता हुआ देखकर एक देढ दिन (एक दो दिन) अर्थात् कुछ समय तक तो तुभसे मुभसे व्यर्थ ही भगड़ा करेगी, परन्तु तू विश्वास रख, मैंने उसे अब अच्छी तरह से पहिचान लिया है। उसने मुभे बहुत भटकाया है। उसके फेर (फंदे) में मैंनें अनन्त वेदनायें सही हैं। उसके चक्कर में (फंदे में) मैं अब नहीं आऊंगा—नहीं पडूंगा। इसलिये एक दो दिन में वह निराश होकर सदा के लिये स्वतः पलायन कर जावेगी।।१॥

इतना तो मैं निश्चयपूर्वंक जानता हूं कि चतुर जौहरी पीतल पर कभी हीरे पन्ने आदि बहुमूल्य रत्न नहीं जड़ाते हैं और यह भी मैं अच्छी तरह ज़ानता हूं कि तेरी ही संगति से मैं अपने स्वरूप को पहिचानता हूं। (सुमित की संगति से ही चेतन अपने स्वरूप को प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बनता है)॥२॥

अाध्यातम शैली अर्थात् जिसमें आत्मा की ओर ही लक्ष रहे, उस ही की घुन रखे और समय पर परमात्मा योग घारण करे— परमात्मपद प्राप्त करने के लिये जिस प्रकार महापुरुषों ने प्रयत्न किया था उसे यथार्थरूप से जानकर, उसी प्रकार आचरण करे। इस प्रकार परमात्मपने का योग घारण कर अपनी अनुपम शक्तियों को जो सुदीर्घ काल से सुप्त पड़ी हैं, उन्हें जागृत करे। अपने में गुप्त वीर्य शक्ति से ज्ञानानंद प्राप्त कर समत्व भाव में रमण करे।।३।।

नोट—जब जीव पुरुषार्थं करते-करते थक जाता है तब उसे काल लिब्ध का सहारा लेना ही पड़ता है। समय पर ही सब कुछ होता है। समय पर ही स्पर्य उदित होता है; समय पर ही वर्षा होती है; समय पर ही सर्दी व गर्मी पड़ती है। इस प्रकार काल का महत्व सिद्ध होता है। ज्ञानियों ने पांच कारण मिलने पर कार्यसिद्धि बताई है। वे पांच समवाय कारण ये है—(१) काल, (२) स्वभाव, (३) नियति, (४) पूर्व कृत्य और (५) उद्यम। काल लिब्ध का परिपाक कब होगा यह तो सर्वज्ञ के सिवाय कोई नहीं जानता। इसलिये जीव को पुरुषार्थं करने में कभी कमी नहीं करनी चाहिये।

प्रियतम को ४३ राग–सारंग उपालम्ब व प्रार्थना

श्रानुभौ हम तो रावरी दासी।
श्राइ कहाँ ते माया ममता, जानु न कहा की वासी।।श्रनु०।।१।।
रीभि परे वाके संग चेतन, तुम्ह क्युं रहे उदासी।
वरजो न जाइ एकंत कंत कुं, लोक में होवत हाँसी।।श्रनु०।।२।।
समभत नांहीं निठुर पति एती, पल इक जात छं मासो।
'श्रानन्दघन' प्रभु को घर समता, श्रटकिल श्रौर लिबासी।।श्रनु०।।३।।

पाठान्तर—हम तो = हम हे (इ)। रीफि = रीफ (इ.उ)। तुम्ह = तुम (इ.उ)। रहे = रहत (इ). रहै (उ)। वरजो = वरज्यो (इ.उ)। होवत = होत न (ग्रा)। पल इक = पलक (इ)। ग्रानन्दघन """ समता = ग्रानन्दघन

प्रभु घर समता के (ग्रा), आनन्दघन प्रभु घट की समता (उ) आनन्दघन प्रभु घर की समता (क.वु.वि.)। अटकलि = ग्रटकल (इ)। लिवासी = निवासी (उ), लवासी (ग्रा), (क.वि), लखासी (व)।

शब्दार्थ-रावरी = ग्रापकी । रीकि परै = आशक्त हो गये, मोहित हो गये । एकंत = सर्वथा । अटकलि = काल्पनिक, आनुमानिक । लियासी = छद्मवेशी ।

श्चर्य-सुमित कहती है—में तो आत्माराम की दासी हूं। हे अनुभव! वताओ, यह माया-ममता कहां से आ गई। में तो यह भी नहीं जानती कि यह (माया-ममता) किस देश की रहने वाली है ॥१॥

अनुभव कहता है—चेतन उस माया पर मोहित हो गये हैं। इसिलये उसी के साथ रहते हैं, पर इससे तुम उदास क्यों रहती हो ? तुम अपना स्वभाव क्यों छोड़ती हो ?

प्रत्युत्तर में समता कहती है—'हे अनुभव!' पित को सर्वथा रोका नहीं जा सकता, क्योंकि इससे मेरी लोक में हँसी होती है। लोग कहेंगे कि पित को क्या में कर रखा है, न मालूम कौन से क्यी-करण का प्रयोग किया है। इस प्रकार लोग वातें वनाकर मेरी हँसी करेंगे, वह कैसे सहन की जा सकती है? लोग पित के लिये कहेंगे कि यह स्त्रैण है—स्त्री का दास है। पित का यह उपहास मुभे सर्वथा असह्य होगा।।रे॥

निष्ठुर पित इन वातों को समक्ष नहीं रहे हैं। इसलिये मेरा एक एक पल छै छै मास के समान व्यतीत होता है। आनदं के समूह प्रभु (चैतन्य) का घर (घर वाली) तो समता ही है। अन्य तो (माया-ममता) आनुमानिक है काल्पनिक छद्मवेपी है।।३।। प्रेमोपालम्ब, सिंब संवाद ४४

राग-कान्हरौ

पिया तुम निठूर भये क्युं ऐसे।
मैं तो मन ऋम करी राउरी, राउरी रोती ग्रनैसे ॥पि०॥१॥
फूल फूल भंवर की सी भांउरी भरत हो, निवहै प्रीति क्युं ग्रेसे।
मैं तो पिय ते ग्रेसी मिली ग्राली, कुसुम वास संगि जैसे ॥पि०॥२॥
श्रठी जात कहा पर एती, नीर निवहीय भैसे।
गुन ग्रीगुन न विचारी 'ग्रानंदघन', कीजीय तुम हो तैसे ॥पि० ॥३॥

पाठान्तर—पिया = श्रीया (च)। ऐसे = असे (अ)। करी = किरि (अ), कर (इ.ड)। राडरी = रावरी (उ)। रीति = रीत (इ.ड)। नोट—"ड" श्रितमें 'मेंतो — राडरी' के स्थान पर 'मैं तेरिय वै असी मिली याली' है। सी — सो (उ)। अते = रसे (उ)। तिय = श्रिय (अ)। नोट—'ड' प्रति में 'मैं तो ""आली के स्थान पर "में तो मन वच कम करी रावरी" है। वास संग = वासि संग (अ), वान संग (इ.ड) अठी = अंठी (इ), एसी (उ)। जात = यांन (इ) नीर निवहीय = नीर न वहिये (अ), नारी नविह इ (उ)। नोट—'ड' प्रति में यहाँ पाठ इस प्रकार है। "ऐसीं मैजात कहा पर येती, नारी न विह मैसे (डां) अ वीया न कहा पर एती, नित निरवहिये मैसे"। श्रीप्रन=अवप्रन (अ) आयुन विचारो (आ)।

शब्दार्य — निटुर = निष्ठुर, कठोर। कन = कमें। अनैसे = बुरी, श्रनिष्ट कारक, श्रीर ही तरह की। मंबर की सी = भ्रमर जैसी। मांखरी भरत हो = चक्कर काटते हो।

श्चर्य—मुमित अपनी सखी श्रद्धा को साथ लेकर अपने स्वामी चेतन को उपालम्ब देती हुई प्रसन्न करने का प्रयत्न करती है। सुनित कहती है —हे नाथ! आप ऐसे कठोर हृदय क्यों हो गये, जो मेरो खोज खबर हो नहीं लेते हो। मैं तो मन, वचन और कमें से (काया से) आपकी ही हूं। सदा आपके स्वभावानुसार चलने वाली हूं किन्तु आप की रीति (ब्यवहार) और ही तरह की है— अच्छी नहीं है, अनिष्ट कारक है ॥१॥

जिस प्रकार भ्रमर एक फूल से दूसरे फूल पर फिर तीसरे पर चारों ओर चक्कर काटा करता है (बूमता है) उसी प्रकार हे चेतन-राज! आप ममता के वश होकर चारों ओर भटक रहे हो। इस प्रकार प्रीति (प्रेम) कैसे निभ सकती है? जब आप पर भाव में रमे हुये हो तो मुक्त से प्रीति कैसे कर सकते हो।

फिर श्रद्धा की ओर देख कर सुमित कहती है-हे सिख ! मैं तो अपने प्रिय चेतन के साथ इस प्रकार एक रंग हो रही हूं जिस प्रकार फूल में सुगंध बसी रहती है ॥२॥

सुमित की यह वात सुनकर श्रद्धा कहती है - हे सुमते ! फूल का और सुगंध का जो संबंध है वह तो तेरा और चेतन का नहीं है, वह संबंध तो चेतना का है तू यह अभिमान की बात क्यों करती है ? किस वल पर इतनी अकड दिखाती है ? वैल के न होने पर क्या भेंसे पर पानी नहीं लाया (ढोया) जाता ? हे सुमते ! तेरा व चेतन का संबंध उपशांत मोह ग्यारहवें गुण स्थान तक ही है । यथास्यातचारित्र जो, १२वें, १३वें गुण स्थानों में होता है, वहाँ तेरी गित नहीं है । वहाँ तो चेतना ही का साथ है । इसचितावनी को सुन कर सुमित तिनक लिजत होकर चेतन से कहती है कि आनंद रूप चेतन प्रभु! मैं आगे गुणस्थानों में नहीं पहुँचा सकती-इस अवगुण का, तथा चेतना अंत तक पहुँचा सकती है-इस गुण का विचार न कर के मुभे आप जैसे हैं वैसी वना लोजिये ॥३॥

श्री ज्ञानसारजी महाराज ने अपने टब्बे में इस प्रकार इस पद का अर्थ किया है। सुमित श्रद्धा सखी सहित आत्म भरतार से उपालम्भ के रूख से विनतों कर मनाने की इच्छा करती हुई कहती है- हे भरतार! आप कठिन हृदय किस कारण से हो गये? मैं तो मन कर के, वचन कर के, काया कर के आप ही की रीति-चाल को ग्रहण किये हुये हूं, फिर भी आप ऐमे निष्ठुर क्यों हो।।१॥

हिंपत भैंवरा जिम प्रकार फ़ल पर बार बार फिरता है, उसी प्रकार में फिर रही हूं किन्तु आप को मेरी गिनती नहीं है। गिनती रखे विना प्रीनि कैसे निभ सकती है। सुमित ने जब ऐसे वचन भरतार से कहे तब श्रद्धा सुमित से कहती है—हे सिख ! तुम 'गउरी रीति अनेसे' ऐसा मुख से कहती हो, पर कोई भी रीति से तुमने भरतार से दुभांत दिखाई होगी तभी भरतार निष्ठुर हुए होंगे—मन फेर लिया होगा। इस पर सुमित श्रद्धा से कहती है—हे सिख ! में तो फल और सुवास के मिलाप के समान भरतार से मिल रही हूं किन्तु मालूम नहीं भरतार किस कारण निष्ठुर हो रहे हैं ॥२॥

सुमित फिर कहती है—हे सखी श्रद्धा! में तो जितनी वात कहती हूं—सीख की कहती हूं, और वह अंठे जाते हैं-अवगुण मानते है। इस का क्या कारण है? पखाल (पानी भरने का चमडे का वडा थैला) के पाणी का निभाव बलद (वैल) से होता है पर वह हाजिर न हो तो भेंसे से ही निभाना पहता है अर्थात् गुद्ध चेतना रूप बलद के अभाव में मुभ सुमित भेंसे से ही निर्वाह करें। मेरे और गुद्ध चेतना अवगुण गुण न विचारें। मेरे से दशम गुणस्थान के ऊपर नहीं चढा जा सकता है। इस अवगुण को तथा गुद्ध चेतना से बारहवें तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान अरोहण रूप गुण का विचार न कर के हे आनंद के समूह आत्माराम! आप आनंदघन हो, इस भांति मुभे भी अपने चेतन स्वभाव में मिला लीजिये।।३।।

ऐसी कैसी घर बसी, जिनस अनैसी री।
याही घर रहसी वाही आपद हैसी री।।ऐसी०।।१।।
परम सरम देसी घर मेड पैसी री।
याही ते मोहिनी मैसी, जगत संगैसी री।।ऐसी०।।२।।
कौरी की गरज नैसी, गुरजन चलैसी री।।
'आनन्दघन' सुनौसी, बंदी अरज कहैसी री।।ऐती०।।३।।

पाठान्तर—ऐसी = अइसी (आ), असी (अ), इसी (उ)। घर = घरि (अ.उ)। है सी री = है इसी री (अ)। मेउ = मच (अ), मैहु (इ)। मैती = मइंसी (उ)। जगत संगैसी री = जग जस गैसी री (ग्र.इ), जस रहसी री (उ)। ग्रुरजन = ग्रुरज (आ)। सुनौसी = सुनैसी (आ)। बंदी = बांदी (उ)। कहैंसी री = कहिंसीरी (उ)। नोट-'ग्रा' प्रति में नं० २ का पद नहीं है जबिक अ.इ.उ तीनों प्रतियों में है।

शाब्दार्थं —घर वसी = घर में वस गई, -रह गई। जिनस = जिन्स, वस्तु। अनैसी = अमंगलकारी, अनिष्टकारी। पैसी = घुसकर, प्रवेशकर। परम सरम=अत्यन्त लज्जा। मैसी = मेपी, मादा भेड। कौरी = कोडी। गरज = प्रयोजन, मतलव। नैसी = बुरी। चलैसी = चलने वाली, लाने वाली, नाश करने वाली।

स्थं - भुमित कहती है - यह ऐसी अनिष्टकारी माया किस प्रकार ज्ञान स्वरूप चेतन के घर में बस गई है। यह जिस के घर में रहती है वहाँ अनेकानेक संकट व विपत्तियां पैदा करती है।।१॥

घर में प्रवेश कर यह अत्यन्त लज्जा दिलाने का कारण होती है। लोग अनेक प्रकार से उपहास करते है जिस से लज्जित होना पडता है। भेड के ममान यह मोहनी माया संसार से संवंध रखने वाली है।।२॥

इस ही लिये इससे एक कीडी की भी गरज सरनेवाली नहीं है। अनुभव विवेक आदि गुरूजनों को यह नाश करने वाली बडी बुरी है। यह वंदी (दासी) सुमित माया के सव गुण वर्णन कर रही है। है आनंद स्वरूप चेतन! इन्हें सुनिये, और माया का साथ छोड दीजिये ॥३॥

विनय

४६

राग-सारंग

नाथ निहारो न भ्राप मता सी।
वंचक सठ संचक सी रीते, खोटो खातो खतासी ।।नाथ०।।१।।
भ्राप बिगूचन जग की हांसी, सैराप कौरा बतासी।
निज जन सुरिजन मेला श्रैसा, जैसा दूध पतासी।।नाथ०।।२।।
ममता दासी भ्रहित करि हर विधि, विविध मांति संतासी।
"श्रानन्दघन" प्रभु बीनती मानो, श्रीर न हितू समता सी।।नाथ०।।३।।

पाठान्तर—नाथ"" मतासी = नाथ निहारो ग्राप मत मतासी (इ), नाथ निहारू आप सनामी (उ)। संचक = चंचक (उ)। रीतै = रीतइ (उ)। निज" असा = निज जन मेला असा (ग्रा) ममता = समता (इ)। करि = करै (अ)। हर = हरि (इ)।

शब्दार्यं — आप मता सी = आप के मतानुयायी । वंचक = ठग, धूर्ता । संचक = कृपण, संचय करने वाला, जमाखोर । खातो = हिसाव, खाता । खतासी = खताया जायगा, लिखा जायगा । विशूचन = बुराई करना, श्रसमंजस, हवना । सैगाप = सयानापन, बुद्धिमत्ता । वतासी = वतायेगा । सुरिजन = सज्जन लोग । पतासी = पताशा, वताशा । संतासी = सतायेगी, दुख देगी ।

प्रथं — सुमित कहती है — हे चेतन ! आप विश्वास क्यों नहीं करते कि मैं आप की इच्छानुसार चलने वाली हूं। घूर्त्त, कपटी और कृपण ममता बुरा खाता खताने वाली है अर्थात दुर्गित में लेजाने वाली है।।१।।

ममता का साथ अपने आपको दुखों में डालना या डुबोना है, साथ ही संसार में अपनी हसो कराना है। ऐसे कार्य को कौन बुद्धि-मत्ता (समभ्रदारी) वहेगा? अपने सगे सबंधियों व सज्जन पुरुषों का मिलाप तो दूध-बताशे के समान है जिससे मधुरता की वृद्धि होती है अर्थात् सयंम-सतोष विवेक आर्जव औरमार्दव आदि चेतन के स्वजंन है। इनके संयोग से अनेक गुण प्रकट होते हैं और उनकी वृद्धि होती है। 12।।

इनके विपरीत ममता दासी व उसका परिवार हर प्रकार से अहितकर है और अनेक प्रकार के संतापों को (दुलों को) उत्पन्न करनेवाला है। योगीराज आनंदघनजी कहते हे—हें आनद के समूह चेतन! मेरी विनय सुनो, समता के समान आपका हितकारी और कोई नहीं है।। ३।।

सपत्नी दोष वर्गान

४७

राग-सोरठ

वारौ रे कोई पर घर भमवानो ढाल, नान्हीं बुहु नै पर घर भमवानो ढाल ।

पर घर ममतां भूठां बोली थई देस्य घनीजी नै आल । वा०।।१।। अलवे चालो करती देखी, लोकडा किहस्ये छिनाल । श्रोलंभडा जरा जरा ना आरगी, हीयडे उपासै साल । वा०।।२।। बाई पडोसरा जोवो नै लिगारेक, फोकट खास्यै गाल । 'आनंदघन' सुंरंग रमे तो, गोरे गाल भक्षकइ भाल । वा०।।३।। पाठान्तर — भगवानो = रमवानो (अ.इ.) ममवांवो (उ) । ढाल = टालो (उ) । भमतां = रमवा (अ.इ.) । भूठां = भूठो (उ) देस्य = देसइ (ग्रा.उ.) धनोजीनं = धग्गीनं (इ), बग्गीजीनं (अ.उ.) । चालो = वाला (आ) । देखी = होई (३) । लोकडा = रोकडला (ग्र) । काहस्ये = किसइ (ग्रा), कहसी (अ), किस (उ) । जग जग = जिग्ग जिग्ग (अ) । हीय डै = हीय डइ (ग्रा), हिय डै (अ) । उपासे = उपास इ (आ), उपास्ये (ग्र.इ.) । वाई = वाई (ग्रा), वाइ रे (उ) लिगारेक = लगारेक (ग्रा) । खास्ये = खास इ (आ), खासी (उ) । मुं = स्युं (अ,इ), मु (उ) । रंग रमें = रंगे रमे (उ). रंग रम इ (ग्रा) । गाल = गालि (आ) । भनुकइ = भनुके (ग्र) ।

शाद्वार्थं — वारी = रोको । भमवानो = भ्रमणा करनेका, धूमनेका। दाल = आदत । नान्ही = छोटी । यई = होगई। धनीजी = पितदेव, स्वामी। आल = कलंक । अलवं = उधर उधर की व्यर्थं वातें। चालो = काम, ख्याल, नमाशा। लोकडा = लोग। छिनाल = वरचलन, व्यभिचारि गी। ओलंगडा = उगलम्भ। जगा जगा ना = प्रत्येक व्यक्ति के। हियडे = हृदय में। उपासै = उत्तान्न होना। घाव = छेद, छाप, रडक, कांटा। जोवो = देखो। लिगारेक = निका। फोकट = व्यर्थं, मुपत। गाल = गाली, अपशब्द। रंग रमे तो = रंग में शीडा करे तो; जानानंद में मग्न हो जाय तो। भवूके = चमके, चमकने लगे। भाल = ज्योति।

प्रयं—समता अपने सम्बंधी अनुभव, विवेक, श्रद्धा आदि से धात करती हुई कहती है— चेनन की इस छोटी स्त्री-अगुद्ध चेतना को पर घर-पौट्गलिक भावों में घूमने की कुटेव (खराब आदत) पड़ी हुई है अरे कोई भी इसकी पर घर घूमने की आदत को छुडावो। पर घर घूमने से यह भूंठ वोलने वाली हो गई है रागद्धेष वश होकर फ़त्य को अकृत्यं और अकृत्य को कृत्यं कहने लगी है इस प्रकार यह अपने स्वामी चेतन को वहकाती है जिससे पित को कलित होना पडता है।।।।

इसकी इधर उधर की फालतू प्रवृति को देख कर लोग इसे पुंश्चिल (छिनाल) कहते हैं। स्वाभाव परिणित को छोड कर जव चेतना राग-द्वेष पर भावों में भटकती है, तव बुद्धिमान इसे छिनाल कहें तो कोई अयुक्त नहीं। यह प्रत्येक से उपालम्भ लाती है जिस से हृदय में छेद हो जाते है।।२॥

समता, श्रद्धा, सुमित आदि को कहती है, हे वहिनों! जरा इघर तो देखो—यह (अग्रुद्ध चेतना) व्यर्थ ही गालियें क्यों खाती है क्यों वदनाम होती है। यदि यह आनंदधन चेतन के रंग में रमण करे तो इसके स्वभाव रूप गौरे गालों पर उपयोग रूप तेज चमकने लगे और सब दुर्गुण नष्ट हो जावें।।३।।

प्रेम लक्षरणा भक्ति

४८

राग-केदारो

प्रीति की रीति नई हो प्रीतम, प्रीति की रीति नई।
मैं तो प्रपनो सरवस वार्यो, प्यारे कीन लई ।।प्री०।।१।।
मैं वस पिम्र के पिम्र संग म्रौर के, या गित किन सिखई।
उपकारी जन जाय मिनावी, म्रब जो मई सो मई।।प्री०।।२।।
विरहानल जाला म्रति प्रीतम, मौ पै सही न गई।
म्रानंदघन' ज्युं सघन घन घारा, तब ही दै पठई।।प्री०।।३।।

पाठान्तर—मैं = में (इ,उ)। वस = वसो (था), वसु (थ.उ)। पिग्र के पीग्र = प्रीम के पीय (ग्र), पिय के पिय (इ.उ)। सिखई = सखई (ग्र), सिखाई (उ)। उपकारी = उपगारी(इ)। अव जो भइ = जो कछु भई (इ)। सो = सु (अ), जाला = माला (इ), ज्वाला (उ)। ग्रति प्रीतम=ग्रभिपम (ग्र) ग्रति हि-कठिन है (इ)। ज्युं = जु (ग्र), यु (इ), यूं (उ)। घन = रस (अ)।

शब्दार्थ - सरवस = सर्वस्व । वार्यो = निछावर कर दिया । मिनावो = मनावो, प्रसन्न करो । पठई = भेजी ।

श्रथं—हे प्रियतम! आपने यह तो प्रीति की नवीन ही रीति अपनाई है। यह प्रेम-पंथ तो नहीं है। हे प्यारे! मैं ने तो अपना मर्वस्व आप पर निछाबर कर दिया है और आप किसी दूसरी को ही अपनाय हुये है।।१।।

समता श्रद्धा व विवेक में कहती है—मैं तो अपने प्रियतम चतन के वश में हूं और प्रियतम ममता के संग रंगरेली कर रहे हैं। समक्ष में नहीं आता कि यह ढंग किसने सिखाया है। हे श्रद्धे ! हैं विवेक ! आप ही मेरे परम उपकारी हैं। आप लोग चेतन को जाकर समक्षायो-प्रसन्न करो और कहो कि जो कुछ होना था वह हो गया। समता इन गई गुजरी वार्तों का तुम्हें उपालम्भ नहीं देगी। आप बीती बानों को चिन्ता न कर उस के पास प्रवारो ॥२॥

विवेक और श्रद्धा चेनन से कहते हैं-हे प्रिय चेतन ! आप जानते हो कि विरह-अग्नि की ज्वाला वडी दारुण होती है, उस से (समता से) सही नहीं गई इसिलये आप को लेने के लिये हमें भेजा है। विवेक और श्रद्धा के मिलन से चेतन का हिष्ट-मोह हटता है और स्वरूप-ज्ञान प्रगट होता है। तुरंत ही आनंदघन चेतन समता की विरह ज्वाला को बुक्ताने के लिये सघन मेघ की घारा (आनंद की घारा) देकर श्रद्धा व विवेक को मेज दिया।।३॥

तात्पर्यं यह है-श्रद्धा और विवेक होने पर ही यह जीव ममता के वश नहीं होता, उसे समत्व प्राप्त हो ही जाता है। सुमित मन की दशा है। वह केवल ज्ञान होने के पहिले ही रहती है और चेतना तो जीव का लक्षण ही है। वह सदा सर्वदा जीव के साथ है। जैसा कवि ने स्वयं कहा है—

"चेतनता परिणाम न चूके, चेतन कहै जिनचंदजी"

प्रेम लक्षिणा भक्ति की पराकाच्ठा ४६ राग मारू

मनासा नट नागर सुं जोरी हो, मनसा नट नागर सुं जोरी।
नट नागर सुं जोरो सिख हम, श्रीर सबन से तोरी।।म०।।१।।
लोक लाज नाहिन काज, कुल मरजादा छोरी।
लोक वटाऊ हसो विरानों, श्रापनों कहत न को री।।२।।
मात तात सज्जन जात, बात करत सब मोरी।
चालै रस की क्युं करि छूटै. सुरिजन मुरिजन टोरो।।३।।
श्रीरहानों कहा कहावत श्रीर पै नाहिन कीनी चोरी।
काछ कछ यो सो नाचत निवहैं, श्रीर चाचरि चरि फोरी।।म०।।३।।
जानितन्यु मित्रत पाई, प्रेम पीयूष कटोरी।
मोदत 'श्रानंदघन' प्रभु शशिधर, देखत हिट चकोरी।।म०।।६।।

पठान्तर—मुं=मं (ग्रा). मुं (ग्र.इ)। मवन = मविन मी (ग्र), मवन मुं (इ.उ)। नोट—नटनागर "हम यह पंक्ति 'छ' प्रति में नहीं है। लाज = लाज हम (इ.उ)। काज = कार्ष (उ), काजा (वि)। हसो = हम सें (ट), कहत = कह (उ)। कोरी = लोई (इ.ट.)। नात सज्जन = अरु मजन (इ.उ)। जान = नात (उ)। यात मोरी = बात कहत मोरी (आ), वात करत है मोरी (इ), वात मव भोरी (उ)। रम की = इम की (इ)। ओरहानो = ग्रोरहनों (ग्रा), थौराहनों (अ), ग्रोराकहनों (उ)। कछ्यो = कछँ (उ)। निवहैं = नीवहैं (या)। चाचिर चिर = चाचर चर (इ), चावर चिर (उ)। जान = प्यांन (इ)। मियन = मथत (इ), मुकत (छ)। पीयूप = पीटप्य (छ)। मोदत = मोदिन (उ)। घिनवर = बावर (इ.छ)।

शब्दाग्रायं —मनसा=इच्छा । नटनागर = सर्व कला कृगल । जोरी = जोडी दी । तोरी=नोडदी । छोरी=छोड दी । वटाऊ=राहगीन, यात्री । विरानो= पराया। को = कोई। जात = जाति । भोरी = भंछी। चारयं रस वी = जिनने एक बार रनास्वादन कर लिया है। सुरिजन = सज्जन छोगों की नत्संगति। टोरी = टोल, समूह। औरहानो = ज्यालक्म। और पं = दूनरों से। काछ कछ्यो = जिसने कच्छा पहिन लिया है, जो हर प्रकार से नज कर तैयार होगया है। निबई = निर्वाह करना ही होगा। चाचरि = हउवन । मो उन = प्रमन्न होते हैं। शशिधर = चन्द्रमा।

श्रथं—कि की सद्बुद्धि कहती है—हे सखी श्रद्धा! मैंने अपने मन को चतुर नटनगर (चेतन) की ओर लगाया है। उस नटनागर (चेतन) से अपने मन को लगाने के पश्चात् और सम्पूर्ण हम्य-प्रपंत्र से अपने मन को हटा लिया है॥१॥

मुभे, लोक लज्जा से कोई संबंध नहीं है। कुल मर्यादा की आड में बनी हुई जो बाड़े बंदी है उसे मैने त्याग दिया है। रास्ता चलने वाले अन्य लोग (विभाव परिणितयें) भले ही मेरी हँगी करें, इसकी मुभे चिन्ता नहीं है क्यों कि लोगों का स्वभाव दूसरों की हँसी उडाने का ही होता है। अपने अवगुण कीन देखता है? और देख भी ले तो दूसरों पर कीन प्रकट करता है।।।।।

माता पिता स्वजन तथा जाति वाने सज्जन ये सव भोली भोली वातें करते हैं जिस सत्संगति का एक वार पान कर लिया है उन अत्यन्त श्रेष्ट जनों (स्वभाव परिणितियों) के समुदाय का साथ किस प्रकार छूट सकता है।।३॥

अन्य लोगों के द्वारा (प्रलोभनों द्वारा) मुक्ते (सद् बुद्धि को) क्यों उपालंभ कहा रहे हो (दूर हटा रहे हो)। मैंनें किसी की चोरी तो की नही है। बुरा कार्य तो किया नहीं है। जिसने कच्छ पहिन लिया है उसे तो नाचना ही होगा। अर्थात् जो कार्य जिसने करना विचार लिया है उसे तो वह करेगा हो। अब नाचे विना

. . . .

छुटकारा ही नहीं है-अब उससे कैसे दूर हटा जा सकता है। अर्थात् जिसने चैतन्य शक्ति से मन लगा रखा है उसे तो स्वसत्ता—चेतन को अनावरण करना ही होगा। आत्मानुभवी का हृदय अपने लक्ष से कैसे च्युत हो सकता है। इसलिये मुभे उपालभ्भ देना व्यर्थ है। मेरा लक्ष एक मात्र उस नटनागर (चेतन) की ओर है।।४॥

ज्ञान रूपी समुद्र के मंथन से विश्व प्रेमरूपी अमृत से भरी कटोरी प्राप्त हुई है। आनंदघनजी कहते है कि मेरी हिष्ट रूपी चकोरी आनंदधाम चेतन रूप चन्द्रमा को देखकर अत्यन्त मोद मनाती है— प्रसन्न होती है।।।।।

पति रंजन

५०

राग–श्रासाउरी

मीठो लागै कंतडो नै, खाटो लागै लोक ।
कंत बिहुएी गोठडी, ते रन मांहि फोक ।।मी०।।१।।
कंतडा में कामरा, लोकडा में सोक ।
एक ठामें किम रहै, दूध कांजी थोक ।।मी०।।२॥
कंत विण चौगति, ग्राणु मांनु फोक ।
उघराणी सिरड फिरड, नांणो खर रोक ।।मी०।।३॥
कंत विन मति म्हारी, ग्रवहाडानी बोक ।
धोक द्यूं 'ग्रानन्दधन' ग्रवर ने द्यूं टोक ।।मी०।।४॥

पाठान्तर—मीठो = मिठो (आ), मीठा (उ)। लागै = लागइ (आ)। साटो = खारै (इ), खारा (उ)। विहुणी = विन (आ), विना (इ), रन = नर (ग्र.इ) वन (उ)। में = मइ (आ)। सोक = सोग (उ)। ठामें = ठांमि (आ)। विण = विनु (ग्र), विना (इ.उ)। आंणु "" फोक = मानु ते कोक (इ), मानू ते फोक (उ)। सिरड फिरड = सरड फरड (ग्र), नांगो =

नाएा (अ.इ) । स्वरू = तेजे (उ) । मित = गित (ग्र), यो मिती (इ), जो मिति (उ) । अवहाटा = अवडाहा (उ) । टूं = घुं (आ) । 'श्र' और 'उ' प्रतियों में 'आनंदयन' के वाद प्रभु गब्द और है। अवर नै""टोक = अवरनै दोक (ग्रा) । ग्रवर नै घुं ढोक (उ) ।

शब्दार्य—कंतड़ो = कंत, पित । खाटो = खट्टा । गोठडी = गोठडी । रन मांहि = जंगल में । फोक = एक जंगली राजस्थानी पौदा को सुखां कर माग श्रादि मे खाया जाता है, सत्व हीन । कामण = कामिनी, जादू, मोहन मिता । लोकडा = लोगो में । ठामे=स्थान में । थोक = समूह, एकत्रित । श्रांगु = समभती हूँ । उपराणी = चगाई, उधारी रकम । सिरड फिरड = धक्का जिल्हाने वाली, पागलपन । नांगों = रूपया, रकम । खरू = खरा, श्रेष्ठ । रोक= रोकटी । अवहाडानी वोक = युवे से पानी निकाल कर डालने के स्थान (ढागों) के पास बना छोटा युंड । धोक=प्रणाम । अवर नै = अन्यको । टोक=रोक, वर्जन, मनाही, इनकारी ।

श्चर्य—सुमित अपनी सखी श्रद्धा से कहती हैं—मेरे आत्माराम भरतार मुक्ते अत्यन्त प्रिय लगते हैं। मेरे स्वामी के अतितिक्ति अन्य लोग मुक्ते प्रिय नहीं लगते हैं—रूचिकर नहीं लगते है। स्वामी (आत्माराम) के विना गोष्ठी, जंगल में फोक के समान हैं अर्थात् निस्सार है।।१॥

मुक्ते पति में आकर्षण लगता है, अन्य लोगों में शोक संताप विखाई पडता है, क्यों कि ममता के क्श सदा आतं रौद ध्यान रहते है। दूघ और कांजी किस प्रकार एक स्थान में रखी जा सकती है? एक ही हृदय में समता तथा ममता साथ कैसे रह सकती है? जहाँ समता है वहां ममता नहीं रह सकती है, जो ममता के क्शीभूत हैं उन्हें समता कैसे प्राप्त हो सकती है।।।।

सुमित कहती हैं —हे सखी श्रद्धा! मेरे पितर्देव शुद्ध चेत्न के ' विना प्राणियों ने चारों गितयों में अमण किया है, वह सब अमण व्यर्थ ही मानती हूं-समभाी हूं। पैसा तो वही है जो नकद अपने पास हो, उगाई (उधारी) के पैसे को अपना पैसा मानना पागलपन है। जगह जगह धक्के खाना है।।३!।

समता पुनः अपनी सखी श्रद्धा से कहती हैं—हे सखी!
आत्माराम भरतार बिना मेरी अवस्था अवहाडे की बोक — कुवे के
ढाएों के पास बनी छोटी खेल (कुंड) के समान संकीर्ण हो गई है।
अनुभव ज्ञान बिना मेरी मित की ऐसी अवस्था है, अर्थात जिस भांति
कुवे से संबंध होने पर पानी की कमी नहीं रहती, उसी, प्रकार मित
का अनुभव से संबंध होने पर चेतन धारा हटती नहीं है अन्प्रथा
मित की गित तो अवहाडे के बोक के समान है। आनंदघन प्रभु को मैं
बंदन करती हूं—प्रणाम करती हूं तथा आत्मभाव के अतिरिक्त अन्य
भावों पर रोक देती हूं।।४।।

शपथ पूर्वक पतिरंजन

78

राग-जैजैवंती

मेरी सुं मेरी सुं मेरी सुं मेरी सों मेरी री।

तुम्ह ते जु कहा दुरी कहो ने सवेरी री।।मेरी०।।१।।

कठ देखि के मेरी मनसा दुख घेरी री।

जाके संग खेलो सो तो जगत की चेरी री।।मेरी०।।२।।

सिर छेदी आगै घर और नहीं तेरी री।

'आनन्दघन' की सूं जो कहु हुं अनेरी री।।मेरी०।।

पाठान्तर— सुं = सौं (ग्र)। 'मेरी सुं' की आवृति 'इ.उ' प्रतियों में तीन ही वार है। तथा मुद्रित प्रतियों में—'क.व.वि' में पाठ इस प्रकार है— ''मेरी सु तुम ते जु कहा दुरी के होने स वैरी री (क.व)। मेरी सूं तुम ते जु कहा दुरी कहो न सवे वैरी री (वि)। दुरी = दुरा (अ.उ)। सवेरी री = सचेरी री (उ)। रूठे = भूठे (उ)। देखि = देखा (इ.उ)। जाके = जागे (आ)। सूं = सुं (ग्रा), सौं (ग्र)।

## [ ११७ ]

शब्दार्य-मुं.या. शी = भीगंध, शपथ ।दुरी = दूर रहने के लिये, श्रलग रहने के लिये। सबेरी = शीघ। चेरी = दासी। छेटी = काटकर। अनेरी = अन्य, दूररी।

श्रर्थ-मुमित अपने पित (स्वामी) चेतन से कहती है—मेरे से दूर रहने के लिये आपको जिसने कहा है उसका नाम कृपा कर शीझ बताइये, आपको मेरी शपथ है। अरे आप चुप त्राप हैं, मैं बार बार अपको सौगंध (शपथ) दिला रही हूं, पर आप बोलते क्यों नहीं है ?।।१।।

आपको रुठे हुये से देखकर मेरा मन दुख से घिर गया है—मैं वहृत दुखी हैं। जिसके साथ आप खेल रहे है—रंगरेलियां कर रहे है वह (ममता) तो संसार की दासी है।।२॥

जो अपना सिर काट कर आप के आगे रखदे उस ही को अपनी समभनी चाहिये और जो ऐसा न कर सके, वह अपनी नहीं है। अर्थात् जो अपना सर्वस्व आपके अर्पण न कर सके वह आपकी नहीं है। में अपने स्वामी आनंद के समूह की शपथ खाकर कहती हूं कि जो मैं कहती हूं, वही कर बताने वाली हूं। मैं ऐसी नहीं हूं जो वहे कुछ और कर कुछ और। हे चेतन देव! मैं आप की ही हूं अन्य किसी की नहीं हूं ॥३॥

उत्साह दशा व शूरवीर-युद्ध ५२ राग-तोडी (टोडी)

चेतन चतुर चौगांन लरी री । जीति लै मोहराज को ल्हसकर, मसकरि छांडि श्रनादि घरी री ॥चे०॥१॥

नांगो काढि लताड लै दुसमएा, लागै काची दोइ घरी री। ग्रचल ग्रवाधित केवल मुनसफ, पावै शिव दरगाह मरी री।।चे०॥२॥ श्रीर लराई लर्र सी वौरा, सूर पछाडै नाव श्ररी री । घरम मरम कहा बुर्फ श्रीर, रहि 'श्रानन्दघन' पद पकरी री ॥चे०॥३॥

पाठान्तर — लै मोहराज = छीय मोहराय के आगे की पंक्ति बहुत गड-वह है (छ)। काहि = काह (इ), काटी (छ)। लताड = लताडि (का)। दोइ = दोय (इ.छ)। मुनसफ = मुननक (क्र), मुनमुफ (इ)। शिव दरगाह = सिव-पदगाह (इ.छ)। बोरा = दोगे (आ)। भाव = नांव (इ)। मरम = करम (छा), भरम (वि)। औरे = ओरइ (अ), उरे (छ)। रहि = रहे (इ.छ)।

गध्दार्थ—चौगान = मैदान । ल्ह्यकर=सेना । यसकरि=हँँभौ, दिल्छगी
प्रमाद । ग्रनादि वरी री = अनादि काल से वारण की हुई । नांगी = नंगी
तल्बार । काढि = निकाल कर । लताड लै = पछाड दे, गिरादे । काची =
कच्दी । दोड घरी = दो घडी, ४८ मिनिट । अदल = निद्दल । मुनसफ =
न्यायादीय । दरगाह = सिद्ध पुरुप की समाधि, दरदार, कचहरी । औरा =
पागल । मूर = गूर्वीर ।

अर्थ—चेतना अपने पित चेतनराज से कहती है—हे चतुर चेतनराज! आप अन्त शक्ति शाली हं क्या सोचते हो मैदान मारलो मोहराज की सेना राग—हेप, काम, त्रोव, माया लोभ मोह आदि से युद्ध करके विजय प्राप्त करलो। काल लिवका—भवस्थिति के परिपाक का—बहाना बनाना छोड कर,अपने पर लगे हुये मोह-पाश को तोड दो—नाश करदो।।१॥

तीक्ष्ण रुचि रूपी नंगी तलवार निकाल लीजिये, और मोहरूपी शत्रु को परास्त कर वीजिये। यदि लाप प्रवल वेग से लाकमण करेंगे तो मोहके घुटने टेकने में पूरी दो घडी भी नहीं लगेगी और लापको लावि व्यावि और उपावि रहित निक्चल केवल ज्ञान प्राप्त हो जावेगा। वह केवल ज्ञान सत्यासत्य का निर्णायक सब से वहा न्यायाधीश है जिसे प्राप्त करने पर परिपूर्ण मुखों से भरा हुआ मोल रूपी पवित्र स्थान प्राप्त होता है।।१।।

प्रमुख शत्रुओं से न लडकर जो औरों से लडाई लडता है वह नो मूर्च ही है—पागल ही है। क्यों कि अन्य मनुष्यों से तो लडाई कीय व हे प वश ही की जाती है। कोशी और हे पी मनुष्य अपने होश-हवास खो देता है। इस कारण वह पागल ही है परन्तु जो मच्चा पुरुप होता है वह तो भावों —उच्च श्रेगी—में चढकर राग-हे प ग्प सम्पूर्ण शत्रुओं को परास्त करता है। यदि राग-हे प पर विजय नहीं पाई तो नित्य नये शत्रु पैदा होते रहेंगे। चेतन के मूल शत्रु राग हें प ही है जिसने इन पर विजय पाई, उसने त्रिभुवन पर विजय पाई, जिसने इन को जीना, वह त्रिभुवन नाथ होगया—जगत पूज्य हो गया। है भोले चेतन! धर्म का मर्म (रहस्य) औरों से क्या पूछता फिरता है। तू तो इन आनंदघन प्रभु के चरण कमलों को पकड़े रह अर्थात् तू अपने प्रत्येक कार्य में आत्मा को न भूल, प्रत्येक प्रवृत्ति मे यह देख कि मैं आत्म-भाव में हूं या अनात्म-भाव में हूं—पुद्गंल भाव मे हूं।।३।।

म्रखंड स्वरूप ज्ञान ५३ राग-तोडी (टोडी)

साखी —ग्रातम श्रनुमी रस कथा, प्याजा ग्रजब विचार । ग्रमली चाखत ही मरे, घूमै सब संसार ।।क्ष ग्रातम श्रनुमौ रीति बरी री मीर बनाइ निज रूप श्रनुपम, तीखन रूचिकर तेग करी री

क्ष यह साखी 'ग्रा' और 'इ' प्रति में नहीं है। 'ग्र' ग्रीर 'उ' प्रतियों में है। मुद्रित प्रतियों में भी नहीं हैं।

. टोप सनाह सूर को बानो, इकतारी चोरी पहरी री सत्ताथल में मोह विडाग्त, एए सुरजन मुह निसरी री ॥प्रा०॥२॥

पाठान्तर—चाखत = चाखती (उ)। ही मरै = हां मरे (उ)। धूमै = धूमरइ (उ)। अनुभी = अनुभव (अ.आ.उ)। तीछिन = तीछन (अ.उ)। तेग करी = नेग करी (आ.उ) तेगधरी (क.व.वि.)। इकतारी चोरी = इकताली चोली (उ)। मुह = मोह (उ)। गान = ग्यान (उ)। रंग = रीति (आ)। विडारत = विदारत (क.ब.वि)।

शब्दार्थ—अमली = नशेवाज, अमल में (आचरण में) लाने वाला। अनुभी=स्वरूप प्राप्ति से होने वाला श्रानन्द। वरी = बरण कर लिया, स्वीकार कर लिया। मोर = मुकुट। तीछिन = तीक्ष्ण, तेज। तेग = तलवार। सनाह = कवच। वानो = भेष। इकतारी चोरी = एकाग्रता रूपी चोली। सत्ताथल में = सत्तारूप युद्ध क्षेत्र में। विडारत = छिन्न भिन्न करना, दूर करना। सूर-जन = पंडित लोग। केवल कमला = केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी। अपछर = श्रप्सरा रस रंग भरी री = प्रेम में लवलीन होकर। सरवंग = मस्तक।

श्चर्थ-आत्म अनुभव-रस-कथा का विचार अद्भूत है। इस रस का प्याला अमली-नशे बाज चखते ही मर मिट जाता है अर्थात् जो उस पर अमल (आचरण) कर लेता है वह उस पर मिट जाता है-आशक्त हो जाता है। अन्य लोग घूमते ही रहते हैं। साखी।

श्रद्धा सुमित से पूछती है-आत्म ने किस प्रकार अनुभव दशा से लग्न किया है। इसके उत्तर में सुमित कहती है-हे सखी! सुनो-

चेतन ने निज स्वरूप रूपी अनुपम मृकुट घारण किया फिर स्वरूप प्राप्ति के लिये गहरी हिच रूप तेज तलवार को हाथ में बी है।।१।।

विशेष-इस पद में अनेक महत्वपूर्ण वातें हैं। यदि इस एक ही पद का लक्ष्य जीव (चेतन) को बना रहे तो उसे सिद्धि प्राप्त करने में विलम्ब नहीं लगेगा। जिसे आत्मानुभव प्राप्त करना हो, उसे सबसे पहिले अपना आदर्श-ध्येय स्थिर करना होता है। यहाँ साधक का लक्ष्य है-'निज स्वरूप प्रकट करना'। कायरों को-क्रम हिम्मत वालों को–ढिल मिल (अस्थिर) विचार वालों को इस मार्ग में सफलता नहीं मिलती, यह तो वीर पुरुषों का मार्ग है। जो यह विचार रखता हो कि या तो सफलता प्राप्त करूंगा या मर मिटूंगा, (देहं पातयःमि वा कार्यं साध्यामि) वह ही इसमे सफलता प्राप्त करता है। केवल इच्छा से ही कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती है। घूप की गरमी से भात (चांवल) नहीं पकता, चूल्हे में डालने मात्र से ही सोना नहीं गलता। उस ही भांति इच्छा मात्र से कुछ नहीं होता है। तीक्षण रुचि, दढ़ संकल्प के विना किसी कार्य में सफलता नहीं मिलती। तीक्षण रुचिवाला विघ्न-वाधाओं से नहीं घबराता, उसे मरने का भय नहीं होता। मरने का भय रख कर युद्ध विजय नहीं किये जाते। जिसने अपने स्वरूप को समभ लिया है, वही मृत्यु का भय छोड सकता है। यह आत्मा तो अविनाशी है और शरीर तो एक दिन नाश होने वाला ही है। ऐसे विचार प्रकट करना सरल है पर इस पर चलना कठिन है। जवतक अभ्यास नहीं किया जाता है प्रत्येक कार्य कठिन लगता है किन्तु अभ्यास के बल पर कठिन से भी कठिन कार्य आसान होते देखें जाते हैं। यदि मरण भय जीतने का अभ्यास किया जाय तो एक न एक दिन सफलता प्राप्त की जासकती है। हमने अनेक समय स्वकल्याण की इच्छा की, जिज्ञासु बने, मोक्षाभिलाषी कहलाये किन्तु इस इच्छा रूपी यथाप्रवृत्ति करण में ही रहे, कार्य-सिद्धि देने वाली तीक्ष्म हिन क्य अपूर्व करण को प्राप्त नहीं किया। अपूर्व करण विना किसी को कभी भी स्वरूप ज्ञान न तो प्राप्त हुआ और न होगा। इस तीक्ष्ण हिन रूपी तलवार से ही नोह का नाग्न किया ना सकता है, सम्यक्दृब्टि प्राप्त की जासकती है।

शूरवीर का भेप घारण करके अर्थात् समता रूप टोप (शिरस्त्राण), त्याग व ब्रह्मचर्य रूप कवच तीव्र भावना रूप चोली पहन कर मोह को सत्ता से ही इस प्रकार छिन्न भिन्न किया कि अनुभवी पंडितों के मृहँ से प्रशंमात्मक शब्द निकल पड़े। जिस प्रकार पुढ़ क्षेत्र में निज रक्षार्थ कवच, टोप आदि पहिरे जाते हैं उसी प्रकार मोहराज से युद्ध करने के लिये समता. त्याग, एकाग्रता की आवश्य-कता है। मानसिक, वाचिक और कायिक चंचलना के त्याग विना मोह-शत्रु के आक्रमण सहने की शक्ति कभी प्राप्त नहीं होतो। इसके लिये एकाग्रता की अत्यन्त आवश्यता है। यही शक्ति सर्व सिद्धिशता है। आत्म-शत्रुकों को नाश करने वाली है।।।।

कर्म अनेक प्रकार के हैं किन्तु ज्ञानियों ने उन को आठ श्रेणियों में विभक्त कर समभने में मुविया करदी है। इन में से चार कर्मों ने जीव के मूल स्वरूप को उक रखा है। इस लिये इन्हें घातो कर्म कहा जाता है। ज्ञान व दर्शन को हकने वाले कर्मों को ज्ञानावरण व दर्शनावरण कहते हैं। आत्मा की अनन्त शक्ति को रोक्ष्तेवाले कर्म को अन्तराय कर्म कहते हैं। यह सारी विकृति मोह के कारण होती है। इस मोहनीय कर्म को ही सबसे प्रवल माना है। इस प्रवल्ता से ही यह 'मोहराज' कहलाता है। इस के नाश होते ही, ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय ये तीनों कर्म स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रत्येक कर्म की चार अवस्थायें हैं-वंघ, उदय, उदीरणा और सत्ता। राग-द्वेष परिणामों के कारण कर्म पुद्गल का आत्ना से संवंध होने को बंध कहते हैं। कर्म की फलप्रद शक्ति को उदर, उदय में न आये हुये कर्मों को ध्यान-तप आदि के बल से उदय में लाने को उदीरणा, कहते हैं। जो कर्म तो बंध चुके हैं किन्तु उदय-उदीरणा में नहीं आये हैं, आत्मा के साथ लगे हुये हैं उन्हें सत्तागत कर्म कहा जाता है।

किन ने इस पदमें मोह को सत्ता में ही नाश करने की बात वही है। मोह का बंध नवें गुणस्थान तक होता है। क्षपक श्रेणी-वालों के दशम गुणस्थान के अंत में मोह की सत्ता का नाश हो जाता है। यहाँ सुमित का साथ भी जाता है अर्थात् वह सुमित वीतराग परिणित रूप शुद्ध चेतना का रूप ग्रहण कर लेती है जिसका साथ कभी नहीं छूटता है।

इस प्रकार दसवें गुणस्थान में मोहराज का घ्वंस करके विजय दुंदुभी वजवा कर वारहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय कर्मों का नाश करके तेरहवें गुणस्थान में चेतन राज विराज मान हुये। चेतनराज के विजय प्राप्त करने पर रसरंग से भरी हुई केवल ज्ञान रूप लक्ष्मी सुंदर अप्सराओं के समान, सुमधुर शब्दों से सारे विश्व की वातें वताती है और आनंद स्वरूप चेतन, ज्ञानलक्ष्मी रूप शुद्ध चेतना को असंख्यात प्रदेशात्मक निज शरीर के प्रत्येक प्रदेश में धारण कर लेता है।।।।

पराभक्ति की पूर्णता ५४ राग-विलावल सूहो

सुहागिन जागी श्रनुभौ प्रीति । नींद श्रनादि श्रज्ञान की मेटि गही निज रीति ।।सु०॥१॥ दीपक घट मंदिर कियो, सहज सुजोति सरूप । श्राप पराई श्रापु हो, ठानत वस्तु श्रनूप ।।सु०॥२॥ कहा दिखावुं श्रौर कुं कहा समभावुं भोर। तीर न खूके प्रेम का, लागे सो रहै ठोर ॥सु०॥३॥ नाद वित्रो प्रान कुं, गिनै न त्रिग्ग मृगलोइ। 'ग्रानंदघन'' प्रभु-प्रेम की, ग्रकथ कहानी कोइ॥सु०॥४॥

शब्दार्थ — मुहागिन — सीभाग्यवती । अनुभी = मिन-श्रुनि ज्ञान की परिपक्त श्रवस्था। सरूप = निजरूप, चेतन स्वरूप। ठानत चहुढ संकल्प करना, स्थापित करना। भीर = भीले मनुष्यों को। ठोर = स्थान। विलूधो च लुट्घ छा, आसक्त हुआ। त्रिण च नृण, घास। श्रकथ = अकथनीय, जो कही न जा सके।

श्चर्य—किव आनन्दघनजी कहते हैं-मुक्ते मौभाग्यवतो अनुभव प्रीति जागृत हो गई है। इस के जागृत होने मे मैंने अनादि काल की मोह निद्रा (अज्ञान निद्रा) का नाज्ञकर, स्वाभाविक दशा रूप निज परिणति ग्रहण कर ली है।।१।।

इस पद से ऐसा घ्वनित होता है कि श्री आनंदघन जी को इस समय गुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका था।

श्रीमदराजचन्द्र जी ने अपनी दशा का स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार वर्णन किया है—

> 'ओगणीसे' ने सुडतालीसे, समकित शुद्ध प्रकाश्युं रे। श्रुत अनुभव बघती दशा, निज स्वरूप अवभास्युं रे॥

समयसार नाटक के कर्ता श्री वनारसोदास जी ने भी अपनी दशा का वर्गन इस प्रकार किया है—

> अव सम्यक दरसन उनमान प्रगट रूप जानै भगवान । सोलहर्से तिरानवे वर्ष समैसार नाटक घारै हर्ष॥३८॥ (अर्घकथानक)

हृदय रूपी मंदिर में निज स्वरुप की सहज ज्योति का दीपक प्रज्विलत हो गया है जिस के प्रकाश में अपनी व पराई वस्तु का निर्णय अनुगम रीनि से होरंहा है। तात्पर्य यह है कि सम्यक्तव प्राप्त होने पर हेय-उपादेय, आत्मभाव व जड भाव का निर्णय अनोखी रीनि से स्वयं तुरत हो जाता है।।२॥

इस सहज ज्योति स्वरूप आत्मा को किस प्रकार दूसरे को दिखाऊँ व भोले (स्त्री, पुत्र व घन में आसक्त) प्राणियों की कैसे समभाऊँ; यह सौभाग्यवती अनुभव प्रीति आँखों से दिखाई नहीं देती तथा वाणी द्वारा इसके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार जक्कर प्रत्येक प्राणी खाता है किन्तु शक्कर के स्वाद का वर्णन करना कठिन है, चखने से ही उसके स्वाद का अनुभव होता है। उसी प्रकार इस अनुभव प्रीति का स्वाद जिन्होंने आस्वादन नहीं किया ऐसे भोले लोगों को इसका स्वरूप कैसे समभाया जा सकता है, परन्तु एक सामान्य से उदाहरण द्वारा यह कहा जा सकता है कि इस अनुभव-प्रेम का तीर अचू क है - रामबाण है, जिसे यह तीर लग जाता है, वह स्थिर हो जाता है अर्थात् परिणामों की चंचलता मिट जाती है। उसकी वृत्तियें विषय-वासना में न जाकर आत्मध्यान में लीन रहती हैं, मन वहिरात्न भाव में नहीं जाता और सब कियायें सहज भाव से होती है, वल प्रयोग नहीं करना पडता। लोक लाज या कीर्ति प्राप्त करने के लिये या लोगों के दिखाने के लिये यह स्थिर भाव नहीं होता, विलक जो कुछ होता है सहज भाव से होता है ॥३॥

जिस प्रकार नाद (गायन) पर लुब्ध हरिण अपने प्राणों की रूण के दुक है के समान भी परवाह नहीं करता, उसो प्रकार आनंद स्वरूप प्रभु-प्रेम में लीन व्यक्ति अपने प्राणों की तिनक भी परवाह नहीं करता। इस प्रभु-प्रेम की कथा तो अनिवंचनीय है—अकथ है। इस लोक में इसे कोई विरले भाग्यजाली ही जानते हैं। शब्द शक्ति भी कितनी बलवती होती है कि हरिण उस पर लुब्ध होकर अपने प्राणों की परवाह नहीं करता, फिर चैतन्य सत्ता तो उस शब्द शक्ति से अनंतगुणी बलवान है। उस सत्ता में सम्पूर्ण वासनाओं को होमकर अपनी वृत्ति का लीन होना स्वाभाविक है परन्तु धन-कुटुम्ब की ममता में फँसे लोग इस स्वाभाविक दशा को भी नहीं समक्ष सकते। जिन्हें इस सत्ता की अनुभूति हो जाती है प्राण जाने पर भी इसे नहीं छोडते।।४।।

श्रभेद श्रनुभव ५५ राग-कान्हडो (श्राशावरी)

देख्यो एक अपूरब खेला।
आप ही बाजी आप बाजीगर, आप गुरू आप चेला।।दे०।।१।।
लोक अलोक बिच्च आप विराजत, ग्यान प्रकाश अकेला।
बाजी छांडि तहाँ चढि बैठे, जहाँ सिन्धु का मेला।।दे०।।१।।
वाग वाद षटवाद सहु मैं, किस के किस के बोला।
पाहरा को भार कहा उठावत, इक तारे का चोला।।दे०।।३।।
षट पद पद के जोग सिरीष सहै क्युं किर गज पद तोला।
आनंदघन' प्रभु आइ मिलो तुम्ह, मिटि जाइ मन का भोडा।।दे०।।४।।

पाठान्तर—देख्यो = देखी (इ.उ) । आप = ग्रापही (उ) । लोक ग्रुलोक = लोकालोका (उ) विराजत = विराजित (उ) । चढि = चढ (इ.उ) । भार≕भर (ग्रा) । कहा = कही (इ.उ) । जोग सिरिप = जोग सरीखी (इ.उ) करि = कर (इ.उ)। 'तुम्ह' शब्द 'उ' प्रति में नहीं है। मिटि जाइ = मिट जाय (इ.उ)।

राब्दायं —अपूरव = प्रपूर्व, ग्रह्णैिकक। बाजी = खेल, संसार प्रपंच।
वाजीगर = जाद के खेल दिखाने वाला, जादूगर। लोक अलोक = ये जैन पारि
भाषिक शब्द हैं, लोक — जहाँ पंचास्तिकाय हो; अलोक — जहाँ केवल आकाश
हो, श्रीर पुद्गल श्रीर जीव ग्रादि जहाँ न हों। सिन्धु = समुद्र। मेला=मिलाप।
वागवाद = वाणी-विलास, तर्क-वितर्क। पटवाद = पट्दर्शन। पाहण = पत्थर।
पटपद = श्रमर, भोरा। मोला = संशय, चंचलता, परदा।

नोट—यह पद अ, आ, इ' प्रतियों में दो पदों में है और 'ज' प्रति में एक ही पद है। श्रथम दो पद—देख्यो "सिंगु का मेला।।२।।' 'अ' प्रति में ६९ वां पद, 'आ' प्रति में ५१वां पद, और 'इ' प्रति में ४३वां पद है। श्रंतिम दो पद—'वागवाद ""मनका भोला।।४।।' 'अ' प्रति में २७वां, 'आ' प्रति में ५२वां गरि 'इ' प्रति में ४४वां पद है। मुद्रित प्रतियों में दोनों भागों का एक ही पद है जैमा ऊपर है। वास्तव में दो पद ही होने चादिये। ऊपर जो दो भाग वताये गये है, उनके विषय पृथक-पृथक है; सम्वन्धित नहीं हैं। दोनों के ही एक-एक पद या अधिक, संग्रह कर्त्ता के दोप से अलग हो गये है जिनकी खोज ग्रसम्भव है।

प्रश्नं—किन अभेद ज्ञान को नताते हुये कहता है—संसार में एक अपुनं-अलौकिक खेल देखा है। इस खेल की अलौकिकता यह है कि खेल और खेल दिखाने नाला पृथक पृथक नहीं है। जन अन्य खेलों में खेल अलग होता है और खेल दिखाने नाला—सूत्रधार अलग होता है। इस खेल में (जो देना है) खेल भी स्वयं है और और सूत्रधार (खेल दिखाने नाला जादूगर) भी स्वयं ही है। आप ही गुरु है और आप स्वयं ही ज़िष्य है अर्थात चेतन स्वयं ही गुरु है और स्वयं ही शिष्य है। गुरु शिष्य में अभेद है—खेल खिलाड़ी में भेद नहीं है।शा

अलोकाकाश में लोकाकाश स्थित है, उस लोकाकाश में यह चेतन सब स्थान में वर्तमान है—विराजमान है। जहां केवल मात्र ज्ञान का ही प्रकण्य है। जहां पर राग-द्वेष का वाजी—वेत्र को त्यागकर चेतन उम स्थान पर चढ जाता है जिस स्थान पर अपने सहग्र ही मुक्त बात्नाओं के मुख समुद्र का मिळाप होता है।।२॥

किव ने इस पद में मुक्तात्माओं के स्थान का संक्षिप्त में वहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। अलोकाकाश में लोकाकाश की स्थिति है। जहाँ पर घम और अधमंद्रव्य है, जीव और पुद्गल है और आकाश है तथा इन पाँच द्रव्यों के प्रदेश एक दूसरे से संलग्न हैं अत: ये अस्ति-काय कहलाते हैं किन्तु काल द्रव्य के प्रदेश छुड़े हुये नहीं हैं—संलग्न नहीं है इसलिये यह द्रव्य होते हुये भी अस्तिकाय नहीं है। काल के लिये इसीलिये यह प्रसिद्धि है—"गया वक्त फिर हाथ नहीं आता।"

लोकाका के अंत में मुक्तात्माओं के ठहरने का स्थान है। जहाँ अनत मुख अनंत ज्ञान दर्शन और अनंत क्रक्ति का मिलाप होता है। ऐसे स्थान पर चेतन पहुँच कर फिर कभी भी नीचे नहीं आता है।

आगे किव कहते हैं—पड् दर्शन व नव मन मतान्तरों में तो अनेक प्रकार के तर्क वितर्क भरे हुये हैं। इस वाणी विलास के पृथक पृथक राग की गहनता का थाह पाना वड़ा किठन है। किस किस के बचनों को (मान्यताओं को) प्रामाणिक माना जावे। एक तार का-एक तत्व का—एक स्वास का यह चोला—शरीर इन पड़दर्शन रूप पर्वतों का भार (वोस्ता) कैसे चठा नकता है ? अर्थात अल्प आयु में अनेक दर्शनों की जानकारी करना पर्वत के समान भारी है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस छोटे से जीवन में आत्मानुख्की बनकर ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है ॥३॥

(यहां पट्पद में इलेप है—अर्थ है—(भ्रमर और पड दर्शन) पटपद-भ्रमर के पैरों के समान पडदर्शनों के ज्ञान की आत्मज्ञान रूपी गजपद से कैसे तुळना की जासकती है? पडदर्शनों का ज्ञान

## [ 378 ]

प्राप्त हो जाने पर भी आत्म-ज्ञान नहीं होता है। तव समानता कैसी?

हे आनंद स्वरूप चेनन प्रभु! आनका साक्षात्कार हो जाय तो यह मन की सब उलक्षनें सुरुक्ष जावें अर्थात मन का संशय और चंचलता नष्ट हो जावे।

आत्मज्ञान—भेद ज्ञान—की प्राति ही मन की चंचलता नाश कर देनी है।

चतुर्गति चौपड

५६

राग-धन्यासी

कुविध कूवरी कुटिल गित, सुबुधि राधिका नारि।

चोपरि खेलै राधिका, जीतै कुविजा हारि॥

साखी

प्रानी मेरो, खेलै चतुरगित चोपर।

नरद गंजफा कौन गनत है, मानै न लेखे बुधिवर ॥प्रा०॥१॥

राग दोस मोह के पासे, ग्राप बसाये हित घर।

जैसा दाव परै पासेका, सारि चलावै खिलकर ॥प्रा०॥२॥

पांच तलै है दुश्रा माई, छका तलै है एका।

सब मिलि होत वरावर लेखा, इह विवेक गिरावेका ॥प्रा०॥३॥

चौरासी मांवै फिरै नीली, स्याह न तोरै जोरी।

लाल जरद फिरि श्रावै घर मैं, कवहुक जोरी बिछोरी ॥प्रा०॥४॥

भीर विवेक के पाउ न श्रावत, तब लिंग काची बाजी।

'श्रानन्दघन' प्रभु पाव दिखावत, तो जीतै जीव गाजी ॥प्रा०॥४॥

पाठान्तर—कुविध = कुविद (इ), कुबुधी (उ)। कूबरी = कुविरी (उ)। सुबुधि = सुबुद्धि (अ.उ)। नारि = नारी (उ)। चोपरि = चोपर (उ)। कुविजा - कुव्जा (अ), कुवज्या (इ), कुवजाहारी (उ)। प्रानी""चोपर = खेले चतुर गित चोगिर, प्रानी मेरो (आ)। गंगफा = गंगिफा (अ.इ)। मानै = मोने (3)। बुधिवर = बुद्धिवरं (उ)। राग दोस मोह के = राग दोस दोई मोह के (ग्र)। विगाये = बनाए (इ), बिनाये (उ)। हितधर = हितवरं (उ)। सारि = सार (अ.इ.उ)। खिलकर = खलकर (ग्र), खीलकर (क)। मिलि = मिल (इ.उ)। मांवै = मांचै (ग्र.इ.उ), मांहे (क.वि)। तोरै = तोरी (इ.उ)। जोरी = जोरि (इ), जोर (उ)। भीर = धीर (अ), भाव (क.व.वि)। पाउ = पास (अ)। लिग = लग (अ.इ)। पाव = पौव (ग्र), पाउ (उ)।

शब्दारं — चतुर गित — चारों गितियं — नरक, तियंच, मनुष्य और देव।

नरद = चींड की गोट, स्यार। गंड का — एक प्रकार का छोटे पत्तों का खेल
जिसमें आठ रंग और ९६ पत्ते होते हैं। दोस — होप। हितधर — प्रसन्न
होकर। मारि — गोडी। खिलकर = खेलकर। तलं = नीचे। पांच = संख्यावाचक, पंचेन्द्रिय, पंचायव। दुआ = दो, राग-होष। छका — छै, छै काय के
जीव, काम, कोथ, लोभ, मोह, मद, मत्सर, छै लेश्या। एक — एक, मन,
आत्मज्ञान। चौरासी = द४ लक्ष योनियें। नीली — नीली गोट, नीललेश्या।
स्याह — काली गोटी, कृष्ण लेश्या। भीर = साभीदार। पांच = पांसे का दाव
पी वारह, शुद्ध स्वभाव। गांधी = धमंयुद्ध विजेता बीर।

भ्रयं — किन ने नीपड़ खेल के माध्यम से जीवन नीपड़ की जो बाजी लग रही है उसे किस प्रकार जीना जासकता है, समकाया है। नीपड़ नार पट्टी और छियानवें खाने — घर की होती है। तीन नोकोर पासों से नीपड़ खेली जाती है। नार रंग — नीली (हरी) काली, (स्याह) लाल और पीली की १६ गोटियें — स रें होती हैं। प्रत्येक पासे में पांन: के नीचे की ओर दो: का चिन्ह, और छैं: के नीचे की ओर एक का चिन्ह होता है। जिस तरह के चिन्ह के पासे सन्मुख (ऊपर की और) होते हैं, उसी के अनुसार गोट चलती है। गोटी का जब तक तोड़ नहीं होता अर्थात् वह दूसरी गोटी मारकर हटा नहीं देती तब तक वह अपने घर में नहीं जा सकती है। यह चौपड के खेल का स्वरूप है। आत्मा ने चार गित वाली चौपड खेल के लिये सजा रखी है। वह इसे विवेक पूर्वक खेलती है तो चौपड में विजय प्राप्त कर लेती है, नहीं तो ५४ के चक्कर में फंसी ही रहती है। इसी भाव को किव ने इस पद में वत या है।

कुटिल-कोटी चाल चलने वाली कुबुद्धि-क्रवडी कुब्जा के समान है और स्बुद्धि सही चाल चलनेवाली-राविका के समान है। ये दोनों आपस में चौपड का खेल खेलती है। बहुत वार कुबुद्धि कुब्जा के जीत के लक्षण प्रकट हो जाते है परन्तु अन्त में सुबुद्धि राविका की विजय होती है। कुबुद्धि कुब्जा हार जाती है।

मेरा प्राणी-आत्मा चतुर्गति—नरक, तियँच, मनुष्य और देवता रूप चौपड का खेल खेलता है। इस खेल की—गोटवाली चौपड और ९६ पत्ते और आठ रंग वाले गजफा का खेल की क्या—समानता हो सकती है। चतुर्गति चायड के सन्द्रख इन खेलों की क्या गिनती है? ये खेल इसके आगे तुच्छ हे। विवे क्शील इन खेलों को कोई महत्व नहीं देते हैं। बुद्धिमान कभी इन खेलों में अपना समय ध्यर्थ नहीं खोते है। वे तो जीवन की चौपड को महत्व देकर उसमें विजयी होना चाहते हैं।।१॥

इस आत्मा ने चतुर्गति चौपड खेलने के लिये राग, होष और मोह के पासे बड़े प्रेम से बनाये है। जैसा पासा आता है उसो के अनुसार गोट (सार) चलाई जाती है। इस चतुर्गत चौपड में आत्मा को राग होप और मोह के कांरण ही परिभ्रमण करना पडता है। अर्थात् रागहोष मोह की प्रवृत्तियों में जैसी जैसी वृतियाँ उभरी हैं, उसके अनुसार ही आत्मा को गतियों और उत्पत्ति स्थानों में जाना पडता है।।।

चौपड के पासों में पांच के चिन्ह के नीचे दो का चिन्ह है और छै के चिन्ह के नीचे एक का चिन्ह होता है। पांच और दो सात होते

हैं और छै और एक भी मिलकर सात होते हैं, जीवन की चीपड में विवेकशील प्राणी अपने विवेक से काम ले तो वह वाजी जीत जाता है, वरना भटकता ही रहता है। पांच का अर्थ है, पंचाश्रव और दो का अर्थ है, राग और द्वेप की प्रवृत्ति, छै का अर्थ है, पट्काय और एक का अर्थ है, असंयम प्रवृत्ति। इन पासों की चालों में विवेक नहीं रखा गया-पंचाश्रवों में और राग द्वेष की प्रवृत्ति में और षट्काय हिंसा और असयम में लगे रहे—तो चार गित वाली जीवन चौपड में, पिटते रहे-मरते रहे, फिर चैठते रहे-जन्म लेते रहे तो वाजी हार की ओर चली जायगी। यदि विवेक को जागृत रखकर पंचाश्रव, राग द्वेष पर अं कुश रख कर और षट्काय की हिंसा और असंयम से निवृत्त होकर जीवन गोटी चलाई गई तो निक्चय पूर्वक खेल में विजय होगी। अर्थात् भव श्रमण नष्ट होकर लक्ष की प्राप्ति हो जायगी।।३॥

चौपड में चार रंग की गोटियां होती हैं। नीली (हरी), काली (स्याह), लाल, और पीली। इन्हें आत्मा की लेक्या-अध्यवसाय का प्रतीक समक्षना चाहिये। चौरासो खानों में—चोरासी लाख उत्पत्ति स्थानों में—नीली (हरी) गोट, स्याह गोट से अपनी जोडी न तोडकर (छोडकर) फिरती रहती है। लाल और पीली गोटी कभी कभी अपनी जोडी तोड कर अपने स्थान-घर में—आ जाती है।

जब तक कृष्ण और नील लेश्या के अध्यवसाय आतमा के साथ है तब तक आत्मा चौरासो में भ्रमण करती ही रहती है। जब भ्रभ लेश्या के अध्यवसाय वाली आत्मा अभुभ लेश्या का साथ छोड़ देती है तो आत्म स्वभाव रूप घर में आ जाती है। और फिर वह अपने लक्ष को प्राप्त करने में समर्थ हो जाती है।।४॥

जिस प्रकार चौपड के खेल में पौ नहीं आती है तब तक बाजी जीतने के आसार नहीं होते हैं अर्थात् गोटियाँ अपने गंतव्य की ओर नहीं जा सकती हैं। अतः वह वाजी (खेल) कच्चा (अधूरा) ही है। उसी प्रकार आत्माके सिरी—साभीदार-विवेक के शुभ अध्यवसाय रूप पौ नहीं आती तब तक वह चतुगति रूप चौपड जीत नहीं सकता है। उसका खेल कच्चा ही रहता है। अर्थात् आत्मा अशुभ अध्यवसायों को त्याग कर शुभ अध्यवसायी नहीं होती तब तक अपने लक्ष की ओर अग्रसर नहीं हो सकती है।

आनंद की समूह आत्मा शुभ अध्यवसाय रूप या सम्यकत्व रूप पो को प्रकट करे—दिखावे—तो गाजी (धर्म युद्ध में विजय वीर) वन कर वाजी—खेल—जीत नेता है। राग-द्वेष मोह आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर गाजी—विजय वीर वन जाता है।।४॥%

क्षु इसी आश्रय का महातमा सूरदास का एक पद श्री नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा सम्पादित 'सूरसागर' में है। वह पद इस प्रकार है— चौपरि जगत मड़े जुग चीते।
गुन पांसे कम अक चार गित सारि न कबहूं जीते।।
चारि पसार दिसानि, मनोरथ, घर, फिरि फिरि मिलि आनै।
काम क्रोध मद संग मूढ़ मन खेल हार न मानै।।
वाल विनोद वचन हित अनहित, बार बार मुख भाखै।
मानो वग वगदाइ प्रथम, दिसि आठ-सात दस नाखै।।
पौडप जुक्ति, जुवति चिति पौडप, पोडप वरस निहारै।
पोडप अगनि मिलि प्रंजक पै छै दस अक फिरि डारै।।
पद्र पित्रकाज चौदह दस-चारि पठे, सर सांधै।
तेरह रतन कनक रुचि द्वादस अटन जरा जग बांधै।।
नहि रुचि पंथ, प्यादि डरनि छिक, पंच एकादस ठानै।
नौ दस आठ प्रकृति तृष्ना सुख सदन सात संघानै।।

श्राशा व प्रमाद जय

¥19

राग-ग्रासावरी

जग श्रासा जंजीर की गति उलटी कुल मीर ।
जकर्यो घावत जगत में, रहे छूटी इक ठौर ।।साखी।।
श्रीघू वया सोवे तन मठ में, जागि विलोकन घट में ।।
तन मठ की परतीत न की जै, ढहइ परे एक पल में ।
हलहल मेटि खबरि लें घट की, चिन्है रमता जल में ।।श्रीधू०॥१॥ मठ में पंच मूत का वासा, सांसा धूत खबीसा ।
छिन छिन तोहि छलनकुं चाहै, समभ न वौरा सीसा ।।श्रीघू०॥२॥ निरपर पंच वसे परमेश्वर, घटमें सूछिम वारी ।
श्राप श्रम्यास प्रकास विरला, निरखं घू की तारी ।।श्रीघू०॥३॥ श्रासा मारि श्रासग् घरि घट में श्रजपा जाप जगावे ।
प्रानंदघन' चेतन में सूरति, नाथ निरंजन पावे ।।श्रीघू॥०॥४॥

पाठान्तर—धावत = धात (ग्रा)। रहै छूरी = वबै छुटै (इ), रहि छूटो (उ)। इक = एक (उ)। कौतू = अवयू (अ.उ)। सोबै = सोवइ (उ)। मठ = मन (अ)। हहइ = हिंह (इ.उ), हहें (ग्र)। एक = इक (ग्र.इ)। चिन्है रमता = विचरै समता (उ)। सांता = सासा (इ.उ), संसा (अ)। धून = भूत (उ)। खदीसा = खईता (इ), खवासा (उ)। सीसा = सासा (आ)। निरपर= सिर पर (क,व.वि)। मूछिम = सूछम (इ.अ)। प्रकासे विरला = लिखावै

पंजा पंच प्रपंच नारि-पर मजत, सारि किरि मारी।
चौक चवान भरे बुविधा छकि रस रचना कि बारो।
बाल किशोर तक्त जर जुगसों सुपक सारि दिग दारी।
सूर एक पौ नाम विना नर. किरि फिरि बाजी हारी।।६०।।

कोई (उ), लखे कोई (इ,क.व.वि)। निरखै=निरखत (उ)। घू = घु (ग्र.इ.उ)। घरि = घर (३)। मै = मय (अ.इ.उ)।

शब्दार्थ — गति = चाल । कुलं = बिलकुल । मोर = मयूर, जीव। जकर्यो = वंधा हुआ। ठौर = स्थान। छूटी = छुला हुआ। जागि = जागृत होकर। विलोकन = देखता, बिचारता। परतीन = प्रतीति, विश्वास। ढहई ≈ गिरना। विन्हे \*\* जल में खेलने वालों के चिन्ह (निशान) छोजना चाहता है। पंव भूत = पृथ्वी, जल, तेजस् (ग्राग्न), वायु और आकाश। धूत = धूतं। सांना = श्वास। खबीसा = बुराइयों का घर, दुष्ट, दानव। विर पर = जो पर (अन्य) नहीं है। सूछिम = सूक्ष्म। वारी = खिडकी। धू = धुव। तारी = तारा। आशा मारि = आशा-हृष्णा त्याग कर। श्रासण = व्यिरता। अजपा जाप = श्वित रहित जाप, मन में वितन रहित होकर। चेतन मैं = उपयोग मय। निरंजन = कर्मनल रहित।

भ्रयं—संसार में आशा-तृष्णा के वन्धन की और जंजीर (रस्सी) के वन्धन की चाल एक दूसरे से अलकुल ही उलटी-विपरीत है। जंजीर—रस्सी-से वंश हुआ तो अपने स्थान से थोड़ा सा भो इघर उधर नहीं हो सकता है किन्तु आशा-तृष्णा से जकड़ा हुआ प्राणी संसार में दौड लगाता ही रहता है—भ्रमण करता ही रहता है और इस आशा-तृष्णा के वन्धन से छूटा हुआ—मुक्त हुआ—प्राणी एक स्थान पर स्थिर हो जाता है। वह भव-भ्रमण से मुक्त होकर आतम सुखों में स्थिर हो जाता है।।साखी।।

हे अवघूत! अ तमन्! इस शरीर रूपी मठ में सोता हुआ क्या पड़ा है? अचेत क्यों हो रहा है? जग जागृत हो कर—सचेत हो कर-अपने घट को (हृदय को) देख। विचार कर कि क्या हो रहा है? इस शरीर रूपी मठ (आवास) का किचित भी विश्वास मत कर; इसका जरा भी भगेसा नहीं है कि न मालूम यह कब ढहकर क्षण मात्र में भूमिसात हो जावे — गिर पड़े। इसलिये अपनी सम्पूर्ण हल- चल दौड़ घूप (मोह माया) को त्यागकर अपने हृदय को उटो रु कि इसमें क्या है ? इस घट कृती सरोवर के जल में रमण करने वाले आत्माराम को पहचान ॥१॥

इस शरीर रूपी मठ में पंचभूत निवास करते हैं। जिस प्रकार शरीर पंच भूतों का निवास स्थान है अर्थात् पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु आकाश का स्थान शरीर है वैसे ही मठ भी इनसे निर्मित हैं। और इस शरीर-मठ में स्वास रूप धूर्त, दुप्ट दानव भी हैं। जो क्षण क्षण में छलना चाहता है अर्थात् वहकाता रहता है। हे मठ निवासी भोले अवंधूत शिष्य! तू इस वात को समभता क्यों नहीं हैं? यह शरीर जड पुद्गलों से बना हुआ है और तू ज्ञान धन चेतन हैं। यह तुभसे विजातीय हैं। शरीर तो इन जड पदार्थों में ही सुख मानने वाला हैं। इसलिये तू इनके संयोग से अनादि काल से ठगा जाकर अपने चैतन्य स्वरूप को भूला हुआ है। इस भूल को अव सुधार ॥२॥

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु इन पंच परमेश्वरों का तेरे मस्तक में वास (निवास) है और तेरे घट में सम्यक्तव रूप सूक्ष्म खिड़की है जिसके मार्ग से तू क्षायिक भाव रूप ध्रुवतारे का दर्शन कर सकता है। परन्तु यह प्रकाश किसी (विरले) भाग्यशाली को ही दीर्घ अभ्यास के द्वारा प्रकट होता है।

हृदय जव तक अनेक कामनाओं में फैंसा हुआ है, जव तक नाना प्रकार के सुखों की व भोगों की आशायें हृदय में घर किये हुये हैं, तब तक आत्म-चिन्तन नहीं होता है। हृदय जब सब वास-नाओं को त्याग कर केवल आत्म लक्षी हो जाता है तो उसे आत्म-दर्शन हो जाता है।।३।।

सम्पूर्ण आशाओं को मारकर (त्यागकर), मन में हढ़ स्थिरता रूप आसन जमाकर जो अजपा जाप अर्थात् उच्चारण रहित-चिन्तन रहित जाप-ध्यान, करता है तो वह आनन्द स्वरूप ज्ञान दर्शनमय निरंजन स्वामी-परमात्मदेव को प्राप्त कर लेता है ॥४॥

आशायें त्यागे विना कोई भी आतम साधना में सफल नहीं हो सकता है। इस साधना में आसन का भी वहुत वडा महत्व है। आसन से काया के योग पर अंकुश रहता है। यदि शरीर ही स्थिर न रह सका तो मन का स्थिर होना असम्भव है। इसलिये यम-नियम के पश्चात् आसन योग का ही स्थान अव्टांग योग में है। आसन में शरीर का शिथिलीकरण ही मृख्य है। ज्यों-ज्यों शरीर शिथिल होता जावेगा, त्यों-त्यों मन एकाग्र होता जावेगा। मन की एकाग्रता ही आत्मसिद्धि का द्वार है।

श्राशा जय

45

राग-धाशावरी

श्रासा श्रौरन की कहा कीजे, ज्ञान-सुधारस पीजे।।
भटके द्वारि-द्वारि लोकनके, कूकर श्रासाधारी।
श्रातम श्रनुभव रसके रसिया, उतरइ न कबहु खुमारी।।श्रा०।।१॥
श्रासा वासी के जे जाये, ते जन जग के वासा।
श्रासा वासी करे जे नायक, लायक श्रनुमौ प्यासा।।श्रा०।।२॥
मनसा प्याला प्रेम मसाला, बहा श्रगिन परजाली।
तन भाठी श्रवटाइ पीये कस, जागे श्रनुमौ लाली।।श्रा०।।३॥
श्रगम पीयाला पीश्रो मतवाला, चिन्हे श्रघ्यातम वासा।
श्रामःद्वन हो जग में खेले, देखे लोक तमासा।।श्रा०॥४॥

पाठान्तर—कहा = क्या (अ.आ)। ज्ञान = ताते ग्यान (इ.उ)। श्रासा-श्रारी = आसाधारी रे (अ.इ)। उतरइ = उतरे (ग्रा), ऊतरे (इ.उ)। कवह = कवहू (आ), कवहुं (इ), कवहूँ (उ)। अ = जग (ग्र)। श्रनुभी = अनुभव (आ)। प्यासा = पियासा (उ), पिपासा (इ)। अगनि = अग्नि (अ)। भाठी = माठी (का), भठी (च) । अवटाइ = ग्रवटाई (ज.च), श्रीटाय (इ) । अगम = ग्रागम (च) । पीत्राला = पीजाला (ग्रा), पियाला (इ), प्याला (उ) । निन्है = चीन्ह (का), चीन्ही (इ), चीनी (उ) । जानन्दघन "खेले = जानंदघन वे जग में खेले (च), आनन्दघन चेतन ह्वं खेले (क.व.वि) । लोक = खलक (इ) ।

शब्दार्य — ओरनकी = दूसरों की । द्वारि-द्वारि = घर-घर, दरवाकें-दरवाकें। क्षकर = कुत्ता। कुमारी = नद्या। जाये = जन्मे, जन्म लिया। नायक = नेता, स्वामी। मनसा = मनकी भावना। ब्रह्म = शुद्ध स्वरूप। परजाली = प्रज्वलित करकें, जलाकर। भाठी = भट्टी। अवटाइ = श्रीटाकर। कस = काढ़ा, सत्व। श्रमम = अगम्य, गहन, दुलंग।

प्रयं—श्री आनस्दघनजी उद्वोचन दे रहे हैं—दूसरों की आशा क्या करते हो ? दूसरे—जो अपने नहीं हैं, उनसे क्या आशा रखी जा सकती है ? पौद्गलिक मुखों से शांति एवं मुख की क्या आशा की जा सकती है ? वे तो क्षणिक मुख देकर (भुलावे—श्रम में डालकर) फिर दुख और अशांति के दाता ह। इन पौद्गलिक मुखों की आशा-गृष्णा त्याग कर ज्ञान रूप अमृत रस का आस्वादन करो। इस अमृत रस के पीने से निरंतर रहने वाले मुख और शांति की प्राप्ति होती है।

जो पौद्गलिक मुखों की आशा-तृष्णा के पीछे पहते हैं, वे उस श्वान (कुत्ते) के समान हैं जो भूं ठे दुकडों की प्राप्ति की आशा लेकर लोगों के घर घर भटकता फिरता है। पौद्गलिक मुखों की आशा-तृष्णा लिये हुये भटकने से, वे मुख प्राप्त हो भी जाय, तो यह दुराशा मात्र है। इसलिये इन भूं ठे मुखों की आशा त्यागकर जो आत्मानुभव रस के रसिक जन हैं, वे उस आत्मानुभव (ज्ञानामृत) रस को पीकर इतने मग्न (मस्त) हो जाते हैं कि उसका खुमार (नशा) कभी दूर होता ही नहीं है। वे सदा आत्मानन्द में गर्क— इवे हुए रहते हैं ॥१॥

संसार में जीवन में रस पैदा करने वाली आशा ही है। वह मविष्य के नये-नये स्वप्न संजोती रहती है। आशा-चृष्णा ही संसार है। (अतः आत्मोत्थान करने वालों को आशा का त्यागकर भव-भ्रमण को घटाना चाहिये) जो संसार को — भव-भ्रमण — को घटाना चाहते है, उन्हें आशा रहित होकर अनित्य अशरण आदि भावनायें अपनाना चाहिये। ये भावनायें आशाओं पर अंकुश का काम करती है।

आज्ञा-दासी की जो संतानें हैं, वे संसार की दास हैं—गुजाम है क्योंकि दासी के पुत्र तो दास ही होंगे, किन्तु जिन्होंने आज्ञा को अपनी दासी वना लिया है—आज्ञा दासी पर नेतृत्व कर अपने नियंत्रण में ले लिया है, वे स्वरूपानुभव की प्यास को तृष्त करने के अधिकारी है। आत्मानुभव के प्यासे, योग्य नेता हैं।

सांसारिक सुखों की आज्ञा रखने वाले, वास्तव में जगत के दास ही है। वे प्रत्येक को प्रसन्न रखने के प्रयत्न में न मालूम क्या-क्या कर डालते हैं। दूसरों की खुज्ञामद में लगे रहते हैं। अतः वे दास हैं। जो दास वृत्ति घारण कर तेते हैं उन्हें कटु और अपशब्द सहन करने पहते है, और जिन्होंने आज्ञा को दासी वना लिया है—अपनी आज्ञाकारिणी वना लिया है अर्थात् पौद्गलिक सुखों की आज्ञा को त्याग दिया है वे बात्मानुभव के अधिकारी वन गये है।।२।।

आतम शुद्धि की इच्छा रूप प्याले में स्वाध्याय रूप मसाला भर कर ब्रह्म-आत्म-तेज (तप) रूप अग्नि प्रज्वित कर शरीर रूपी भट्टी में औटाकर जो उस मसाले का सत्व (कस) पीते हैं उन्हें अनुभव ज्ञान रूप लालिमा प्रकट हो जाती है ॥३॥

इस पद में किव ने रूपक द्वारा आत्म-शुद्धि की प्रिक्रिया को समकाया है। ध्यान, स्वाध्याय, कायोत्सर्ग के द्वारा आत्मा शुद्ध, शुद्धतर और अन्त में शुद्धतम अवस्था को प्राप्त हो जाती है। अंतिम अवस्था में पहुँचने पर उसे ज्ञान रूप लालिमा—प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

यह ऊपर बताया हुआ सत्व (कस) से भरा हुआ प्याला अगम्य है—उसकी विशेषतायें हर ब्यक्ति की समक्त से बाहर है। उसे तो वे ही पहचानते हैं जो अध्यातम में निवास करने वाले है। अर्थात् जो बहिरभाव में नहीं रहते और आत्मभाव में रमण करते हैं। ऐसे ही जन इस प्याले का आस्वादन कर मग्न हो जाते हैं। इसलिये इस रस के रिसको!—आत्मोद्धार के पिथको! इसका आस्वादन करो—पीओ। जिसने इस रस का आस्वादन कर लिया वह अबाधित आनन्द समूह चेतन बनकर चौदह राजु लोक का तमासा देखता है। अर्थात् लोक में हुई, हो रही और होने वाली घटनाओं को देखता है। इस प्रकार शुद्ध बुद्ध मुक्त बन जाता है।

त्रिपदी रहस्य ५६ राग-म्रासावरी (द्रव्य, गुरा स्रौर पर्याय)

प्रवधू नटनागर की बाजी, जागै न बांमगा काजी ।।
थिरता एक समय में ठानै, उपजे विनसे तबही ।
उलट पुलट ध्रुव सत्ता राखे, या हम सुनी नही कबही ।।श्रव०।।१॥
एक अनेक अनेक एक फुनि, कुंडल कनक सुभावै ।
जल तरंग घट माटी रिवकर, अगिनत ताइ समावै ।।श्रव०।।२॥
है नाहीं नही वचन अगोचर, नै प्रमाग सतभंगी ।
निरपिल होइ लखे कोइ बिरला, क्या देले मतजंगी ।।श्रव०।।३॥
सरब मई सरवंगी माने, न्यारी सत्ता मावै ।
'श्रानन्दघन' प्रभु वचन सुधारस, परमारथ सो पावै ।।श्रव०।।४॥

पठान्तर—वांभण = वांभण (उ) । समय = समै (आ), समें (इ) । उंलट पुलट=उलट ध्रुव (आ) । या=एह (उ) । सुनी=सुणा (इ) । नही=न (इ) । एक=एकहु (इ), एकही (उ) । सुभावै=सुसावै(आ) । तरंग=तरंगे (उ) ।

घट = घर (आ)। है नांही नही = है नहि नही है (ग्रा), है नाहीं है (इ), है नाहीं हें (उ)। नै = नय (अ.इ.उ)। निरपिल = निरपल (इ.उ)। मत = मित (ग्रा)। मद = मांहि (अ)। न्यारी = नारी (उ)। सुधारस = अगोचर (उ)।

शाब्दायं — ग्रवधू = संसार से निलिप्त महातमा । नागर = चतुर । वाजी = खेल । वांभण = ब्राह्मण, पंडित । विरता = स्थिरता । ठाने = ठानता है, संकल्प करता है। उपजे = उत्पन्न होता है। विनसे = नच्ट होता है। उलट पुलट घूव सता राने = रूप वदलता हुआ भी ग्रपना अस्तित्व रखता है। फुनि = पुनि, फिर । कनक = स्वणं, सोना । बुंडल = कान में पहिनने का भेवर । कुंडल कनक सुभावे = सोने के कुंडल को तुडाकर फिर दूसरा गहना बना लिया जाता है किन्तु उसका स्वणंपना वैसा का वैसा ही रहता है। ताई = उसमें। समावे = समा जाती है, प्रवेश कर जाना। नै = नय, नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समिस्लढ, श्रीर एवंभूत ये सात नय हैं। सतभंगी = सप्तभंगी न्याय, स्यात् श्रस्ति, स्यात नास्ति, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् श्रस्ति नास्ति, स्यात् व्यक्तव्य, स्यात् श्रस्ति नास्ति, स्यात् वित्पिं = निरपिं = निरपिं पिं वित्पाति रहित । मतजंगी = अपने मत में मस्त, साम्प्रदायिक विवाद की विच वाला। सरवंगी = सव नय प्रमाण, सप्तभंगी नय।

श्रयं —इस पद में जैन दर्शन के अनोखे सिद्धान्त —द्रव्य-गुणं और पर्याय का सुन्दर वर्णन है। द्रव्य सदा (त्रिकाल में) एक-सा रहता है चाहे उसके रूप सदा परिवर्तन होते ही रहें। द्रव्य के द्रव्यत्व का कभी नाश नहीं होता है। रूप सदा परिवर्तनशील होते है। आत्मा (जीव) पर्यायों के कारण सदा अन्य-अन्य रूप वदलता रहता है किन्तु फिर भी आत्मा—आत्मा ही रहता है। स्वर्ण एक रूप (कुंडल अंगूठी आभूषण आदि) से बार बार गलकर और—और रूप में प्रकट हो जाता है किन्तु फिर भी वह स्वर्ण का स्वर्ण ही रहता है। इस वात का दिग्दर्शन, इस पद में किया गया है।

हे अवह ! शरीर रूप नगर में वास करने वाला आत्मा रूप चतुर नट का खेल वडा ही विवित्र है। इसके रहस्य को वेदज ब्राह्मण और कुरानपाठी काजी जैसे बुद्धिमान पुरुष भी नहीं जान सके है।

यह आत्मा एक ही समय में उत्पन्न होता है फिर उसी समय नाश को प्राप्त हो जाता है, और उसी समय में अपनी निश्चल सत्ता में स्थिर (अटल) रहता है। यह उत्पाद-व्यय की उथल-पृथल सदा चलती रहती है किन्तु यह आत्मा अपनी ध्रुव सत्ता को कभी नहीं छोडता है। उत्पन्न होना, विनाश होना एवं उसी समय ध्रुव (स्थिर) रहना, यह वडी विचित्रता है। जो हमने कभी नहीं सुनी। हमने ही क्या, वहे बुद्धिमान वेदन न्नाह्मण और कुरान-पाठी काजी ने भी नहीं सुनी।।१॥

जैन दार्शिनकों ने पदार्थ के स्वरूप का नाश न होना, नित्य का लक्षण माना है। इस लक्षण के अनुसार प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद, व्यय और धीव्य पाये जाते हैं। जैन दर्शन के अनुसार जो वस्तु उत्पाद, व्यय और धीव्य से युक्त हो उने सत् अथवा द्रव्य कहते हैं। आत्मा पूर्व भव को त्याग कर उत्तर भव ग्रहण करती है और दोनों ही अवस्थाओं में अग्तमा समान रूप से रहती है। इससे आत्मा में उत्पाद, व्यय और धीव्य सिद्ध होता है।

'उपन्नेइ वा विगमेड वा ध्रुवेइ वा' इन तीन पदों पर ही— सिद्धान्तों पर—ही जैन दर्शन की नींव स्थिर है।

एक के अनेक रूप हो जाते हैं, अनेक फिर भी एक ही है। स्वर्ण का कुंडल हो जावे, अनेक प्रकार के अनेक आभूषण बन जावे फिर भी स्वर्ण तो स्वर्ण हो रहता है। स्वर्ण का स्वर्णत्व सब आभू-पणों में विद्यमान रहता है। वह कभी नाश नहीं होता है।

उसी प्रकार आत्मा एक द्रव्य तथा मनुष्य, गाय, वैल, कबूतर, शुक, पिक, देव नारक आदि उसके पर्याय है। इन पर्यायों में आत्मा सदा, सर्वदा वैसा का वैसा ही रहता है।

जल तरंग में भी पूर्व तरंग का व्यय, नवीन का उत्पाद है, किन्तु जलत्व तो दोनों में ध्रुव रूप से देखने में आता है। वैसे ही मिट्टी का घट आकार रूप उत्पाद, टूटने पर ठीकरे रूप में व्यय, किन्तु इन दोनों अवस्थाओं में मिट्टी का रूप एक ही है। सूर्य की किरणों में भी उत्पाद, व्यय और ध्रुवता देखने में आती है। अर्थात् सूर्य की किरणें अनेक दिशाओं में फैलकर अनेक दिखाई देती है किन्तु मूर्य रूप में वे एक ही है।।२॥

है, नहीं है और वचन से जो कहा नहीं जा सकता, ऐसा स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्याद् अवक्तव्य इन तीनों भेदों के चार उत्तर भेद—(स्याद् अस्ति नास्ति, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्यान्नास्ति अवक्तव्य, स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य)—मिलने से सप्तभंगी स्याद्-वादन्य, द्रव्यायिक और पर्यायाधिक, निश्चय और व्यवहार नय और नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋष्टुसूत्र, शब्द, समिभिक्द और एवंभूत नयों के प्रमाणों से परीक्षा करके आत्मा के वास्तिवक स्वरूप को कोई भाग्यशाली ही अपना पक्षपात त्याग कर ही जान सकता है। लेकिन जो कद्राग्रही है, विवादी है वे इसके वास्तिवक स्वरूप को क्या जान सकते हैं।।३।।

कितने ही परमात्मा को सब जड-जंगम और सब स्थानों में ज्याप्त मानते हैं किन्तु फिर भी उसकी अलग सत्ता स्वीकार करते है। श्री आनन्दघनजी कहते हैं—आनन्द स्वरूप भगवान के अमृतमय वचनों को जानते है, उनके वचनों पर विश्वास करते हैं, वे ही परमार्थ (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।।।। अनेकान्तवादी आत्मा को गुद्ध ज्ञान की अपक्षा सर्व व्यापी मानते हैं और वस्तु की अपेक्षा सर्व व्यापी नहीं मानते है। जाति की अपेक्षा, आत्मा को एक और वस्तु की अपेक्षा से आत्माओं को पृथक-पृथक मानते हैं। जो इस रहस्य को जान गये है वे ही परमार्थ को प्राप्त करते हैं।

क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्ति ६० राग-श्रासावरी

श्रवधू ! श्रनुभव किलका जागी, मित मेरी श्रातम सुमरिन लागी ॥ जाइ न कबहु श्रौर दिग नेरी, तोरी बिनता बेरी । माया चेरी कुटंब करी हाथे, एक डेढ़ दिन घेरी ॥श्रव०॥१॥ जामन मरन जरा विस सारी, श्रसरन दुनियां जेती । दे ढवकाय न वा गमें मीयां, किस पर ममता ऐती ॥श्रव०॥२॥ श्रनुभव रस में रोग न सोगा, लोक वाद सब मेटा । केवल श्रव क श्रनादि श्रवाधित, शिव शंकर का मेटा ॥श्रव०॥३॥ वरषा बूंद समुंद समाने, खबरि न पावे कोई । 'श्रानन्दधन' ह्वं जोति समावे, श्रलख लखावे सोई ॥श्रव०॥४॥

पाठान्तर — सुमरिन = सुमिरनं (आ), सुमरनं (इ.उ), सूं मिलनं (क)। जाइ = जो (अ), जायै (इ)। कबहु = कहुं (उ)। तोरी = तेरी (इ.उ)। वेरी = चेरी (अ)। चेरी = वेरी (आ.उ)। करी हाथे = कडी हाथे (ग्रा)। जामन = काया (उ)। दे ढवकाय "मीयां = डेढ़ वकाय न वाग में मीया (आ), हे ढव कायग वागमे पीया (उ), देढव काई न बाग में मीयां (व)। पर = परि (ग्रा)। ममता = मनतां (उ)। अनुभव = अनुभी (इ)। रोग = राग (उ)। वाद = चेद (ग्रा), चेट (उ)। सब = सत (उ)। शंकर का = संकर की (अ)। वूंद = चुंद (ग्रा), समुंद = ममुद (अ)। समाने = समानि (आ) समानी (इ), खबरि = खबर (इ.उ)। ह्वं = है (ग्रा)। 'इ' प्रति में 'है' या 'ह्वं' शब्द नहीं है,

#### [ 888 ]

को (उ)। जोति समान = ज्योति समावे (भ्रा), जोत जगावे (उ)। लखावे = कहावे (आ)।

शब्दार्थ — जागी = जागृत हो गई, विकसित हो गई। मंति = बुद्धि। दिग = पास। नेरी = निकट। विनता = विवयता। वेरी = वेडी। चेरी = दासी घेरी = घेरा डालकर। विस = वश में करके। सारी = सव की। ग्रसरन = प्रभाव रहित, अगरण। दे ढवकाय = त्यांग दे, दवा दे। न वा गमे = वो अच्छी नहीं लगती। लोकवाद = संसार के अन्यवाद, संसार के अन्य मत मतान्तर। भेटा = मिलन।

प्रथं—हे अवधू ! अव अनुभव ज्ञान रूपी कली विकसित हो गई है, इस कारण मेरो मित (बुद्धि) आत्म-स्मरण में लग गई है— आत्म रमण में लग गई है। अब आत्म भाव के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु में—अन्य किसी भी भाव के निकष्ट नहीं जाती है। उसने (मेरी मित ने) विवशताओं की वेडी (बंधन) को तोडकर माया-दासी तथा उसके परिवार (लोभादि) को चारों ओर से एक डेढ़ दिन का घरा डालकर अपने हाथ कर लिया है—अपने वश में कर लिया है। अब ये (माया लोभादि) कुछ विगाड नहीं कर सकते है।।।।

यह सम्पूर्ण संसार जन्म, मृत्यु चृद्धावस्था के वशीभूत हैं, इस लिये अशरण है, अर्थात् संसार में ऐसा कोई नहीं है जिस पर इनका प्रभाव म हो किन्तु अनुभव ज्ञान रूपी कलिका के विकसित होने से जन्म, मृत्यु और जरा का मृभ्र पर कोई प्रभाव नहीं है। मुभ्रे तिनक भी भय नहीं है। मृभ्रे ये तिनक भी अच्छे नहीं लगते है और न इन पर भेरा ममस्व ही है इसलिये मैंने इन्हें दूर कर दिया है—छोड़ दिया है।।२॥

अनुभव के रसा स्वादन से शारीरिक रोग और मानसिक शोक-संताप नहीं रहते हैं। आह्मा और शरीर के भेद-ज्ञान का नाम ही अनुभव है। आहमा, ज्ञान स्वरूप और आनन्द स्वरूप है। शरीर, रोगों का आँर मन शोक-संतापों का घर है।
मेद जानी मानसिक व शारीरिक दुखों से कभी दुखी नहीं होता है।
वह तो दर्शक वनकर देह और मन का नाटक देखता है और अपने
ज्ञानानंद में मग्न रहता है। अनुभव ज्ञान होने पर निन्दा-स्तुति
लोकापवाद दूर हो जाते है—इनका कुछ असर नहीं होता है। यहाँ
(अनुभव ज्ञान में तो) केवल अचल, अनादि, ज्ञाधा रहित कल्याणकारण, मंगलदायक चैतन्य शक्ति का साक्षात्कार रहता है।।३।।

वर्षा की दूं द जिस भांति समुद्र में समा जाती है— मिल जाती है और फिर उस दूंद की किसी को खबर नहीं लगती है कि वह दूंद कौन सी है वह तो समुद्र रूप हो जाती है। उसी भांति अनुभव ज्ञानी आनंदराशी की ज्योति में समा जाते हैं— सिद्ध परमातम स्वरूप प्राप्त हो जाते हैं, इसलिये अलख-अलक्ष्य हो जाते हैं क्योंकि इस विपय पर विचार एवं लेखनी की गति नहीं होती। समुद्र में वर्षा की दूंद की खोज नहीं हो सकती क्योंकि वह समृद्रमय वन जाती है वैसे ही चेतन विशाल आनन्द समृद्र वन जाता है।।।।

नोट—इस पद में द्वितीय द्विपदी के दूसरे चरण "दे ढवकाय न वा गम मीया" का अर्थ स्पष्ट नहीं हो पाता है। हमने इसका अर्थ पूर्वापर के सम्बन्धों को देखते हुये खें बतान करके लगाया है। इस पद का अर्थ 'आनन्दघन पद संग्रह', के विवेचन कर्ता श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीक्वर ने और ही दिया है, वह यहाँ दिया जाता है। उनका पाठ है—"देढव काई न वाग में मीयां किस पर ममता ऐती" उन्होंने जो अर्थ किया है उसका सारांश यह है—"सव जीव जन्म, जरा और मृत्यु के वश में पडे हुये हैं। संसार में उन्हें कोई शरण नहीं है। मृत्यु से उनकी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। संसार में दुखकारक पदार्थों को सुखकारक मानकर जीव उसमें फैंस रहे हैं। जीव सुख का उपयोग करने का प्रयत्न करता है परन्तु उसे दुख ही प्राप्त होता है। फिर भी सांयारिक जीव वाह्य वस्तुओं की ममता को छोडता नहीं है। इस पर हव्टान्त देकर इसकी पुष्टी में किव कहते है—कोई मीयां बाग में मीठी व कड़वी निवौली (नीम का फल) एकत्रित कर रहा था। उस समय उसकी बीवी से किसी ने आकर पूछा कि मीयां कहां गया? बीबी ने कहा वाग में गया है। मीयां निवौली एकत्रित कर रहा है उसी प्रकार सांसारिक जीव दुख भोगते हुए सुख मानता है, परन्तु अज्ञान भ्रांति से मियां के बाग में निवौली लेने की तरह वेदनीय कमंरूप कड़वी निवौली एकत्रित की तो उसे कड़वा ही स्वाट आयेगा। सांसारिक पदार्थों पर ऐसी ममता रखना योग्य नहीं है।

ग्रनिर्वचनीय रूप

६१

राग-गौडी

निसाणी कहा बतावुं रे, वचन ग्रगोचर रूप ।।
रूपी कहुं तो कछु नहीं रे, बधइ कइसइ ग्ररूप ।
रूपारूपी जो कहुं प्यारे, ग्रैसे न सिद्ध ग्रनूप ।।नि०।।१।।
सिद्ध सरूपी जो कहूँ रे, बंघ न मोख विचार ।
न घट संसारी दसा प्यारे, पाप पुण्य ग्रवतार ।।नि०।।२।।
सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, उपजइ विग्मसइ कौन ।
उपजइ विग्मसइ जो कहूँ प्यारे, नित्य ग्रवाधित गौन ।।नि०।।३।।
सरवंगी सब नइ घग्गी रे, मानै सब परवान ।
नयवादी पल्लो गहै (प्यारे), करइ लराइ ठान ।।नि०।।४।।
ग्रमुमव गोचर वस्तु को रे, जाग्निवो इह इलाज ।
कहुगा सुग्गगा कु कछु नहीं प्यारे, 'ग्रानन्दघन' महाराज ।।नि०।।४॥

पाठान्तर-वतावुं = वताउं (इ) । वचन "रूप = तेरो अगम ग्रगोचर रूप (ग्र) । तो = तउ (आ, इ.उ) । वंधइ = वंधे (३) वंदे (उ) । कइसइ = कसइ (ग्रा), कैसै (इ), के सै (उ)। बैसे = इसे (उ)। सिद्ध = सुद्ध (ग्रा.उ)। जो = जउ (आ)। उपजइ = उपजे (ग्र.इ)। विएासइ = विएासे (आ)। 'उ' प्रति में पद संख्या २ के स्थान पर तो तीन पद संख्या है और तीन के स्थान पर दो है। यथा — सुद्ध संख्या जो कहू रे, उपजे विसर्ण कौन। उपजे विएासे जो कहू प्यारे, नित्य अवाधित गोन ॥२॥ सिद्ध सनातन जो कहूँ रे, बंधना मोक्ष विचार। न घटे संसारी द्सा, पुष्प पाप अवतार ॥३॥ नइ = ने (आ)। गहै=गहइ प्यारे (अ), गही प्यारे (इ)। करइ=करें (इ), करें (उ)। ग्रमुभव= अनुभो (इ)। को रे=हे रे (उ)। जाणिवो = जाणिवउ (ग्रा), जाणवो (इ), जाणवो (उ)।इह इलाग=इहै लाग (ग्रा), एह इलाज (इ), एहि इलाज (उ)।

शब्दार्थं—निसाणी = पहिचान । वचन ""रूप = वचनातीत, वचन-वाणी से जिसका रूप कहा न जा सके । रूपी = रूप वाला, साकार । अरूप= रूप रहित, निराकार । सिद्ध सरूपी = शिद्ध आत्मा जैमा । सनातन = अनादि । नित्य = सारवत । अवाधित = वाधा रहिंते । गौन = गमन, गति । सरवंगी = सर्व रूप अनेकान्तवादी । सब नइ घणी रे = सब द्वाव्यों के धारक । परवान = प्रमाण । नयवादी = न्याम शास्त्री, तर्कवादी, एक ही द्वाव्यक्षेण को मानने वाला । पल्लो = किनारा, अंश । ठान = आयोजन करके, संकल्प करके।

म्रथं—चेतन—आत्मा के स्वरूप की मीमांसा करते हुये श्री आनन्दघन कहते हैं—चेतन की क्या पहिचान बताऊँ, उसका स्वरूप तो वचनातीत है। वाणी द्वारा उसका रूप नहीं बताया जा सकता है। यदि उसे रूपी—आकार वाला—कहता हूं तो वह कहीं दिखलाई नहीं देता है और यदि उसे अरूपी—निराकार कहता हूं तो कमों के बंघन में अरूपी कसे बंघ सकता है? यदि चेतन को रूपी-अरूपी-साकार, निराकार उभय रूप कहता हूं तो अनुपम (जिसकी कोई उपमा नहीं) सिद्ध भगवान का वह स्वरूप नहीं है अर्थात् सिद्ध भगवान के लक्षण से मेल नहीं बैठता है क्योंकि सिद्धों के कोई रूप नहीं है।।१॥

यदि चेतन को सिद्ध स्वरूपी और (वर्ण; गंघ, रस स्पर्श; रहित), कहता हूं तो फिर वंध और मोक्ष का विचार ही नहीं हो सकता,

क्योंकि जो सदा गुद्ध है वही वंधन में पड़े तो मुक्त जीव भी वन्वन में पड़ेंगे. फिर किसी आत्मा के लिये मुक्त शब्द चरितार्थं ही नहीं होगा, और सिद्ध स्वरूपी कहने से सांसारिक दगा भव भ्रमण सिद्ध नहीं होता है तथा पुण्य कर्म के अनुसार मनुष्य और देव रूप में जन्म लेना तथा पाप के फलस्वरूप नरक तियेंच में जन्म लेना घटित (सिद्ध) नहीं होता है।।।।

यदि चेतन को अनादिकाल से मिद्ध कहता हूं तो पैदा होने वाला और मरने वाला कौन है ? जो उसे उत्पन्न और विनाश होने वाला कहता हूं तो उसके नित्यत्व और अवाधितत्व का लोप हो जाता है ॥३॥

चेतन सर्वांगी रूप है, सब नयों का स्वामी है अर्थात् इसमें सब नय सिद्ध होते हैं—घटते हैं। जो इसे प्रमाण ज्ञान द्वारा समभने का यत्न करते हैं वे इसके स्वरूप को समभ सकते हैं, अर्थात् अनेकान्त दृष्टियों से चेतन का स्वरूप समभा जा सकता है, किन्तु नयवादी एक ही दृष्टिकोण को ग्रहण कर (अपना कर) विवाद (भगड़ा) करते रहते हैं।।४।।

गास्त्रों में नय का लक्षण—'अनंत धर्मात्मके वस्तुन्यंकधर्मीभयनं ज्ञानं नयः', वस्तु के अनेक धर्म होते हैं उनमे से किसी एक धर्म
को प्रधानता देने वाले और दूसरे धर्मों को गौण रखने वाले ज्ञान को
'नय' कहते हैं। नय, वस्तु के एक देश का ही ज्ञान कर।ने वाला
होता है। इससे वह प्रमाण ज्ञान नहीं कहा जा सकता है। वास्तव में
वस्तु में अनेक धर्म होते हैं उन धर्मों को वताने वाले ज्ञान को प्रमाण
कहा जाता है—''सकलधर्म ग्राहकं प्रमाणं'' तथा ''स्व पर व्यवस।यि
ज्ञानं प्रमाणम्"। वस्तु के अंश्रग्राही ज्ञान को नय कहते हैं। अतः वह
प्रमाणिकता की कोटि में नहीं आता है क्योंकि वस्तु में अनेक धर्म
विद्यमान हं। सर्व अंशों के ज्ञान को ग्रहण करके वस्तु के स्वरूप की

श्रोर ले जाने वाले ज्ञान को प्रमाण ज्ञान कहते हैं। प्रमाण ज्ञान अनेकान्त हिण्टयों वाला होता है। वहीं वस्तु के वास्तिवक स्वरूप का ज्ञान कराने वाला है। चेतन का स्वरूप तो प्रमाण ज्ञान से ही समभा जा सकता है। वेदान्ती, वौद्ध, सांख्य दर्शनी आदि नयवादी वस्तु के एक देश धर्म को ही प्रधानता देकर भगड़ बैठते हैं—विवाद कर बैठते हैं।

(१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋष् सूत्र, (४) शब्द, (६) समभिरूढ, (७) एवंभूत ये सात नय हैं। प्रत्येक नय वस्तु के एक धर्म को ही बताता है।

व्यवहार और नंगम नय की अपेक्षा से चेतन रूपी कहा जाता है और निश्चय नय की अपेक्षा से अरूपी कहा जाता है। सांसारिक जीव कर्मवर्गणा की अपेक्षा रूपी, और रुचक प्रदेश, कर्मवर्गणा से अलिम होने से वह अरूपी कहा जाता है।

संग्रह नय की अपेक्षा से आत्मा की केवल सत्ता ग्रहण की जाती है वयोंकि चेतन स्वयं उत्पन्न नहीं होता, और न स्वयं मरता ही है। वह जैसा है, वैसा ही रहता है।

व्यवहार नय की अपेक्षा से आत्मा द्रव्यत्व से नित्य है और प्याय से अनित्य है। ऋ ज़ुसूत्र की अपेक्षा से वर्तमान में वस्तु का जो रूप है उसे ही प्रधानता दी जाती है।

शब्द नय की अपेक्षा से एक शब्द के अनेक पर्याय होने पर भी जो शब्द बोला गया है उसका ही ग्रहण किया जाता है, उसके पर्यायों का ग्रहण नहीं किया जाता।

ं इसके विरुद्ध समिभिक्द नय वाला प्रत्येक शब्द के पृथक्-पृथक् अर्थों को स्वीकार करता है। आत्मा जीव, चेतन आदि शब्द को अलग अलग पर्यायवाची समभकर अलग अलग अर्थ स्वीकार करता है।

एवंभूत नय की अपेक्षा से कर्ता की जो किया वर्तमान में चल रही हो, उसको कर्ता के साथ युक्त करके व्यवहार किया जाता है। जो आत्मा चंडाल का काम करती है, उसे चंडाल और जो साधु की किया करती है उसे साधु कहा जाता है।

आगमसार ग्रंथ में मुनिराज श्री देवचन्द जी ने 'सिद्ध' की सात नयों से व्याख्या की है। उसका संक्षिप्त यह है—

- (१) नैगम नय-समस्त जीवों को सिद्ध स्वरूप माना है।
- (२) संग्रह नंय-सब जीवों के मूलगुणों को सिद्धवत् मानता है।
- (३) व्यवहार नय—विद्यालव्यि चमत्कार सिद्धी वाले को सिद्ध मानता है।
  - (४) ऋजुसूत्र नय-सम्यक्त्वी जीव को सिद्ध मानता है।
- (५) शब्द नय--शुक्ल ध्यान के परिणामवाले को सिद्ध मानता है।
- (६) समिम्हठ नय-केवल ज्ञानी यथाख्यात चरित्री तेरवें चौदवें गुण स्थान वाले को सिद्ध मानता है।
- (७) एवंभूत नय—जो सकल कर्म क्षय करके लोकान्त में विराजमान है उन्हें सिद्ध मानता है।

इस प्रकार यह चेतन आत्मा सर्वांगो और स्वयं सव नयों का दिनामी है। उसका रूप एक नय द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता। सब हिण्टकोणों को व्यान में रखकर ही उसका स्वरूप समक्षा जा, सकता है।

# [ ११२ ]

श्री आनन्दघनजी कहते हैं—यह आत्मा अनुभव से ही जानी जाने वाली है। इसके जानने का उपाय यही है जो ऊपर वताया जा चुका है। अनुभव गम्य आत्मा के सम्वन्य में तो कहने सुनने वाली वात कुछ भी नहीं है क्योंकि यह आत्मा तो आनन्द समूह महात्मा है। इसका ज्ञान इन्द्रियों द्वारा नहीं हो सकता है। यह तो इन्द्रियातीत है। यह आत्मा तो आत्मा द्वारा ही जानी जाती है। इसकी पहिचान का तो एक ही इलाज—उपाय अनुभव ज्ञान है।

अनुभव का लक्षण कविवर श्री वनारसीदासजी ने इस प्रकार वताया है—

> "वस्तुविचारत ध्यावता, मन पावे विश्राम । रस स्वादन सुख उपजे, अनुभव वाको नाम ।"

वस्तु का विचार करते समय, इसका ध्यान करते करते जव मन शांत होने छगे, उस समय आत्म रस के आस्वादन में जो अपूर्व मुख को निष्पत्ति होती है उसे अनुभव ज्ञान कहा जाता है

भ्रनादित्व सिद्धि

६२

राग-गौडी

विचारी कहा विचारइरे, तेरी ग्रागम ग्रगमे ग्रपार ॥
विनु ग्राघार ग्राघेय नहीं रे, विनु ग्राघेय ग्राघार ।
मुरगी विन इंडा नहीं प्यारे, वा विनु मुरग की नार ॥वि०॥१॥
भूरट वीज विना नहीं रे, घीज म भुरटा घार ।
निस विनु घौस घटइ नहीं प्यारे, दिन घिनु निस निरंघार ॥वि०॥२॥
सिद्ध संसारी विनु नहीं रे, सिद्ध न विनु संसार ।
करता विनु करगी नहीं प्यारे, विनु करगी करतार ॥वि०॥३॥
जामगा मरगा विना नहीं रे, मरगा न जनम विनास ।

्दीपक विनु परकास के प्यारे, विन दीपक परकास शविव।।४॥ 'भ्रानंदघन' प्रभु वचन की रे, परिस्ति घरि रुचिवत । सास्वत भाव विचारते प्यारे, विलो भ्रानादि भ्रनंत शिविव।।४॥

पाठान्तर—विचारइ = विचार (आ), विचारो (उ) तेरो आगम""

अपार = अगम अथाह अपार (अ), आगम अगाह अपार (उ), तेरो आगम

अगम अथाह (क.व) विनु = विन (इ)। आघार आधेय = आधे आघा (इ)।

आघार = अघार (६)। 'आ' प्रति में 'यारे शब्द नहीं है। वा = या (इ)।

दिन""निरघार = विन दिन निस निरघार (इ)। विनु = विन (इ), विना (उ)। नहीं प्यारे = नहीं रे (अ), जामण = जामन (इ), जनम (उ)।

दीपक = दीपन (अ.इ)। परकास के प्यारे = परगास के प्यारे (अ), परगासता प्यारे (इ). परगासवो प्यारे (उ)। विन "परगास के प्यारे विनु परगास (आ)।

विचन की रे = वर्चन थीरे (उ)। घरि = घरइ (आ), घर (अ), घरूं (इं)।

सास्वत = सासित '(आ) '। विचार ते प्यारे = विचार के प्यारे (अ.इ)।

खेलो = खेल (आ), खेले (इ)।

'शव्दार्थ — विचारी = विचारक, विचार करने वाले । अगम = अगम्यं आधार = सहारा । 'आधेय = सहारे पर टिकी हुई वस्तु । भुरटा = भरभू ट; कांटे वाला पौदा । टार = विना । निस = रात्रि । दौस = दिन । 'निरधार = .निर्णय । कररी = क्रिया । करतार = करने वाला, कर्ता । जामण = जन्म । विनास = विन्यास, स्थापन करना । परिणति = रूपान्तर की क्रिया; फल । 'रुचिवंत = रुचि रखने वाला, विश्वांस रखने वाला ।

श्रथं सहो शहमन् ! विचार करने वाले (दार्शनिक): कहां तक विचार करें, तेरा शास्त्र तो अगम्य और अपार है। विना आधार के सहारे के आधेयवस्तु कैसे टिक सकती हैं ? उसी प्रकार विना आधेय के आधार किसका ? नीव विना मकान कैसे वनेगा ? और मंकान विना नीव किसकी होगी ? द्रव्यक्प आधार विना गुण पर्याय रूप आधेय कैसे संभव है तथा गुण पर्याय आधेय विना द्रव्य रूप आधार कैसे संभव है ? इसी प्रकार मुर्गी के विना अंडा नहीं होता और अंडे के विना मुर्गी नहीं हो सकती। (मुर्गी नहीं होगी तो अंडा कहां से आवेगा और अंडा नहीं होगा तो मुर्गी कहां से उत्पन्न होगी) ॥१॥।

पौदों (वृक्ष) के विना वीज नहीं होता है और वीज पौवे (वृक्ष) के विना नहीं होता। रात्रि विना दिन घटित नहीं होता और दिन विना रात्रि का निर्णय नहीं होता वर्थात सदा दिन ही वना रहे तो फिर रात्रि का निर्णय कैसे हो।।२॥

सिद्ध संसार के विना नहीं हो सकते, अर्थात् संसार होने से ही मोक की सिद्धि है। सिद्ध न हो तो संसार की संभावना कैसे हो, संसारी जीव ही सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हैं। कर्त्ता के विना किया नहीं होती है और जहां किया है वहां उसका कर्त्ता अवस्य है।।३॥

मरण विना जन्म की संभावना नहीं है, और जन्म के विना मरण नहीं होता। प्रकाश, विना दीपक नहीं होता और दीपक प्रकाश विना नहीं होता है। प्रकाश से दीपक का होना निश्चित है तो दीपक से प्रकाश होना सिद्ध है।।४॥

श्री आनन्दवनजी कहते हैं—रुचिवत—रुच रखने वाले जिन्हें कुछ जानने की इच्छा है वे आनन्द के समूह प्रभु सर्वज के वचनों की परिणित को (परिणमन किया श्रद्धा को) घारण कर सादवत भाव पर विचार करें तो उन्हें यह खेल (संसार) अनादि और अनंत मालूम होगा।

जड़ और चेतन दोनों साइवत और अनादि हैं। इनका सम्बन्ध अनादि काल से है और अनंतकाल तक रहेगा। यह सर्वज्ञ देव की वाणी है इस पर श्रद्धा रखो। साधु संगति विनु कैसे पद्दये, परम महारस घामरी।
कोटि उपाव करे जो वौरा, श्रनुभव कथा विराम रो।।साधु०।।१॥
सीतल सफल सत सुरपादय, सेवउ सदा सुख छाइरो।
छंछित फलै टलै अनवंछित, भव संताप वृक्षाइ रो।।साधु०।।२॥
चतुर विरंचि विरोचन चाहै, चरण कमल मकरंदरो।
कोहर भरम विहार दिखावै, सुद्ध निरंजन चंदरी।।साधु०॥३॥
देव असुर इन्द्र पद चाहु न, राज समाज न काजरो।
संगति साधु निरंतर पावुं, 'आनन्दघन' महाराज रो।।सा०॥४॥

पाठान्तर — कोटि = कोट (इ), कोर (उ)। उपाव = उपाउ (उ)। जो = जड (अ)। वीरा = वीरो (इ), वोरो (उ)। ज़िराम = विरांत (उ), विसराम (क. वु.)। सेवड = सेवो (अ.इ.उ) सेवै (क. वु.)। सुख छाइरी = सुच्छाईरी (अ), सुद्धायरी (इ.उ)। अनवंछित = अनुवंछित (आ) विरंचि = विरंच (अ. इ.उ)। विरोचन = विरंजन (क.वु.)। चंदरी = देवरी (उ)। इन्द्र = इन्द (इ),। चाहुन = चाहत (इ.उ)। राज = काजरी = राग समान काजरी (आ), नये जम सम काजरी (इ), राज न काज समाजरी (उ,क,वु)। पावुं = पावौ (अ)। नोट 'ई' प्रति में अ'निम पंक्ति नहीं है। 'उ' प्रति में इस प्रकार है — आनन्दधन प्रभु तुम विन और देव नहीं लाउंरी।

शाव्यार्थं — साघु = त्यागी मुनि । महारस = आत्मानुभव । घाम = घर । वीरा = पागल । सुरपादप = कल्पवृक्ष । विरंची । ब्रह्मा, शास्त्र रचने वाले विज्ञ पुरुष । विरोचन = प्रकाशमान । कोहर = कोहरा. बुंघ । निरंजन = दोष रहित, परमात्मा ।

प्रयं—आनन्दघनजी महाराज कहते हैं—शास्त्रानुसार पूर्ण चारित्र पालने वाले संत पुरुपों के सत्संग विना आत्मानुभव रूप परम महारस के स्थान को कैसे प्राप्त किया जा सकता है। साधु संगितः के अतिरिक्त अन्य करोड़ों यत्न करने वाले पागल ही हैं। साधु संगित विना अनुभव पूर्ण वातों के जानने में विराम रकतावट ही आती है। अथवा साधु संगित ही अनुभव वार्ता के लिए विश्राम स्वरूप है। कोई चाहे जितना तप करें चाहे जितना शास्त्र पढ़े किन्तु साधु संगित के विता वह आत्मानु मुब्द प्राप्त नहीं कर सकता ॥१॥ त

संत पुरुष कल्पवृक्ष के समान त्रिविव ताप को दूर करने वाले हैं और इच्छित फल देने वाले हैं अतः ये शीतल हैं और फल युक्त हैं। इनकी मुखद छाया में निवास करो। इससे आत्मानुभव रूप मनोकामना पूर्ण होती है। पुद्गलों की आसिक रूप अवांछनीय वस्तुयें दूर हो जाती है और भव-संताप—भवश्रमण नाश हो जाना है।।रा।

जो-ज्ञास्त्रों के चतुर प्रिशेता हैं और अपने ज्ञान से प्रकाशमान हैं वे भी संत पुंत्यों के चरण-कमलों के पराग (ब्रूल) को चाहते हैं। विद्वानों से सेवित संतजन भ्रम रूप कोहरे को दूर कर शुद्ध परमातमा रूप चन्द्रमा के दर्शन करा देते हैं।।।।

आनन्दघनजी कहते हैं कि मैं देव या अमुरों के इन्द्र पद का इच्छुक नहीं हूं। न मुक्ते राज्य और समाज से कोई काम है। मुक्ते तो साधु संगति निरंतर प्राप्त होती रहे यही मेरी कामना है।।४॥

मूलोत्तरः विचाररणाः ६४ - रागः-प्रभाती, श्राशावरी, कलाहरीः

मुदल थोड़ो रे माईड़ा व्याजड़ो घणेरो, किम करि दीघो जाय। तल पद पूँजी व्याज में श्रापी सघली, तोही न पूरड़ो व्याय ॥मु०॥१॥ व्यापार मागोरे माईड़ा जलवट 'थलवट रे, धीरे न निसागी माइ। व्याजडो़ छोड़ावी कोई खांदी परठवेरे, मूल ग्रापू सम खाइ ।।मु०।।२।।ः हाटडुं माडूरे रूडे माराक चोक मां रे, साजन नो मनडो़ मनाइ। 'ग्रानन्दघन' प्रभु सेठ सिरोमिंग, बांहडी़ भालेजो ग्राइ ।।मु०।।३।।

पाठान्तर मुदल = मुंदल (अ); मूल (इ.उ) मूलड़ो : (क.बु;) १ ; भाईड़ा = भाई (इ.उ), भाई (क.बु.) । पूंजी = पूंजी में (उ.क.व ); 'व्याज में' 'इ.उ' और मुद्रित प्रतियों में यह शब्द नहीं है । आप्री = आली (आ), आप्री . (उ) । तोही "थाय = तोहि पूरी निव थाय (इ), तोहि निव पूराडो थाय (उ), तोहे व्याज पूरू निव थाय (क.बु) । 'भाईडा' यह शब्द इ.उ, श्रीर मुद्रित प्रतियों में नहीं है । थलवटेरे = थलवटे (अ), थलवटेरे (इ) । माइ = माय (इ. उ. क.बु) । व्याजड़ो = व्याज (इ.क.बु.) । कोई = को (उ), 'इ' प्रति में यह शब्द नहीं है । खांदी = खांघी (आ), खंदी (इ.बु), खंदा (क) परठवेरे = परठ करे (आ) । आप = आलु (आ), आपों (अ), आलों (उ) । मांहू रे = माणु रे (आ), माडू (इ), मांड्योरे (उ) । रूडे = रूडा (अ), रूडा (इ.क.बु) । चोकमारे विवाद = मन्य (इ.उ.क.बु) । सेठ = सेठ (य) । मांलीची = मालोरे (उ), मांड्योरे (क.बु) । याइ = आय (इ.उ.क.बु.) ।

शब्दायं—मुदल = मूल रकम, मूलघन, अमली रकम । घणेरो = बहुत, विधिक । तलपद = मूल, खास, असल । आपी = देवी । सघली = मव । पूरहो = पूरा, भरपूर, यथेष्ठ । भागोरे = नष्ट हो गया । धीरे न = धीजते नहीं हैं, विदवास नहीं करते । निसाणी=प्रतिष्ठा, प्रभाणिकता । खंदी=किस्त । परठवे= ठहरा कर, तय कर । समखाइ = सीगंघ, वप्य । हाटहुं = हाट, दुकान । साणक चौक = ज्यापार का मध्य स्थान । साजन नो = सज्जनों का । वाहडी = हाथ । भालेंजो = पकड लेना ।

प्रयं, अरे भाई! मूल रकम तो थोड़ी:ही:है,किस्तु:व्याजःकी ः रकम मल रकम से भी: अत्यक्षिक हो गई है, वह किस, प्रकार चुकाई जा सकेगी। मैंने अपनी संपूर्ण मूल रकम व्याज में देदी फिर भी व्याज पूर्ण नहीं हुआ ॥१॥

अरे भाई ऐसी स्थिति से मेरा जलमार्ग का स्थल मार्ग का व्यापार सब नष्ट हो गया है, कोई घीज, पतीज मेरी नहीं रही है— मेरी प्रामाणिकता नहीं रही। अरी मां, ग्रव मैं क्या करूं? (अत्यन्त निराशजनक शब्द) मैं शपथ पूर्वक कहता हूं कि यदि कोई परोपकारी सज्जन व्याज छुड़ाकर मूल रकम की किश्त करा दे तो मैं मूल रकम दे दूंगा।।।।।

मैं सज्जन पुरुषों को मनाकर उनकी दिल जमाई करके-विश्वास प्राप्त करके नगर के प्रमुख स्थान (वाजार) में हाट (दुकान) लगाकर, पैसा पैदाकर सब चुका दुंगा।

: फिर हाथ जोड़कर प्रार्थना करता है कि हे सेठों के सेठ आनंदघन प्रभु मेरा हाथ पकड़ो, मेरी रक्षा करो। निराधारों के आधार केवल आप ही हो।।३।।

इस पद में श्री आनन्दयनजी ने कर्ज में फंसे हुए व्यापारी के मिस से आत्मा के ऊपर जो कमों का कर्ज है उसका दिग्दर्शन कराया है। वास्तव में आत्मा पर आठ कर्मों का कर्ज है किन्तु राग हे प के कारण भव-भ्रमण रूप व्याज इतना वढ़ गया है कि वह चुकाया नहीं जा रहा है। सम्पूर्ण आयु रूपी मूल पूंजी पूरी होने पर भी व्याज पूरा नहीं हो पाया। शांति प्राप्ति के लिए स्थल मार्ग और जल मार्ग से अनेक तीर्थों में भ्रमण होता है किन्तु स्थिरता रूप प्रामाणिकता न होने से कहीं पर भी आश्वस्त नहीं होता। यह आत्मा विचारता है कि कोइ ज्ञानी पुरुष राग-होष रूप व्याज छुड़ा दे तो कर्मोदय रूप मूल द्रव्य को भोग कर चुकता करूं। ज्ञानी महापुरुष के संसर्ग से विरति के द्वारा भविष्य की कर्म वृद्धि रूप व्याज से छुटकारा मिलकर कर्म रूपी कर्ज चुक जावेगा।

राम कही रहिमान कही कोउ, कान्ह कही महादेवरी।।
पारसनाथ कही कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वमेवरी।।राम०।।१।।
माजन मेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूपरी।
तैसे खंड कलपनारोपित, श्राप ग्रखंड सरूपरी।।राम०।।२।।
निजपद रमे राम सो कहिय, रहम करे रहमान री।
करषे करम कान्ह सो कहिय, महादेव निरवारा री।।राम।।३।।
परसे रूप सो पारस कहिय, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्मरी।
इह विध साध्यो ग्राप 'ग्रानन्दधन' चेतन मय निःकर्मरी।।राम०।।४।।

पाठान्तर—कहावत = कहीवत (उ) । मृत्तिका = मृत्यका (म्र.म्रा.उ) । सरूपरी = अनूपरी (उ) । रहम = रहिम (आ), रिहमांन (इ) । करपै = करपै (अ) । कान्ह = कान (ग्र.इ.उ) कहान (ग्रा) । निरवाएरी = निरवानरी (अ.इ) परसे=परसइ (आ) पारसै (उ) । सो=श्री (उ) । ब्रह्म=प्रह्मा (आ) । चीन्हैं=चीने (अ) । ब्रह्म''''ब्रह्मरी = ब्रह्मा चीन्है ब्रह्मरी (आ) । इह = यह (अ) । विघ = विघ (इ) । साध्यो = सध्यो (ग्रा), साधो (क.बु.वि) । निःकर्मरी = नहीं क्रमरी (अ), निहि कर्म्मरी (आ.इ) ।

शब्दार्थं -स्वमेवरी = स्वयंही, खुद ही। भाजन = पात्र, वर्तन।
भेद = विविधता। मृत्तिका = मिट्टी। खंड - भाग, हिस्से। कलपनारोपित =
कलपना से श्रारोपित किये हुये। श्रखंड = जिसका कोई दुकडा न हो।
रमै = रमग करे। रहम = दया, करुगा। करपै = कर्मो को खेंचे — मिटाये।
परसे = स्पर्श करे। चीन्हे = पहिचाने। साध्यो = सिद्ध किया है। चेतनमय =
उपयोगमय, चैतन्य शक्ति युक्त। निःकर्मगी = कर्म-उपाधिरहित।

ग्नर्थ—उस परम तत्व को चाहे राम के नाम से कोई संबोधित करे, चाहे रहमान के नाम से, चाहे कृष्ण के नाम से या महादेव के नाम ंसे, चाहे पार्वनाथ के नाम से; चाहे ब्रह्मा के नाम से: संवोधित करे, किन्तु वह महा चैतन्य स्वयं ब्रह्म स्वरूप ही है ॥१॥

मिट्टी का रूप तो एक ही है। कि तु पात्र से अनेक नाम कहे जाते है। (यह घड़ा है, यह कु डा है यह गिलास है इत्यादि)। उसी प्रकार इस प्रमतत्व के पृथक् पृथक् भाग व ल्पना से किये गये हैं। किन्तु दस्तव में वह तो अखंड स्वरूप ही है ॥२॥

जो निज स्वरूप में रमण करे उसे राम कहना जाहिए, जो प्राणी मात्र पर दया करे उसे रहमान । जो जानावरणा दिकर्मी को नष्ट करे उसे कान्ह (कुंष्ण) कहना चाहिए। जो निर्वाण (मीक्ष) प्राप्त करे उसे महादेव कहना चाहिये।।३॥

्अपने रूप का जो स्पर्श करे उसे पार्श्वनाथ कहना चाहिए और जो चैतन्य आतंम-शुद्ध रूप सत्ता की पहिचाने वह ब्रह्मा है।

किवराज आनन्दघन कहिते हैं कि इस आनन्दमय परम तत्व की मैंने इसी प्रकार आराधना की है। यह परम तत्व तो निष्कर्म, (कर्म-उपाधि से रहित) ज्ञाता, दृष्टा, चैतन्यमय है।॥४॥

दर्शन वैचित्र्य

६६

राग-मारू जंगलो

मायडी मून निरपख किए ही न मूकी ।
निरपख रहेवा घणुं ही भूरी, घी में निजमति फूकी ।।मा०।।१।।
जोगिये मिलिने जोगए कीघी, जिंतये कीघी जतनी ।
मगते पकड़ी मंगतरा कीघी, मतवाले कीघी मतरा ।।मा०।।२।।
राम मरा रहमान मरावी, ब्रिस्त पठ पठाई ।
घर घर ने हूँ घंघे विलंगी, ब्रलंगी जीव सगाई ।।मा०।।३।।

कोइये मूंडी कोइये लोची, कोइये केस लपेटी।
कोई जगावी कोई सूती छोड़ी, वेदन किराही न मेटी।।मा०।।तेर्ष् कोई थापी कोई उथापी, कोई चलावी कोई राखी
एक मनो में कोई न दोठों, कीई नो कोई निह साखी।।मा०।।प्र।।
धींगो दुरबल नै ठेलीजैं, ठींगौ ठींगो बाजे।
ग्रबला ते किम बोली सिकये, बड जोधाने राजे।।मा०।।प्र।।
जे जे कीधूं जे जे कराव्युं, ते कहता हूँ लाजूं।
थोड़े कहे घणुं प्रीछी लेजो, घर सूतर नहीं साजूं।।मा०।।७।।
ग्राप बोती कहेता रिसावे, तेहि सूं जोर न चाले।

उक्त पद हमारी केवल 'उ' प्रति मे ही है। पाठान्तर मुद्रित प्रतियों के ही हैं—-

पाठान्तर जोगिये = योगीये (बु)। जोगण = योगण (बु)। जितये = यित्यें (बु)। कीधी = कीनी (बु) जतनी = यतनी (बु)। मतवारूं = मतवासी (क्), मतवाली (बि)। यहां जो तीसरा पद है वह 'बु' प्रति में चौथा पद है। विलगी = वलगी (बु)। कोइये मूंड़ी = केणे मुकी (बु)। कोइये लोची = केणेलूंची (बु) कोइये = केणे (बु)। कोई जगावी काई स्ती छोडी = एक पखी में कोई न देख्यों (बु) वेदन = वेदना (बु)। कोई = केणे (बु)। कोई राखी = किणराची (बु)। एक मनी साखी = केणे जगाडी केणे सुआडी, कोइनुं कोई नथी साखी (बु)। घोंगो = धोगे (बु)। ते किम = ते केम (बु)। जोधा = योदा (बु)। ते = तेह (बु)। कहतां = कहेती (बु)। घर स्तर निहं साजूं = घरशुं तीरय निहं बीजुं (बु)। तेहिंसूं = तेथी (बु)। प्रमु = बहालो (बु)। मालै = जाले (बु)। वाजी सघली पाले = तो बीजुं सघलुं पाले (बु)।

शब्दार्थ मायडी = हे माता । निरपख = निष्पक्ष । किएाही = किसी ने मी। मूकी = छोडा। ऋरी = दुखित हुई, परेशान हुई। धीमें =

धीरे धीरे। फूकी = जला डाली। की घी = की। मतवाले = ज्ञांन मस्त योगी। भग्गी = पढ़ा, कहा। घंचे = कार्य में। विलगी = मन लगाया। म्रलगी = पुथक, अलग। सगाई = संबंध। लोची = केश नोचे, बाल उखाडे। यापी = स्थापित किया। उथापी = उखाडा। एक मना = एक म्रिम्प्राय वाला। दीठो = दिखाई पड़ा। घींगो = बलवान। ठेलीजैं = ढकेलना, घक्का मार कर हटाना। वाजे = लड़े। प्रीछी लेजो = समभलेना। घर सूतर = घर की व्यवस्थाः। रीसावे = कोघ करे। बांहडी = हाथ। भालै = पकड़ै। वाजी = खेल।

इस पद में योगीराज श्री आनन्दघन ने विचित्र प्रकार से संसार के मत मतान्तर आत्मा चेतन और आत्मत्व चेतना के सम्बन्ध में क्या विचार रखते हैं, किस प्रकार मोक्ष मिलती है-आदि का दिग्दर्शन कराया है।

यद्यपि चेतन और चेतना पृथक् पृथक् नहीं है फिर भी समभने के लिए अलग दिखाने की कल्पना की गई है। इस पद में चेतना अपनी विवशता और व्यथा बताती है। आत्मा-चेतना जिस जिस मत धर्म के कुल में उत्पन्न होती है, वह वैसी ही वन जाती है। वास्तव में उसका रूप और ध्येय क्या है उसको उसका भान ही नहीं रहता। आत्मा को अपने स्वरूप प्राप्त करने में—मोक्ष प्राप्त करने में कोई भी मत पक्ष, कोई भी स्वरूप कोई भी स्थान, और कोई भी अवस्था वाधक नहीं है। आत्मा तो कमशः अपना विकास करता हुआ एक दिन शुद्ध बुद्ध बन जाता है। यही इस पद का आशय है।

अये मां! (यह किसी को सन्बोधन नहीं है, विलक स्वतः ही दुखित हृदय से निकला शब्द है। जैसे अरे राम! यह क्यां हुआ, अये मां! अव क्या होगा इत्यादि) मुक्ते किसी भी मत-पक्ष वाले ने निरपक्ष-पक्षपात रहित नहीं छोड़ा (नहीं रहने दिया) मैंने निष्पक्ष रहने के लिये वहुत ही विलापात किये और बहुत ही प्रयत्न किये किन्तु मुक्ते

किसी ने निरपक्ष रहने नहीं दिया। धीरे घीरे अपने पक्ष में की मेरे कानों में फूंक मारी, मेरे कान भरे अर्थात् मुक्ते अपने पक्ष का बना लिया और मुक्ते वैसा बनना पड़ा। आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध चेतनत्व है। जिस कुल में वह उत्पन्न होती है उसके आचार विचार वैसे ही हो जाते हैं।।१।।

योगियों ने मुभे योगिनी बना लिया और यतियों ने (जिते-निद्रयों ने) मुभे जतनी बना लिया। भक्ति मार्ग के अनुयायियों ने मुभे अपने रंग में रंगकर भक्तनी वन लिया। इसी प्रकार अन्य मत-धर्म के मानने वालों ने मुभे अपने अपने धर्म की वना लिया। इसीलिये चेतना पुकारती है कि मुभे किसी ने भी निष्पक्ष नहीं रहने दिया।।२॥

राम के अनुयायियों ने मुभे राम नाम-पाठी वना लिया। रिहमान भक्तों ने मुभे रिहमान का भजन (प्रार्थना) सिखाई और अरि-हंत के मानने वालों ने अपना पाठ पढ़ाया। किसी ने शंकर का, किसी ने कृष्ण का किसो ने ब्रह्मा का उच्चारण मुभसे कराया। इस प्रकार प्रत्येक घर के — मतमतान्तर के घन्धों — कार्यों में फंसी रही। मेरे (नेतना के) और नेतन के सम्बन्ध से सदा ही दूर रही हूं।।३।।

किसी ने मेरा मुंडन कराया, किसी ने लोच कराया (केश उखाड़े), किसी ने लम्बी लम्बी जटाये लपेटी किसी ने मुभे जागृत रखा और किसी ने सोती हुई ही रखा अर्थात् पृथक् पृथक् मत—पक्ष वालों ने अपने अपने तरीके से रूप वनाकर धर्म कियायें की, किन्तु अब तक किसी ने मेरे स्वामी चेतन के विरह से उत्पन्न मेरी वेदना को दूर नहीं किया।।४।।

. हे मेरी मां ! देखो, मेरा अलग अलग स्थानों पर कैसा हाल हुआ। किसी ने मेरी स्थापना की-आत्मा है। किसी ने मेरा अस्तित्व ही उखाड़ फेंका, आत्मा नामक कोई वस्तु ही नहीं है। यह तो पृथ्वी अप, तेज, वायु और आकाश इन पांच महाभूतों का खेल हैं। इस प्रकार किसी ने मेरे अस्तित्व को चलता किया और किसी ने उसकी रक्षा की। मुक्ते कोई एक भी ऐसा अत-पक्षवाला हिंडिगोचर नहीं हुआ जो कि दूसरे का साक्षी हुआ हो, अर्थात् सब एक दूसरे का खंडन करते ही दिखाई देते हैं।।।।।

संसार में जो वलवान हैं वे दुरवल-कमजोर को दूर हटा देते हैं। अनेक मत-पक्ष वाले आपस में शास्त्रार्थ करते हैं. जिसकी बुद्धि तेज है वह दूसरे को परास्त कर देता है किन्तु जो समान वलवान है-तीक्ष्ण बुद्धि वाले, हैं वे आपस में भगड़ते ही रहते हैं। कोई किसी को हरा नहीं सकता है और न अपना पक्ष छोड़ सकता है। ऐसे बड़े योद्धाओं—अपने अपने पक्ष के मोह में रहने वालों—के मध्य में अवला क्या वोल सकती हूं। ऐसे एकान्तवादियों में मैं क्या कर सकती हूं।।६।।

मुक्स तो जिस जिस ने जो जो कराया, मैंने तो वही वही किया, जिसका वर्णन करते हुए भी मुक्ते शर्म मालूम होती है। अर्थात् जिस जिसकी जैसी मान्यता थी उसके अनुसार मुक्ते वनना पड़ा, इसे वताने में लज्जा आती हैं। मैंने संक्षिप्त में ही यह कहा है उसे विस्तार पूर्वक ही समक्तो क्योंकि मेरे घर की व्यवस्था अच्छी नहीं है। मेरे पि चेतन विभाव दशा में भ्रमण करते रहते हैं। जब निज भाव में आवे तभी कुछ वांत वन सकती है। ।७॥

मैं (चेतना) अपने पर गुजरी हुई वातें जब कहती हूं तो वे (चेतनजी) कोधित हो जाते हैं जिससे मेरा वर्श चंलता नहीं है। अब तो बात तब ही बन सकती है जब आनन्द के स्वरूप चेतन स्वामी मेरा हाथ पकड़ ले। उनके हाथ पकड़तें ही सर्व कार्य सिद्ध हो जावेंगे। चेतन अपने 'स्वरूप को प्राप्त कर लेवेगा ॥=॥ सम्यक्तव पुत्र प्रेम

**८७** 

राग-सोरठ गिरनारी

छोरा नै क्युं मारे छैं रे, जायैकाट्या डैण । छोरो छैं म्हारो बालो-भोलो, बोले छैं श्रमृत बैगा।छों ।।१॥ लेय लकुटिया चालण, लाग्यो, श्रब कांइ फूटा नेण। तूं तो मरगा सिराणे सूतो, रोटी देसी कोण (केंण) ।।छो ।।२॥ पांच पचीस पचासा ऊपर, बोले छैं सूधा बैंण। 'श्रानन्दघन' प्रभु दास तुम्हारो, जनम जनम के सैंण ।।छो ।।३॥

यह पद हमारी केवल अप्रति में है। पाठान्तर मुद्रित प्रतियों के दिये गये है।

पाठान्तर—म्हारो = महारो (वु) मारो (क.वि)। छोरा = छोटा (वि)। काट्या = काड्या (वु)। लाग्यो = लागो (वु)। देसी = देशे (वु)। तुम्हारो = तिहारो (वु), तुमारो (क.वि)।

'शब्दार्थं — छोराने = पुत्र को । जाये काट्या = पुत्र घाती (यह गानी है, ग्रप शब्द है) । ढेंगा = (यह भी गानी है) मूर्ल वृद्ध, ग्रविचारी वृद्ध । वालों भोलो = ना समक्त, भोला । नैगा = नयन, नेत्र, ग्रांखं। पांच = पंचं महान्नतं, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । पचीस = पंच महान्नतं की पच्चीस भावनायें। पचासा = तप के भेद, उपवास, ग्रायंवल, ग्रादि पचासों भेद । सूधा = सीघे, कपट रहित । वैगा = वचन । सैंगा = सयग, सजन, स्वजन।

भ्रथं—सुमित मिथ्यात्व से कहती है—हे वाल घातक, अवि-चारी, मूर्ख, बुड्ढे! मेरे सम्यक्त्व रूप वालक (पुत्र) को क्यों मारता है? यह मेरा उपसम या क्षयोपसम रूप नव जात शिशु सम्यक्त्व अभी तो विल्कुल भोला है—ना समझ है। यह अभी थोडा-थोड़ा अमृत के समान मधुर वोलने लगा ही है ॥१॥ यह लकडी के सहारे कुछ कुछ चलने लगा है। हे मिथ्यात्व! क्या तू जानता नहीं है? क्या तेरे नेत्र फूट गये हे ? क्या तुफे मालूम नहीं है कि सम्यक्त्व प्रकट होने पर तेरी मृत्यु समीप ही है। अव तुफे भोजन देने वाला कौन है ? सम्यक्त्व किसो भी प्रकार का प्रगट हो (औपसमिक या क्षयोपसमिक) जाने पर अनंतानुबंधो कोध, मान, माया, लोभ व मिथ्यत्व मोहनीय मिश्र मोहनीय तथा सम्यक्त्व मोहनीय ये सात कमं-प्रकृति रूप भोजन अब तेरा त्रंद हो गया है, अब तुफे रोटी देने वाला (पनपाने वाला) कोई नहीं है। इसलिये तेरी मृत्यु सिर पर आ गई है।। रा

पंच महावत, पंच महावत की पच्चीस भावनायें तथा पचास प्रकार के तप के ऊपर यह (पुत्र) सीध-साधे वचन बोलता है—उनका अभ्यास करता है। सुमित कहती है—हे आनन्दघन प्रभु! यह सम्यक्त तो जन्म जन्म से आपका दास है। आप तो जन्म जन्मान्तरों से इसके स्वजन-स्नेही स्वामी हैं।।३॥

इस पद का भावार्थ श्री ज्ञानसारजी महाराज के टब्वे की सहायता से किया है। श्री ज्ञानसारजी महाराज ने इतना विशेष लिखा है कि एक समयावच्छेदे असंख्याता उपसम समकित प्राप्त करते हैं। उन सब में यह आगमानुयायी शुद्ध वचन बोलता है क्योंकि यह क्षपक श्रेणी का प्रारंभी है। चार वार उपसम सम्यक्त्व प्राप्त करने के पश्चात् जो पांचवी वार (अतिम बार) उपसम सम्यक्त्वी वनता है, वह क्षपक श्रेणी का प्रारंभी है।

विरह व्यथा व ६८ राग-वसंत

प्यारे, लालन बिन मेरो कोगा हाल। समभ्छे न घट की निठुर लाल।।प्यारे०।।१।। वीर विवेक तुं मांभी मांहि, कहा पेट दाइ श्रागे छिपांहि ॥प्या०॥२॥
तुम्ह भाव सो कीजे वीर, मोहि श्रान मिलावो ललित घीर

श्रंचर पकरै न जात श्राधि, मन चंचलता मेटे समाधि ।।प्या०।।४।। ... जाड विवेक विचार कीन, 'श्रानन्दधन' कीने श्रधीन ।।प्या०।।१।।

नोट—यह पद हमारी केवल 'श्र' प्रति में ही है और में न होने से उनके पाठान्तर नहीं दिये जा सकते। पाठान्तर मुद्रित प्रतियों के हैं। 'प्यारे' शब्द वु. श्रीर वि. प्रतियों में नहीं है। कोएा = कुन (क.वु.वि.)। समभै = समजे (क.वु.वि.)। तुं = जुं (क.वु.वि)। मांभी = मांजी (क.वु.वि)। मांहि = मांयि (क.वु) माइ (वि)। दाइ = दई (क.वु)। छिपाहि = छिपाई (क.वु.वि)। मोहि = सोई (क.वु.वि.)। लिलत = लालन (क.वु.वि)। अंचर व्याधि = अमरे करे न जात श्राध (क,वु,वि)। मेटे = मिटे (क.वु.वि)। जाइ = जाय (क.वि), जान (वु)।

शब्दार्थं —लालन = प्रिय, पति । घटकी = हृदय की । निठुर = निष्ठुर, निर्देशी । मांभी = केवट, नाव चलाने वाला । भावे = श्रच्छा लगे । ललित = . मुंदर । अंचर = आंचल । आधि = मानसिक पीडा ।

भ्रर्थ - सुमित कहती है - प्रिय स्वामी के विना मेरा क्या हाल हो रहा है ? वे ऐसे निदंयी हो गये है कि मेरे हृदय की व्यथा को समभते ही नहीं है।।१।।

हे विवेक वीर! तू ही मेरी नाव को खेने वाला है—पार, लगाने वाला है। तेरे से क्या पर्दा, कोई दाई के आगे भी पेट छिपायां जाता है क्या ? ॥२॥

हे वीर ! (भाई!) तुम्हें जो उचित लगे सो करो, किन्तु किसी भी प्रकार मेरे मनभावन स्वामी चेतन को लाकर मुक्ससे मिलादो ॥३॥ केवल अंचल (पल्ला) पकडने मात्र से ही मानसिक पीडा शांत नहीं होती। समता के विना कल्याण नहीं है—अर्थात् धैर्य पूर्वक समता भाव में रहे विना उद्धार नहीं। यह वात जब तक चेतन नहीं समभ नेता तब तक यहां आने मात्र से (मेरे से संबंध होने मात्र से) कुल कार्य नहीं वनेगा। मन की चंचलता (अस्थिरता) मेटने से ही समाधि अवस्था प्राप्त होगी।।४।।

चेतन के पास जाकर विवेक ने विचार विमर्श किया—सम-भाया और आनन्द स्वरूप चेतन को लाकर समता के अधीन कर दिया—वशीभूत कर दिया ॥१॥

श्राभार प्रदर्शन

33

राग-सोरठ

कत चतुर दिल ज्यानी हो मेरो कंत चतुर दिलजानी ।
जो हम चीनी सो तुम कीनी, प्रीत ग्रधिक पहिचानी हो ।।मेरो०।।१।।
एक बूंद को महिल बनायों, तामें ज्योति समानी हो ।
दोय चोर दो चुगल महल में, वात कछ निह छानी हो ।।मेरो०।।२॥ ...
पांच ग्रह तीन त्रिया मंदिर में, राज करें रजधानी हो ।
एक त्रिया सब जग वस कीनो, ज्ञान खड्ग वस ग्रानी हो ।।मेरो०।।३॥ .
चार पुरुष मंदिर में मूखे, कबहू त्रिपत न ग्रांनी हो । ।मेरो०।।४॥ चार्ज गित में रतलां वोते, करम की किनहु न जानी हो ।
'ग्रानन्दधन' इस पद कूं बूकें, बूझ्यी भविक जन प्रानी हो ।।मेरो०।।४॥

नोट-यंह पद हमारी केवल शिव प्रति में ४८वीं संस्था पर है। मुद्रित प्रतियों में भी केवल ग्राचार्य थी बुद्धिसागर सूरीश्वरजी द्वारा सम्पादित पुस्तक की भूमिका में है।

पाठान्तर — जानी = ज्ञानी । राज = राज्य । रजधानी = राजधानी । कीनो = कोने । खड्ग = खंग । इक " वू कै = दस ग्रसली इक ग्रसली वुजै । वूझ्यो = वुजे ।

शाद्यार्थं - दिल ज्यानी = अत्यंत प्रिय । चीनी = पहिचानी, जानते थे, विचारते थे । समानी = मिल गई, प्रकाशित हो गई । दोय चौर = राग-द्वेप । दोय चुगल = श्वासीश्वात । छानी = छ्पी हुई । वस आनी = वस में कर रखा है । असील = खरा, सच्चा । ब्रह्म ज्ञानी = यात्म ज्ञानी ।

भ्रर्थ-हे मेरे चतुर तथा अत्यन्त प्रिय स्वामी! हे पुद्गल परिणित के प्रेमी मेरे आत्माराम! जैसा मैंने सोचा (विचारा) था वैसा ही आपने कर दिखाया। अर्थात् अनादि काल के पश्चात् आपने मानव शरीर बनाया है ॥१॥

है चेतन देव! आपने एक बूंद का कायारूपी महल बनाया है। उसमें आपने अपनी ज्योति प्रकाशित की है। इस महल में राग-द्वेप रूपी दो चोर है जो आत्म स्वरूप की चोरी करते रहते हैं। श्वास व आयु रूपी दो चुगल है जो काल को आयु की स्थिति की सूचना चुपके चुपके देते रहते है। इस कारण इस काया रूपी महल की कोई भी वात ग्रुप्त नहीं रह पाई है।।२।।

इस तन-मंदिर में पांच इन्द्रिय तथा मन, वचन और काया वल ये आठ स्त्रियां है जो इस तन-मंदिर रूप राजधानी में राज्य करती है। इन आठों स्त्रियों में से एक मन रूप स्त्री ने इस शरीय ही को नहीं, विलक सम्पूर्ण संसार को ही ज्ञान रूपो खड़्ज (तलवार) के द्वारा वशीभूत कर रखा है ॥३॥

इस तन मंदिर में चार पुरुष—कोध, मान, माया और लोभ हैं, जो अनादि काल से भखे हैं, सब कुछ खाकर भी छप्त नहीं हुये हैं। आत्मिक गुणों को खाकर—नष्ट करके भी इनकी तृप्ति नहीं हुई है। सौभाग्य से इस मंदिर में स्वभाव परिणति रूप एक ही असल खरी (सच्ची) वस्तु है जिसे ब्रह्म ज्ञानी—भेद ज्ञान को जानने वाला ही पूछता है, वही उसकी कदर करता है।।४।।

चारों गितयों में—नरक, तियँच, मनुष्य और देव में-भटकते-भ्रमण करते हुये अनन्त काल (समय) व्यतीत हो गया है किन्तु कर्म की विचित्रता किसी ने भी नहीं जानी—पहिचानी है। योगीराज आनन्दघनजी कहते है—इस पद के मर्म को—आत्म स्वरूप को जानने वाला कोई विरला भव्य जन ही जान पाता है।।।।।

### प्रियतम उपालंभ

90

राग-वसंत

श्रा कुवृद्धि कूवरी कवन जात, जिहाँ रीकै चेतन ज्ञान गात ।।श्रा०।।१।। श्रा कुच्छित साख विशेष पाइ, परम सिद्धि रस छारि जाइ ।।श्रा०।।२।। जिहाँ श्रंगु गुन कछु श्रौर नाहि, गले पडेगी पलक माहि ।।श्रा०।।३।। प्यारे पाछ दे वाहि नाम, पटिये मीठी सुगुरा धाम ।।श्रा०।।४।। देवै श्रागै श्रधिकार ताहि, 'श्रानन्दधन' प्रभु श्रधिक चाहि ।।श्रा०।।४।।

यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति में, और मुद्रित प्रतियों में है। पाठ भेद मुद्रित प्रतियों से दिये गये हैं।

पाठान्तर—आ""जात = या कुवृद्धि कुमरी कौन जात (क.वृ.वि)! रीफैं=रीजै (वृ. वि)। आ कुच्छित=कुत्सित (वृ. वि)। पाइ=पाय (वृ. वि.)। सिद्धिरस=सुधारस (क. वृ. वि.)। छारि जाइ = वारिजाय (क. वृ. वि)। जिहाँ""नाहि = जी आगु कछु श्रौर नाहि (क), जीया गुन जानो श्रौर नांही (वृ. वि.)। प्यारे""नाम = रेखा छेदे वाहिताम (क. वृ वि.)। पटिये = पढअे (क. वृ. वि.)। देवै""चाई = ते श्रागे अधिकार ताहि, आनन्द प्रभु अधिकेरी चाहि (कृ.वि.)।

शाव्दार्थ — कुवृद्धि = कुमित । कवन = कीन ।ज्ञान गात = ज्ञान स्वरूप कुच्छित = कुत्सित, खराव, निंदनीय । साख = साक्षी, इज्जत, सहारा । परम सिद्धिरम = परम तत्व । छारि जाइ = त्याग कर । अंगू = शरीर । गले पढेगी = इच्छा विरुद्ध प्राप्त होगी, पीछे पडेगी । वाहि = उसका । पिटये = मेल मिलाप होना, तै होना । चाहि = प्रेम ।

भ्रथं— समता अपनी सिख श्रद्धा से कह रही है—हे सिख ! जिस पर यह ज्ञान स्वरूप चेतन राज री में हुये है—आसक्त हैं, वह विकृत अंग व स्वभाववाली कुबुद्धि किस जाति की है? तुम जानती हो ? यह चेतन की जाति की तो है नहीं, और न यह जड जाति की है। यह तो चेतन और जड के संयोग से उत्पन्न दोगली मोह की कन्या है। इसकी प्रेरणा से चेतन भौतिक सुखों के लिये हिंसा, भूंठ, चोरी आदि कुकमंं करते हुये भी पीछे नहीं हटता है।।१॥

इस नीच अधम कुबुद्धि का विशेष सहारा प्राप्त कर यह ज्ञान-धन चेतन अपने आनंद स्वरूप परमतत्व को छोड कर सांसारिक माया जाल में पडा हुआ है ॥२॥

जहाँ शरीर से संबंधित विषय वासना के अतिरिक्त अंश मात्र भी सद्गुण नहीं हैं। यह कुबुद्धि थोडा सा सहारा पाते ही गले पड जाती है—जवरदस्ती ही सबंध कर लेती है- वरवस फँसा लेती है।।३।।

इसलिये हे प्रियतम चेतनराज ! इस कुबुद्धि को तो पीछे ही रखो, इसका नाम भी मत लो । सद्गुणो की खान मीठी सुमित से मेल मिलाप वढावो ॥४॥

समता के यह वाक्य सुनकर आनंद के घाम चेतन ने समता से प्रीतिकर उसे अपनी गृहस्वामिनी बनाकर अपने घर का सम्पूर्ण अधिकार दे दिया अर्थात अपने जीवन को समतामय बना लिया ॥५॥ क्षायिक सम्यक्तव व लोकालोक ७१ राग-सोरठ प्रकाशक ज्ञान

श्रग् जोवंता लाख, जोवो तो एको नहीं।
लाधी जोवग साख, वाल्हा विग् श्रहिलै गई।।साखि।।
वांक रे नान्ही बहू श्रे, मन गमतो श्रे कींघूं।
पेट में पैसी मस्तक रहँसी, बैरी, सांईडउ सामीजी नइ दींघूं।।१॥
खोलइ बइठी मीठुं बोलै, कांइ श्रनुभौ श्रमृत पींघूं।
छानै छानै छमकलडां, करती श्राखड मनडूं वींघूं।।२॥
लोक श्रलोक प्रकाशक छइयो, जगतां कारिज सींघूं।
श्रंगो श्रंग रंग भरि रमतां, 'श्रानन्दघन' पद लींघूं।।३॥

पाठान्तर — जोवो = जोयो (ग्र), जोवुं (उ) । तो=ते (ग्रा), ता (उ) । जोवण = योवन (ग्र), जोवन (इ.उ) । वाल्हा = वाहला (अ.उ), वाला (इ) । अहिलें = अहले (उ) । वारूं रे "में नीष्ट्रं = वारूं रे नान्हीं वहूं ये अण्गमतो ए कीष्ट्रं (आ), 'मोटी वहूं ये ए' मन गमतो कीष्ट्रं (उ), वारू रे नान्हडी वहूं रे मन गमत् ए कीष्ट्रं (उ) । रहेंसी = हर से (अ), हरस्यें (इ), रहेसी (उ) । सांईडउ = सांडबुं (इ) । नइ दीष्ट्रं = नै दीष्ट्रं (ग्र.इ), ने दीष्ट्रं (उ) । खोल इ = खेले (ग्र), खोलें (इ) । वइठी = बेठी (ग्र), वैसी (इ) । अनुभी = अनुभव (अ.इ) । छानें छानें = छानां छानां (उ) । छमकलडां = छटकलडा (अ), छनकलडा (इ), छरकलडा (उ) । 'करती ग्रीर आखइ' शब्दों के मध्य 'ग्रा' प्रति में 'छरती' शब्द और है । ग्राखइ = आखैं (अ), आंखें (इ.उ) । मनहूं = मनरूं (उ) । वीष्ट्रं = विधीं (ग्रा), विधुं (अ.इ) । छड्यो = छड्यूं (इ), छैयों (उ) । जण्तां = जनता (उ) । कारिज सीष्ट्रं = कारिज सीधीं (आ), कारज, सींधूं (इ.उ) । अंग = अंगइ (आ) । भरि = भर (इ.उ) । लीधूं = लीधीं (अ) लीधुं (अ) ।

शब्दायं — अगा जोवंता = विना देखें, विना घ्यान दिये, विना उद्यम । जोदो — देखना । वाल्हा = प्रियतम । अहिले = व्यर्थ । वाल्ं रे = विलहारी जातो हूँ । नान्ही = छोटो । मन गमतो = मन को अच्छा लगने वाला । खो उड़ = गोद में । वहठी = वैठकर । छाने छाने = गुप्त रूप से । छमकलडां = येन केन प्रकारेण कार्य निद्धि को कला, जिस तिस प्रकार से कार्य सिद्धि की चतुराई । आखइ = सम्पूर्णे । वीयूं = वींद दिया, छेद दिया। जगतां = पैदा फरते ही ।

श्रर्थे—समता कह रही है—जब तक किसी कार्य करने की ओर ध्यान नहीं दिया जाता,—पुरुपार्थ नहीं किया जाता तब तक लाखों विध्न बाधायें सामने खडी नजर आती है और जब कार्य करने के लिये पुरुपार्थ कर लिया जाता है तब सब विध्न-वाधायें दूर हो जाती हैं—नजर नहीं आती है।

जव पुरुषार्थं रूपी यीवन की साख (फसल) प्राप्त हो गई, तव रिवना प्रियतम (चेतन) के यह साख व्यर्थ जा रही है।

जव आत्म गुद्धि के लिये वातावरण वन गया उस समय चेतन का विभावावस्था को त्याग कर स्वभावावस्था में न अगा यौवन में स्वामी-वियोग के समान है। साखी

में विलहारी हूं छोटो वह (पित्न) ने वडा ही मन को आत्हा-दित करने वाला कार्य किया है जो स्वामी (चेतनराज) के पेट में युसी-छुपी रहकर और मस्तक को आच्छादित कर स्वामी को विभावदशा में चारों गितयों में घुमाती रहती थी और स्वामी की गोद में वैठ कर मीठे वचन वोलती थी कि मानो अनुभव रूपी अमृत पी रखा हो। इस प्रकार वह सण्ज-वाग दिखाती रहती थी कि इनके (सांसारिक सुख सुविघाओं के) अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। और जिसने गुप्त रूप से छल छिद्र करके स्वामी का सम्पूर्ण मन वेध रखा था-अपने वशीभूत कर रखा था। उस मेरी वैरिन (ममता) ने मेरे स्वामी को परमात्म गुणों को दे दिया।।-१-२-।।

जव मोह ममता से स्वामी का साथ छूट गया तो मैंने (सम-ता ने) अंग से ग्रंग मिलाकर रमण किया अर्थात समतामय चेतन वन गया। उसका परिणाम लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान रूप वालक (पुत्र) का जन्म हुआ। इस प्रकार सर्व कार्य सिद्ध हो गये और स्वामी ने 'आनंदघन' (आनंद समूह) पद प्राप्त कर लिया।।।।।

संसार में भ्रमण करती हुई भव्यातमा नर भव (मनुष्य जन्म) प्राप्त कर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त करने के लिये पुरुपार्थ करता हुआ अग्रसर होता हैं—गुणस्थानों का आरोहण करता हैं। दसवें गुणस्थान से जाता है और मोह प्रकृतियों को क्षय—नाश कर तेरहवें गुणस्थान को प्राप्त करता है तो लोक और अलोक को प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है और अनंत सुखों का स्वामी वन जाता है।

**अन्याबाध आनन्दानुभूति ७२ राग-जैजैवंती त्रिताला** 

मेरे प्रान ग्रानन्दघन, तान ग्रानन्दघन ॥
मात ग्रानन्दघन, तात ग्रानन्दघन ।
गात ग्रानन्दघन, जात ग्रानन्दघन ॥मेरे०॥१॥
राज ग्रानन्दघन, काज ग्रानन्दघन ।
साज ग्रानन्दघन, लाभ ग्रानन्दघन ॥मेरे०॥२॥
ग्राम ग्रानन्दघन गाम ग्रानन्दघन ॥
नाम ग्रानन्दघन, लाभ ग्रानन्दघन ॥मेरे०॥३॥
नाम ग्रानन्दघन, लाभ ग्रानन्दघन ॥मेरे०॥३॥

यह पद हमारी अ और उ प्रति में कमराः ७ और ७१ संख्या पर है।

#### [ १७४ ]

पाठान्तर— राज = काज (वु)। काज = साज (वु.)।

शब्दार्थ — तान = लय, । तात = पिता । गात = शरीर, देह । जात= पुत्र, जात-पांत । साज = सामान, सजाबट । आभ = शोभा, आभा । गाभ= गर्भ, मध्य । नाभ = नाभि, मध्य भाग ।

(देहघारियों के पांच इन्द्रिय, मन वचन काय, इवासोक्वास और आयु ये दस प्राण होते हैं। सिद्ध भगवान के इनमें से एक भी प्राण नहीं होता। उनके तो ज्ञान दर्शन रूप भाव प्राण होते हैं। ये दसों प्राण पुद्गल आश्रित है। ये जह संयोग से उत्पन्न होते हैं अतः द्रव्य प्राण कहलाते है। योगी जब भगवान को ही सब कुछ समभ लेता है तो उसकी देह व इन्द्रियों की सुध-बुध खो जाती है। पहले यह अवस्था अल्प समय तक रहती है किन्तु ज्यों ज्यों अभ्यास बढता जाता है यह संस्कार चढते जाते हैं, चारों ओर वही चैतन्य रूप दिल्टिगोचर होता है। जब तक भेरापन (अहंभाव) का भाव है यह दिल्ट इढ़ नहीं होती है। मेरा कुछ नहीं है, जब यह स्थित आ जाती है और तदात्मता वढ़ जाती है उस स्थित में इस पद के शब्द योगीराज श्री आनन्दघन जी के मुख से निकले हैं।)

भ्रर्थं— हे प्रभो ! मेरे जीवन प्राण आनन्दघन हैं। मेरी वाणी और तान भी आनन्दघन ही है। हे भगवान ! मुक्ते आत्म भाव आपने ही दिये हैं। इन भाव प्राणों के दाता होने से आप मेरे माता∽ पिता है। सेरा यह शरीर भी आप हैं। हे आनन्दघन ! मुक्ते तो आप का ही सहारा है इसलिये मुक्ते भविष्य की कोई चिन्ता नहीं सताती। आप हैं, वहाँ पुत्रादि सब हैं॥१॥

है भगवान आपके पास जो आनन्द है वह तो त्रिलोक की सम्पत्ति मिलने पर भी न होगा, इसिलये मुभे किसी राज्य की आचश्यकता नहीं है। मेरे तो आप ही राज्य हो। आप ही से मेरा काम (कार्य) है। आप ही मेरे सर्वस्व हो। सेरी आपको लाज है।।२।।

## [ १७६ ]

मेरी शोभा आप ही हो, क्योंकि आप ही मेरे हृदय में वसे हुये हो-गिभत हो। हे आनन्दघन प्रभो! आप ही मेरे परम लाभ हो।

इस पद में 'लाभ आनन्दघन' से संभवतः किवराज ने अपना लाभानन्द नाम सूचित किया है।

कैवल्य वीज

いる

राग-सारंग

मेरे घट ज्ञान भान भयो भोर।
चेतन चकवा चेतना चकवी, भागी विरह को सोर।।मेरे०।।१॥
फैली चिहुं दिसि चतुर भाव रुचि, मिट्यो भरम तम जोर।
ग्राप की चोरी ग्राप ही जानत, ग्रोरे कहत न चोर।।मेरे०।।२॥
ग्रमल कमल विकच भये भूतल, मंद विषै सिस कोर।
'ग्रानन्दघन' इक वल्लभ लागत, ग्रीर न लाख करोर।।मेरे०।।३॥

पाठान्तर — ज्ञान = ग्यांन (इ. उ) । चनुर = चनुरा (क. वु.) । भरम = भर्म (अ)। तम = मन (उ)। ग्रोरे = और (अ)। न = नही (उ)। विकच = विक (आ)। करोर = किरोर (क.वु.)।

शब्दार्थ — घट = हृदय में । भान = भानु, सूर्य । भोर = प्रातः काल । सोर = शोर, कोलाहल । भाव रुचि = स्वाभाविक इच्छा । भरम तम जोर = भ्रम रूपी अवकार की शक्ति । अमल = निर्मल । विकच = विकसित हो गये। भूतल = पृथ्वी । कोर = किरण । विषे = विषय वासना । वल्लभ = प्रिय । करोर = करोड ।

श्चर्य — मेरे हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य का प्रातः काल हो गया है — प्रकाश हो गया है। चेतन रूपी चकवा और चेतना रूपी चकवी के विरह से उत्पन्न ऋंदन सर्वथा दूर हो गया है।।१॥ सर्वत्र चारों दिशाओं में विचक्षण स्वभाव में रमण रूप प्रकाश फैल जाने से भ्रम-मिध्यात्व रूपी अन्धकार-वल जाता रहा-दूर हो गया है। अपनी चोरी गई वस्तु के चोर को में स्वयं ही जानता हूं, इसिलये अन्य किसी को चोर नहीं कहता हूं अर्थात् अपने आत्मिक गुणों का चोर में स्वयं ही था। किसी दूसरे ने मेरे ज्ञानादि गुणों को नहीं चुराया था। इसका अब निश्चय हो चुका है, इसिलये में अन्य को चोर नहीं ठहराता-दोप नहीं देता।।२।।

सूर्योदय होने से जिस प्रकार पृथ्वी पर कमल खिल जाते हैं, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदय से हृदय-कमल खिल गया है—
गुद्ध हो गया है और विषय वासना रूपी चन्द-किरणें मंद पड गई
है। एक आनन्द स्वरूप चैतन्य सत्ता ही प्रिय लगती है और लाखों
करोडों सांसारिक प्रलोभन अच्छे नहीं लगते हैं।।३॥

(इति श्रानन्दघन बहुत्तरी)

# ग्रन्य रचनायें

स्फुट पद



निस्पृह देश सुहामगो, निरमय नगर उदार हो, विस ग्रंतर जामी । निरमल मन मंत्री बडो, राजा वस्तु विचार हो; 11811 केवल कमलागार हो, सुिंग सुिंग शिवगामी। केवल कमलानाथ हो, सुिए सुिए निहकामी ॥ केवल कमलावास हो, सुिए सुिए शुभनामी । श्रातम तुं चुकिस मा, साहिव तुं चुकिस मा। राजिन्दा तु चुकिस मा, भ्रवसर लही ।।टेक।। गढ संतोस सामी दसा, साघु संगति दिढ पोलि हो । पोलियो विवेक सु जागतो, श्रागम पायक तोलि हो ॥२॥ दिढ़ विसवास वतागरी, सू विनोदी विवहार हो। मित्र वैराग विहडे नहीं, क्रीडा सुरती श्रपार हो ।।३।। भावना बार नदी वहै समता नीर गभीर हो। ध्यान चहवचौ भर्यौ रहे, समपन भव समीर हो ।।४।। उचालै नगरी नहीं, दृष्ट दुकाल न जोग हो। ईत ग्रनीत न्यापं नही, 'ग्रानन्दघन' पद भोग हो ॥५॥

(७४) निरचयात्नक रूप से जो पद आनन्दघन जी के समभे गये हैं, उनकी शैली से इस पद की शैली भिन्न है। अतः शंका उत्पन्न होती है कि यह पद उनका है श्रयवा नहीं।

पाठान्तर— सुहामर्ग = सोहामर्ग (इ.उ)। नगर = नयर (उ)। वसि= वसै (इ,.उ.क.वु.)। द्वितीय पंक्ति में निरमल शब्द के आगे मन शब्द "ग्र" प्रति में नहीं है। सुर्गि सुर्गि = सुनि सुनि (इ)। शिवगामी = सिवगामी (ग्रा)। निहकामी = नीहकामी (आ), निःकांमी (उ)। सुर्गि "शुभनामी = सुर्गि भनामी; कुछ ग्रलर लेख दीप से गायव हो गये हैं, 'का' प्रति में । सुनि सुनि सुमगामी (इ), सुगि सुगि सुभग नामी (उ) । बातम — ग्रातमा (बा.क.वू.) । चूकिस — चूकि (ग्र), चूकीम (इ.उ) । साहिव — साहिवा (ग्रा), साहेवा (क.वू)। लही — लही जी (ग्रा), लहीजियो (उ) । गढ — हड (व्र) । समी दसा — सामो दसा (ग्रा), सामोद सा (इ), सामोदिसा (उ), कामा मोदसा (क, व्र) । पोलि= पौल (इ), पोल (उ) । वतागरी — वितागरी (बा,क.वु), हिढ़ चितदास विता गरो (इ), दिढ चित्रदा वितागरी (उ) । मुरति — सुमति (उ) । समता — सुमता (आ), समछा (उ) । रहै — है (आ) । चहवची — चैत्रचो (इ), चडवची (उ) । समपन — समवन (आ) । उचाल — उचालो (आ) । जोग — योग (इ) । ईत — इति (आ.वु), ईति (क) ।

शब्दार्थ—निस्पृह = लोग या लालसा व तृग्णा रहित । सुद्दामणो = मुहावना, मुन्दर । निरमय = निर्मय, भय रहित, जहाँ किसी प्रकार का भय न हो, अनय । कमलागार = खडाना । शिवगामी = कल्याण मार्ग का पिक । निहकामी = कामना—वानना रहित । चूकिस मा = मत चूके । अवसर लही = समय पाकर । गढ = किला । सामौ = वान्त । पोलि = दरवाजा । पोलियो = पहरेदार । पायक = पैदल सिपाही, अनुचर । तोलि = तुल्य, वरावर । वितागरो = चतुर विदूपक । विनोधी = विनोध (मजाक—आमोद प्रमोद), मैत्री, प्रमोद आदि माव वाला । विहुई नहीं = पृयक (अलग) नहीं होता । सुरति = वृत्ति, स्मरण, प्रमे । चहवची = पानी का छोटा होज । समपन = अपने इष्ट के प्रति समर्थण भाव । समीर = हवा । स्वानै = स्पटव । ईत = ईति, स्रित कृष्टि, अना वृष्टि आदि खेती को हानि पहुंचाने वाली ।

श्चर्य — लालसा — तृष्णा रहित — निस्पृह रूपी सुन्दर देश में निर्भय (अभय) नामक उदार नगर है जहाँ अंतरयाभी चेतन का वास स्थान है — राज्य है। वस्तु (तत्त्व) स्वरूप का विचार करने वाला भेद ज्ञानी अनुभव वहाँ का राजा है और निर्मल मन वहाँ का प्रधान मंत्री है।।१॥ हे आत्मन्! तू केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी का स्थान है। हे मोक्ष गामी आत्मन्! तू सुन। हे निष्कामी ग्रात्मन्! सुन, केवल ज्ञान रूपी लक्ष्मी का तू स्वामी है। हे ग्रुम नाम वाले आत्मन्! सुन, तुफ्त में ही ज्ञान रूपी लक्ष्मी का निवास है। तुफ्त में ही चेतन ग्रुण है। तेरा ही चेतन नाम है वाकी सब जड है। हे आत्मन्! यह मानव भव दुर्लभ है अतः जरा भी मत चूक, हे स्वामी! तू मत चूक, हे राज राजेन्द्र! तुफ्ते यह दुर्लभ अवसर प्राप्त हुआ अव किंचित भी न चूक।।

योगी राज अपनी आत्मा को इस भांति जागृत कर रहे हैं। इस निस्पृह देश के निर्भय नगर के संतोप रूपी गढ (किला) है। अर्थात संतोप-आत्म तृष्ति ही इस निर्भय नगर का गढ है। इस गढ के साधु-संगित रूप दृढ़-मजबूत दरवाजा है। (इस कारण यहाँ मोह का प्रवेश नहीं हो सकता है) इस गढ के दरवाजे पर विवेक रूपी द्वारपाल सर्वदा जागता रहता है। यहाँ आगम मार्गदर्शक के तुल्य हैं—समान हैं।।२।।

यहाँ दृढ़ श्रद्धान रूपी निपुण सूत्रधार—संचालक है। इस ही के संकेत पर सम्पूर्ण शासन चलता है। मैत्री, प्रमोद, कारुण्य, मध्यस्थ भाव मय यहाँ का विनोद पूर्ण व्यवहार है। वैराग्य रूपी मित्र कभी विछुडता नहीं हैं—साथ नहीं छोडता है। आत्म-रमणता ही यहाँ की अपार कीडा है।।३।।

यहाँ वारह भावना रूपी निदयें सदा बहती हैं इन निदयों में समता रूपी गहरा जल है। इन वारह भावना रूपी निदयों के समता रूप जल से घ्यान रूप छोटा होज (कुंड) सदा ही भरा रहता है और यहाँ समर्पण भाव रूप हवा सदा चलती रहती है।।४।।

इस निर्भय नगरी में किसी भी प्रकार का उपद्रव नहीं है। इस नगरी में रहने वालों का मन कभी , उचाट नहीं होता-अस्थिर नहीं होता। और यहाँ पर-भाव रमण रूप दुष्ट अकाल का भय नहीं हैं। यहाँ अति वृष्टि आदि ईतियों का भय नहीं हैं। यहाँ अनीती अनाचार का प्रवेश नहीं है। ईति रूपी अनीतियाँ यहाँ व्याप्त नहीं है। यहाँ तो आनन्द ही आनन्द का भोग है।।।।।

योग सिद्धि

७४

राग-रामगिरि

श्रातम श्रनुभव प्रोम को, श्रजव सुण्यो विरतंत ।

तिरवेदन वेदन करे, वेदन करें श्रनत ।। साखी ।।

म्हारो बालूडो सन्यासी, देह देवल मठवासी ।।

इडा पिंगला मारग तिज जोगी, सुखमना घरि श्रासी ।

ब्रह्मरंध्र मिंघ श्रासरा पूरी बूाबू. श्रनहद नाद बजासी ॥म्हारो ॥१॥

जम नियम श्रासरा जयकारी, प्रागायाम श्रभ्यासी ।

प्रत्याहार घारगा घारी, घ्यान समाधि समासी ॥म्हारो०॥२॥

मूल उत्तर गुरा मुद्राधारी, परयंकासन चारी ।

रेचक पूरक कुंभककारी, मन इन्द्री जयकारी ॥म्हारो०॥२॥

थिरता जोग जुगित श्रनुकारी श्रापो श्राप विचारी ।

श्रातम परमातम श्रनुसारी, सीभे काज सवारी ॥म्हारो॥४॥

(७५) इस पद की साखी (दोहा) 'अ' और 'इ' प्रति में नहीं है। इस पद में किव का नाम नहीं होने से कहा नहीं जा सकता कि यह किसका है अत: यह शंकास्पद है।

पाठान्तर—प्रेम को = रसिकको (क.वू.) निरवेदन = निर्वेदी (क.वू.) इडा = इंगला (इ) जोगी = योगी (इ.उ.) सुखमना=सुपमना (उ,क.), । घरि= घर । (इ.उ) ग्रासी=वासी (क.वू.) । नाद = तान (इ.क.वू.) । जम=जिन (ग्रा), यम (इ.क.वू.) । परयंकासन = पर्यकासन (क), पर्यंकासन (वु) । चारी = वासी (वु) । कुंभककारी = कुंभकसारी (आ.उ.क.वू.) । जयकारी = जयकासी

(तु.)। जोग जुगति - योग युगति (अ.उ.) विचारी - विमासी (इ.वू.क.)। सवारी = ममासी (इ.वू.)।

शब्दार्यं - अजव - ग्राश्चर्यकारक । विरतंत - वृत्तांत, वर्णांन । निरवेदन = स्त्री पुरुपादि वेद रहित, केवली भगवान । वेदन करे - वेदते हैं, भोगते हैं. जानते है। वालुडो - अल्पवयरक, बालक। देवल = मंदिर, मकान। इडा = वामनाडी, वामनाक का छिद्र, वाम नाक से चलने वाला स्वर, चन्द्रनाडी। पिंगला - दाहिनीनाडी, दाहिनी नाक का छिद्र, दाहिने नाक के छिद्र से चलने वाला स्वर, भूयंनाडी । सुखमन = सुष्मनानाडी, नाक के दोनों छिद्रों से चलने वाला स्वर । ब्रह्मरंघ्र = मस्तक के बीव में गुप्त छिद्र । मधि = मध्य, बीच में । आसन पूरी - वैठ तर, स्थिर करके । अनहदनाद - कान वंद करने पर सुनाई देने वाला स्वर, अंतरध्वनि । जम = यम, श्रहिसा, सत्य श्रादि पांच यम जो आजीवन पालन किये जाते हैं। नियम = अल्प समय के लिये पाले जाने वाले नियम । यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समावि ये योग के आठ अंग हैं। इनकी पूर्णजानकारी के लिये श्री हेमचंद्रा-चार्यका योगशास्त्र, श्री शुभवंद्राचार्य का ज्ञानार्णव श्री विदानंद जी महाराज का स्वरोदय तथा अन्य आचार्यों के योग संबंधी ग्रंथ देखने चाहिये। समासी - समा जाता है, लीन हो जाता है। मूल - मूलगुण, यम अहिंसा आदि। उत्तर = उत्तरगुण, नियम अहिंसा भ्रादि को पुष्ट करने वाले नियम । मुद्राधारी चोग की अनेक मुद्राओं (आकृतियों) को धारएा करने वाला । परयंकासन = पर्यं कासन एकप्रकार का आसान (योग के ५४ आसनों में से) । चारी -चलने वाला, अम्यासी । कुंभक≕अंदर और वाहर जाने वाले श्वास को रोकना जयकारी = जीतने वाला। थिरता = स्थिरता। अनुकारी = अनुकरण करने वाला, ग्राज्ञाकारी । सीर्फ = सिद्ध हो जाता है । सवारी = बीघ्र । अनुसारी = अनुसरण करने वाला, अनुयायी।

म्पर्थ-आत्म अनुभव प्रेम का वृत्तान्त आश्चर्यकारक सुना जाता है। इस आत्मानुभव को पुरुष, स्त्री, और नपुंसक-तीनों वेदों से रहित ही व्यक्ति वेदन कर सकता है,—भोग सकता है—जान सकता है अर्थात् केवली भगवान ही इसे अनंत काल तक भोगते है।।साखी।।

वेदोदय नवें गुणस्थान तक ही होता है और इसकी सत्ता भी ज्वें गुणस्थान तक ही है। क्षायिक भाव से तो वेदोदय व सत्ता का नाश नवें गुणस्थान में हो जाता है किन्तु उपसम श्रेणी वाले के इनका उपसम भाव रहता है इसलिये उन्हें अपूर्वकरण ग्यारहवें गुण स्थान तक पहुँचा तो देता है पर क्षायक भाव विना आगे न बढ़कर उन्हें पीछे लीटना ही पड़ता है। इसलिये केवली भगवान ही वेदन करते हैं।

भरा वाल-अल्पवयस्क (अल्प अभ्यासी, अल्प कालिक सम्य-करवी) सन्यासी जो देह-शरीर रूपी मंदिर-मठका निवास करने वाला है, वह इडा,पिंगला नाडियों का मार्ग छोड कर सुषुम्नानाडों के घर आता है। आसन जमाकर सुषुम्ना नाडी द्वारा प्राणावायु को ब्रह्म रंधा में लेगाकर अनहदनाद बजाता हुआ चित्तवृत्ति को उसमें लीन कर देता है।।१॥

यम-नियमों को पालन करने वाला, एक आसन में दीर्घकाल तक बैठने वाला, प्राणायाम का अभ्यासी, प्रत्याहार, धारणा व ध्यान करने वाला शीझ ही समाधि प्राप्त कर लेता है।।।।

न्तर वह बाल सन्यासी संयम के सूलगुण और उत्तर गुणों को धारण करने वाला है। पर्यं कासन का अभ्यासी है। रेवक, पूरक और कु भक प्राणायाम कियाओं को करने वाला है और मन और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाला है।।३॥

्रिक्ष इस अकार योग साधनाः अनुगमन करताः हुआ वह सन्यासी स्थिरता ग्रहणकर अपने आत्मः स्वरूप-का विचारः करता हुआ आत्मा और प्रमात्मपद का अनुसरण करता है तो उसके सर्व कार्य शीघ्र ही सिद्ध हो जाते हैं ॥४॥ तरस कीजई दइ को दई की सवारी री।।
तीच्छन कटाच्छ छटा, लागत कटारी री।।तरस०।।१॥
सायक लायक नायक प्राग्ग को प्रहारी री।
काजर काज न लाज बाज न कहुं वारी री।।तरस०।।२॥
मीहनी मोहन ठंग्यो, जंगत ठगारी री।
दीजिय 'ग्रानंदघन' दाद हमारी री।।तरस०।।३॥

(७६) यह पट कुछ अटपटा होने से शंकास्पद मालूम होता है। लगता है संग्रहकार के दोप से वास्तविक पाठ गडवडा गया है।

पाठान्तर—कीजइ, = कीजिये (इ), कीजइरी (उ) तीच्छन = तीस (मा), तीछन (इ), तिथन (उ)। कटाच्छ = कटाव (आ), कटाछ (इ), कटाक्ष (उ) काजर = कांजर (उ)। लाज वाज न = लांजन वाजु (आ)। वारी री = वारी (आ)। दाद = दाइ (उ)।

शब्दार्थ — तरस — दया। दइको — दैवको विधाता को। दई की — विधाता की, कम की। सवारी — वाहन, जलूस, लंदकर। तीच्छंन = तीक्ष्णं, तेज, पैने। कटाच्छ — कटाक्ष, टेडी नजर, व्यंग, अपेंक्षां। छटा = प्रभा, फलक। कटारी = कटार। सायक = वाण। लायक = योग्यं, जिज्ञासु। नायक = नेता, सरदार (आत्मा)। प्रहारी = प्रहार करने वाला, चीट पहुं चाने वाला, घातक। काजर = काजले। वारी री = मना करके, दूर करके। वार्ज = दूर होना, अलगे होना। दाद = सहायता।

पूर्व पाठिका—मोहनीय कमं के उदय से जब चेतन ऊपर के गुणस्थान में चढ़कर पीछे गिरता है, उस समय चितना वडी दुखी होती है।

चतुर्थ गुणस्थान में आत्मज्ञान सम्यक्तव प्राप्त होता है। पांचवें में देशविरति, छठे में सर्वविरति, सातवें अप्रमत होता है, आठवें गुणस्थान में शुक्छ ध्यान-आत्मध्यान ध्याते हुये जीव ऊपर चढता है। फिर दो घड़ी में सम्पूर्ण कर्म मल का नाश करते हुये, नवें, दसवें, फिर वारहवें गुणस्थान को पार करते हुये केवल ज्ञान स्वरूप तेरहवें गुणस्थान को जीव प्राप्त कर लेता है। आठवें गुणस्थान में चेतना चेतन से एकता अनुभव करती है और तेरहवें गुणस्थान में एकत्व प्राप्त कर लेती है।

चौथे गुणस्थान से जब पतन होता है तो बहुत अल्प समय जीव दूसरे गुणस्थान में रूक कर पहिले में जा पहुंचता है। सम्यक्तव प्राप्त कर जब जीवं गिरता है, उस समय की परिस्थिति का इस पद में दिग्दर्शन है। चेतना विलाप करती हुई कहती है—

हे विघाता! जरा दया की जिये। यह आपकी कैसी सवारी है ?—कैसा जलूस है ? इसके तीक्षण कटाक्ष (भ्राकुटी) की प्रभा मेरे कटार के समान पार हो जाती है ॥१॥

हे सयाने नायक ! (चेतन) ये सांसरिक प्रलोभन तीर के समान प्राणों पर प्रहार (चोट) करवाने वाले हैं। इस हश्य प्रपंचको देखने के लिये न तो अंजन लगाने की आवश्यकता है और न लोक-लाज की वाधा (रुकावट) हैं। स्वेच्छा से प्रलोभन नहीं रुकते हैं और इन्हें रोकने वाला विरला ही होता है।।२।।

जगत को ठगने वाली मोहनी ने मेरे मन-मोहन चेतन को ठग लिया है। हे आनंदघन प्रभो! मेरी सहायता की जिये। आपकी सहायता से ही चेतन मोहनी के फंदे से अलग हो सकता है।।३।।

श्रखंड स्मरएा

99

राग-रामगिरी

हमारी लौ लागी प्रभु नाम ।

भ्राम खास श्ररु गोसलखाने, दर श्रदालत नहीं काम ॥हमारी०॥१॥ पांच पचीस पचास हजारो, लाख करोरी दाम। खाये खरचे दिये वितु जात हैं, ग्रानन करि करि श्याम

।।हमारी ०।।२॥

इतके न उतके सिव के न जिउ के उरिक्त रहे दोउ ठाम। संत सयानप कोई वतावे, 'श्रानंदघन' गुराधाम ॥हमारी०॥३॥

(७७) भाषा ग्रीर गैली की भिन्नता ही इस पद के शंकास्पद का कारण है संभव है यह पद भक्ता किव ग्रानदघन का हो।

पाठान्तर—ली — ल्यं (उ), जय (क.वु.) आम — आंव (अ), अमव (आ), अंव (उ)। गोसलखाने — गुसलखाने (आ)। दर — अंदर (इ) प्रदालत — यदालत (उ) करोरी = किरोरी (इ), किरोडी (उ)। खायं — खाई (इ), दिये विनु = दिए विना (अ), रिइ विनु (उ)। 'इ' प्रति में पाठ इस प्रकार है— "खाई खरची दिन वितियत हैं, यों तन कर कर स्याम"। इतके न उतके = इतके उतके (इ.उ.)। इनके न उनके (क.बु.)। जिउके — जिनके (इ.उ.)। दोउ = विन (आ.) विनु (इ)। सयानप = सयाने (इ.उ.)। कोई — कोय (इ)।

शब्दार्थं — शै = लगन, नित्त हित्त, श्राशा । श्राम = जनसाधारण के एक-त्रित होने का स्थान, आम दरवार, । खास = विशे व्यक्तियों के एकत्रित होने का स्थान, दरवारे खास । गोसलखाने = स्नानघर, वह स्थान जहां वादशाह विशेष (निज्) व्यक्तियों से मिलते हैं । दर = में, श्र दर, द्वार । श्रानन = मुख । रयाम = काला । इतके न उतके = इधर के न उधर के । ठाम = स्थान ।

श्रर्थं — मेरी लगन — चित्तवृत्ति तो भगवान (अरिहंत-सिद्ध) के नाम स्मरण में लग रही है। प्रभु के ज्ञानादि गुण स्मरण में मेरा मन दत्त चित्त है। यह मेरा सालंबन ध्यान है जिस में मैं लीन होता हूं। मुभे बादशाहों के आम और खास दरवारों में जाने, बादशाह के एकान्त स्थान में जाकर प्रतिष्ठा पाने की इच्छा नहीं है। और न

मुक्ते न्यायालय के अधिकारी बनने से ही काम है, क्योंकि मेरा मन तो प्रभु स्मर्ण में लीन है ॥१॥

संसार में मानव पांच पच्चीस व पच्चास हजार यहां तक कि लाखों करोडों रुपया संग्रह करने में लव लीन रहता है, और विना खाये-उस धन को विना भोगे, विना खर्चे किये ही, अपने मुख में कालिख पोत कर-लगाकर चला जाता है सब का सब समय तृष्णा के चक्कर में लगा कर मानव अपना जन्म—आयु खो देता है विना भगवद् भजन के ही संसार से चला जाता है ॥२॥

ऐसे मानव न इधर के रहते हैं, न उधर के, न उनका यह लोक सुखपद होता है और न परलोक ही सुधरता है। न तो वे अपने शरीर संबंधी सुख ही भोगते हैं और न आध्यादिमक कार्य ही करते हैं। इस प्रकार वे दोनों के वीच उलभे रहते हैं। कोई विचक्षण आत्म ज्ञानी सन्त मुक्ते (जिसे प्रभु के नाम की लगन है) आनन्द के धन और उनके गुणों के स्थान प्रभु का साक्षात्कार करा देवें तो मेरे सर्व कार्य सिद्ध हो जावें।।३॥

प्रिय मिलन

95

राग-वसंत

प्यारे म्राई मिलो कहा, भ्रेंठे जात ।

मेरो विरह व्यथा श्रकुलात गांत ॥प्यारे०॥१॥ एक पईसारी न भाव नाज, न भूषरा नहि पट समाज ॥प्यारे०॥२॥ मोहि निरसनि तेरी श्रास, तुम ही शोम यह घर की दास

गुप्यारे ।। ३॥

अनुभवजी कोळ करो विचार, कृद देखों ह्वै वाकी तन में सार प्रियारेगाथा

जाई श्रनुभव समभाय कंत, घर श्राए "श्रानंदघन" मए वसत

(७८) यह पद हमारी के यत 'ग्र' प्रति में है ग्रीरों में नहीं है। भाषा और शैली भिन्नता के कारण शंकास्पद है।

पाठान्तर—आइ = ग्राय (क.बु.)। कह = कहां (क.बु.) कैठे = यंते (क.बु.)। पई तारी = पेताभर (क.बु.)। मोहि प्याप्त = मोहन रास न दूसत तेरी आसी, मदनो भय है घर की दासी (क.बु.)। अनुभव जी प्याप्त = ग्राप्त चिचार (क.बु.)। जायके = जाहके (बु)। देखों = देखें (क.बु.)। ह्वं = द्वं (क.बु.)। जाइ = जाय (क.बु.)। ग्रनुभव = अनुभव जई (क.बु.)।

शब्दायं — कहा अँठे जात = क्यों अकडे जा रहे हो। गात = शरीर। नाज = प्रनाज। भूपरा = आभूपरा, जेयर। पट = बस्त्र। निरसनि = निराश। कद = कय। वाकी = उनकी।

म्पर्थ — गुद्ध चेतना कहती है — हे चेतन ! आंकर दर्शन दीजिये। इतने क्यों अकठे (ऐंठे) जा रहे हो ? नाराज क्यों हो रहे हो ? मैं वार वार आपको अपने घर बुला रही है फिरभी आप नहीं आ रहे हो। आपके विरह के दुख से मरा शरीर आकुल-व्याकुल हो रहा है।।१।

मेरी ऐसी दशा हो रही है कि मुक्ते एक पैसे भर भी अन्न अच्छा नहीं लगता है —न गहने वस्त्र पहिनना, अच्छा लगता है और न समाज में कहीं जाना-आना अच्छा लगता है ॥२॥

न समाज में कहीं जाना-आना अच्छा लगता है ॥२॥ हे चेतनराज ! इस शरीर रूपी घर की शोभा आप से ही है । मैं तो आपके घर की दासी हू । हे चेतनराज ! आपके आने की आशा नहीं से मैं निराश हो गई हूं । मुक्ते अब आपके आने की आशा नहीं रही है ॥३॥

अब चेतना अनुभव से कह रही है – हे अनुभवजी ! कुछ विचार तो करो। वह (चेतन) तो कब देखेंगे, परन्तु तुम तो देखो। उनकी याद रूपी सार मेरे शरीर में लगी उ ई है। जिस प्रकार खाती की सार लकडी को बींघ डालनी है जसी प्रकार उनकी याद रूपी सार मेरे शरीर को छेद रही है ॥४॥

शुद्ध चेतना की वात सुनकर अनुभव ने जाकर चेतन को समभाया। स्वरूपानंद के घनी चेतन अपने स्वभाव रूपी घर आगण् और उनके आने से मानो वसंत का आगमन हो गया हो आनंद ऋह-छहा गया हो।।।।।

प्रियतम को प्रार्थना

30

राग-वसंत

प्यारे जीवन एह साच जान ।

उत वरकत नांहि तिल समान ॥१॥

उत न मगो हित नांहिनै एक ।

इत पकर लाल छरी खरे विवेक ॥२॥

उत सठ ठग माया मान दुंब, इत ऋ जुता मृदुता निजकु दुंव ॥३॥

उत स्रासा तिसना लोन कोह, इत शांत दांत संतोष सोह ॥४॥

उत कला कलंको पाप व्याप, इत खेले 'ग्रानंद धन' सूप ग्राप ॥५॥

(७९) यह पट केवल हमारी 'ग्र' प्रति में ही है।

पाठान्तर—नाहि = नांहिन (क), नाही (वु)। उत्तामाण्क = उनसे मांगुंदिन नांहि एक (क), उनसे मांगु दिन नाहि एक (वु)। छरी खरे = छ-'री' करि (क), छरि करि (वु)। उत्तामुद्धंव = उत्त शठता नाया मान हुंव, इत ऋ जुता मृदुता नीज कुटुंव (क), उत्त, शठता माया मान हुंव, इत रुजता मृदुता मानो कुटुंव (वु)।

शव्दार्थ — एह = यह। उत = उघर। वरकत = वृद्धि, लाभ। मगो = मांगो, चाहो,। नाहिनै एक = भी नहीं। छंरी = छडी, आसा। खरे = खड़े हुये। दु'व = दंभ कपट। ऋजुता = मरलता। तिसना = तृष्णा, लालसा। कोड् = कोच। दांत = इ'द्रियजय, इ'द्रियों पर विजय। सोह = शोभायमान है।

श्चर्य-मुमित चेतन से कह रही है—हे प्रिय! हे जीवन प्राण! यह वात सच मानिये कि उघर ममता के फंदे में पड़ने से तिल के वरावर भी सद् गुणों की वृद्धि नहीं है। उधर की वृद्धि से जरा भी हित नहीं होने वाला है ॥१॥

उधर से (ममता की ओर से) कुछ भी न मांगिये क्यों कि उधर आत्म-हित की एक भी बात नहीं है। आत्महित की जरा भी गुंजा-इय नहीं है। इधर विवेक भेदज्ञान की छडी लिये हुये खड़े है जो अनीति की राह से रोकते रहते है ॥२॥

उधर घूतं ठग, मान, माया और दंभ भरे हुये हैं। इधर (सुमिन की ओर) संग्लता, मृदुता विनय रूप अपना परिवार है ॥३॥

उथर (ममता की ओर) वासना, तृष्णा, लोभ और कोघ हैं। इधर (मुमित की ओर) शांति, इंद्रिय-जय और संतोप शोभायमान है।।४॥

उधर (ममता की ओर) कलंकी पाप की कला ज्याप्त हो रही है। इघर स्वयं आनंदस्वरूप चेतन राज का कीडा स्थल है, जहां चेतनराज कीडा करते हैं॥ ।।।।

जड चेतन-विवेक

50

राग-वसंत

कित जाए मते हो प्रारानाथ, इत ग्राई निहारो नै घर को साथ ॥१॥ उत माया काया कवरा जात, उह जड तुम चेतन जग-विख्यात ॥२॥ उत करम भरम विष वेल संग, इत परम नरम मित मेलि रंग ॥३॥ उत काम कपट मदमोह मान, इत केवल श्रनुमव श्रमृत पान ॥४॥ श्रलि कहै समता उत दुख श्रनंत, इत खेले श्रानंदघन वसंत ॥५॥

(८०) यह पद हमारी केवल 'ग्र' प्रति में हैं। पद सं. ७६ और यह पद एक ही भाव को व्यक्त करते हैं। इन दोनों ही पदों में शैं जी ग्रन्य पदों से भिन्न है। ग्रतः शंका उत्तन्न होती है।

पाठान्तर—जागा = ज्ञान (वु), जांन (क)। उह = यहु (क), वह (वि) संग = ग्रंग (वु)। खेले = खेलहु (क)।

शब्दार्थ — कित = कहां, मतै = विचार। निहारो = देखो। उह = वे।

ध्यर्थ—हे प्राण नाथ चेनन देव! कियर जाने का विचार है? आप कृपा कर इघर आकर देखिये तो सही। यहां अपने परिवार क्षमा आर्जन, मार्दन, सत्य आदि का साथ है।।१॥

उधर छद्मवेश घारिणी माया और काया को क्या असलियत है ? क्या जाति है ? अरे यह तो जड है और आप विश्व-विख्यात चेतनराज हो। इस जड के प्रसंग से अपने चेतन भाव को क्यों भूल रहे हो।।।।।

जबर ज्ञानावरणादि आठ कर्म प्रकृति से उत्पन्न भ्रम रूप जहरीली वेल छाई हुई है, जिसने चारों ओर से आप को जकड रखा है और इघर समता, श्रद्धा आदि परम कोमल वृत्तियें आपके रंग में रंगी हुई हैं।।३।।

उघर काम, कपट, मद, मोह और मान हैं और उघर केवल आत्मानुभव रूप अमृत का पान है ॥४॥

समता कहती हैं —हे सिख ! उघर अनंत दुःख हैं जौर इघर आनंद राशि-भगवान वसंतोत्सव खेलते हैं ॥५॥ जिन-स्मरण-लीनता ६१ राग-श्रिलयो बेलावल

जिन चरगे चित त्याउं रे मना ।

प्ररहंत के गुगा गाऊं रे मना ।।जिन।।

उदर भरगा के कारगा रे गीवां वन में जाय ।

चार चरे चिहुं दिस फिरे, वाकी सुरित वछक्त्रा मांहिरे ।।जि।।१॥

सात पांच सहेलियां रे, हिलमिल पागी जाय ।

ताली दिये खड खड हंसरे, वाकी सुरित गगरून्ना मांहि रे ।।जि।।२॥

नदुन्ना नार्च चोक में रे, लाख करै लोक सोर ।

बांस गृही वरते चढ़े, वाको चित न चलै कहूं ठोर रे ।।जि।।३॥

जून्नारी-मन में जून्नारे. कामी के मन काम ।

'मानंदघन' प्रस्नु यूं है, इस त्यौ भगवत नाम रे ।।जि।।।।।

(=१) यह पद केवल हमारी 'अ' प्रति मे है। इस पद की भाषा और शैली भिन्न होने से शंकास्पद है।

पाठान्तर—जिन = असे जिन (क.वृ.) अरिहंत = असे ग्रिरहंत (क.वृ.) गौवां = गौआं (क.वृ.)। मांहिरे = मांहेरे (क.वृ.)। लाख सोर = लोक करे लख सोर (क.वृ.) गृही = ग्रही (क.वृ.) भगवंत = मगवंत को (क.वृ.)।

शब्दार्थ — चितल्यां = मनलगाऊं। उदर = पेट। चार = चारा, पास आदि। चिहुं = चारों। सुरित = चित्तवृति। खड खड हंसे = मुक्त कंठ से हंसती हैं, खिल खिलाकर हंसती है। बरते = चरत्रा, रस्सी।

ग्नर्थ-हे मन ! राग-द्वेष-विजयी जिनराज भगवान के चरणों में अपनी वृत्तियों को इस प्रकार लगा, आत्म शत्रुओं के नाशक अरि- हन्त भगवान के गुणों का इस प्रकार स्मर्ण कर जिस प्रकार अपना पेट भरने के लिये गायें जंगल में जाती हैं और वह चारा-घास आदि चरती हैं, चारों दिशाओं में घूमती हैं किन्तु उनकी चित्तवृत्ति तो अपने वछडे (वत्स) में ही रहती है ॥१॥

विशेष—हे जीव! यदि तू अन्तराय कर्म के उदय से सर्व विरित का सेवन न कर सके तो भी अपनी चित्त वृत्तियों को सदा आत्माभिमुख रख। इसमें तिनक भी प्रमाद न कर। सब कार्य करते हुये आत्म जागृति रख। अपने में कर्तृ त्व का अरोपण न करके साक्षी भाव का अरोपण कर, अर्थात् साक्षी भाव से रह।

आगे योगीराज फिर कहते हैं—पांच सात सहेलियां हिलमिल कर पानी भरने के लिये जाती है, वे तालियें बजाती है, खिल खिला-कर हंसती हैं किन्तु उनकी चित्तवृत्ति तो मस्तक पर रखे हुये घडे (गररी) में ही रहती हैं। अर्थात् सब कार्य करते हुये भी उनका ध्यान यही रहता है कि कहीं घडा सिर पर से गिर न जाय ॥२॥

किंवराज पुनः उदाहरण देते हुये कहते हैं-नट सरे वाजार चौक में नाच (नृत्य) करता है। आने जाने वाले, दर्शकगण लाखों बातें करते हैं, शोरगुल करते हैं। वह नट वांस लेकर रस्सी पर चढकर अनेक कलायें दिखाता है, लोगों के शोरगुल की ओर ध्यान न देकर वह तो अपने चित्त को अपने कार्य की ओर ही रखता है। उसका चित्त किसी दूसरी जगह जाता ही नहीं है।।३।।

विशेष—इन तीन पदों में—पहिले पद में अहार प्राप्त करने के लिये जाने वाली गायों का वर्णन है, दूसरे पद में पानी लाने वाली विनोदी स्त्रियों का वर्णन है, और तीसरे में पेटार्थी लोक रंजन का धन्धा करने वाले नट का ह्ष्टान्त है। इन सब का आशय यहीहै कि चाहें अपनी रोजी के लिये उद्यम करते हो, चाहे मित्र मंडली में विनोद करते हो, चाहे पेट पालन के लिये लोगों का मन-रंजन का कार्य करते हो, ये सव करते हुये भी अपने को किसी भी अवस्था में, अपने आत्मा को नहीं भूलना चाहिये। सर्वदा आत्म जागृति रखनी चाहिये। उक्त तीनों कार्य करने वाले जिस प्रकार अपने मूलभूत कार्य को नहीं भूलते हैं उसी प्रकार हमें भी जिनेश्वर देव का स्मरण दत्तचित्त होकर करना चाहिये। सांसारिक-व्यवहारिक कार्य करते हुए भी चित्त प्रभु में रखो।

कविराज आनन्दघनजी दो सांसारिक उदाहरण देते हुये कहते हैं--जिस प्रकार जुआ खेलने वाले की वृत्ति हमेशा जुआं के दाव पेंच में, और कामी (व्यभिचारी) पुरुष का मन सदा स्त्रियों में लगा रहता है, उसी प्रकार हे भव्य प्राणियों! अपनी प्रवल लगान से तुम प्रभु के नाम व गुणों का स्मर्ण करो।।४॥

महासत्ता,-सामान्य-विशेष द२

राग-धन्यासिरी

चेतन सकल वियापक होई।
सत ग्रसत गुए परजाय परिएाति, भाउ सुभाउ गति जोई।।चे०।।१।।
स्व पर रूप वस्तु की सत्ता, सीभे एक नहीं दोई।
सत्ता एक ग्रखंड ग्रबाधित, यह सिद्धंत पच्छ जोई।।चे०।।२।।
ग्रन्वय ग्रह व्यतिरेक हेतु को, समिक रूप भ्रम खोई।
ग्रारोपित सब घर्म ग्रौर हैं, 'ग्रानंदघन' तत सोई।।चे०।।३।।

(दर) मुद्रित पुस्तकों में यह पद दो स्थानों पर है। एक तो ५५वीं संख्या पर है जिसमें 'चेतन अपा कैसे लोई' से आरंग हुआ है तत्नश्चात—'सत्ता एक श्रखंड '''तत सोई' तक ऊपर जैसा ही है। दूसरे दश्वीं संख्या पर ऊपर जैसा है वैसा ही है। हमारी 'आ प्रति में उक्त पद की दूसरी और तीसरी पंक्ति नहीं है।

पाठान्तर— होई = दोइ (ग्रा)। परजाय = प्रांत्रय (क.वृ.वि.)। जोई = दोइ (क.यू.), होइ (वि.) सिद्धंत = सिधंत (आ), सिद्धांत (उ.क.वृ.वि.)। पच्छ = पछ (आ,इ.), पख (क.वृ.वि.)। पथ (उ)। जोइ = होइ (ग्रा,क,वृ.)। दोई (उ)। ग्रन्वय अरु व्यतिरेक = ग्रनवय व्यतिरेक (आ,क.वृ.)। हेतु को = हेतु कउ (आ)। समिक = समजी (क.वृ.वि.)। और है = ग्रोराहि (आ)।

शब्दार्थ — वियापक = व्यापक । गुए = आत्मगुए ज्ञानदर्शनादि।
परजाय = पर्याय । (महभावी धर्म गुएा और क्रमोपभावी धर्म पर्याय
कहलाते हैं) परिए ति = परिए मन शीलता, ज्ञातमा के गुएा पर्यायों का
परिए मन ही आत्म परिए ति है, सिद्धों के स्वभाव परिए ति है। भाउ = भाव,
पारिए मिक, औदार्यक औपश्मिक, क्षयोगश्मिक तथा क्षायिक।
सुभाउ = स्वभाव। गत = अवस्था, ढंग। जोई = देखकर, विचार कर।
स्व = निज, आत्मा की। पर = अन्य की, जड की। रूप = स्वरूप। सत्ता =
अस्तित्व। सीभे = सिद्ध होती है। सिद्ध त पच्छ = शास्त्रीय पक्ष। अन्वय =
कार्य कारण संबंध। व्यतिरिक = जहाँ कार्य का अभाव वहाँ कारण का
भी अभाव। हेनु = कारण। शारापित = एक वस्तु में अन्य वस्तु के ग्रुए की
कल्पना। तत = तत्व, सार वस्तु।

भ्रयं — यह चेतन राज सर्व व्यापक वना है अर्थात् कर्म-मल के नाश होने पर उसके ज्ञान में सर्व ज्ञेय (जानी जाने वाली वस्तु) भासते है। लोक, अलोक की सब स्थित वह (आत्मा) जानता है, देखता है। इस अपेक्षा से चेतन सर्व व्यापक होता है। अथवा केवली समृद्घात के समय यह आत्मा लोक प्रमाण अपने आत्म प्रदेशों को फैलता है—इस प्रकार भी वह सर्व व्यापक होता है। अन्यथा तो यह आत्मा शरीर प्रमाण ही होता है। यह दोनों अवस्थाय पूर्ण ज्ञान-केवल ज्ञान प्राप्ति पर ही होती है। योगीराज आनंदघनजी वही स्थित प्राप्त करने के लिये कहते हैं—हे चेतन! सर्व व्यापक बनो। ऐसा उद्यम करो जिससे केवल ज्ञान प्राप्त हो।

इस चेतन में सत-असत-अस्ति, नास्ति दोनों घर्म हैं। स्त्र-द्रव्य की अपेक्षा इसमें अस्ति घर्म है, पर-द्रव्य की अपेक्षा नास्ति घर्म है। आत्मा अपने ज्ञानादि गुण, मनुष्यादि पर्याय-इन गुण-पर्याय की परिणति-परिणमन, क्षायिकादि भाव तथा निज चेतन स्वभाव की गति से यह चेतन सत है व जड घर्म की अपेक्षा से असत है, अर्थात् जड पदार्थ के गुण वर्ण गंघ रस स्पर्श इसमें (चेतन में) नहीं हैं ॥१॥

स्व एवं पर वस्तु का स्वरूप व सत्ता एक ही सिद्ध नहीं होती, वह भिन्न-भिन्न है, दो है। अर्थात् चेतन की स्व सत्ता चेतन रूप है तथा जड की सत्ता जड रूप है। यह जड भाव व चेतन भाव दोनों एक वम्तु में सिद्ध नहीं होते। यह सिद्धान्त पक्ष है कि चेतन एक अन्तंड व अवाधित सत्ता है।।२।।

उस चैतन्य सत्ता को अन्वय और व्यतिरेक हेतु से समक्षकर, स्वरूप सम्बन्धी सम्पूर्ण अन मिटा देने चाहिये। मानसिक, वाचिक और कायिक घर्म भिन्न हैं। ये आत्मा के धर्म नहीं हैं। इन सब आरोपित घर्मों को भिन्न समक्ष कर आनंद के समूह रूप जान दर्शन स्वरूग आत्मा को जानना चाहिये, यही तत्व रूप परम सत्य है। इस चेतन शक्ति की पूर्णता प्राप्त करना ही सर्व व्यापाक होना है।।३।।

प्रियतम उपालंभ

53

राग-वसंत

प्यारे, श्रव जागो परम गुरु परम देव ।

मेटहु हम तुम बीच भेद ॥

श्राली लाज निगारो गमारी जात, मोहि श्रान मनावत विविध मांति।।एयारे०॥१॥

ग्राली पेर निमूली चूनडी कांनि, मोहि तोहि मिलन विच देत हानि ॥प्यारेष्०॥२॥ श्राली पति मतवाला और रंग, रमे ममता गिएका के प्रसंग ।।प्यारे०।।३।।

श्रव जड ते जडता घात श्रंत, चित फूले 'ग्रानंदघन' वसंत ॥प्यारे०॥४॥

(५३) यह पद केवल हमारी 'अ' प्रति में है। इस पद की भाषा और शैली भिन्न है और शीर्षक पद में पित को संबोधित किया गया है, और आगे सखी से बात चीत होती है। पूर्वापर का संबंध नहीं है। तीमरा और चौथा पद तो ऊपर के पदों से सर्वथा भिन्न पड़ जाते हैं। संग्रहकार ने कोई पद कहीं का और कोई पद कहीं का मिलकार यह पद बना दिया हो, ऐसा लगता है। ग्रतः शंकास्पद है।

पाठान्तर — मुद्रित प्रतियों में 'प्यारे' शब्द 'प्रमदेव' के पीछे है। आली पेर "कांनि = अली पर निर्मूली कुलटी कान (क.वु.वि)। मोहि तोहि = मुनि तुहि (क.वु.)। मतवाला = मतवारे (क.बु.वि) तीसरे पद के आदि में जो 'आली' शब्द है, वह मुद्रित प्रतियों में नहीं है। अव "अतं = जव जडतो जडवास अतं (क.वि.) अब जडतो जडवास अतं (क्.वि.)।

शब्दार्थ — आली - सखी । गमारी - गंवार । ग्रान = ग्राज्ञा । पेर = पेलना, सताना । घात - प्रहार, चोट ।

भ्रथं —सुमित कहती है —हे परम गुरु देवादिदेव! भ्रव तो सचेत होनो। आपके और मेरे मध्य जो अन्तर पड़ रहा है उसे मिटा डालो।।

हे सखी! लाज निगोडी गंवार जाति है। वह मुक्ते तरह तरह की आज्ञायें देकर उनका पालन कराना चाहती है।।१।।

है सखी ! वह निर्मू ली लज्जा चूनडी पहिनकर, सजधजकर (शृंगार करके) आपके और मेरे मिलन में बाधा उत्पन्न करती है। मैं अपनी लज्जावश आपके पास नहीं आ रही हूं।।।२।।

#### [ २०१ ]

है सखी ! स्वामी तो ममता रूपी गणिका के फंद में (जाल में) पडकर मतवाले हो रहे हैं और उसी रंग में रम रहे हैं ॥३॥

अव तो जडवस्तु के ममत्व का अंत होने पर ही—पौद्गलिक भाव का नाश होने पर ही आत्मज्ञान रूप वसंत का आगमन होकर मेरा चित्तरूपी पुष्प खिलेगा और अतिशय आनदप्राप्त होगा ॥४॥

श्रव ऐसे शंकास्य पद दिने जाते हैं जो हमारी प्रतियों में तो है नहीं, किन्तु मृद्रित प्रतियों में है। इनकी भाषा और शैली आनंद-घन जी के पदों से भिन्न है। ये पद किसी अन्य जैन किव के या और किवयों के हो सकते हैं। भविष्य में शोधकरने वालों को अन्य किवयों के पद मिलेंगे तो बहुत कुछ वातें स्पष्ट होजावेंगी।

#### 58

राग-धाशावरी

बेहेर बेहेर निह श्रावे रे श्रवसर, बेहेर बेहेर निह श्राव ।।श्रव।।१॥ ज्यूं जार्गे त्यूं करले मलाई, जनम जनम सुख पाव ।।श्रव।।२॥ तन धन जोवन सवही भू ठो, प्रारा पलक में जाव ।।श्रव।।३॥ तन छुटे धन कीन काम को, कायकूं कृपण कहाव ।।श्रव।।३॥ जाके दिल में सांच वसत है, ताकू भूंठ न भाव ।।श्रव।।४॥ 'श्रानदधन' प्रभु चलत पथ में, समिर समिर गुरा गाव ।।श्रव।।४॥

(५४) शब्दार्थ - वेहेर वेहेर = वारवार । अवसर = समय, मौका । पलक में = क्षरण में, पल मे । कायकूं = किस लिये । भावे = अच्छी लगती है । समिर समिर = वरावर समर्ण करके ।

नोट-यद्यपि यह पद हमारी 'ग्र' प्रति में एक स्थान पर लिखा हुआ है। किन्तु उस स्थान पर इस पद पर कोई क्रम् संख्या नहीं है। मुद्रित पुस्तकों के पाठ से भी भिन्नता नहीं है अतः पाठान्तर नहीं दिये गये। यह पद मृद्रित प्रतियों में क्रम संस्था १०० पर है। इस यह पर की कापडिया जी ने भी आनं वित्ती के होने में संका की है।

श्चर्य — ऐसा समय बार बार नहीं आवेगा ऐसा संयोग फिर फिर नहीं मिलेगा। अर्थात् यह मानव जन्म फिर नहीं मिलेगा। इसिलये जिस समय भलाई करने का अवसर हो उस समय मलाई करलो, जिससे जन्म जन्मांतरों में भी मुख प्राप्त हो।।१।।

शरीर, वन-दीलत और यांदन अदस्था ये सब फूठे है, क्षणभंगुर हैं क्यों कि यह प्राण पल नात्र में ही उड जाता है ॥२॥

जब शरीर ही नहीं रहे तो वन किस काम आता है फिर किस लिये क्रपण कहलाता है ॥३॥

जिसके हृदय में सत्य का निवास है, उसे भूंठ कभी भी अच्छी नहीं लगती है ॥४॥

कविराज आनंदघनजी कहते हैं —मार्ग में चलते चलते वारं वार आनंदघन प्रभु का स्मर्ण करके उनका गुणणन करने ।धः।

54

राग-वेलावल

टुल्हन री तूं बडी बावरी पिया जानै तूं सोवे ।। पिया चतुर हम निपट, श्रग्यानी, न जानूं क्या होवे । 'श्रानंदघन' पिया दरस पियासे, खोल घृंघट मुख जीवे ।।१।।

नोट—यह पद हमारी किसी प्रति में नहीं है। मृद्रित प्रतियों में इसकी कम संख्या १६ है। श्री कापिडयाजी ने इस पद को श्री आनंदघनजी की कृति होने में शंका की है। वास्तव में इस पद की भाषा और शैली आनंदवनजी की भाषा-शैली से भिन्न है अतः यह शंकास्यद है। ग्नर्थ —हे दुलहन-नई नवेली स्त्री! (चतुर्थंगुण स्थान में प्राप्त श्रद्धा, सम्यक्त्वी आत्मा) तू वडी ही पगली है क्यों कि तू जानती है कि पित बहुत ही कठिनता से मिलेगा तोभी तू तो सो रही है और पित जागरहा है। पित विभाव दशा में हैं।

दुलहन जवाव देतो है मेरा स्वामी वहुत हो चतुर है और मैं विल्कुल अज्ञानी हूं मै नहीं जानती कि मुभे क्या करना चाहिये।

आनद के समूह प्रियतम के दर्शनों के लिये यह दुलहन रूपातुर है। लाज शर्म का त्यागकर-धूंघट (परदा) हटाकर प्रियतम का मृख देखने लग गई। और आशा करने लगों कि अब यह प्रियतम मेरी ओर देखेंगे। (विभावदशा त्याग कर स्वभाव दशा में आवेंगे)।

श्रृंगार धारग

দহ

राग-गौडी स्रासावरी

ग्रांज सुहागन नारी ग्रंवधू ।।

मेरे नाथ ग्राप सुध लीनी, कीनी निज ग्रंग चारी ।।श्रवधू॥१॥

प्रेम प्रतीत राग रुचि रंगत, पिहरे जीनी सारी ।

महिंदी मक्त रंग की राची, माव ग्रंजन सुखकारी ॥ग्रवधू॥२॥

सहज सुमाव चूरियां पेनी, थिरता कगन मारी ।

ध्यान उरवसी उर में राखी, पिय गुन माल ग्राधारी ॥ग्रवधू॥३॥

सुरत सिंदूर माँग रँग राती, निर्द्त वेनी समारी ।

उपजी ज्योत उद्योत घट त्रिभुवन, ग्रारसी केवल कारी ॥ग्रवधू॥४॥

उपजी धुनि ग्रजणकी ग्रनहर, जीत नगारे वारी ।

भंडी सदा 'ग्रानंदघन' वरखंत, वन मोर एकन तारी ॥ग्रंवधू॥४॥

(द६) यह पद मुद्रित प्रतियों में २० वीं, संख्या पर है। आपा-शैली श्रानन्दघन जी की न होने से शंकास्पद है। यहाँ थोडा पाठ भेद है वह दिया जाता है — चूरियां पेनी = चूरी मैं पेनी (क)। कंगन = कंकन (क.वि)। मोर एकन तारी = विने मोरे एक तारी (बु.)।

शब्दार्थ — सुघ = खवर । अँगचारी = सहचरी, दासी । प्रतीत = विश् वास, ग्रास्था । रुचि = चाह, इच्छा । जीनी = भीनी, वारीक, महीन । भारी= मूल्यवान । उर वसी = गले में पहिनने का एक ग्राभूपए। उरमें = हृदय में । आघारी = घारण की । सुरत = स्मर्ण, शुद्ध उपयोग । राती = रक्त । निरतैं = लवलीन, एकाग्रता । समारी = सुघारी, गूंथी । उद्योत = प्रकाश । आरसी = दर्भए। कारी = वना कर । घुनि = ध्वनि । भडी = मेघ धारा । एकन तारी= एक तार, एकाग्र होकर ।

ग्रर्थ— चेतना चेतन से कह रही है—हे अवधूत –आत्मन्–हे अविनाशी चेतन! आज आपने मेरे सुधि-खवर ली है, मैं वडी सौभाग्यशालिनी हूं कि आपने मुक्ते अपनी सहचरी—सेवा करने वाली वना ली है। ममता का साथ छोड कर आज आपने मुक्ते स्वीकार कर लिया है। इससे अधिक मेरा सौभाग्य क्या होगा?।।१।।

सीभाग्यशालिनी चेतना ने सद्गुगों के प्रेम व श्रद्धा के रंग में रंगी रुचिकर रंगवाली वारीक साडी पहन ली (पित के सद्गुणों में एक रस हो गई)। भक्ति रूपी राचनी मेंहदी लगाई और भाव रूपी सुखदायक अंजन (काजल) आंखों में लगाया।।२।।

सहज स्वभाव रूप (ज्ञान दर्शन चारित्रादि) चूडियें और स्थरता रूप मूल्य वान कंगन हाथों में पहिने। ध्यान रूप उरवशी माला प्रियतम के गुणों से पिरोई हुई अपने गले में घारण की ॥३॥

अनुभव ज्ञान रूपी दर्पण में प्रतिविम्व देख कर शुद्धोपयोग रूपी सुन्दर रंग वाला सिन्दूर मांग में लगाया और पित के गुणों में लवलीनता रूपी वेणी (चोटी) को सजाया। इससे हृदय में एक नवीन ज्योति का प्रकाश फैल गया।।४॥

इस प्रकार श्रंगार करने के पश्चात् हृदय में अजपा जाप की ध्वनी उत्पन्न हो गई और अनहद नाद के विजय नगारे दरवाजे पर वजने लगे। इससे आनन्द-मेघ की ऋडी लग गई और मन-मयूर उस आनन्द में एक तार हो गया—लव लीन हो गया।।।।।।

उपदेश

50

राग-काफी

ए जिनके पाय लागरे, तूने किहये ये केतो । भाठोइ जाम फिरे मद, मातो, मोह निदिरयाशूं जागरे ।।तूने०।।१।। प्रभु जी प्रीतम विन नहीं कोई प्रीतम, प्रभु जी नी पूजा घर्गी मांग रे ।।तूने०।।२।।

मव फेरा वारी करो जिनचंदा, ग्रानन्दघन पाय लाग रे ।।तूने०।।३।।

(५७) यह पद मुद्रित प्रतियों में कम संख्या १०२ पर है। इस पद की मापा-शैली ग्रानन्दघन जी की भाषा-शैली से भिन्न है। जिस प्रकार से आनन्दघनजी ने अपने भाव अन्य पदों में व्यक्त किये हैं, उस प्रकार इसमें नहीं है अतः यह पद उनका नहीं दिखाई देता। श्री कापडिया जी ने भी इसे शंकास्पद माना है। हमारे विचार में सह पद 'जिनदचं' नामक किसी कि = का होना चाहिये।

शब्दार्य — केतो = कितना। जाम = याम, प्रहर। निदरियाशूं = नींद से। घणी = अधिक। भाग रे = मांग ले। वारी = निवारण, दूर। पाय = पद, चरण।

श्चर्यं—है मन तुभे कितना कहा, कितना समभाया, तू जिनेश्वर भगवान के चरणों में लग जा। आठों ही प्रहर— दिन—रात तू मोह—नींद में मस्त होकर फिरता है। अरे अब तो इस मोह—नींद से जागृत हो।।।।

## [ २०६ ]

यह जिनेक्वर देव ही सबसे प्रिय हैं इनके बिना संसार में और कोई प्रियतम नहीं है। अतः इन प्रभुजी के चरणों की पूजा अधिक से अधिक याचनकर, उसमें लग जा।।२।।

अरे जिनचंद आनन्द के संमूह जिनेश्वर देव के चरणों में लग कर इस संसार के आवागमन को दूर कर ॥३॥

निराधार केस मूकी, श्याम मुने निराधार केम मूकी।
कोई नहीं हूँ कुं एग्शूं बोलूं, सहु ग्रालम्बन टूकी ।।श्यामं०।।१।।
प्राण नाथ तुमे दूर पधार्या, मूकी नेह निरासी।
जरा जराना नित्य प्रति गुरा गातां, जनमारो किम जासी।।।श्यामं०।।२।।

जेहनो पक्ष लहीने बोलूं, ते मन मां मुख ग्राणे। जेहनो पक्ष मूकी ने बोलूं, ते जनम लगे चित ताणे।।श्यामं।।३।। बात तमारी मन मां ग्रांचै, कोएा ग्रागल जह बोलूं। लितत खिलत खल जो ते देखूं, ग्राम माल धन खोलूं।।श्यामं।।।४।। घटें घटें छो ग्रन्तरजामी, मुज मां कां निव देखूं। जे देखूं ते नजर न ग्रांचै, गुएाकर वस्तु विसेखूं।।श्यामं।।१।। ग्रवधें केहनी वाटडी जोऊं, विरा ग्रवधें ग्रति भूकं। 'ग्रानदघन' प्रभु बेगे पघारो, जिस मन ग्राशापूकं।।श्यामं।।६।।

(मम) यह पद मुद्रित प्रतियों में क्रम संख्या ९४ पर है। यह पद भी शंकास्पद है। क्योंकि भाषा व शैकी जिन्न है। इस पद को श्री बुद्धि सागर जी ने शंकास्पद माना है। पाठान्तर— कोई नहीं "बोलूं = कोई न नेहु ने कुए। सुं बोलुं (क)। लहीने = लईने (क)। तनारी = तुमारी (क)। देखूं = देगुं (बु)। केहनी = कहीनी (क)।

शब्दार्थ — निराधार = विना सहारे । केम = किस प्रकार, क्यों । कुग्ग्यूं = किस से । सूनी = छोड़ी । सहु = मब । आलंबन = अवलंभ सहारा । हिनी = ह्रट गये । निराशी = निराश करके, ना उम्मीद करके । जग् जग्गा= प्रत्येक व्यक्ति के । जनमारो = जीवन । जेहनो = जिसका । नहीने = लेकर । सुख आग्यो = सुख मानेगा प्रसन्न होगा । चित नाग्ये = मन में खिचा हुआ रहेगा, बैर रखेगा । तमारी = तुम्हारी । आगल = आगी, सन्मुख । जह = जाकर । चित = सुन्दर । खिता = स्विति , पितत । खल = दुष्ट । श्राम = इस प्रकार । माल धन = सम्पत्ति, रहस्य । घटें घटें = प्रत्येक हृदय की । कां = क्या । गण्कर = मलाई करने वाले । विसेखं = खास कर के । श्रवधे = श्रवित , मियाद । वाटडी = मार्गं, प्रतीक्षा । भूकं = दुःख उठाती हूँ, विलापात करती हूँ ।

श्रर्थ— चौथे गुग स्थान से च्युत चेतन राज को दुखित सुमित या चेतना कह रही हैं—हे श्याम ! हे नाथ ! आपने मुक्ते बिना आधार (सहारे) के ही क्यों छोड दिया । मुक्ते निराधार छोड़ने का क्या कारण है । मेरा तो अब कोई नहीं है । मैं किससे हृदय खोल कर बात चीत करूं ? मेरे तो सब अवलंबन (आश्रय) दूर हो गये है—श्रष्ट हो गये है ।।१।!

हे प्राण नाथ ! आप तो मुक्ते छोड कर दूर चले गये हो। (चौथे गुण स्थान से प्रथम गुण स्थान मे) मै आपके स्नेह (प्रीति) की प्राप्ति में निराश हो गई हूं। अब मैं क्या करूं। आपके बिना, आपके विरह मैं हर रोज हरेक के (मुक्त से ज़िनक़ा मेल नहीं — कुत्सित मनो चृत्तियें) गुण गाते हुये मेरा जीवन किस प्रकार व्यतीत होगा? ।।२॥

है प्राणनाथ चेतन ! मैं जिसका पक्ष लेकर बोलती हूं—जिस की तरफ दारी करती हूं वह तो मन में प्रसन्न होता है, जिसके विपक्ष में-विरोध में कुछ कहती हुं वही जीवन पर्यन्त वैर भाव रखने लगता है।।३।।

(चेतन और सुमित या चेतना का अभेद है जहाँ चेतन है वहाँ चेतना है प्रथम गुणस्थान में गए हुए चेतन के साथी मिथ्यात्व को ही वढाते हैं। इसलिए चेतना कहती है कि इस अवस्था-मिथ्यात्व में प्राप्त हरेक (मनोवृत्ति) के अनक्षण वोलनी हूँ तो वे प्रसन्न होते हं अर्थात् मिथ्यात्व वढता है और यदि विरोध में कुछ हूं कहती तो वे मनोवृत्तियाँ तन जाती हैं)।

विरहिणी चेतन। कहती है—हे स्वामिन्! मेरे मन में तो आपके संबंध की ही वाते आती हैं। मैं आपकी याद जरा भी भूलती नहीं हूं। आपके विना आपकी वातें किसके आगे—सामने जाकर कहूं। सुन्दर और पितत दुष्टों को (पितत करने वाली मनो वृत्तियों कां) अपने सामने जब देखती हूं तो उनके सम्मुख अपना रहस्य कैसे खोलूं? (चेतन की जब सम्यक्त्व दृष्टि हो तभी मैं उससे अपना रहस्य कह सकती हूं)।।४।।

हे स्वामिन् आप तो घट-घट के अन्तरयामी हैं किन्तु मैं तो अपने में आपके दर्शन कर पाती ही नहीं हूं। जव मैं अपने में देखने लगती हूं तो आप कहीं नजर ही नहीं आते हैं। मैं तो आपको गुणमय मानती हूं—ज्ञान दर्शनादिमय मानती हूं। वे गुण मुभे कहीं नजर नहीं आते हैं।।।।।

हे नाथ ! कोई मृद्दत वताकर जाते तो मैं आपकी संतोप से प्रतीक्षा करती—राह देखती रहती किन्तु आपने मृद्दत-समय की

अवधि भी नहीं वताई इससे मैं विलापात करती हूं। (चौथे गुण-स्थान से प्रथम गुणस्थान में जाकर चौथे में आने का कोई निश्चित समय नहीं है, अतः चेतना—सुमित विलापात करती है) मेरी इस निराधार दशा को देख कर हे आनंद के समूह स्वामी! आप जल्दी से जल्दी पधारो जिससे मेरे मन की आशा पूर्ण हो। (चेतन मिथ्यात्व त्यागकर सम्यक्त्वी होवे और क्षपक श्रेणी चढ कर शुद्धबुद्ध वने तो मेरी सव आशायें—अभिलाषायें पूर्ण हों)।।।।।

मदन विजय

58

राग-सूरित टोडी

प्रभु तो सम ग्रवर न कोई खलक में। हरि हर ब्रह्मा विगूते सो तो, मदन जीत्यो तें पलक में ॥प्रभु०॥१॥ ज्यों जल जग में ग्रगन बुक्तावत, वडवानल सो पीये पलक में। 'ग्रानंदघन' प्रभु वामारे नदन, तेरो हाम न होत हलक में ॥प्रभु०॥२॥

(८९) यह पद मुद्रित प्रतियों में ६२वां पद है। श्री आनंदघनजी की चौबीसी प्रसिद्ध है। इस चौबीसी में उनके २२ही पद कहें जाते हैं। जिस धौली में चौबीसी के पद हैं। इस पद में वह शैली नहीं है। श्रतः यह पद उनका मानने में वाघा उपस्थिति है। संभव है यह पद किसी अन्य जैन कि का हो श्रीर आनंदघनजी के नाम पर चढ गया हो।

शब्दार्य — अवर = दूसरा । खलक में = संसार में । विश्ते = असमं जस में डाल दिया, वृद्धि भ्रष्ट करदी । अगन = अग्नि । वडवानल = समुद्र की आगं। हांम = हिम्मत, शक्ति हामी, स्वीकृति । हलक में = कंठ में । तेरी \*\*\* हलक में = तू श्रनिवंचनीय है ।

प्रर्थ—हे अश्वसेन राजा और वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ प्रभो ! आपकी वरावरी करनेवाला इस संसार में दूसरा कोई भी नहीं है। विष्णु, महादेव और ब्रह्मा ये तीनों महान् देव कहे जाते हैं। इन तीनों महान् देवों को कामदेव ने धर दवाया, अव्ट कर दिया अर्थात् सरस्वती जो ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, उसे देखकर ब्रह्मा कामातुर हो गये, विष्णु लक्ष्मी के सहवास में सदा रहते हैं और महादेव भीलनी का रूप देखकर मोहित हो गये। इस प्रकार तीनों महान् देवों को कामदेव ने अव्ट कर दिया। उस कामदेव को आपने हे प्रभो ! एक क्षणमात्र में विजय कर लिया—जीत लिया।।१।।

संसार में जिस प्रकार अग्नि को जल—पानी शमन कर देता है — बुक्ता देता है और अग्निशामक जल को वडवानल एक क्षण में पी जाता है इसी प्रकार आपने भी कामाग्नि को पी लिया है — शमन कर लिया है। आनंदघनजी कहते हैं — हे वामा देवी के पुत्र पार्श्वनाथ भगवान ! आपकी शक्ति का वर्णन कंठों से नहीं कहा जा सकता है प्रथात् आपकी काम विजय शक्ति अनिवंचनीय है। अर्थात् आपने जो महाचर्य वृत स्वीकार किया है उसका वर्णन वाणी से नहीं किया जा सकता है, वह अनिवंचनीय है।।।।

बिरह व्यथित उद्गार ६०

राग-मालसिरी

वारे नाह संग मेरो यूं ही जोवन जाय।
ए दिन हसन खेलन के सजनी, रोते रैन विहाय।।वारे०।।१।।
नग भूषण सें जरी जातरी, मो तन कछु न सुहाय।
इक बुद्धि जीय में ऐसी भ्रावत है, लीजेरी विष खाइ।।वारे०।।२।।
ना सोवत है लेत उसासन, मनही में पिछताय।
योगिनी हुय के निकसूं घर तें 'श्रानंदघन' समजाय।।वारे०।।३।।

(९०) मुद्रित प्रतियों का यह पद ३६वाँ है । भाषा-शैली श्री ग्रानंदघनजी की भाषा शैली से भिन्न होने से शंकास्पद है।

शब्दार्थ—वारे = वाल, छोटे । रैन = रात्रि । विहाय = व्यंतीत होती है । नग भूपरा = श्राभूपरा । भ्रथं -गुद्ध चेतना अपनी सखी समता से कह रही है—
हे सखी! छोटे पित के साथ (वालभाव छद्मस्य अवस्था वाले चेतन
के साथ) मेरा यह यौवन व्यर्थ ही जा रहा है। यह समय तो—
यौवनावस्था तो हंसने खेलने मौज-मजा करने के दिन है किन्तु पित
के छोटे होने के कारण मेरी रात्रि तो रोते रोते ही व्यतीत होती है।
अर्थात् यौवन अवस्था रूप धर्म साधनाकाल तो हंसने खेलने रूप
ज्ञान घ्यान तप आदि करने का समय है। किन्तु यह समय चेतन
प्रमाद-कपायों में व्यतीत कर रहा है। इस दुख से दुखित मेरी शांति
रूप रात्रि रोते हुये वियोग में व्यथित व्यतीत हो रही है॥१॥

क्षमा, जील, संतीप आदि रत्नों से जटित वृत ६प आभूपण चेतन स्वामी के वालभाव में होने के कारण, अच्छे नहीं लगते है— व्यर्थ हो जाते हैं। ऐसी अवस्था से तो (चेतन के स्व-भाव अवस्था में नहीं आने से) मेरे मन में ऐसी आती है कि इस दुख से छुटकारा पाने के लियं विप पान करलूं? ॥२॥

हे सखी! मुक्ते सोना भी नसीव नहीं है। स्वामी के वालभाव से दुखित निश्वासे डालती रहती हूं और मन ही मन पश्चात्ताप करती रहती हूं। स्वामी चेतनराज पर-भाव दशा त्यागकर स्व—भाव दशा में नहीं आ रहे है। यह दुख मुक्ते बहुत बडा है। सखी! उन आनंद के घर चेतनराज को समकाओ, नहीं तो में योगिनी बन कर घर से निकल जाऊँगी। कुछ भी करने योग्य नहीं रहंगी॥३॥

सच्ची लगन

83

राग-ईमन

लागी लगन हमारी, जिनराज सुजस सुन्यो में ।।लागी० काहूके कहे कबहू निह छूटे, लोकलाज सब डारी । जैसे श्रमली श्रमल करत समें, लाग रही ज्यूं खुमारी ।।जिन०।।१३।

# जैसे योगी योग ध्यान में, सुरत टरत निह टारी। तैसे 'म्रानंदघन' म्रनुहारी, प्रभु के हूँ विलहारी ।।जिन०॥२॥

(९१) मुद्रित प्रतियों में इस पद की संख्या दथवीं है। यह पद भी शंकास्पद है, क्योंकि इस पद की भाषा-शंली आनं रघनजी की भाषा-शंली से भिन्न है।

पाठान्तर—कवहू = कवही (वु.)। निह = न (वु.) डारी = मारी (वि)

शब्दार्थं — लगन = हढ़ प्रीति। अमली = प्रफीम खाने वाला, नशावाज। श्रमल = प्रफीम खाना। समे = समय। खुमारी = नशे का प्रभाव। मुरत = स्मर्गं की तल्लीनता। टरत = टालने प भी, दूर करने पर भी। अनुहारी = अनुरूप, समान, श्रनुकरण करने वाला, अनुसरण करने वाला।

प्रर्थ—हे जिनराज! हे जिनेश्वर देव! मैंने जव से आपका सुयश सुना है—आपकी विषय-कषायों की विजय और मैत्री प्रमोद, कारुण्य तथा मध्यस्थ भावना के संबंध में सुना है तब से ही मेरी हढ प्रीति आप में लग गई है।

यह आप में लगी हुई मेरी लगन किसी के कहने से भी नहीं छूट सकती है। इस आपकी प्रीति के पीछे मैंने सब लोक लज्जा का त्याग कर दिया है। जिस प्रकार अफीम का नगा करने वाले पर नगा करते समय, नशे का प्रभाव वढता जाता है, उसी प्रकार मेरी लगन आप में वढती जा रही है।।?।।

जिस प्रकार योग मुद्रा में ध्यानस्थ योगी की स्मर्ण में लगी तल्लीनता दूर करने पर भी दूर नहीं होती है, उसी प्रकार आनंदघन प्रभु जिनेश्वर देव में लगी हुई मेरी लगन (दृढ प्रीति) अमली और योगी की तल्लीनता की अनुसरण करने वाली है। जिस आनंद की वर्षा करने वाले प्रभु में मेरी लगन लगी हुई है उस प्रभु की मैं वार-

### [ २१३ ]

वार विलिहारी हूं अर्थात् में उन पर आत्मोत्सर्ग करता हूं। उनके अनुरूप वनना चाहता हूं॥२॥

बालपति एवं स्वार्थी कुदुम्ब ६२

राग-धनाश्री

श्ररी मेरो नाहेरी श्रतिवारो, मैं ले जोवन कित जाऊं।
कुमित पिता वेंमना श्रपराघो, नउवा है वजमारो ॥श्ररी०॥१॥
भलो जानि के सगाई कीनी, कौन पाप उपजारो।
कहा कहिये इन घर के कुटुम्ब ते, जिन मेरो काम विगारो

(९२) यह पद मुद्रित प्रतियों में ९६वीं संख्या पर है। इस पद में ग्रानंदचनजी का नाम नहीं है। भाषा और शैली भी भिन्न है अतः शंकास्पद है। इस पद को श्री कापडियाजी भी शंकास्पद मानते हैं।

पाठान्तर--नउवा है वजमारी = न उवाहै व जमरो (क), नउ वाहै व जमारो (वु.)।

शब्दार्थ — नाहेरी = पति, प्रथम गुगास्थान वाला चेतन । ग्रतिवारो = अत्यन्त छोटा । किन = कहां । नजवा = नाई । वजमारो = वज्र गिरे सिर पर । सगाई = संवंव । उपजारो = उत्पन्न हुग्रा, प्रकट हुग्रा । विगारो = विगाड दिये, नष्ट कर दिये ।

श्रर्थ — अंतरमुखी गुढ चेतना कह रही है-अरी सखी समता !

मेरा पित तो अत्यन्त ही छोटा है अर्थात् प्रथम गुणस्थान में ही है।

मैं अपनी यह यौवन अवस्था (घर्म साघन का समय) लेकर कहाँ
जाऊँ ? मेरे पिता (सम्यक्त्व) की बुद्धि पर तो पडदा छा गया। वह
संबंघ कराने वाला पुरोहित ही अपराधी है। उस नाई के सिर पर
वज्र गिरो जिसने यह संबंघ जुड़ाया है — मिलाया है। अर्थात् सम्यक्त्व

सें च्युतं क़रने वाले विचारं तथा गुभ अध्यवसायों से दूर हटाने वाली वृत्तियों पर वज्र गिरो जिन्होंने मेरां संवंध अगुद्ध चेतन से कराया है।।१।।

मेरे पिता सम्यक्त और माता श्रद्धा ने तो चेतन को भला व्यक्ति (अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र का घनी) समक्त कर ही संवंध किया था किन्तु अब यह कौनसा पाप उदय में आया है। अशुद्ध चेतन के परिवार वाले लोगों (कषायादि) को क्या कहा जाये—क्या उपालंभ दिया जावे; इन्होंने तो मेरा सार्रा ही कार्य विगाड दिया है। अर्थात् मुक्ते चेतन से मिलने ही नहीं दिया जाता है। मैं चेतन को अपनी कोर खेंचती हूं—शुद्धता की ओर (ज्ञान दर्शन चारित्र तप की ओर) लाना चाहती हूं किन्तु ये दुष्ट कुटुम्बी (कपायादि) चेतन को छोडते ही नहीं हैं। इस दुख से व्यथित हो रही हूं। चेतन को शुद्ध बुद्ध बनाने वाली क्षमता रूप जवानी को लेकर मैं कहाँ जाऊँ ?।।२।।

ऋषभ देव स्तुति

£3

राग–श्रासावरी

मनु प्यारा मनु प्यारा रिखभदेव प्रभु प्यारा ॥
प्रथम तीर्थंकर प्रथम नरेसर, प्रथम यतिव्रत घारा ॥रिखम०॥१॥
नाभिराया मरुदेवी को नंदन, जुगला घर्म निवारा ॥रिखम०॥२॥
केवल लही मुगते पोहोंता, श्रावागमन निवारा ॥रिखम०॥३॥
'श्रानंदघन' प्रभु इतनी विनती, श्रा भव पार उतारा ॥रिखम०॥४॥

(९३) यह पद मुद्रित प्रतियों में १०१वां पद है। भाषा शैली की भिन्नता होने से यह पद शंकास्पद है। इस पद को श्री कपाडिया जी भी शंका-स्पद मानते हैं।

शब्दार्थ-मनु = मन को । नरेसर = राजा, नरेश्वर । तीर्थंकर = तीर्थ-साधु-पाध्वी, श्रावक और श्राविका तीर्थों की स्थापना करने वाले । यतिव्रत = माधुन्नत । नंदन = पुत्र । जुगला धर्म = युगलिया धर्म, एक साथ जोडा उत्पन्न होने वाला नियम । निवारा = निवारण करने वाले, दूर करने वाले । केवल = केवलज्ञान । लही = प्राप्त कर । पोहोंता = पहुंचे । आवागमन = आना ज़ाना, जन्ममरण । भव = संसार ।

श्रर्थ—मेरे मन को भगवान ऋपभदेव वहुत ही प्यारे लगते हैं। वे भगवान ऋपभदेव सबसे प्रथम होने वाले प्रथम तीर्थंकर (तीर्थों की स्थापना करने वाले) हं। सबसे प्रथम होने वाले राजा है। उन्होंने ही सर्वप्रथम साधु बतो को घारण किया है, स्वीकार किया है॥१॥

वे ऋपभदेव भगवान महाराजा नाभिराय और मरुदेवी के पुत्र हैं। उन्होंने ही एक साथ जोडा (पुत्र पुत्री) उत्पन्न होने के नियम का निवारण किया है।।२॥

भगवान ऋपभदेव ने साधु व्रतों का पालन कर केवल ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति प्राप्त की और संसार में आने-जाने का क्रम दूर किया है।।३।।

आनंदघनजी प्रार्थना करते हैं हे ऋपभदेव भगवान ! मेरी इतनी ही विनय है कि मुक्ते इस संसार के पार उतार दो। मुक्ते भी जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिला दो।।४॥

निजमन उद्बोधन

88

राग–केरबो

प्रभु मजले मेरा दिल राजी रे ॥प्रभु०॥
प्राठ पहोर की साठज घडियां, दो घडियां जिन साजी रे ॥प्रभु०॥१॥
दान पुण्य कछु घर्म करले, मोहःमाया कूं,त्याजी रे ॥प्रभु०॥२॥
''ग्रानंदघन' कहे समज समज ले, ग्राखर खोवेगा वाजी रे॥प्रभु०॥३॥

(९४) यह पद मुद्रित प्रतियों में १०३वां पद है। यह पद भी भाषा-शैली भिन्न होने से गंकास्पद है। श्री कराडियाजी भी इसे शंकात्पद मानते हैं।

पाठान्तर-साठज = चोसठ (का.)।

अर्थ-हे चेतन! हे मेरे मन! तू प्रभु जिनेश्वरदेव का भजन कर, स्मर्ण कर, इससे—स्मर्ण करने से प्रसन्नता प्राप्त होगी।

दिन-रात के बाठ प्रहर होते हैं और बाठ प्रहर में बाठ घडियां (एक घडी २४ मिनिट की) होती है। इन साठ घडियों में से कम से कम दो घडी (एक मुहुर्त) तो तू श्री जिनेक्वरदेव की भक्ति-भावना में लगा ॥१॥

अरे चेतन मेरे ! मोह माया को छोड़ कर—संसार के भ्रमजाल को छोड़कर—कुछ दान-पुण्य कार्य और आत्म शुद्धि के लिये घर्म कार्य करले ॥२॥

आनंदधनजी कहते हैं—हे चेतन! अच्छी तरह स्रोच विचार करले, यदि तूने दान पुण्य और धर्म नहीं किया तो अन्त में मानव भव की वाजी खो वैठेगा—मनुष्य जन्म व्यर्थ चला जायेगा ॥३॥

श्री आनंदघनजी के पदों में अन्य कित्रयों के वे पद जो 'आनंदघन' नाम की छाप के हैं और हमारी प्रतियों में भी है। यहाँ मूल मात्र दिये जाते हैं—

दिव्य प्रकाश में भवान्तर दर्शन ६५

राग-मारू

ब्रजनाथ से सुनाथ बिन हाथोंहाथ विकायो। बीचको कोउ जन कृपाल, सरन नजरि नायो।।टेक।। जननी कहुं जनक कहुं, सुत कुता कहायो। भाई कहुं भगिनी कहुं, मित्र शत्रु मायो ।।व्र०।।१।।
रमणी कहुं रमण कहुं, राउ रज तुलायो ।
सेवक पति इन्द चन्द, कीट मृंग गायो ।।व्र०।।२।।
कामी कहुं नामी कहुं, रोग भोग मायो ।
निसपति घरि देह गेह विविध विधि घरायो ।।व्र०।।३।।
विधि निषेध नाटक धरि, मेष ठाट छायो ।
माषा पट् वेद चारि, सांग सुध पठायो ।।व्रज०।।४।।
तुम्ह से गजराज पाइ, गर्दम चिं घायो ।
पायस सुगृह को विसारि, मीख्नाज खायो ।।व्रज०।।४॥
लीला भुँह इक नचाइ, कही जु दास ग्रायो ।
रोम रोम पुलकित हुं, परमलाम पायो ।।व्रज०।।६॥

(९५) पाठान्तर—विन = विस् (आ)। हाक्षों हाथ = हाथ हाथ (आ), हाथां हाथ (उ)। जन = जिन (उ)। नजरि = नगर (अ), निज (उ)। कहुं = कहीं (अ), कहूं (उ)। रमस् = रमस्सि (आ)। राउ = राव (अ), रहूं (उ)। मायो = गमायो (उ)। विधि = विध (आ)। नाटक = नाटिक (उ)। ठाट = ठाठ (अ) = वाट (उ)। सुगृह = सुंगको (उ)। लीला = जीला (उ) मुँह = मुँह (आ)। जु = ज (उ)। दास = दीस या यौ (उ)। पुलकित हुं = पुलकित कहुं (आ),

शब्दार्थं — जन = भक्त व्यक्ति । जननी = माता । जनक = पिता । सुत = पुत्र । सुता = पुत्री । भगिनी = विहन । भायो = हुआ । रज = मिट्टी । तुलायो = तुलना किया गया । कीट = कीडा । भृग = भंवरा । मायो = समाया हुग्रा, लिप्त । निसपति = सम्बन्ध, विवाह । गेह = घर । घरायो = पकडा गया, वद्ध हुग्रा, घारण किया । ठाट = वनाव-शृंगार, तडक भडक । भाषा पट = छै भाषा । संस्कृत, महाराष्ट्री, सौरशेनी, मागधी, पैशाची और अपभ्रंश ।

# [ २१= ]

सांग = स्वांग । सुध = शुद्ध । पठायो = भेजा । गजराज = हाथी । गर्दभ = गधा । पायस = खीर । विसारि = भूलकर नाज = अन्न । लीला = कौतुक से । भुँ ह = भोंहे । दुक = थोड़ा ।

पद सं० ९५वां—'वजराज से""' 'श्र' प्रति में ११वां, 'आ' में ९वां और 'उ' में १दवां पद है। 'इ' मित में यह पद नहीं हैं।

पतित की पुकार ६६ राग-भिक्षोरी दादरा

हरि पतित के उधारन तुन्ह, कैसो पावन नामी।
मोसो तुम्ह कब उधार्यो, क्र गुटिल कामी ।।ह०।।१।।
श्रौर पतित केइ उधारे, करनी बिन करता।
एक काहू नाम लेहु. भूँ ठे विरद,धरता ।।ह०।।२।।
करणी करि पार भये, बहुत निगम साखी।
सोमा दई तुम्ह को नाथ, श्रापनी पत राखी।।ह०।।३।।
निपट श्रगति पापकारी, मोसो श्रपराधी।
जानुं जो सुधारि होऽब, नाव लाज साधी।।ह०।।४।।
श्रौर को उसापक हों, कैसे के उधारों।
दुविधा यह रावरी न, पावरी विचारों।।ह०।।१।।
गई सो गई नाथ, फेरि नई कीजै।
द्वारि पर्यो ढींगदास, श्रापनो करि लीजे।।ह०।।६।।
दास को सुधारि लेहु, बहुत कहा कहीयै।
'श्रानंदर्धन' परम रीति, नांव की निवहिय ।।ह०।।७।।

पद सं ९६वें 'हरि पतितन ''' अ' प्रति में १०वा, 'आ' प्रति में १०वा, 'इ' प्रति में ७०वा और 'छ' प्रति में ७५वों पद है। मुद्रित प्रतियों में इन दोनों पदों का एक ही पद है जिसकी मंख्या ६३ है।

(६६) पाठान्तर—कैसो नामी = कहै सो पीवत मामी (आ), कहै सो पीतम मामी (उ)। कव = कवन (इ,उ)। उघार्यो=उघार्या (इ.उ)। कामी= कानी (इ.उ)। विन = विरा (आ), विनु (इ)। विरद = विरुद (इ.उ)। दई = हुंड (अ), ई (इ), 'उ' में यह शब्द नहीं है। आपनी = अपनी (उ)। पत = पित (अ)। निपट = निकट (उ)। अगित = अग्यानी (अ), अगिन (इ), अनिन (उ)। अपराधी = अपराधि (आ), अपाराधि (इ)। सुघारि होंऽत = सुधारि हों (आ), सुदाविह (इ.उ), नाव लाज = नाउ लाल (आ), नाव दला जस (उ)। और = उर (उ)। हो = हुं (आ)। उघारों = उघारूं (आ)। दुविघा ः न = दुविघा यह रावतीन (इ.उ)। विचारों = विचारूं (आ)। नई = नई न (अ)। द्वारि = द्वारे (इ.उ)। होंगदास = ढीठदास (आ,इ), ढीदास (उ)। आपनो = अपनो (अ)। किर लोज = कलीज (आ), सुख संपित दीज (इ,उ.)। बहुत = बहोत (इ)। नाव = नांउ (अ), नाऊ (इ.उ)।

शब्दार्थ—कैमी = कैसा। पावन = पिवत्र। निगम = वेद। विरद = विरुद, प्रसिद्धि, यशा। पत = प्रतिष्ठा। पावरी = कुछ तो। ढींगदास = दुष्ट, कुमार्गी, पापी। नांव = नाम। निवहीयै = पालन कीजिये।

ये दोनों पद वर्ज भाषा में है। श्री ग्रानंदवनजी की भाषा' व्रज' नहीं है, राजस्थानी है। दोनों पद जैन मान्यता से मेल नहीं खाते हैं। जैन दर्शन 'ईश्वर को सुख दुख देने वाला, पाप-पुण्य का फल देने वाला नहीं मानता है। श्रात्मा स्वयं के सुख-दुख की कत्तां है, पाप-पुण्य की भोक्ता है श्रीर स्वयं के ही पुरुषार्थ से इनसे छुटकारा प्राप्त किंग सिद्ध-बुद्ध बेन जाती है, ऐसा मानता है। इन दोनों पदों में ही 'ईश्वर' से भक्त प्रार्थना कर रहा है कि मुक्त पापी का भी उद्धार श्रपने नाम के विरुद्ध को ध्यान में

रखकर कर दीजिये। श्री श्रानंदधनजी के किसी भी पद में इस तरह का किंचित भी संकेत नहीं है और न जैन दर्शन की यह मान्यता है कि ईस्वर ही पापियों का उद्धार करता है। श्रतः ये दोनों पद बानंदधनजी के नहीं हो सकते हैं। ये दोनों पद किसी ब्रज भाषा के टकनाली मक्त किन के हैं। बहुत संभव है ये दोनों पद महात्मा सूरदासजी के हों क्योंकि इन की शैली श्रीर भाषा उन से मिलती है। सूरसागर बहुत वहा ग्रंथ है उसमें से खोज निकालना इस समय संभव नहीं है। फिर पूराने संस्करण हर जगह उपलब्ध भी नहीं है। किन्तु इममें सदिह नहीं कि ये पद आनंदधनजी के नहीं हैं।

गुरुगम मताग्रह व स्राशाजय ६७

राग-स्त्राशावरी

ग्रवयू राम नाम जग गार्च, विरला ग्रलख लखार्च ।।

मतवाला तो मत में माता, मठवाला मठ राता ।

जटा जटावर पटा पटावर, छता छताघर ताता ।।ग्रवयू०।।१।।

ग्रागम पढि ग्रागमघर थाके, मायाधारी छाके ।

हुनियाघार हुनी सो लागे, दासा सब ग्रास् के ।।ग्रवयू०।।२।।

वहिरातम मूढा जग जेता. माया के फंद रता ।

घट ग्रन्तर परमातम मार्च, दुरलम प्राग्गी तेता ।।ग्रवयू०।।३।।

खगपद गगन मीन पद जल में, जो खोजे सो बोरा ।

चित 'पंकज' खोजे सो चीन्है, रमता ग्रतर भँवरा ।।ग्रवयू०।।४।।

पाठान्तर—मतवाला = बा मतवाला (च)। पटावर = दटावर (च)। छता = राजा (च)। माया = माथा (च)। दुनी = दुनियाँ (च)। रेता = राजा (च)। घट = घर (च)। परमातम = वरमातम (च)।

दुरलभ = दुरल (आ), दुर्लभ (अ,उ.)। खोजै = खोलै (आ), चोले (छ)। चीन्है = चीने (छ)। अंतर = आनंद (इ)। भैंवरा = भौरा (इ), अंतर रमता भगरारे (छ)।

शब्दार्थं — विरला = कोई। अलख = अलक्ष (ब्रह्म) में 'ध्यान लगाने वाला। राता = अनुरक्त। पटाघर = सिंहासन वाले। छताधर = छत्र धारन करने वाले। ताता = तप्त। दुनी = संसार। रेता = रहता है। तेता = ऐसे। गगन = आकाश। बोरा = पागल।

यह पद 'अ' प्रसि में दश्वां, 'आ' प्रति में २६वां, 'इ' प्रति में २०वां, और 'उ' प्रति में १३वां तथा मुद्रित प्रतियों २७वां पद है। मुद्रित प्रतियों में और 'इ' प्रति में ध्रानंदधनजीं का पूरा नाम नहीं है। केवल 'ध्रानंद'नाम है। अ, ध्रा, ध्रौर उ प्रतियों में आनंदधनजी का नाम नहीं है और न ध्रानंद शब्द ही है, इसके स्थान पर 'अ'तर' शब्द है जो समीचीन लगता है। अतः यह पद ध्रानंदधनजी का नहीं है। यह पद, 'पंकज' नामधारी किव का है। जैसा कि पद की घ्र'तिम पंक्ति में 'चित 'पंकज' खोजें' में स्पष्ट दिया है। संग्रहकर्ता ने 'धानंद' नाम देखकर ही इस पद को आनंदधनजी का समक्षते की भूल की है। आनंदधनजी के किसी पद में भी 'घ्रानंद' शब्द ध्रपने नाम के लिये उपयोग नहीं किया है।

श्री कृष्ण के रूप में ६८ राग-सोरठ मुलतानी, इष्ट दर्शन नट रागिणी, सहेली

साइडां दिल लगा बंसीवारे सुं, प्राण पियारे सुं।।
मोर मुकट मकराकृत कुंडल, पीतांबर पटवारे सुं।।सा०।।१।।
चंद्र चकोर मये प्रान पपद्या, नागरि नंद दुलारे सुं।
इन सखा के गुण गंधप गावे, 'ग्रानंदधन' उजियारे सुं।।सा०।।२॥

(९८) पाठान्तर—साइडां = सारा (क. बु.)। पपइया = पपैया (क), पपईया (बु.)। दुलारे = ह्रलारे (बु.)। सखा = सखी (क. बु.)। शब्दार्थ — मोरमुकट — मयूर के पंत्रों का ताज। मकराइतं = मगर के आकार का। कुंडल = कान में पहिनने का एक जैवर। पीताम्वर्र — पीले वस्त्र। पटवारे — वस्त्र वाले। नागरि — चतुर। ग्रंबप = गंवर्व।

यह पद हमारी केवल 'अ' प्रति में ही है जिसकी संख्या ६ है और मुद्रित प्रतियों में ५३ वीं संख्या पर है। जैन महात्मा के लिये श्री कृप्ण का उपासक होना असंभव है। इस पद की भाषा ब्रज है और शैं ली आनंदघनजी के पदों की शैं ली से मेल नहीं खाती है। अतः यह पद जैन महात्मा आनंदघनजी का नहीं है। 'आनंदघन' नामक एक भक्त किव और हुये हैं जिनको पदावली तथा कुछ और ग्रंथों को प्रकाश में श्री विश्वनाथ प्रसादजी मिश्र 'घनानंद और आनंदघन' नामक ग्रंथ में ला चुके हैं। इस पुस्तक के पृ० २६१ पर पद सं० २६६ ऊपर के पद में कुछ कुछ मिलती है। अतः यह पद उन भक्त किवें आनंदघनजी का मान लेने में कोई आपित्त दिन्यत नहीं होती। पूरा पद इस प्रकार है—राग-ईमनकाफी

मन लाग्यो री वंसीवारे सों, वजमोहन छवि गतिवारे सों। हग चकोर भए प्रान पपीहा, आनंदघन छजियारे सों॥

संग्रहकर्ता ने तो आनंदघन का नाम देख कर ही जैन महात्मा ग्रानंदघन का पद समक्कर आनंदघन जी के पदों में संमिलित कर दिया किन्तु वास्तव में यह पद कोई पंत्ति किसी की, कोई पंक्ति किसी की लेकर जन मुख पर चढ़ गया प्रतीत होता है। इस पद' में सारा दिल लागा वंसीवारेसु' तो "मन लाग्योंरी वंसीवारे सों" का प्रतिविम्ब है। "मोर मुकट आदि पद किसी अन्य किव के पद से लिये हुये प्रतीत होते है। अंतिम पंक्ति "आनंदघन उजियारे सुं" भक्ति किव आनंदघन से मिलती हो है अतः यह पद जैन महात्मा आनंदघनजी का नहीं होसकता। ममरा किन गुन नयो रे उदासी।
पंत्र तेरी कारी मुख तेरा पीरा, सब फूलन को वासी गुरा।
सब कलियन को रस तुम लीनो, सों क्यूं जाय निरासी।
'ग्रानंदधन' प्रभु तुम्हारे मिलनकुं जाय करवत ल्यूं काशो।।२।।

(९९) पाठान्तर-नुम्हारे = तुमरे (इ. उ. क. हूं.) अमरा च यह शहरे अन्य प्रतियों में 'उडामी' शब्द के पश्चात है।

शब्दार्थ -भयो = हुआ। वाभी = वसने वाला। निरासी = निरास, अनासका।

यह पद हमारी 'म्र' प्रति में २० वां, 'ह' प्रति में ७० वां, 'ख' प्रति में ८? वां तथा मृद्रित प्रतियों में १०६ वां पद है। इस पद की भाषा की ओर इण्टिद तो यह भाषा आनदधनजी की चीबीमी और उनके अनेक पदों से नहीं मिलती है। यह माणा तो निग्नें गा पंथी कजीर आदि की भाषा जैसी है। शैं भी वैसी ही हैं। साथ ही एक बात इस पद में और है। इस पद फी अंतिम पंक्ति में 'काशी करबव' छने का उल्लेख जैन दर्शन के अनुकूल नहीं, है। जैन दर्शन इस प्रकार की आत्महत्या को प्रश्रय नहीं देता है। इस प्रयार की कियायें जैन सिद्धान्त के प्रतिकृत्व हैं। आनंदधनजी ज़ैसे विद्धान वैराग्य भावना से ओतप्रीत संत की लेखनी से इस प्रकार आत्महत्या को मृतित-साधन प्रचारित किया बाना असंभव है। घतः यह पद आनंदधनजी का नहीं है।

श्रव इससे ग्रागे वे पद दिये जा रहे हैं जो हमारी किसी प्रति में नहीं है और मुद्रित प्रतियों में हैं किन्तु वे पद आनंदघनजी के नहीं है, अन्य कवियों के हैं। श्रव हम श्रमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज क्युं कर देह घरेंगे।।श्रब०।।१।।
राग दोस जग बंध करत हैं, इन को नास करेंगे।
मर्यो श्रनंत काल ते प्राणी, सो हम काज हरेंगे।।श्रब०॥२॥
देह निवासी हूँ श्रविनाशी, श्रपनी गति पकरेंगे।
नासी जासी हम थिरवासी, चोखे है निखरेंगे ।।श्रब०॥३॥
मर्यो श्रनंत बार बिन समभे श्रव सुख दुख विसरेंगे।
'श्रानंदघन' निपट निकट श्रक्षर दो, निह समरे सो मरेंगे।।श्रब०॥४॥

पाठान्तर—सारंग या आशावरी = आसावरी (द्या)। क्युं = क्यों (द्या)। कर = करि (द्या)। मर्यों "हरेंगे = उपजें मरै काल तें प्रानी, ताते काल हरेंगे (द्या), यह पंक्ति द्यानंतरायजी के पद में दूसरे पद की पहिली पंक्ति है और दूसरी पंक्ति, इस पद की पहिली पंक्ति है। हूँ = मैं (द्या)। अपनी गति = भेद ज्ञान (द्या)। मर्यो = मरे (द्या)। सुख दुख = सब सुख (द्या)। श्रानंदघन = द्यानत (द्या)। नहि" मरेंगे = विन सुमरे सुमरेंगे गें (द्या)।

यह पद द्यातनरायजी की है। द्यातन विलास में पद संख्या कर पर हैं। संग्रहकर्ता के दोष से आनंदघनजी के पदों में सम्मिलित कर लिया गया है। यह पद श्री भीमसिंह माग्यक, श्री कापडियाजी, तथा श्री बुद्धिसागरजी की पुस्तकों में संख्या ४२ पर है। हमारे पास वाली किसी प्रति में नहीं है। श्रवधू ऐसो ज्ञान विचारी, वामें कोशा पुरुप कोशा नारी ।।श्रवधू०।।
वम्मन के घर न्हाती धोती, जोगी के घर चेली ।
कलमा पढ पढ भई रे तूरकडी, तो श्राप ही श्राप श्रकेली ।।श्रव०।।१॥
ससरो हमारो वालोभोलों, सासू बाल कुमारी ।
पियुजी हमारो पोढे पारशीये, तो मैं हुँ भुलावन हारी ।।श्रव०।।२॥
नहीं हुं परशी नहीं हुं कुंवारी, पुत्र जशावन हारी ।
काली दाढी को मैं कोई नहीं छोड्यो, तो हजु हुं बाल कुमारी
।।श्रव०।।३॥

श्रदी द्वीप में खाट खटूली, गगन श्रोशीकुं तलाई। धरती को छेडो श्रामकी पिछाडी, तोय न सोड मराई ।।श्रव।।।४।। गगन मंडल में गाय बीश्राणी, वसुधा दूघ जमाई। सउरे सुनो माई बलोणूं वलोवे, तो तत्व श्रमृत कोई पाई

नहीं जाउं ससरीए ने नहीं जाउं पीयरीए, पीयुजी की सेज विछाई। 'श्रानंदघन' कहे सुनो भाई साधु, तो ज्योति में ज्योति मिलाई।।श्रवधू०।।६।।

(१०१) शब्दार्थ—विचारी = विचारो । वस्मन = ब्राह्मण् । न्हाती घोती = स्नान श्रादि करती । वालोभोलो = भोला मनुष्य, भद्रीक, सीधासाधा । पियुजी = प्रिय, पिता । पोढे = सोते हैं । पारणीये = पालन में, भूले में । परणी = विवाहिता । पुत्र = लडका, श्रहंकार । काली दाढी = युवक, कामासकत । हजु हुं = यभी तक । अढीद्वीप = मनुष्य लोक । खाट = पलंग । खद्रेली = श्रय्या । श्रोशीकुं = तिकया । तलाई = विद्यावण् । छेडी = घोती । आभ = श्रकाश । पिद्योडी = पछेवडी, ओढने का खादी का वस्त्र ।

सोड = मोटी रजाई। तोयन = तोभी। वियाणी = प्रसूता हुई, वच्वा वच्ची विया। वलूणो = विलोवना, जमा हुग्रा दही। वलोवे = मथना, विलोना। सासरिये = ससुराल, पति का घर। पीयरीये = पिता का घर।

यह पद मुद्रित प्रतियों में किसी में ९८वां और किसी में ९९वां पद है। इस पद की भाषा संत कबीर की भाषा से मिलती है साथ ही शैली भी। इसके अतिरिक्त "ग्रानन्दघन कहें 'सुनो भाई साधों" इस प्रकार से-ग्रानन्दघनजी ने-प्राप्त पदों में कहीं भी-नहीं लिखा है। यह शब्दावली तो केवल कबीर की है। कबीर ने स्थान स्थान पर अपने पदों में 'कहत कबीर सुनो भाई साधों' लिखा है। अतः यह पद सन्त कबीरदास का है। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी के कबीर नामक ग्रंथ में पृ० ३०१ पर—इस पद की प्रथम पंक्ति-'अवधू ऐसो ज्ञान विचारीं'-पद संख्या ११९ की पंक्ति है—''ग्रवधू ऐसा ज्ञांन विचारों'। इसके ग्रागे की पंक्तियां 'कबीर' के पद संख्या ११८ की है। इस पद की पंक्तियां हैं—

'बूफहु पंडित, कबहु विंचारी, पुरुष अहै की नारी। बाम्हन के घर वाम्हिन होती, योगी के घर चेली।। कलमा पिंढ पिंढ भई तुरिकनी, किल में रही अकेली। वर निह वरै व्याह निह करई, पुत्र जन्म होनि हारी।। कारे मूडे एक निह छाँडै, अव ही आदि कुंवारी। रहै न मैंके जाइ न ससुरे सांइ के संग सोवे॥'

इसी प्रकार और पंक्तियाँ किसी दूसरे पद की हैं। लोक गायकों ने "किसी की ईंट किसी का रोडा, भानमती ने कुनवा जोडा" के अनुसार पद को वना कर आनन्दघनकी का नाम रखकर उनका पद प्रसिद्ध कर दिया है। वास्तव में यह पद आनन्दघनजी का नहीं है। यह पद कवीरदासजी का है। कवीर प्रंथावली पृ० १६६ पद ३२१ वीजक शब्द ४४।

श्रवधू वैराग वेटा जाया, याने खोज कुंटंब सब खाया । श्रवधू०।।
जेणे माया ममता खाई, सुख दुख दोनों माई।
काम क्रोध दोनो कुं खाइ, खाई तृष्णा वाई। । श्रवधू०।। १।।
दुरमित दादी मत्सर दादा, मुख देखत ही मुश्रा।
मंगल रूप वधाई वांची, ए जब वेटा हुश्रा।। ग्रवधू०।। २।।
पाप पुण्य पडोसी खाये, मान लोम दोउ मामा।
मोह नगर का राजा खाया, पीछे ही प्रेम ते गामा।। श्रदधू०।। ३।।
भाव नाम घर्यो वेटा को, मिहमा वरण्यो न जाई।
'श्रानन्दधन' प्रभु भाव प्रकट करो, घट घट रहो समाई।। श्रवधु०।। ४।।

(१०२) शब्दार्य — जाया = उत्तम हु ग्रा, जन्म लिया। याने = इसने । जेगो = जिन्मे । दुरमित = कृबुद्धि । मत्सर = ईर्षा, गर्वं, । दादा दादी = पिता के पिता और मां । मुआ = मर गये, मृत्य को प्राप्त हो गये । वाँची = गवाई गई, मांगलिक गाने किये । पीछे ही = तत्पश्चात । गामा = चला गया । समाई = व्याप्त ।

यह पद मुद्रित प्रतियों में १०५वां पद है। यह पद श्री आनन्दघन की का नहीं है। महाकवि वनारकी दास की आगरे वाले के 'वनारकी विलास' में यह पद पृ० २५० पर इस प्रकार है:—

मूलन वेटा जायो रे साघो, मूलन, जाने खोज कुटंव सव खायो रे ।साघो॥मूल०॥ जन्मत माता'ममता खाई, मोह लोभ दोइ भाई।

काम क्रोध दोइ काका खाये, खाई तृष्णा दाई ॥ साधो०॥१॥

पापो पाप परोसी खायो, अशुभ करम दोइ मामा।
मान नगर को राजा खायो, फैठ परो सब गामा ॥साबो०॥२॥
दुरमित दादी "दादो, मुख देखत ही मूआ।
मंगलाचार वधाये वाजे, जब यो वालक हूस्रो ॥साघो०॥३॥
नाम घर्यो बालक को सूबो, रूप वरन कळु नाहीं।
नाम घरंते पांडे खाये, कहत 'वनारसो' भाई।।साघो०॥४॥

पाठकगण स्वयं निर्णय करें कि यह पद किसका है।

१०३

राग-श्राशावरी

प्रवधू ! सो जोगी गुरु मेरा, इन पद का करे रे निवेडा ।। प्रव०।।
तरुवर एक मूल बिन छाया, विन फूले फल लागा ।
शाखा पत्र नहीं कछ उनकुं, प्रमृत गगने लागा ।। प्रव०।। १।।
तरुवर एक पंछी दौउ बैठे, एक गुरु एक चेला ।
चेले ने जुग चुरा चुरा खाया, गुरु निरंतर खेला ।। प्रव०।। २।।
गगन मंडल में प्रध्विच कूवा, उहाँ हे प्रमीका वासा ।
सगुरा होवे सो भर भर पीवे, नगुरा जावे प्यासा ।। प्रव०।। ३।।
गगन मंडल में गउन्ना बिहानी, घरती दूघ जमाया ।
माखन थासो बिरला पाया, छासें जग भरमाया ।। प्रव०।। १।।
थड बिनु पत्र, पत्र बिनुं तुंबा, बिन जीम्या गुरा गाया ।
गावन वाले का रूप न रेखा, सुगुरू मोही बताया ।। प्रव०।। १।।
प्रांतम प्रनुभव बिन नही जाने, ग्रंतर ज्योति जगावे ।
घट ग्रन्तर परखे सोही मूरित, 'ग्रानन्दघन' पद पावै ।। प्रव०।। ६।।

(१०३) शब्दारं—ितवेडा — फैसला, विचार । तरुवर = वृक्ष, पेड । शाखापत्र = टहिनयें और पत्ते । गुरु — त्रह्म । चेला = जीव । जुग = चारा, संसार । गगन = आकाश, त्रह्मांड । अभी = अमृत । सगुरा = सद्गुरुवाले । नगुरा = विना गुरु वाले, गुगा रहित । गरुआ = गाय, सात्विक वृत्तियां। माखन = मक्खन, सारतत्व । छासें = छाछ से, निस्सार तत्व । भरमाया = मोहित हो गया। थड = डंठल, मूल, जड । तुम्वा = फल विशेष ।

यह पद मुद्रित प्रतियों में ९ दवां पद है। पद की भाषा, शैली और भाव अभिव्यक्ति से तो शंका उत्पन्न होती है कि यह पद श्रीमदानंदघन भी का नहीं हो सकता। 'घनानंद और आनंदघन' के सम्पादक श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस पद की टिप्पणी में इस पद को संत कवीर का लिखा है। उन्होंने 'कवीर ग्रांथावली पृ० १४३ पर १६५वां पद श्रीर वीजक, शब्द २४, पर इस पद का होना लिखा है। हमारे गास उक्त ग्रंथ तो है नहीं, किन्तु कवीर शब्दावली है। उसके पृ० ६४-६५ से हम यह पद नीचे दे रहे है—

अवधू सो जोगी गुरु मेरा या पद का करें निवेरा ॥देर॥
तरवर एक मूल विन ठाढा, विन फूले फल लागे।
साखा पत्र नहीं कञ्च वाके, अष्ट कमल दल गार्ज ॥१॥
चढ तरवर दो पंछी बैठे, एक गुरु एक चेला।
चेला रहा सो चुन चुन खाया, गुरु निरंतर खेला॥२॥
विन करताल पखावज बाजें, विन रसना गुन गावै।
गावन हार के छा न रेखा, सतगुरु मिलें बतावै॥३॥
गगन मंडल में उर्घ मुख कुइयां, जहाँ अभी को बासा।
सगुरा होय सो भर भर पीवे, निगुरा जाय पियासा॥४॥
सुन्न सिखर पर गइया वियानी, घीर छीर जमाया।
माखन रहा सो संतन खाया, छाछ जंगत भर माया॥४॥

पंछी ख़ोज मीन को मारग, कहै कवीर दोउ भारी। अपरम्पार पार पुरुषोत्तम, मूरत की वलिहारी॥६॥

इस पद में और ऊपर के 'ग्रानं द्यन पदावली' के पद में बहुत साम्यता है। केवल इस पद का छठा पद और आनं द्यन पदावली का छठा पद पृथक-पृथक है। एक में कवीर का नाम है और ग्रीर एक में आनन्द्यन का नाम है। भाव भी भ्रलग अलग है। वास्तव में यह पद संत कवीर का ही है। इसमें भाषा ग्रीर जैली कवीर की ही है। अंतिम छठा पद भ्रानन्द्यनजी का ही प्रतीत होता है। यह भ्रानंद्यनजी के किसी अन्य पद का है, वह इस पद में सिम्मिलत कर इस पद को ग्रानंद्यनजी का वना दिया गया है।

४०४

राग-बेलावल

ता जोगे चित ल्याऊ रे वहाला।

समिकत दोरो शील लंगोटी, घुलघुल गांठ घुलाऊ । तत्व गुफा में दीपक जोंऊ , चेतन रतन जगाऊं रे बहाला ॥ ता जोगे० ॥१॥

म्राट्ट करम कंडे की घूनी, घ्याना म्रागन जलऊँ। उपशम छनने मसम छगाऊँ, मलि मलि म्रंग लगऊँ रे बहाला ॥ ता जोगे० ॥२॥

म्रादि गुरु का चेला होकर, मोह के कान फराऊँ। घरम सुकल दोय मुद्रा सोहै, करुएा नाद बजाऊँ रे बहाला ।। ता जोगे० ॥३॥

इह विघ योग-सिंहासन वैठा, मुगतिपुरी कूं घ्याऊँ। ग्रानन्दघन देवेन्द्र से योगी, बहुरि न किल में ग्राऊँ रे बहाला ॥ ता जोगे० ॥४॥

## [ २३१ ]

(१०४) शब्दार्य—वहाला = हे श्रिय । दोरी = डोरी, रस्सी । जोऊं = जलाऊं। अष्ट करम = आठ कर्म, ज्ञानावरणी थादि। कंडे की = छाणे की, गाय भैसे के गोवर से वनी हुई वस्तु। उपसम = निवृत्ति भाव। छनने = छानने का वस्त्र। घरम गुकल = धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान।

यह पद मुद्रित तियों में ३७वां पद है। इस पद को श्री कापिडयाजी ने शंकास्पद माना है। सही बात यही है कि यह पद आनंदघनजी की भाषा और शैली से नहीं मिलता है। इस पद में 'आनदघन' शब्द ही मितिश्रम करता है। यह शब्द नाम बाची न होकर विशेषण है। इसका सम्बन्ध देवेन्द्र शब्द से है। यह 'देवेन्द्र' ही इस पद के कर्ता मालूम पडते हैं। भविष्य में 'देवेन्द्र' के शीर पद मिलने पर ही इसका पूर्णं रूपेण निर्णंय हो सकता है।

# १०५

# राग-सारंग

चेतन शुद्धातम कुं घ्यांवो ।
पर परचे घामधूम सदाई, निज परचे सुख पाँचो ॥चेतन०॥१॥
निज घर में प्रभुता है तेरी, पर संग नीच कहावो ।
प्रत्यक्ष रीत लखी तुम, श्रेसी, गहियं श्राप सुहावो ॥चेतन०॥२॥
यावत तृष्णा मोह है तुमको, तावत मिथ्या भावो ।
स्व संवेद ग्यान लहीं करवो, छंडो भ्रमक विभावो ॥चेतन०॥३॥
धुमता चेतना पतिकुं इण विघ, कहे निज घर श्रावो ।
श्रातम उच्छ सुघारस पीये, 'सुख श्रानंद' पद पावो ॥चेतन०॥४॥

(१०५) शब्दार्थं —ध्यावो = ध्यान करो । परचे = परिचय, विभाव-दशा में । धामघूम = भारी हलचल, श्रत्यन्त कोलाहुल । परसंग = दूसरों के साथ से । यावत = जब तक । तावत = तब तक । स्व संवेद = अपनत्व की

# [ २३२ ]

प्रीतीति करना, अपने पन की अनुभूति करना। छंडो = छोडो। भ्रमक = भ्रामक, भ्रम करनेवाले। उच्छ = गन्ना, श्रत्यन्त मिष्ठ।

यह पद मुद्रित प्रतियों में द०वां पद है। इस पद में ग्रानंदघनजी का नाम भी नहीं है। 'आनंद' शब्द देख कर ही इसे आनंदघनजी का पद मान लिया गया है किन्तु इस पद में कर्ता का पूरा नाम है। कर्त्ता का नाम 'सुखानंद' है जो संघि विच्छेद होकर दिया मया है—''सुख आनंद''। आनंदघनजी ने ग्रपने किसी भी पद में "'ग्रानंद" या 'सुखानंद' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने तो केवल "ग्रानंदघन" का प्रयोग किया है। यह पद ग्रानंदघनजी की भाषा और शैली से भी नहीं मिलता है।

# १०६

राग-सारंग

चेतन ऐसा ग्यान विचारो।
सोहं सोहं सोहं, सोहं श्रणु न बीया सारो ॥चेतन०॥१॥
निश्चय स्व लक्षण श्रवलंबी, प्रज्ञा छैनी निहारो।
इह छैनी मध्य पाती दुविधा, करे जड-चेतन फारो ॥चेतन०॥२॥
तस छैनी कर ग्रहि ये जो धन, सो तुम सोहं घारो।
सोहं जानि दटो तुम मोह. ह्वं है समको वारो ॥चेतन०॥३॥
कुलटा कुटिल कु वृद्धि कुमता, छंडो ह्वं निज चारो।
"सुख श्रानंद" पदे तुम वेसी, स्व परकुं निस्तारो ॥चेतन०॥४॥

(१०६) शब्दार्थं — सोहं = सोऽहं, वह में हूँ । आगु = छोटा, अंशमात्र । वीया = दूसरा । सारो = सारभूत, श्रीष्ठतम । ग्रवलंबी = सहारा कर । प्रजा = बुद्धि । छैनी = छेनी, पत्यर तोडने का लोहे का भी गर । निहारो = देखो । पाती = पडते ही । दुविघा = दो दुकडे ।

### [ २३३ ]

फारो = विभाग, फाड़ दुक्ड़ा, पृथकारण । दटो = दबादो । समको = समता का । वारो = प्रहार । चानो = उनाय, इलाब, प्रवृत्ति, आवरण करो । देसी = दैठ कर । निस्तारो = सुटकारा, उद्धार, मुक्ति ।

यह पद मुद्रित प्रतियों में पर वां है। यह पद भी 'सुखानन्द' का ही है।

800

राग कल्यारा

या पूद्गल का क्या विसवासा, है सुपने का वासारे । या ।। चमत्कार विजली दे जैसा, पानी विच्च पतासा । या देही का गर्व न करना, जंगल होयगा वासा ।।या ।।।।।। जूठे तन घन जूठे जोवन, जूठे हैं घर वासा । 'भ्रानन्दघन' कहें सब ही जूठे, सांचा शिवपूर वासा ।।या ।।।२।।

मुद्रित प्रतियों में यह पर ९७ वां है। यह पर भी आनंदरन की की माया और घैली के नहीं निक्ता है। श्रीकानहियाकी ने इन पर को ग्रंक-स्मद माना है। श्रीविस्तनाय प्रकारकी निश्च ने मूक्त्वास (सिनम्बर बैन किंदि) का माना है। उनके "बैन ग्रदल" में दस पंक्तियों में यह पर हेरडेर के साथ निक्ता है।

(१०७) शसार्य-दिस्यास = दिस्तास, मरोसा । वास = वास-स्थान । दे = ता । विस्त = वीच, मध्य । प्रतास = व्यासा, चीनी का वना स्थान । दे = ता । विस्तु = विसे = विसे ।

१०५

राग-वसंत

तुम ज्ञान विमो फूली बसंत, मन महुकर ही सुख सो रसंत गतुन ।। १।। दिन बड़े भये वैराग्य माव, निय्या मति रजनो घटाव ।:तुम ।। २।।

## [ २३४ ]

बहु फूली फली सुरुचि बेल, जाता जन समता संग केल ।।तुम०।।३।। जानत बानी पिक सधुर रूप, सुरनर पृशु ग्रानंदघन सरूप ।।तुम०।।४।।

यह पद मुद्रित प्रतियों में १०७ वां है, इसकी भाषा और शैली भी ग्रानंदघन जी से भिन्न है। इस पद की भाषा 'त्रज' है जबिक आनंदघन जी की भाषा 'राजस्थानी' हैं। यह पद 'द्यानत विलास' में ज्यों का त्यों ५८ वां पद है, फर्क केवल इतना ही है कि इसकी चतुर्थ पंक्ति का आदि शब्द 'जानत' उसमें (द्यानत विलास) 'द्यानत' है वह ठीक है। 'ग्रानंदघन' शब्द देखकर ही संग्रहकर्ता ने ग्रानंदघन जी का यह पद मानकर 'द्यानत' के स्थान पर 'जानत' कर दिया है। वास्तव में यह पद आगरा निवासी द्यानतराय जी का ही है।

## 30\$

राग-खमाच

तज मन कुमता कुटिल को संग।
जाकें संगतें कुबुद्धि उपजत है, पडत भजन में भंग ।।तज०।।१।।
कौने कूं क्या कपूर चुगावत, श्वान ही न्हावत गंग।
खर कुं कीनो भ्ररगजा लेपन, मरकट भूषए। श्रंगः।।तज०।।२।।
कहा भयों पय पान पिलावत, विषहु न तजत भुजंग।
'भ्रानंदघन' प्रभु काली कांबलिया, चढत न दूजो रंग ।।तज०।।३।।

यह पद श्री कापड़िया जी की पुस्तक में १०८ वां पद है श्रीर श्री बुद्धिसागर जी की पुस्तक में भूमिका में दिया है। इन दोनों में पाठ भेद भी है जो इस प्रकार है—

कुमता कुटिल = हरविमुखन । क्या = काहा । श्वान ही न्हावत = श्वान नाहावत । कीनो = कहा । विषहु न तजत भुजंग = विष न तजे भुजंग । आनंदधन प्रभु काली कांबलिया = श्वानंदधन वे हे काली कंबल ।

श्री कापड़िया जी की पुस्तक में "ज्यु पाषाण बाण नहिं भेदत, पीतो भयो निषंग" पंक्ति श्रीर है।

इस पद को भी श्री कापड़िया जी ने महाकि सूरदास का मानकर ही व्याख्या की है। श्री विश्वनाथ प्रसाद जी भी इसे 'सूरदास' का ही मानते हैं। वास्तव में यह पद महाकि सूरदास का ही है। सूरसागर तथा अन्य सूरदास के पदों के संग्रह में यह पद इस प्रकार श्रारंभ होता है—

# 'छांडि मन हरिविमुखन को संग'

और पद की समाप्ति-"सूरदास की काली कंवलिया चढत न दूजो रंग" से होती है। बीच के पद भी ऐसे के ऐसे ही है।

यहां वे पद दिये जा रहे हैं जो हमारे पास हस्तलिखित प्रतियों में तो हैं फिन्तु अब तक की प्रकाशित प्रतियों में नहीं हैं। पद संख्या ११०, १११, ११२ और ११३ हमारी 'श्रा' प्रति के क्रमशः १६, १७, १८ और ६० संख्या पर है। पद संख्या ११४ के दोनों रूप और पद संख्या ११५ किन्हीं हस्त लिखित प्रतियों से स्व० श्री उमराव चंद जी जरगड़ ने एक पत्र में प्रतिलिप कर रखी थी श्रीर पद संख्या ११६ हमारी प्रतियों में 'अ', 'इ', 'उ' में क्रमशः २९, ७३, ६० पर है। पद संख्या ११७ भी इसी प्रकार एक अलग पत्र में लिखा मिला है। ये सब ही पद महाभाग योगीराज आनंदघन जी के प्रतीत नहीं होते हैं।

किव या लेखक आरंभ से जो भाषा और भैली (कहने या लिखने का ढंग) श्रपनाता है वह श्रन्त तक बना रहता है। श्री आनंदघन जी ने जिस भाषा का प्रयोग अपनी चौबीसी श्रीर पदों में किया है, वह राजस्थान की है। जो भैली और भावों की अभिन्यक्ति चौबीसी के पदों में प्राप्त है, वह ही भाषा श्रीर भैली इस संग्रह के श्रनेक पदों में है, जिन्हें हम इन्हों का मानते हैं। ये सम्पूर्ण नये आठ पद और श्रीमद बुद्धिसागर सूरीश्वर जी के तीन नवीन पद श्री आनंदघन जी की भैंली और भाषा से मंज नहीं खाते हैं, अत: ये इनके नहीं हैं। इनमें श्रानंदघन जी का नाम होने से ही श्रानंदघन जी के मान लेना गलती होगी। इन पदों की भाषा एक नहीं है। कहीं राजस्थानी मिश्रित है, कहीं कवीर आदि संत किवयों ने जिस भाषा का प्रयोग किया है, वैती है।

# [ २३६ ]

श्री श्रानंदघन जी ने जिस ढंग से चौत्रीसी और श्रनेक पदों में अपने भाव व्यक्त का चमत्कार दिखाया है, वह इन पदों में सर्वया नहीं है। इन पदों में साधारएा भाषाभिव्यक्ति है, ग्रतः ये पद उनके नहीं हैं। श्रव प्रश्न हो सकता हैं कि ग्राखिर ये पद किसके हैं ? इसके लिये स्पष्ट कुछ कहा नहीं जा सकता है। यह कार्य श्रागे की शोध से ही निश्चित हो सकेगा।

### 880

प्रिय माहरो जोसी, हुं पीयरी जोसरा कोई पडोमरा पूछों जोस । जे पूछी ते सगलों किहसी, सोसी रहै न रहै कोई सोस ।।प्रीय०।।१।। सन घन सहज सुभाव विचारे, ग्रह युति हिन्ट विचारी तोस । शिश दिशि काल कला बल घारे, तत्व विचारि मिन नागै रोस ।।प्रीय०।।२॥

सौंगा निमित सुर विद्या साधै, जीव घातु मूल फल पोस । सेवा पूजा विधि द्याराधै, परगासै 'ग्रानंदघन' कोस ।।प्रीय०।।३॥

(११०) शब्दार्थ — माहरो = मेरा । जोती = ज्योतिषी । जोतग = ज्योतिषी की पित । जात = ग्रहफल । सगलो = तम्पूर्ण । सोतौ = संशय, शंका । सोस = शोषण करने वाली वात, विन्ता । तोस = संतोष । मिन = मनमें । नाणै = न लावै । रोत = कोव । शौंण = शकुन । सुरविद्या = स्वर विज्ञान । कौस = कोष, खजाना ।

# 888

दग्यो जु महा मोह दावानल, उबरू पार ब्रह्म की श्रोट । कृपा कटाक्ष सुघारस घारा, वंचे विसम काल की चोट ॥द०॥१॥ भ्रगज भ्रनेक करी जीय बांधी, दूतर दरप दुरित की पोट । चरन सरन भ्रावत तन मनकी, निकसि गई भ्रनादि की खोट ॥द०॥२॥

भ्रब तो गहै भाग बड पायौ, परमारथ सुनाव हढ़ कोट । निरमल मांनि सांच मेरी, कही, 'श्रानंदघन' घन सादा भ्रतोट ।।द०।।३।।

(१११) शब्दायं—दग्यो - प्रज्वलित हुआ । उवरूं - मुक्त होना, छूटना, निकल्ना । ओट = आड़, शर्गा । वंचे = वचना, रक्षा प्राप्त करना । ग्राप्त वर्षेता । दूतर = वुस्त्र, कठिन । दरप = दर्षे, गर्वे । वुरित = पाप । पोट = गठरी । अतोट = अटूट ।

## ११२

कुए। ग्रागल कहुं खादुं मीठुं, राम सनेही नुं मुखडुं न दीठुं।
मन विसरामी नुं मुखडुं न दीठुं, ग्रंतर जामी नुं ग्रंतर जामी नुं॥
जे दीठा ते लागइ ग्रनीठा, मन मान्या विण किम कहुँ मीठा।
वरणी ग्रगास विचे नहीं ईठा ।।कुण ०।।१।।
जीतां जीतां जगत विशेषुं, उगा उगिहारइ कोइ न देखुं।
ग्रग्तसम्युं किम मांडुं लेखुं।।कुण०।।२।।
कीहना कोहना घर में जावुं, कोहना कोहना नितगुण गावुं।
जी 'ग्रानंदघन' दरसन पावुं।।कुण०।।३।।

(११२) शब्दार्थ-आगल - आगे। दीठुं =देखा। अनीठा - अनिष्ट-कारी, अप्रिय। घरणी - पृथ्वी। ईठा = इष्ट, प्रिय। जोतां जोतां = देखते. देखते। विशेषु - परीक्षा को। उगा - उस। उगिहारइ = अनुसार, समान। कोहना कोहना - किस किसके। मिलणरो बाणक ग्राज वण्यों छैं जो ॥मि०॥ देरागों जेठानी म्हारी, घंधे लागों निणदल पुत्र जीव्यों छैं जी ॥मि॥१॥

सास करत महारी पान पंजीरी, श्राडो पडदो तण्यो छै जी ॥मि॥२॥ 'श्रानन्दघन' पिया भलेही पघारे, मन में उमाहो घणो छै जी

।मि।।३॥

(११३) शब्दार्थं — वाराक = वनाव, वेश, अवसर । धंघे = कार्य में । निराहल = ननद । पुत्त = पुत्र । जिण्यौ = जन्म दिया । पान पंजीरी = खाने का मिष्ठान ।

## 888

सुण चरला वाली चरलो बोले तेरो हुं हुं हुं ।
जल में जाया थल में उपना, बस गया नगर में आप ।
एक अवंभा, ऐसा देखा, बेटी जाया बाप रे ।।सु०।।१।।
माव भगतिकी रुइ मंगाइ, सुरत पींजावण चाली ।
ज्ञान पींजारो पींजण बेठी, तांत पकड भएगकाइ रे ।।सु०।।२।।
वावल मेरो व्याव कीजो हे, अरण जाण्यो वर आप ।
अरणजाण्यो वर निह मिले तो, बेटी जाया वाप रे ।।सु०।।३।।
सासु मरेजो नएाद मरेजो, परण्यो वी मरजाय ।
एक बृढीओ निह मरे तो तिरण चरलो दीजो बताय रे ।।सु०।।४।।
चरलो मारो रग रगीलो, पुणी हे गुलजार ।
कातनवाली छेल छ्वीली, गीन गीन काढे तार रे ।।सु०।।४।।
इर्णो चरलामें हुं हुं लिख्यो हे, हुं हुं लिखे निह कोय ।
'आनंदघन' या लिखे विभुति, आवागमन निह होय रे ।।६सु०।।
(गुजराती से प्रभावित)

## [ २३९ ]

(११४) शब्दार्थ — अचम्मा = श्राश्चर्य । सुरत = स्मरण, ध्यान । पींजावण = रूई घुनवाना । पींजारो = रूई घुनने वाला । वावल = पिता, बाबू । व्याव = विवाह । अण्जाण्यो = अपरिचित । परण्यों = विवाहित प्रति ।

# उक्त पद का दूसरा रूप ११४

सुगा चरखेवाली, चरखेा चाले छे थारो च्युं च्युं ॥
जल जाइ थल उपनीरे, उपनी ग्रापो ग्राप ।
एक ग्रचंमो ऐसो देख्यो, बेटी जायो वाप रे ।।स०।।१॥
नानी थारो व्याह रचवूं, विणजायो मरतार ।
विणजायो वर ना मिले तो हम से तुम से प्यार ।।स०२॥
सासू मरगई ससुरो मरगयो, परण्यो मी मरजाय ।
एक बुढिया यों कहै तने चरखो देवुं वताय ।।स०।।३॥
ज्ञान घ्यान की रुइ मंगाद्यू श्रुत पिजावण जाय ।
गुरु पिदारो पींजण बैठ्यो, तांत रही भणकाय ।।स०।।४॥
ऊंची मैडी लाल किवाडी, में बैठी कतवारो ।
सतगुरू कूंची दीनी ज्ञानकी, खुलगई घमं दुवारी ।।स०।।४॥
चरखो थारो रंगरंगीलो, पूणी है घणसार ।
'ग्रानंदघन' कहै विघी से कातो, उगुं उतरो मव पार ।।सुण०॥६॥

(११४ II ) शब्दार्थ-नानी - छोटी वच्ची । थारो - तेरा । विण-जायो - खरीदा हुआ । श्रुत - आगम शास्त्र । पिजावण - पिदाने के लिए । घणसार = बहुत तत्व वाली ।

### ११५

सरसती स्वामी करोरे पसाय, हुंरे गाऊं रूडी कुल बहुरे । पीउडो चाल्यो छ्रे परदेश, घेर रही रूडुं शीयल पॉलीये रे ॥१॥ हारू वारू सासरडे जाय, नानी ते घनुडी रमे ढींगले रे।
नरपत परपत निशाले जाय, नानो ते पर्यापत पोढ़ो पालणे ए।।२।।
बारे बरसे श्राव्यो रे नाह, छोकरडाने काजे टाचकडा नवी लावीश्रोरे।
हुं तने पुछुं सुकली गोनार, पीउ विगा छोकरडा कयां थी श्रावीयारे
।।३।।

गोत्र देवे कर्यो रे पसाय, सायभोरे भोन पघारीया रे।
एटले उठी नं भाग्यो रे पीय घन्य पनोती तुं कुल बहुरे ॥४॥
एहनो श्रनुभव लेस्ये रे जेह, तेहु पामे रूडी कुल बहु रे।
'श्रानंदघन' जपारे सभाय, सुगातां श्रवणे सुखहीये रे ॥४॥

(११५) शव्वार्थ — पसाय = प्रसाद, प्रसन्तता । रूडी = अच्छी।
पीउडो = प्रियतम, पित । घेर = घर । रुष्ठुं = विलाप करना। शीयल =
शील, ब्रह्मचयंत्रत । हारू वारूं = हारिफर कर । सासरहे = ससुराल। घनुडीएक प्रकार का खेत । रमें = खेलना। ढींगले = वालू मिट्टी का ऊँचा स्थान,
टीवा। नानो = वच्चा। पोढ़ो = सोना, शयन करना। पालएो = सूले में।
नाह = नाथ,पात। छोकरड़ाने = वच्चा। कार्थ = जिए। टाचकडा = खिलोने।
नवी = नहीं। सुकलीएी=सुलक्षनी, अच्छे लक्ष्मणों वाली। क्यांथी=कहां से।
सायभो = पित। भोन = भावन, घर। 'पघारिया' शब्द 'वघारीया' भी पढ़ा
जाता है। पघारीया = म्राये। वधारिया = स्वागत किया। एटले = इतने में,
इतने ही समय मे। पनोती = पांच पीढ़ी, (पांच शुभ ग्रह या पांच अशुभ ग्रह
का समय।

# ११६

रे परदेशी ममरा मोसुं रह्यो नही जाय ॥ भवर विलंक्यो केतकी, समके फूल खुलिजाय ॥१ तुम बिन मोहे कल न परत है, तलफ तलफ जीउ जाय ॥२॥ 'श्रानंबघन' प्रभु तुमरे मिलकुं श्रानन-कलि कुमलाय ॥३॥

## [ १४१ ]

(११६) शब्दार्थं—विलंब्यो — लियट गया, लटक गया, चित्तलगाकर फंस गया। समके — समान, वरावर। कल = चैन, आराम। आनन = मुख, चहरा।

### 880

मगरा ऊपर कबुआ वोल्यो, पहुँणा आया तीन। पहुंणा थारी मूं छा वालूं, छाणा क्यों नही ल्यायो। करकशा नार मिली छेजी, घन्य पियाजी थारा भाग ॥ करकशा।। पहुंणा आया देखिने, चूल्हो दियो बुभाय। दो लात पहुँगा के मारी, आप बैठी रीसाय ।।करकशा०।।१।। मोठ वाजरी को पीसणो, ले वैठी भर सूँप। अव जो पहुंणा मुक्तनै कहसी, तो जाय पहुँगी क्रुप ।।कर०।।२।। घर में घट्टी घर में ऊँ खल, पर घर पीसण जाय। पाडोसण सेती वात करतां, चून क्रुतरा खाय ॥कर०॥३॥ माँचो वाल्यो वरलो वाल्यो, वाली डोलाकी डांडी। छपरो वाल्यो मुँपरो वाल्यो, तो न चढ्ढी इक हाँडी ।।कर०।।४।। ं तीन पाव की सात वनाई, सात पाव की एक। परण्यो डाकी सातों खागयो, हूं सुलच्छनी एक ॥कर०॥ 💵 गंगा न्हाई गोमती न्हाई, विच में आई घाटी। घर में आई जोवियो तो, अजिह न मूओ भाटी।।कर।।।६॥ न्हाइ घोइ वेस वणाई, तिलक कर्यो अपार। सूरज सामी अरज करै छै कद मरसी भरतार ।।कर०।।।।। 'आनंदघन' कहे सुन भाई साघू! एह पद है सुख दाई। इस पद की निन्दा करै तो नरक निगोद निसाणी ॥कर०॥ ।।।

(११७) यह पद भी श्री सानन्दघन जी का नहीं है। शैली तो मिलती ही नहीं है साथ ही एक और वात है कि अन्तिम पद व कें की तुकांत नहीं मिलती और न ऊपर के पदों से उसका कुछ सम्बन्घ प्रकट होता है। 'श्रानंद

# [ २४२ ]

घन' कहे सुन भाई साधू' इस प्रकार से आनन्दघनजी ने अपने पदों में कहीं भी नहीं लिखा है। इस प्रकार के लेख तो कबीर की रचनाओं में ही मिलते हैं। भाव भी अटपटा है। यह पद श्री जरगडजी के संग्रह में एक पत्र पर लिखा हुग्रा मिला है।

(११७) शब्दार्थ — मगरा = पहाड, पर्वत । कवुआ = कोवा, काक । पहुंगा = अथिति । बालुं = जलाऊँ । छागा = गोवर के कंडे । रीसाय = क्रोधित होकर । पीसगो = पीसने के लिए रखी वस्तु । सूंप = अन्न फटकने का छाज, छाजला । घट्टी = चक्की । ऊंखल = लकड़ी का बना हुआ पात्र जिसमें भूसी वाला अन्न डाल कर मूसल से कूट कर भूसी ग्रलग की जाती हैं। चून = ग्राटा । कूतरा = कुत्ता । माँचो = खाट, पलंग । बाल्यो = जलायां। बरलो = वड़-पीपल की लकड़ी । डोलाकी = दीवार की । डांडी = डंडी, लकड़ी । भाटी= भट, योद्धा, मुख्य पुरुष । कद = कव

स्व॰ श्रीमद् बुद्धिसागर सूरीक्वर जी के द्वारा प्राप्त नये पद (आनंद-घन पद संग्रह से)

११५

राग-वेलावल

मेरे ए प्रभु चाहिये, नित्य दिरसन पाउ । चरण कमल सेवा करूं, चरणे चित लाउ ।।मेरे।।१।। मन पंकज के मोल में, प्रभू पास बेठाउ । निपट नजींक होरहुं, मेरे जीव रमाउ ।।मेरे०२।। श्रंजरजामी श्रागले, श्रंतरिक गुण गाउ । 'श्रानंदघन' प्रभु पास जो मैं तो श्रौर न घ्याउ ।।मेरे०।।३।।

(११८) शब्दार्थं — मोल में — महल में । निपट = शिलकुल । नजीक= निकट, पास । रमाउ = रमग्गकराऊं। श्रागले = सम्मुख, आगे। श्रंतरिक = हृदयं से।

### 388

निरंजन यार मोय कैसे मिलेंगे
दूर देखुं में दरियाडुंगर उंची बादर नीचे ज़मीं युं तले ॥निरं॥१॥
घरती में घडुता न पिछानुं,अग्नि सहु तो मेरी देही जले निरं०॥२॥
'आनंदघन' कहे जस सुनो वाता, ये ही मिले तो मेरो फेरो टले
॥निरं०॥३॥

(११९) शब्दार्थ-- हुंगर - पहाड़ । तले - नीचे । झहुता - प्रवेश कर । पिछानुं - पहिचाना । देही - शरीर । फेरो = संसार में आवागमन, जन्म-मरएा का चक्र । टले = दूर हो जावे । जस = यशोतिज्यजी

## १२०

# राग-ग्राशावरी

प्रव चलो संग हमारे, काया चलो संग हमारे।
तोये बहोत यत्नकरी राखी, काया ग्रंब चलो०।।१।।
तोये कारण में जीव संहारे, बोले जूंठ ग्रपारे।
चोरी करी पर नारी सेवी, जूंठ परिग्रह घारे।।काया०॥२॥
पट ग्रामूषण सुंघा चुन्ना, ग्रशनपान नित्य न्यारे।
फेर दिने खट रस तोये सुन्दर, ते सब मल कर डारे काया०॥३॥
जीव सुणो या रीत श्रनादि, कहा कहत बारंबारे।
में न चलूंगी तोये संग चेतन, पाप पुण्य दोय लारे।।काया०॥४॥
जिनवार नाम सार मज श्रांतम, कहा भरम संसारे।
सुगुक्त बचन प्रतीत मये तब, 'श्रानंदघन' उपगारे।।काया०॥४॥

(१२०) शब्दार्थ-पट = वस्त्र । सुंघा = सुगन्घित पदार्थ । चुग्रा = चीचा चंदन, इत्र । अशन पान = खाने पीने की वस्तु । दिने = दीने, दिये । मल - विष्ठा । लारे = पीछे ।

### १२१

. हुं तो प्रणमुं सद्गुरु राया रे, माता सरसती वंदु पाया रे। हुं तो गाउं आतमराया, जीवन जी बारणे मत जाजोरे। तुमे घर बैठा कमावो, चेतनजी बारणे मत जाजो रे।।१।।

तारे बाहिर दुर्गति राणी रे, केता शुं कुमित कहेवाणी रे तुंने भोलवी बाधशै ताणी ॥जीवन जी० ॥२॥

तारा घरमां छे त्रण रतन रे, तेनुं करजे तुं तो जतन रे। अ अखूट खजानो छे धन्न ॥जी०॥३॥

तारा घरमां बैठा छे घुतारा, तेने काढो ने प्रीतम प्यारा रे । अहथी रहोने तुमे न्यारा ॥जी०॥४॥

सत्तावन ने काढो घरमां बैठा थी रे. त्रेत्रीश ने कहो जाये इहां थी रे। पछी अनुभव जागशे मांहे थी रे।।जी०।।१।।

सोल कषाय ने दिओ शीख रे, अढार पापस्थानक ने मगावो भीख रे पछे आठ करमनी शी बीक ॥जीवा६॥

चार ने करो चकचूर रे, पांचमी शुं थाओ हजूर रे। पछे पामो आनंद भरपूर ।।जी० ।७।।

विवेक दीवे करो अजुवालो रे मिथ्यात्व अंघकार टालो रे । पछे अनुभव साथे म्हालो ॥ज०। ८॥

सुमित साहेली शुं खेलो रे, दुर्गतिनो छेडो मेलो रे। पछेपामो मुक्तिगढ हेलो ।।जी०।।१।।

ममता ने केम न मारो रे, जिती बाजी कांई हारो रे। केम पामो भवनो पारो ।।जी०।।१०।।

गुद्ध देवगुरु सुपाय रे, मारो जीव आवे काई ठाय रे। पछे 'आनंदघन' मभ थाय ॥जी०॥११॥ (१२१) यह पद श्रीं साराभाई मिं लाल नवाव द्वारा सम्पादित ''श्री आनन्दघन पद्य रत्नावली'' नामक पुस्तक से साभार उद्धृत किया गया है। पद की भाषा विलकुल गुजराती है, जबिक श्री आनन्दघनजी भाषा सभी पदों में राजस्थानी है। अतः निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता कि प्रस्तुत पद उन्हीं का है अथवा किसी ग्रन्य का। इस पद का राजस्थानी रूप प्राप्त होने पर ही निश्चय हो सकता है।

# पांच समिति-ढाल १

१ इयां समिति

दोहा- पंच महाव्रत आदरो, ब्रातम करो विचार। अहो अहो मुक्त प्रत्यक्ष थवो, धन्य धन्य अवतार।।

विनती श्रवधारो रे, इरियाये चालो रे, शक्ति संभालो श्रात्म स्व-भावनी रे ॥१॥

इरिया ते किह्ये रे, ुमित सुं भेट लिह्ये रे, पुंठ तव बाली कुमती संग थी रे।।२॥

द्रव्य थी पर्ण सार रे, किलामगा लगार रे, रखे निव ऊपजे हवे पर प्रारा ने रे ॥३॥

मुनि मारग चालो रे, द्रव्य माव सुं म्हालो रे, श्रातम ने उजवालो भव-दव-चक्रथी रे।।४॥

एम सुमित गुण पामी रे, परमाव नै वामी रे, कहै हवै स्वामी ''ग्रानंद-घन' ते थयोरे ॥ ॥

पांच सिमिति की पांचों ढ़ार्ले श्री आनन्दघन जी की ही है। इसमें शंका की कोई गुंजाइश नहीं है। स्व० श्री उमरावचन्दजी ने ये ढ़ाले कहां से ली इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। ये ढ़ाले श्री अगरचन्दजी ना हटाने श्रीमद्देवचन्द्र सज्भाय माला भाग र में प्रकाशित कराई है। कुछ पाठ भेद हैं वह यहां दिया जाता है।

## [ २४६ ]

(ढ़ाल १)पाठांतर— करो = करे । सुक = हुं । प्रत्यक्ष थयो = थयो प्रत्यक्ष । धन्य-धन्य = घन धम । इरिया....भेट लाहियेरे के आगे पाठ है— "निंग लक्ष गहियेरे, गमनागमन महिरे ॥२॥

'पुठ...संगधी रे' से पूर्व'—'सुमित जब भाली रे, तव लागी प्यारे रे । ।।।।-पाठ है। सुमित = मृति। स्वामी = स्वामी रे। उजवालो = ज्गारो रे। शा०-अवधारो = ध्यान पूर्वक ग्रह्मा करो। पुण्ठ = पीछा। वाली=जलाकर, त्याम कर। किलामगा = तकलीफ, कष्ट। लगार किंचित भी। म्हालो=आनन्द से चलो। उजवालो = उज्जवल करो। भव-दव = संसार कपी दावाग्नि। वामी=वायें देकर, दूर कर।

### ढाल २

२ भाषा समिति

बीजी समिति सांभलो, जयवंता जी, माषा की इए। नामरे गुरा-

माखे माषण स्वरूपनुं जय०, रूपी पदारथ त्याग रे गुणवंताजी ॥१॥
निज स्वरूप रमणे रह्या जय०, नवी परनो प्रचार रे गुणवंताजी ॥१॥
माषा समिति थी सुख थयो रे जय०, ते जाने मुनिराय रे गुणव ॥३॥
ज्ञानवंत निज ज्ञान थी जय०, प्रमुभव भाषक थाय रे गुणव ॥४॥
माषा समिति स्वभाव थी जय०, स्व-पर विवेचन थाय रे गुणव ॥६॥
हवे द्वव्य थी पण महामुनि जय०, सावच वचननो त्याग रे गुणव ॥६॥
सावचे विरम्या जे मुनि, जय०, ते कि महामाग रे गुणव ॥७॥
पर-माषण दूरे करी जय०, निज स्वरूपने मास रे गुणव ॥६॥
'श्रानन्दघन' पद ते लहे, जय०, श्रातम ऋद्धि उल्लास रे गुणव ॥६॥

(ढ़ालं २) पाठां-स्थाग रे = वामरे। रह्या = चड्या । थयो = थयुं राय = सार। शब्दार्थ — बीजी = दूसरी । सांभलो = सुनो। भाषक = बोलने वाला। विवेचन विचार करना। हवे = अव। सावद्य = पाप युक्त कार्य। विरम्या = रुकना। ३-एषगा समिति

ढाल ३, (राग बंगालो-राजा नहीं...)

त्रिजु सिमिति एष्या नाम, तेणे दोठो म्रानदघन स्वाम, चेतन सांभलो । जब दीठो म्रानंदघन वीर, सहज स्वमावे थयो छै घीर ।।
। चेतन सांभलो ॥१॥

वीर थई ग्रिर पूठे घाय, ग्रिर हतों ते नाठो जाय, गयो ग्रामलो । वीरजी सन्मुख कोई न थाय, रत्न त्रय सुं मलवा जाय ।।चे०।।२।। ग्रिर वल हवे नथी कांई रे, निज स्वमाव यां म्हाल्यो विशेष ।चे०। निरखण लाग्यो निज घर माय, तव विसामो लीघो त्याय ।।चे०।।३।। हवे पर घर मां कदिय न जाऊं, परने सन्मुख कदिय न थाऊँ ।चे०। एम विचारी थयो घर राय, तव पर परणति रोती जाय ।।चे०।।४।। मुनिवर करुणारस भंडार, दोप रहित हवे ले छै ग्राहार ।चे०। द्रव्य थकी चाले छै एम, पर परणित नो लीघो नेम ।।चे०। ४।। द्रव्य माव सुं जे मुनिराय, समिति स्वभाव मां चाल्या जाय ।चे०। 'ग्रानंदघन' प्रभु कहिया तह, दुष्ट विभाव ने दीघो छेह ।।चे०।।६।।

(ढ़ाल ३) पाठां०-त्रिजु = त्रीजी । तेगे = तिगे । वीरजी = वीररी । अरि....कंडरं = अरिनुबल हवे नथी कांइ रेप । कहिया = कहिए ।

शब्दार्थ—त्रिजु = तीसरी । दीठो = देखा । पूठे = पीछे । घाय = दौड़ना । हतो = था । नाठो = दौडना । विसामो = विश्राम । त्याय = वहां । कदिय = कभी । नेम = नियम । छेह = छिटकाना, दूर करना ।

४ ग्रादान-निक्षेप समिति

ढाल ४ (जगत गुरु हीरजी रे...)

चोथी समिति श्रादरो रे, श्रादान निखेवण नाम । श्रादान ने जे श्रादर करे रे, निज स्वरूप ने तेम । स्वरूप गुण घारजो रे, घारजो ग्रक्षय ग्रनंत, मविक दुख वारजो रे ।।१॥

निखेवणा ते निवारवुं रे, पर वस्तु विल जेह ।
तेह थकी चित्त वालवुं रे, करवा धर्म सुं नेह ।।स्वरूप।।२।।
धर्म नेह जब जागियो रे, तब ग्रानद जनाय ।
प्रगट्यो स्वरूप विषे हवे रे, घ्याता ते घ्येय थाय ।।स्वरूप०।।३।।
प्रज्ञान व्याधि नसाडवा रे, ज्ञान सुधारस जेह ।
ध्रास्वादन हवे मुनि करे रे, तृष्ति न पामे तेह ।।स्वरूप०।।४।।
स्वरूप मां जे मुनिवरा रे, समिति सुं घरे स्नेह ।
सुमित स्वरूप प्रगटावीने रे, दीधो कुमित नो छंह ।।स्वरूप।।६।।
काल ग्रनादि ग्रनंत नो रे, हतो सलंगण भाव ।
ते पर पुद्गल थी हवे रे, विरक्त थयो स्वमाव । स्वरूप।।६।।
प्रव्य माव दोय भेद थी रे, मुनिवर सिमिति धार ।
'ग्रानंदघन' पद साधसे रे, ते मुनि गुण भंडार ।।स्वरूप०।।७।।

(ढाल ४) पाठां०-इसमें पाठ भेद नहीं है।

शब्दार्थ—तेम = तव । निवालुं = दूर हटाना, अलग करना । वालवुं = ग्रन्ग करना । नसाड़वा = नाश करने के लिए । ग्रास्वादन = स्वाद लेना, ग्रनुभव करना । सलंगण = संलग्न, जुड़ा हुआ । हतो = था ।

# ५ पारीठानिएया समिति

ढाल ५, (रूडा राजवी, ए देशी)

समिति पंचमी मुनिवर ब्रादरो रे, उन्मारगं नो परिहार रे, सुधा साधु जी ।

मुनि मारग रूडी परे साधजो रे, पर छोडी ने निज संभार रे।।सुघा०॥१॥

पारिठाविश्या नामे वली जे कहा रै, ते तो परिहरवी परभाव रे भुषा०

भादर करवो निज स्वभाव नो रे. ए तो श्रकल स्वभाव कहेवाय रे ॥सुघा०॥२॥

यर पुद्गल मुनि परठवे रे, विचार करी घट मांग्र रे ।सुघा०। लोक सज्ञा ने मुनि परिहरं रे, गति चार पछ्छे वोसिराय रे ।।सुघा०।।३।।

श्रनादिनो संग थिल जे हतो रे. तेनो हवे करे मुनि त्याग रे सुधा०। विकल्प ने संकल्प ने टालवारे, विल जे थया जिमाल रे ।।सुधा०।।४।। श्रनाची ए मुनि परठवे रे, ते जाएंगे ने श्रनाचार रे ।सुधा०। श्राचार ने विल जे मुनि भादरे रे, कर्त्ता कार्य स्वरूपी थाय रे ।।सुधा०।।।।।।

खट् द्रव्यनुं जारापणुं कह्युं रे, ते जे जाणे ग्राप स्वेमाव रे शमुधाव स्वमावनुं कर्त्ता विल जे थयो रे, ते तो ग्रनवगाही कहेवाय रे शमुघाव। १६॥

सुमित सु हवे मुनि म्हालता रे, चालता सिमित स्वमावरे ।सुधा०। सुमित थी हिंद निह जोडत रे, रे, वली तोडता जे विभाव रे ।सुधा०।:७।।

पर परएाति कहे सुरा साहेबा रे, तमे मुभने मूकी केमरे ।सघा०। कहो मुनि कगए भ्रपराधथी रे, तमे मुभने छोडी एम रे

।।सुघा०॥५॥

मे म्हारो स्वमान निह छोडियो रे, नयो म्हारो कोई विभाग रे ।सुघा०। पंचरंगी माहरू स्वमाव छैरे, तेने आदरूं छूं सदा काल रे ।।सुघा।।।

वार्ण गंघ रसादि छोडूं नहीं रे, तो श्यो ग्रवागुरा कहेवाय रे ।सुघा। कदी ग्रवार स्वामाव न ग्रादकः रे, सडन पडन विद्वांसन न छंडाय रे ।।सुघा०॥१०॥

सिद्ध जीवाथी ग्रनंत गुणा कह्या रे, म्हारा घरमां जे चेतन राय रे ।सुघा०।

ते सघला म्हारे वास थई रह्या रे, तम थी छोडी ने केम जवाय रे ।।सुघा०।।११॥

तव मुनिवार कहें कुमित सुर्गा रे, थार स्वारूप जाण्युं भ्रान रे। थारा स्वारूप मां जिम तूं मगन छं रे, म्हारा स्वारूप मां थयो हूँ भ्राज रे ॥१२॥

म्हारूं स्वरूप ग्रनन्त में जाणियु रे. ते तो ग्रचल ग्रलख कहेवायरे। सुमित थी स्वभाव मारगे रसूरे, थारा सामू जोयू केम जाय रे।।१३।। थारे म्हारे हवे नहीं बने रे. तमे तमारे घरे हवे जाग्रो रे। ग्राटला दहाडा है वालवणे हतो रे, हवे पण्डिम धीर्य प्रगटायो रे।।१४॥

सुमित सुं में भ्रादर माँडिग्रो रे, ए तो बहु गुणवंती कहेवाय रे। सुमितना गुण प्रगट पणो रे, में तो लीघो उपयोग मांय रे।।१४।। सांभल सुमित ना गुण कहुं रे, जे श्रचल ग्रखण्ड रहेवाय रे। स्थिरतापणु सुमित मां घणो रे, तुज मां तो ग्रस्थिरता समाय रे

113811

थारा सुख तो हवे में जाणियुं रे, दुख दायक सदा काल रे।

थारा सुख विभाव कहेवाय छे रे, नहीं पुण्य-पापनुं ख्याल रे ॥१७॥ ज्ञानी ते एहने सुख निह कहे रे, सुख तो जाण्युं एक स्वभाव रे। थारा पूठे पड्या ते तो श्रांघला रे, भव-कूप मां पड्या सदाय रे ॥१८॥ थारं स्वरूप में बहु जाणियुं रे, तू तो जड़ स्वरूप कहेवाय रे। जड पणू प्रगट में जाणियुं रे. तू तो पर पुद्गल मां समाय रे ।।१६॥ ते नो विवरो प्रगट हवे सांभलो रे. संसार समुद्र श्रथाह रे। चुडणा रूप-जल ते मध्ये घणो रे, पण पीछे वृष्ति न थाय रे ॥२०॥ ते समुद्रनो ग्रधिष्ठायक चलि रे, ते तो नामे मोह मूपाल रे। तेना प्रधान वॉल पंच छे रे ते तले त्रेवीस छडी दार रे ॥२१॥ राजघानी एवी ते मेल वी रे, घमंराय नू लूटे घन संच रे। वाहय घर्मी जो एने ग्रादरे रे, ते ने मोलवे ते छडी दार रे ॥२२॥ वस करी सोपे मोहराय ने रे, मोह करावे प्रमाद प्रचार रे। ते थी जाये नरक निगोद मां रे, तिहां काल ग्रनादि गमाय रे ॥२३॥ हृद् धर्वी एथी नहीं चले रे जेणे की घा क्षायक भाव रे। प्रमादी ने मोह पीठे घणो रे, म्रप्रमादी घरे नहीं जाय रे ॥२४॥ तेणे पंच महावत ग्रादर्या रे, छोड्या सर्व ग्रनाचार रे। म्रावार थी हूँ हवे नहीं चालूं रे, सुण मुज चित्तना ग्रभिप्राय रे ॥२५॥ ़ कुमित जी कहूँ तुमने एटलूं रे, म्हारा सधर्मी छे ग्रनन्त काय रे। ते सर्वने दास पणू दियो रे ते साले छे मुज चित्त माय रे ।।२६।। इयुं कीजे पूठ ते निह करवे रे, तो पण मुजने दया थाय रे। ते थी देशना बहुविद करूं रे, जिहाँ चाले म्हारों प्रयास रे ॥२७॥ चेतन जी ने बहु परे प्रीछवुं रे, तेने वनावूं स्थिर वास रे। ते तो थारे वस करी न होवे रे, ते ने वोसिरावी शिव जाय रे धमंरायनी श्राराने अनुषरे रे, ते तो 'श्रानन्दघन'' महाराय रे । २८॥

(ढाल १) पाठान्तर —समिति पंचमी = पंचमी समिति । अनाचीर्एं = पर आकर्षण । वलिकं = वली । स्वभावनुं = स्वभानो ।

नोट-सातवें पद के पश्चात छपी पुस्तक में "उपसंहार" शब्द है । साहेबारे = साहिबारे । तमे मुक्तने छोडी = मुक्तने छं छेडी । छोडिया रे = छांडियो रे। कोई - कांइ। पंचरंगी ""छेरे = पंचरंगी जे म्हारू' स्वरूप छेरे। वर्ण....नहीं रे = वर्ण गंव रस फर्स छोडुं नहि रे । सडन = सडरा । पडन = पड़्ग् । त्रिध्वंसन = विधंस । जीवथी = जीवोथी । तमथी = तो तुमथी । थारू = तांरू । आज रे = दगाबाज रे । थारा = तारा । स्वरूपमां = स्वरूपें । मारगे रमूं रे = घरे रमुं रे। थारा = तारा। तम तमारे = तुम तुम्हारे। म्राटला दहाडा=आज लगी। प्रगटाया रे = प्रगटाय रे । रहेवारे - कहेवाय रे । घगो रे - घगु रे । तुज - तुम । यारा - तारा । हवे में = में हवे । जािएयं र = जािंग्या रे। दुख....काल रे = छे किंपाक फल समहाल रे। थारा सुख... ख्यात रे = तेथी ते विभाग कहेवाय छे रे. पुण्य पाप नाटक नो ख्याल रें। ज्ञानी ते एहने - जानी एहने । निह - नवी । सुख तो = सुख । जाण्युं एक -जाण्यूं में एक । थारा = तारी । पूठे - पुंठे । ते तो - ते । पड्या सदायरे -थया गरंकाव रे । थारू = तारू । तू तो जड स्वरूप = जड संगे तुं जड । प्रगट हवे सांभनो रे - प्रगट सांमलारे। संसार - आ संसार। तृष्णा रूपजल = तृष्णा-जल । घणो रे = घणुं रे । न = नव । ते तो = ते । प्रधान = मित्र प्रधान । २१ वें पद के वाद छपी पुस्तक में इस प्रकार पाठ है = राजधानी ते तेवीसने भालवीरे, तेनी खवर राखे जए पंचरे"। मोलवे = भोलवे। ते = सवि । ते थी जाये नरक निगोदमां रे=पछी नाखे ते नरक निगोदमां रे । अनादि = अनंतो । निह जाय रे = निव चार रे । तेरा = तिरा । छोड्या = विल छोड्या। नहि = नवि। मृज चितना अभिप्राय रे = मुभ हृदय विरतंत रे। छै अनं न काय रे - जीव अनन्त रे। पूठ ते नहि करवे रे - ते पुंठ निव फेरवे रे। देशना = हुं देशना। वतावूं = वतावुं छुं। करि = फरी। तेने = तने। . अंतिम पद के अंत में यह लेख ग्रीर है-"तिहाँ तुक्त थी निव पहुंचाय रे।

शब्दार्थं = जनमारग = जनमागं कुमागं। परिहरो = छोडो। रूडी परे = भिल प्रकार से। अकल = स्वच्छ, सुन्दर! बोसिराय = छोडना। जजमाल = जज्ज्वल। श्रनाचीएं = जिसका आचरए न करने योग्य हो, अधुद्धाचार। अनवगाही = नहीं ग्रहए करने वाला। म्हालता = आनंद पूर्वक चलते हुए। मूकी = छोडी। श्यो = क्यों। कदी = कभी। केम = कैसे। थारूं = तेरा। आटला = इतने। दहाडा = दिन। पूठे = पीछे। विवरो = ज्योरा, विस्तार से वर्णन। अयाह = असीम। पंच = पांच इंद्रिय-श्रोत, चक्षु, घ्राए, रस और स्पर्श इंद्रिय। त्रे वीस = तेवीस, पांच इंद्रियों के तेवीस विषय। संचरे = संचय करके, एकियत करके। मोलवे = आकर्षित करके। एटलूं = इतना। प्रीछवूं रे = - प्रश्न करना।

#### श्री ग्रादिजिन स्तवन%

राग-प्रभाती

प्राज म्हारे च्यारं मगल चार।
देख्यों में दरस सरंस जिनको. सोभा सुन्दर सार ।। श्राज ।। १।।
छिन छिन जिन मनमोहन ग्ररची, घनकेसर घनसार।
घूप उखेवों करो ग्रारतो, मुख बोलो जयकार।। श्राज । २।
विवध भांत के पुष्फ मगायो, सफल करो श्रवतार।
समवसरण ग्रांधीसर पूजी, चीमुख प्रतिमा च्यार।। ग्राज ।। ३।।
होये घरो बारह भावना भाषो, ए प्रभु तारण हार।
सकल संघ सेवक जिनजी को, 'ग्रानन्दघन' ग्रवतार। ग्राज । ४।।

चौवीसे तीर्थं कर नुं तवन \*

ऋषम जिनेसर राजीउ मन भाय जुहारो जी। प्रथम तीर्थं कर<sup>1</sup> पति राजिउ² परिगह परिहारो जी।।१,॥

विजयानन्दन वंदीए, सब पाप पलायजी। जिम सूस्यर<sup>3</sup> नंदीए, सुरनर मन भाय जी ॥२॥ सभव भव-भय टालतो, श्रनुभव भगवत जो। मलपति गज-गति चालतो सेवे सूर नर सतजी ।।३।। म्रभिनन्दन जिन जयकर, करुणा<sup>5</sup> रस घार जी। मुगति सुगति नायक वरु. मद मदन निवार जो ।।४॥ सुमति सुमत<sup>6</sup> दातारु. हुँ<sup>7</sup> प्रणमुं कर जोडि जी। कुमति कुंमति परिहार कुं, ग्रन्तराय परि छोड़ि<sup>8</sup> जी ॥५॥ पदम प्रभु प्रताप सुं परि वादि विभगी जी। जिम रवि-केहरि व्याप सूं. ग्रन्थकार मतंग जो ।।६॥ श्री सुपास निज <sup>9</sup> वास तें, मुक्त पास निवास जी। कृपा करि निज दास नेइं, दीजइ सुखवास जी। ७॥ चंद्र प्रभु मुख चंदलो, दोठां सव सुख थाय जी। उपसम रस भर कवलो वुखा वालिद्र जायजी वदा। सुविधि सुविधि विधि, दाखवइ राखइ निज पासजी। नवम ग्रठम विधि दाखवड्11, केवल प्रतिभास जी ।।६॥ सीतल सीतल जेम<sup>12</sup> ग्रमी, कामित फलदाय जी । भाव सुं तिकरण सुध निम, भवयण निरमाइ जी ॥१०॥ श्री श्रेयांस इग्यारमो, जिनराज विराज जी। ग्रह निव पीडइ बारमो जस सिर परे गाजे जी ।११॥ वासपूज वसु पूज्य नरपति कुल-कमल दिनेश जी। म्रास पूरे सुरनर<sup>18</sup> जती, मन तणीय जिनेश जी ॥१२॥ विमल विमल ग्राचारनी, तुभ शासन चाह जो। घट पट कट निरघार नइ, जिम दीपइ उमाहजो ॥१३।

ग्रनन्त ग्रमन्त न<sup>14</sup> पामिये गुण गण श्रविनास जी । तिन तुभ पद-कज, कामीइ, गराधर पद पासि ा जी ।।१४।। धरम धरम तीरथ करी, पंचम गति दाइ जी। एकंतक मत मद हरी, जिला बोध सवाइ<sup>17</sup> जी ॥१५॥ संतिक संति करी जगधणी, मुगलंछन सोहे जी। निरलंछन पदवी भग्गी, भवियग्ग मण मोहइ जी ।।१६॥ कुंथनाथ तीरथपति चक्रधर पद धारजी। निरमल वचन सुघा राखे<sup>18</sup> निज पास जी ॥१७॥ श्री ग्ररनाथ सुहामणो, ग्ररे संतित साधे जी। वछित फल दाला भणो, जे वचन म्राराधे जी ॥१८॥ मल्ली वल्ली कामता वर सूर तस कहीइ जी। चरण कमल सिर नामिना, ग्रगणित फल लाहिइ जी ।।१६॥ मुनिसुबत सुबत तणी, मणि खान सुहाबइजी। षंछित पूरण सुरमणि, रमणि गुण गावइ जी ॥२०॥ निम चरण चित राखिये, चेतन चतुराइ जी। परमारथ सुख चाखिये, मानव भव पाइ जी ॥२१॥ नेमनाथ ने एकमना<sup>19</sup> साइक निव लागिजी। तिण कारण सूर घामणी, जण सगुण मागि जी ॥२२॥ पारस महारस वीजिये, जन जाचन ग्रावे जी। प्रभय दान फल लीजियै<sup>21</sup> प्रसरण पद पावे जी ॥२३ सिद्धारय सुत सेवियइ, सिद्धारय होइजी। घ्याल<sup>22</sup> जंजाल न खेवीइं<sup>28</sup> परमारथ जोइ जी ॥२४॥ एय चौवीस तीर्थं करं निज मुन गुण गावूं जी। जिन मत माण संचर्ष 'म्रानन्दघन' पाउं जी ॥२५॥

#### [ २४६ ]

#ये दोनों स्तवन श्री अगर चंद जी नाहटा बीकानेर के संग्रह से लिये गये हैं 1१ तीरिय 1२ जागियो 1३ सुख सुचिर 1४ पित 1४ करुणी 1६ मुर्गात 1७ कूं 15 विछोड 1९ त्यजिवास नई 1१० द्रुष्ट 1११ नाखव 1१२ जिन 1१३ नरे 1१४ भव 1१४ घारि 1१६ दातार 1१७ सुवार 1१5 तजी त्रिपदी जस सारजी 1१९ कामना 1२० नाथ स 1२१ दीजीय 1२२ आल २३ वेखिय ।



# म्रानन्दघन-चौवीसी

# श्री ग्रानन्दघन चौबीसी स्तवन

### श्री ऋषभ जिन स्तवन (१)

(राग मारू: करम परीक्षा करण कुंवर चल्यो, ए देशी)

ऋषभ जिणेसर प्रीतम माहरो, ग्रौर न चाहूँ कंत ।

रींझ्यो साहब संग न परिहरे, मांगे सादि ग्रनन्त ।।ऋ०।।१॥

प्रीत सगाई जग मां सहु करे, प्रीत सगाई न कोय ।

प्रीत सगाई निरुपाधिक कही रे, सोपाधिक धन खोय ।।ऋ०।।२॥

को कन्त कारण काष्ठ भक्षण करे मिल्स्यू कत नै धाय ।

ए मेलो निव किर्दिये संभवे, मेलो ठाम न ठाय ।।ऋ०।।३॥

कोइ पित रजन ग्रित घणु तप करे, पित रंजन तन ताप ।

ए पित रंजन में निव चित धर्यू, रजन धातु मिलाप ।।ऋ०।।४॥

कोइ कहै लीला ललक ग्रलख तणी, लख पूरे मन ग्रास ।

दोष रिहत नै लोला निव घट, लोला दोष विलास ।।ऋ०।।४॥

वित्त प्रसित पूजन फल कह्यू, पूजि ग्रखंडित एह ।

कपट रिहत थई ग्रातम ग्ररपर्गा, 'ग्रानन्दघन' पद रेहं ।।ऋ०।।६॥

<sup>(</sup>१) पाठान्तर—करम....चाल्यों के स्थान पर 'आज नेहजोरे दीसै नाहलों (अ)। चाहूँ = चाहुंरे (अ, ऊ)रींझ्यों = रीं िक्सयों (इ.) साहव = साहिव (अ, आ, ई, उ, ऊ)। जगमां = जग मांहि (अ), कहीं (में) भी देखा जाता हैं। श्रीत = श्रीति (अ; आ, )। करैं = करड (अ, आ, )। को = कोई (अ, आ, ऊ), कोइक (उ)। काष्ठ = काठ (अ,)। मिलस्यूं = मिलस्युं (अ, इ, ई,)। ने = ने (आ, इ, ई, उ,) कदिइ = कहीइ (अ,) कहिये (आ, इ, उ, ऊ,)। ने = ने

(अ) । घर्णुं = घर्ण (अ); घर्णी (आ; उ)घर्णो (क)। रंजन = रंजे (अ, आ,)। धर्यूं = कहीं कहीं घर्यो भी पाठ है। घातु=धात (अ,) ललक=अलख (इ, ई, उ, क)। लीला निव≕लीला किम (अ; आ,) । रिहर्त नै = रिहत में (आ,इ,ई,) प्रसित्त = प्रसनै (आ,इ,ई,उ, क)। कह्यूं = कह्युं (अ,इ,उ,) पूजि = पूज (अ,आ;इ,ई,क)। धई = थइ (क)।

शब्दार्थं — प्रीतम = अत्यन्त प्रिय स्वामी । कंत = प्रित, स्वामी । रीं क्यो = प्रसन्न हुआ । परिहरें = छोडना, त्यागना । निरुप्राधिक=उपाधि रहित; अलौकिक । सोपाधिक=उपाधि सहित । को = कोई । काष्ट = काठ, लकडी । धाय = दौडकर । कदिये=कभी भी । ठाम = स्थान । ठाय = स्थित । रंजन = प्रसन्न करना । ललक = उत्कट अभिलाषा । प्रसत्ति = प्रसन्नता । रेह-=रेखा, चिन्ह, लक्षणा ।

मर्थं - शुद्ध चेतना का भ्रपनी सखी श्रद्धा के प्रति वचन--

श्री कृषभदेव जिनेश्वर मेरे प्रियतम हैं, इसलिये में श्रव और किसी दूसरे को अपना स्वामी बनानें की इच्छा नहीं करती हूं। प्रसन्न हुये मेरे ये स्वामी मेरा साथ कभी नहीं छोड़ेंगे। मेरे इस प्रसन्न हुये 'स्वामी के सम्बन्ध की आदि तो है किन्तु अंत.नहीं है अर्थात् मेरा और इनका साथ अब स्टूटने वाला नहीं है, अनं न काल तक रहने वाला है।।।।।

संसार में प्रेम-सम्बन्ध तो सब ही करते हैं किन्तु वास्तव में वह कोई प्रेम-सम्बन्ध नहीं है। मेरा (शुद्ध चेतना का) प्रेम संबंधितो निरुपाधिक है 'उपाधि रहित है। और संसार में जो प्रेम-संबंध है वह उपाधि सहित है और आत्म ऋदि को खोनेवालां हैं -विनाश करने वाला है।।२।।

संसार में प्रेम संबंध के कारण कोई 'स्त्री अपने, पति की मृत्यु पर उसकी चिता के साथ जल जाना चाहती हैं और आशा करती है कि इस तरह सहगमन से पित के साथ शीघ्र मिलन हो जावेगा । - किन्तु' मिलन- का-कोई निश्चित-स्थान न होने के कारण इस-प्रकार कभी संभव नहीं है ॥३॥

कोई पित को-प्रसन्न करने के लिये अनेक-प्रकार- के उग्र-तप करती है श्रीर समभती है-कि शरीर को तपाने से ही स्वामी-प्रसन्न होंगे ।--इस-प्रकार से मिलाप की इच्छा तो शारीरिक घातु (तत्व) के मिलाप की इच्छा है । शुद्ध चेतना करती है, इस प्रकार से पित को प्रसन्न करना-मैंने कभी सोचा ही नहीं । वास्तव में पित को प्रसन्न करने का तरीका तो धातुः मिलाप की तरह है । जिस प्रकार-घातु (सोना-चांदी) मिल-कर, एक रस हो जाता है उसी प्रकार पित-स्वामि-को प्रसन्न करने के लिये उसकी प्रकृति में अपवे आप को मिलाकर-समर्पित कर, एक रस हो जाना है ॥।।।

"प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय। दूघ दिह सो जमत है, कांजी ते फटि जाय।।"

कितने ही लोग फ़हते हैं कि ईश्वर की यह लीला, है— कीडा, है, वह सब की इच्छाग्रों को जानता है और उन इच्छाग्रों- को जानकर नव की श्राणायें वह पूर्ण करता है। गुद्ध चेनना इस प्रकार कहती है दोप रहित पर-मारना में यह लीला—कीडा संमव नहीं होती क्योंकि लीला तो दोगों की रंग-भूमि है।।५।।

पति की चित्त-प्रसन्नता ही यित-मिक्त का फल है। यह सेवा (पित को प्रसन्न रखना) ही अखंडित पूजा—भिक्त है। कपट रहित होकर भिन्न-भाव स्थाग कर अपने आपकी पित के समर्पण कर देना ही भगवान में चित्तेवृति की लीन करना ही —आनंदघन के स्मूह—मोक्ष पद की रेखा है। अर्थात् अनंत सुंखों के प्राप्त करने का मांगे है।।६।।

#### श्री ग्रजित जिन स्तवन् (२)

्रांग ग्रासावरी-स्हारो मन मोहयो श्री विमला चले, रे, ए देशी) पंथडो निहालू बीजा जिन तणुं, ग्रजित ग्रजित गुण घाँम । जे ते जीत्या तिण हूँ जीतियो, पुरुष किस्यू मुक्त नाम ।।प०।।१।। चरमं नयन करि मारग जोवतो, मूल्यो सयल संसार ।
जिए नयने करि मारग जोइये नयरा ते दिव्य विचार । पंगारे॥
पुरुष परम्पर ग्रनुभव जोवतां. ग्रंघो ग्रंघ पलाय ।
वस्तु विचार जो ग्रागमें करी, चरण घररा नहीं ठाय ॥पंगारे॥
तर्क विचार वाद परम्परा, पार न पहुंचे कोय ।
ग्रिभमत बस्तु वस्तु गते कहै ते विरला जाग जोय ॥पंगारे॥
वस्तु विचार दिव्य नयरा तरा विरह पड्यो निरधार ।
तरतम जोगे तरतम वासना वासित वोध ग्रधार । पंगार ।
काललब्धि लहि पंथ निहालस्यं. ए ग्रासा ग्रंबलम्व ।
ए जान जीवे जिनजी जाराज्यो, 'ग्रानन्दधन' मत ग्रम्ब ॥पंगारा।

(२) पाठान्तर—म्हारो....विमला चले रे = जिन प्रतिमाहो-एहनी ढाल (अ) पंथडो....नणुं = वाटड़ी विलोकूं रे बीजा जिन तणी रे (कहीं-कहीं) । निहालुं = निहालो (अ) तणु = तणी (अ, आ, ज, ज, ज)। तें = तिणे (अ) ो जीतियो = जीनीयल (अ)। किस्यूं = स्युं (अ) मुक्त = माहरो (अ) जोवतो = लोई हो (अ), जोवतां (इ, ई; । अन्यो = भूलो (अ, आ, ड) अुल्लो (ई)। करि = कर (ल)। अनुभव = अनुभवी (अ) जोवता = जोवई (अ) पलाय = पेलाय (अ), पुलाय (उ, ऊ). कहीं पर 'पीलाय' भी है। आगमे = आगम (अ, इ)। करी = कमी (अ)। पहुंचै. = पीहचे (ल)। कोय = कोई (अ)। गते = गति (अ)। विरना = विरली (अ)। जोय = लोई (अ)। विचार = विचार्ल (इई) अधार = आवार (अ) आधार (उ क)। निहालस्यूं = निहालसै (अ) निहालस्यें (ल)। आसा = आस्यां (क) जागाज्यो = जागयो (अ) जागाजो (ई, ल)।

शब्दार्थं — पंथडो = रास्ता, राह, मांगं । निहाल = देखता हूं। वीजा = दूसरे । तर्गुं = का । अजित = श्रजेय, दितीय तीर्थं कर का नाम । घाम = घर । डे = जिनको । ने = नमने । किन्यूं = कैमा । तिरा = उनसे । हूँ = मैं । चरम = चमं । जीवनो = देंखता हुआ । सयल = संकल, सब । पलाय = दौडना । ठाय = स्थान । श्रिभमत = इच्छित । वस्तु = तत्व । विरला = -कोई । वासित=गंघ युक्त किया हुश्रा । काल लब्वि=योग्य समय । लिह = प्राप्त कर । श्रवलंब = सहारा । अम्ब = आम्र,आम ।

श्रयं-दूसरे श्री अजितनाथ जिनेश्वर के उस मार्ग की ओर देखता हूँ जिस मार्ग ने उन्होंने सिद्धि प्राप्त की है श्रीर जिसका उन्होंने उपदेश दिया है। श्राप गुए। निष्पन्न नाम के घारक हैं अर्थात् आपका 'अजित' नाम श्रीर गुए। घाम विभेषण युक्ति संगत है, क्योंकि आप रागादि शत्रुओं से श्रेथ है और अनंत ज्ञानादि गुएों के स्थान हैं। मेरा पुरुप नाम कैसा ? श्रर्थात् पुरुपार्थ न होने से मेरा 'पुरुप' कहलाना निरर्थक है क्योंकि श्रापने जिन पर (रागादि शत्रुश्चों पर) विजय प्राप्त की थी, उनसे मैं जीत लिया गया हूँ श्रथात् परास्त हो गया हूँ ॥१॥

पुरुप धर्म पुरुपत्वा, थिना शक्ति न लखाय। 📁 🤛 जल-अवधारण शक्ति ते, घट घटता प्रगटाध ॥ (श्री ज्ञान सारजी)

चमडे के नेत्रों से—वाह्य नेत्रों से आपके मार्ग को— आप द्वारा बताये हुये बीतराग मार्ग को (आध्यात्मिक मार्ग को) देखते हुये तो सर्व संसार भूला हुआ ही है—भटकता हुआ ही है। जिन नेत्रों के द्वारा आपका मार्ग देखा जा सकता है उन नेत्रों (आंखों) को तो दिव्य (आलौकिक) ही समभो। अर्थात् आपके स्याद्वाद मार्ग को देखने के लिये सम्यक् ज्ञान-चक्षु ही उपयोगी हो सकते हैं।।।।

गुरु परम्परा के अनुभव की ओर देखा जाय तो ऐसा लगता है कि अन्या अन्ये के पीछे दौडता जा रहा है। अर्थात् अनेक परम्परायें परस्पर की निदा में राग-द्वे प वृद्धि करने वाली हैं। अंधे के पीछे अंघों की दौड जैसी हैं। उनसे सत्य मार्ग नहीं मिल सकता है। यदि आगमों के—सिद्धान्त वाक्यों के द्वारा मार्ग का विचार किया जाय तो पांव रखने के लिये भी स्थान नहीं हैं। अर्थात् आगमों के अनुसार कपाय आदि पर विजय प्राप्त करना अति कठिन कार्य है।।३।।

तर्क को प्रमाण जानकर आपके मार्ग का विचार किया जाय तो वादों की परम्परा हो हि हिट्यत हो ती त उत्तर इंट्युत्तर का अंत ही तहीं विखाई देता। इसि अये तर्क द्वारा ग्रापके मार्ग को प्राप्त नहीं; किया जा सकता है । 'इच्छित। मार्ग (भगवान का मार्ग) का यथार्थ स्वरूप कहने वाले तो संसार में विरले ही विखाई पडते हैं। आत्मानुभूति के विना कीन कह सकता है।।।।।

वस्तु को स्थार्थ मार्ग को वताने वाले दिव्य आशीकिक चक्षुओं का (जानियों का) तो इस समयः निश्चय ही वियोग-हो जया है। किन्तु इस समय तो अ क्षयोपशम-योग्यतग्रकी तरतमताः (न्यूनिधिक) के अनुसार ही व्यूनिधिकं जान के संस्कार हैं वे ही इस समय श्रद्धा के आधार हैं न। प्रा

भ्रपने प्रियंतम [आराध्य] के लिये किन का हृदय छटपटा रहा है। वह उसकी खोज में भ्रनेक आचर्यों के पास जाते हैं, भ्रनेक शास्त्र पढते हैं, तर्क नितक करते हैं किन्तु भ्राराध्या का मार्ग तो मिलता नहीं है। इससे उन्हें निश्चय होता है कि इस जन्म में न्तो अचूक साधन तो दुर्लभ है किन्तु जो साधन सिले, उससे जितना भी लाभ उठाया जाय, उठा लेना चाहिये। भागे अपने हृदय को सांतवना देते हुये कहते है—

हे अतिशय आनन्द के दिने वाले अनेकान्तवाद के आम्रफल जिनेश्वर दिव ! काललिक प्राप्त होने तक-भव अम्णा की अविध कि परिपक्ष होने तक-भव अम्णा की प्रतीक्षी करूंगा । यह सेवक-भक्त संयम रूप परमार्थ जीवन व्यतित करता हुआ और आध्यात्म ग्रुण की जिन्दित करता हुआ और आध्यात्म ग्रुण की जिन्दित करता हुआ और अम्प्रत फल की [मुक्तिःकी] आशा में जी रहा है ॥६॥-

यह प्रकृति का नियम है कि समय आने पर ही आम पकता है और कार्य की सिद्धि भी समय आने पर ही होती है।

काल लिब की परिमक्वता पुरुषार्थं बिना नहीं होती है। अाम योग्य क्षेत्र में रोपण करने के पश्चात बराबर जल सिचन, खाद डालने और बराबर

उसकी सम्भाल करते रहने के पश्चात ही समय आने पर—ऋतु श्राने-पर पकेगा। यदि सिनाई शादि नहीं की जावेगी तो आम शुक्क हो जावेगा— सूख जावेगा उसी प्रकार आत्मार्थी पुरुप निरन्तर प्रयुक्त करता रहेगा— पुरुपार्थ करता रहेगा तो काललव्य प्राप्त कर—समय आने पर आनन्द स्व-रूप मोक्ष फल प्राप्त कर लेगा। बीतराग सत् पुरुप की श्राज्ञा श्रप्रमत होकर उत्साहित होकर आराधन करना शि काललव्य प्राप्त, का प्रमुख, उपाय, है अर्थात् जो जिनेस्वर की आजानुसार वैराग्य भाव से श्रद्धापूर्वक मंद कपायी श्रीर मंद विपयी होकर महात्रतादि पालता हुग्रा आत्म भाव में मग्न रहता है वह काललव्य शीझ प्राप्त कर लेता है।

है जिनेहबर भगवान ! मैं उप ही समय की प्रतीक्षा कर रहा. हूँ कि कब मेरी काललब्ध परिणक्य हो और मुफे दिव्य नयन की प्राप्ति हो जिससे मुफे दिव्य वर्धन मिले। वह प्राप्ति मुफे देर अवेर अवश्य मिलेगी। हे कृपालु-देव! ऐसी मुफे पूरी पूरी आशा है। कारण कि आपकी परम प्रीति—भिनत रूपी बीज को मैंने अपने चित्त रूपी क्षेत्र में रोपण कर लिया है तो आनंदधन रूप आग्न फल अवश्य काललब्धि पाकर—समय आने पर—ऋतु आने पर पकेगा ही। इसी आणा के अवलम्यन से मैं जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।

### श्री सम्भव जिन स्तवन (३)

(राग-रामगिरी-रातडी रमीने किहां थी आविया, ए देशी)

संमव देव ते पुर सेवो सव रे, लहि प्रभु-सेवन भेद।
सेवन कारण पहिली मूमिका रे, ग्रुभय, श्रह व, श्रवेद ।।सं०।।१॥
भय चचलता के, परनामती रे, हे व श्ररोचक भाव।
सेद प्रवृत्ति करता थाकिये, दोष श्रवोध लखाव ।।सं।।२॥
चरमावर्तन चरमकरण तथा, भव परिएति परिपाक।
दोष टलै विल हिट्ट खुलै भली, प्राप्ती प्रवचन वाक ।।सं।।३॥

परिचय पातक घातक साधुस्यूं, श्रकुशल श्रपचय चेतं ।
ग्रथ श्रध्यातम श्रवण मनन करि, परिसीलन नय हेत ।।सं०।।४।।
कारण जोगे कारज नीपजै, एमां कोइ न वाद ।
पिरा कारण विरा कारज सादियं, ते निज मित उन्माद । सं० ।४।। '
मुग्ध सुगम करि सेवन श्रादरं, सेवन श्रगम श्रनूप।
'दीज्यो कदाचित सेवक याचना, 'श्रानन्दधन' रस्रूप ।:सं०।।६॥

(३) पाठान्तर—राग,रामगिरी:..अवियारे = रागमारू-करम परीक्षां करण कुमर चाल्यो रे (अ) संभव = ""सवेरे = संभवदेव तो चित्त घरि से-विये (अ, आ) लिह = लिही इं (अ) प्रभु=ज्युं (अ, आ) । चंचलता = चंचलता हो (अ, इ, ई, उ) प्रवृत्ति = प्रवृत्ति हो (अ, इ, ई, उ) प्रवोध = एवोधि (अ), प्रवोधि (उ) । लखाव = लखाय (उ) चरम = हो चरम (आ, इ, ई) परिण्यति = परिण्यत (अ), परिण्यत (अ) । प्राप्ति = प्राप्ति (ग्न, आ) प्राप्ति (उ) वाक = पाक (अ) । पातक = पातिक (इ, ई, अ) साधरयं = साधस्युं (ग्न, उ), साधसूं (आ, इ, अ) मनन = मनने (उ) हेत = हेतु (अ, अ) जोगे = योगे (ग्न, आ) जोगे हो (इ, ई, उ) । कारज = करिज (ग्न) । एमां = एहमां (अ, आ, उ, अ) पिण्य = जिण्य (ग्न, ई) विण्य = विण्यु (अ, ग्ना, ई) । मित = मत (अ, उ) । मुग्ध = मुगध (ग्न, आ, अ) दीज्यो = देज्यो (अ, आ, क) देजो (उ) । 'देयो'' भी कहीं पाठ है ।

शब्दार्थ — घुर = घुव, सर्व प्रथम । अभय = भयरहित, निर्भय । प्रद्वेष = द्वेप रहित । अखेद = खेद — दुःख रहित । परणामनी = मनके भावों की । द्वेष = वैर । अरोचक = अरुचिकर । अवोध = अज्ञानता । लखाव = चिन्ह । चरमावर्तन = अन्तिम फेरा, जीव अखिल लोक के सम्पूर्ण पुद्गलों का स्पर्श व त्याग कर चुकता है, वह एक पुद्गल परावर्त्त है । इस एक पुद्गल परावर्त्त में जीव अनन्त द्रव्य, भव, और भाव का स्पर्श व त्याग करता है । द्रव्य से अनन्त पुद्गल परमाणु, क्षेत्र से लोकाकाश के सर्व प्रदेश, काल से— - अनंत अवसिंपिणी-उत्सिंपिणी, भव से अनंत जन्म मरण, श्रीर भाव से अनंत अध्यवसाय स्थानों को यह जीव परावर्तता है। इस काल चक्र में भ्रमण करता भव्यजीव किसी समय अंतिम भ्रमण चक्र को प्राप्त कर लेता है। चरम करण = अंतिम आत्म परिणाम विशेष, दाव । भवपरिणाति = भवस्थिति । परिपाक = परिपक्व होना, पूर्ण होना । प्रवचन वाक्य । परिचय = सत्संग, प्रेम संबंध । पातक = पाप । घातक = नष्ट करने वाला । अकुशल = खराव वृत्ति । अपचय = नष्ट होना । परिसीलन = भली भांति गहराई में घुसकर पढना । मुग्ध = भोला, मूर्ल, भोगोपभोग में आसक्त । याचना = मांग, भिक्षा ।

· श्रयं -- तृतीय जिनेश्वर देव श्री सम्भवनाथ की स्तवना करते हुये कि कहते हैं ---

सेवा का यमं जानकर सब लोगों का पहला कर्तव्य श्री सम्भवनाय 'ाजिनेस्वर देव की सेवा—भक्ति करना है। सेवा—भक्ति की प्राप्ति की प्रथम भूमिका—सोपान, निर्भयता, श्रद्धेप—प्रेम ग्रीर अखेद है।

भगवान सम्भवनाथ की सेवा-भक्ति के लिए, साहस, प्रेम और आनंद की अत्यन्त ग्रावश्यकता है, इन तीनों गुणों के विना मनुष्य जीवन के किसी भी क्षेत्र में मफल नहीं हो सकता। भय ईषा ग्रीर शोक ये मनुष्य के महान शत्रु हैं। जब तक इन तीनों ग्रंतरंग शत्रुग्नों पर विजय न प्राप्त करली जावे तव तक मनुष्य भगवद् भक्ति का अधिकारी नहीं हो सकता।।१।।

मानसिक चंचलता से भय, अरूचि से द्वेप और किसी प्रवृत्ति में हतो-त्साह होने से खेद-शोक उत्पन्न होता है। ये तीनों दोप अज्ञान के चिन्ह हैं। सप्त महाभयों से चित्त चंचल होता है और उनके विसर्जन से अभय प्राप्त होता है। सत्कर्भों में — वार्मिक कार्यों में उचि ही ग्रद्धेष है। मैत्री भाव है। और मद्प्रवृतियों में उत्पाह पूर्वक-जागल्क होकर लगे रहना ही अखेद है, अर्थात् परमार्थवृत्तियों में रस लेते हुए थकान न होना, हढता न खोना ही अनेद है। अतः भय हेप और खेद को त्याग कर अभय, अहेप और अखेद को ग्रहण करना ही श्री सम्भवनाय भगवान की परम सेवा है।।२॥

जिसकी चरमांवर्तन अनंत पुद्गल परावर्तनों में अन्तिम पुद्गल परावर्तन में अन्तिम उत्सेंपिग्गी-अवसंपिग्गी वाकी रही हो; जिसने चरमकरण अपूर्वकरण तथा अनिवृतिकरणं अर्थात् अनूतपूर्व शुभ्परिणाम-हेयोपादेय का ज्ञान (मिथ्यात्व, कपाय और अज्ञान हेय और सम्यक् ज्ञान उनादेय) तथा मिथ्यात्व के उदय को दूर कर सम्यक्त प्राप्ति के योग्य घुभ पिणाम कर लिया हो अर्थात् ग्रंथि भेद कर लिया हो (प्रथम ग्रुण स्थान से चौथा गुण स्थान प्राप्त कर लिया हो) और जिनकी भव अभ्या की अविध पूर्ण रूप से पक गई हो, उनके भय, होप खेद (भय, ईपा और योक) आदि दोप दूर हो जाते हैं। उनके दिव्य नेत्र जुल जाते हैं (योग हिष्ट मिल जानी है) और उसे प्रवचन वाणी निर्दान्त वानेयों की प्राप्ति हो। जाती है अर्थात् सिद्धान्त वानेयों पर (जिनेदवर वाणी पर) पूर्ण श्रद्धा हो जाती है।।३।।

पापों को नार्य करने वाले, सम्यक् दर्धन-ज्ञान-चरित्र रूप मोझ मार्ग के नीयन और समिति गुप्तियों के पालन में जागरक नायुओं के परिचय से नित्संग से प्रकल्याणकारी वृत्तियों का ज्ञान हो जाता है। तब आध्यारिनक ग्रंथ के मुन्ने और मनन करने एवं नत्वों का नैगम आदि नयों द्वारा भली भांति विचार करने से प्रभु सेवा-भित्त का उद्देश्य प्राप्त हो जाता है।।४।।

योग्य कारेंगा से ही कार्य की सिद्धि होती है, इसमें किशी प्रकार का विवाद नहीं है-मदेह नहीं है। विना कारण ही कार्य की सिद्धि चाहें तो यह अपनी बुद्धि का पागलपन है-मूर्वता है। कारण के अनुरूप ही कार्य की सिद्धि होती है। जिस कार्य का को कारण नहीं है उसे उसका कारण मानंकर कार्य सिद्धि मानना मात्र पागलपन है।

जो भय, ईपीं और शोक के त्याग दिना ही, आत्मजानी सायुओं के सत्संग विना ही और आव्यात्निक ग्रंथों के श्रवण मनन विना ही अत्मीत्यान चाहते हैं, वे अपनी मूर्जता का परिचय देते हैं ॥५॥ काज विना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण महि न भूकै। डीलं विना न समें परमारिय, सील विना सत सों न अरू कै। नेम बिना न लहे निह्चेपद, प्रेम विना रस रीति न वूकै। च्यान विना न थैंमें मन की गति, जान विना शिव पंथ न सूकै।

(समयपार नाटक; महा कवि वनारसीदास)

कवि सेवा-भक्ति मार्ग की भिक्षा मांगते हुये, सेवा-भिवत मार्ग की कंठिनता प्रविशत करते हैं-

मोले लोग सेवा-भिवत को सुगम जानकर आदरते है—स्वीकार करते हैं किन्तु सेवा का मार्ग (उपासना) वडा ही अगम्य और अनुपम विजोड ] है। हे जानानंद रस से परिपूर्ण संभवदेव ! मुफ मेवक को भी कभी यह सेवा (उपासना) प्रदान करना, यही इस सेवक की नार्थना है।।६।।

उपासना भागवति मर्नेम्वोऽपि गरीयकी । महापापक्षयंकरी तथा चीक्तं परैरपि ॥

(श्री तर्यशोविजय)

#### श्री ग्रभिनन्दन जिन स्तवत (४)

(राग-घन्याश्री सिंघुग्री - आज निहेजो रे दीसं नाहलो - ए वेशी)
ग्रिमिनन्दन जिण दरंसण तरसिय, दरसण दुरलभ देव।
मत मत मेदे जो जइ पूछिय; सहु थापे ग्रहमेव ।।ग्रिमिन।।१।।
सामान्यें करि दरसण दोहिलूं, निरणय सकलं विशेष।
मद में घेर्यो हो ग्रांघो किम करं रिव सिंस रूप विलेष।।ग्रिमिन।।२।।
हेतु विवादे चित घरि जोइयै; ग्रित दुरगम नयवाद।
ग्रागम वादे, गुरु गम को नहीं, ए सवलो विषवाद।।ग्रिमिन।।२।।
घाती दूंगर ग्राडा ग्रित घणा, तुंभ दरसण जगनाथ।
धीठाई करि मारग संचरूं, सेंगू कोइ न साथ।।ग्रिभिन।।४।।

दरसण दरसण रटतों जो फिल्हें, तो रग्-रों क समान । जेहनै पिपासा श्रमृत पान नी, किम भाँजे विष-पान ।।श्रभि०।।१॥ तरस न श्रावै मरण जीवन तणों, सीके जो दरसण काज । दरसण दुर्लभ सुलभ कृपा थकी, 'श्रानन्दधन' महाराज ।।श्रभि०॥६॥

(४) पाठान्तर—रागवन्याश्री....नाहलो — सावुजी न जाइयै पर घर एकला (ग्र)। दरसण् = दरिसण् (इ, ई, छ)। तरिसये — तरिमये (अ, ऊ)। कहीं कहीं 'तरिसयों,' तरिसयों भी पाठ है। दुरलभ = दुर्लभ (इ, ई, छ, ऊ)। दरशण् = दर्शन (इ)। जो जइ = जो ते (ग्र), जो जई (उ), ज्यो जइ (ऊ)। पूछ्यै = पूंछिइ (उ)। दोहिल = दोहिली (अ, आ) दोहिन (ऊ)। निरण्य = निर्णय (अ, इ, ई)। मद में = छद मे (ग्र)। घेर्यो = घार्यो हो (ग्र) आंघो = ग्रांघो (ग्रा), अन्घो (ई, छ)। घरि = घर (इ, ऊ)। संग्र = संग्र (आ), 'संग्र (इ, ऊ) जो = जे (अ), जो (ऊ)। नो = ते (अ), तो (ऊ)। रण = रन (अ, आ) रिन (इ, ई) रिण् (ऊ)। धेहनं=जे (इ), जे ने (ई)। भांज=भांज (अ, आ, ऊ)। विष = विस (अ, आ, ऊ)। मरण् जीवन = जीवन मरण् (ग्र, आ)। तण् । तण् । दिण् = दुरलभ (आ, ऊ)।

शब्दार्थं —दरसण = दर्शन, देखना, सम्यग्दर्शन । नरासये = वस्तु
प्राप्ति के लिये उत्कंठित होनाः या व्याकु र होना । मत मत = अलग अलग
दर्शन वालों से । सहु = सव । श्रहमेव = श्रहंकार । दोहिलूं = दुर्लंभ । निर्ण्य
=िर्ण्य, निश्चय, फैसला । विलेप = जांच करना, वताना, विश्लेशणकरना ।
धाती = मारक । हूं गर=पहाड । घाती हूं गर=चार घाती कमं, ज्ञाना वरणी,
दर्शनावरणी मोहनीय, अंतराय । आडा = रूकावट, वीच में, वाधक । घीठाई
= धृष्टता । संचरू = संचरण करूं, चलूं। संगू = मार्ग दर्शक । रणरोभ = वन
में नील गाय की तरह, श्ररण्यरोदन । भांजे = भंग होवे, दूर होवे, मिटै । तरस
त्रास = कष्ट । सीभै = सफल हो ।

श्रर्थ-श्री ग्रभिनन्दन जिनेश्वर के लिए तरस रहा हूँ। हे जिनेश्वर देव! आपका दर्शन पड़ा दुर्लंभ है। (यहां 'दर्शन' शब्द में रलेप है) भिन्न २

दर्शन शास्त्रियों के पास' जाकर पूछा, तो सबको अपने हीं दर्शन के श्रेप्टत्व का गर्व करते देखा ।।१॥

दर्शन शास्त्र का सामान्य अध्ययन ही कठिन है, फिर सब का पढ़ कर निर्ण्य करना तो अत्यन्त ही कठिन है। नशे मैं गर्क (डूबा) हुआ अन्धा सूर्य श्रीर चैन्द्रमा के बिम्ब को (रूप को) कैसे पहिचान सकता है ? 11711

आपका दर्शन कैसे प्राप्त होगा ? इसके हेतुओं के विवाद में (भंभट में) चित्त लगाकर देखा जाय तो नयवाद को समभना बहुत ही दुष्कर है। आगम के ज्ञाता सद्गुरु भी कोई नहीं मिल रहे हैं। इस लिए चित्त में उद्वेग है—असमाधि है।।३।।

हे त्रिभुवन स्वामी ! क्षापके दर्शन में अन्तराय डालने वाले—बाघा डालने वाले अनेक घाती पर्वत (घाती कर्म-ज्ञाना वरएी, दर्शना बरएी, मोहनीय श्रीर अन्तराय) बाधक हो रहे हैं। यदि धृष्टता से (हिम्मत करके) मार्ग पर चलता हूँ तो कोई ज्ञानी का साथ भी नहीं मिलता है।।४॥

हे नाथ! आपका दर्शन कैसे प्राप्त होगा। ? यह लोगों से पूछता फिरता हूँ तो जंगल की रोक्स-गाय के समान लोग मुक्ते पागल समक्तते है। (रोक्स गाय जंगल में प्यास से जिस प्रकार पानी के लिए भटकती फिरती हैं और पानी नहीं मिलता है उसी प्रकार दर्शन के लिए भटकता हुआ मैं हो रहा हूँ) जिसे धात्म साक्षात्कार रूपी ध्रमृत पीने की इच्छा हो, उसकी पीपासा (प्यास) मतवाबियों के सिद्धान्त रूपी विष से कैसे तृप्त हो सकती है ? ॥६॥

हे नाथ ! मुक्ते जीवन और मृत्यु से कुछ भी त्रास—कष्ट नहीं है। मुक्ते तो ग्रापका दर्शन प्राप्त हो जाय तो मेरे सब कार्य सिद्ध हो जावें। हे प्रनन्त आनन्द के घनी ! यों तो आपका दर्शन बहुत ही दुर्लभ है किन्तु आपकी कृपा. से तो बहुत सुलभ है ।।६॥

### श्री सुमति जिन स्तवन (१)

(राग-वसन्त या केदारी)

सुमित चरण केंज श्रातम श्ररपण, दरपण जिम श्रविकार । सुग्यानी ।

'मित तरपण वहु संमत जाणिये, परिसरपण सुविचार ।।सु०।।१॥

त्रिविघ सकल तनुघर गत श्रातमा, विहरातम घुर नेद ।सु०।

वीजो श्रन्तर-श्रातम, तीसरो, परमातम श्रविद्धेद ।।सु०।।२॥

श्रातम वृद्धे कायादिक ग्रह्मो, विहरातम श्रवरूप ।सु०।

कायादिक नो साखीघर रह्मो. श्रन्तर श्रातम भूप ।।सु०।।३॥

त्रानानन्दे पूरण पावनो, बरजित सकल उपाघ ।सु०।

श्रतीन्द्रिय गुरा गण मिग्र श्रागरू, इम परमातम साघ ।।सु०।।४॥

विहरातम तिज श्रन्तर श्रातमा, रूप थई थिर माव ।सु०।

परमातमनुं श्रातम भाववूं, श्रातम श्ररपण दाव ।।सु०।।१॥

श्रातम श्ररपण वस्तु विचारतां, भरम दलै मित दोष ।सु०।।

परम पदारथ सम्पति संपजै, 'श्रानन्दघन' रस पोष । सु०।।६॥

(१) पाठान्तर—राग....केदारो = कागलीयो करतार—ढाल ऐहनी (अ) केंज = कमल (अ) दरपण = दर्पण (अ) । तरपण = तर्पण (इ, ई)। परिसरपण = परिसर्पण (इ, ई) परसरपण (क)। घुर = घुरि (अ, ई' ड) कायादिक = कायादिक नौ (अ), अधरूप = ग्रधनूप (अ)। आतमभूप=आतम रुप (अ, इ, ई, उ, क)। वरिजत = विजत (इ, ई) उपाध = उपाधि (अ, आ-रु, क)। अतीन्त्रिय = अतिइन्द्रीय (अ)। ग्रण ग्रण = ग्रिण (अ) ग्रागरू = आगरी (अ)। साध = साधि (अ, आ, उ)। तिज = तजी (अ, उ) तज (क)। भाववूं = वर्छुं (क)।

शन्दार्थ — केंज = कंज, कमल । अरपण = अर्पण करना, भेंट-करना। दरपण = मुख देखने का काँच। अविकार = विकार रहित, मलीनता रहित। मित = बुद्धि । तरपण् = तपंण्, तृष्त करना । परिसपण् = अनुगमन करना । विविध = तीन प्रकार की । गकल = सव । तनुधर = शरीरधारी । गत = गई हुई, रही हुई । धुन = प्रथम । अदिछेद = द्रखंड, अविनाकी । अघ = पाप । साखीधर = साक्षी, गवाह, जाता,हण्टा । पावनो = पावन, पवित्र । वर्राजत = स्यक्त, छोडा हुआ । जपाध = उपाध , विचन, वाधा । आगरू = खान, खजाना । भाववूं = विचारना । दाव = उपाय । भरम = भ्रम, संजय । परम पदारथ = मोक्ष । संपर्ज = प्रगटे, उत्रब होय ।

भ्रथं — दर्पेग के समान अविकारी और किर्मल श्री सुमितनाथ जिनेश्वर के चरण कमलों में आत्म समर्पेण करता हूँ। यह बहुत लोगो के द्वारा मान्य और बुद्धि की कृष्ति करने वाला—संतोप करने वाला है। अतः इस विचार का ही अनुगमन करना चाहिये,।।१॥

समस्त देहधारियों में आत्मा की स्थित तीन प्रकार से है। प्रथम विहरात्मा, द्वितीय अन्तरात्ना और दृतीय श्रविद्या (श्रविनाशी-अखण्ड) पर-भारमा ॥२॥

देहादिक पृद्गल पिंड को आत्म बुद्धि से ग्रहरण करना (आत्मा सम-भना) पाप रूप वित्रात्म भाव है। देहादि के कार्यों में साक्षी (गवाह) रूप से दर्शक हो कर रहने वाला ही राजा अन्तरात्मा है।।३॥

सम्पूर्ण उपाधियों से रहित (अविकारी), परम पवित्र, ज्ञानान्द से परि-पूर्ण (भरा हुआ) श्रीर इन्द्रियातीत (इन्टिये से न जाना जाने वाला) अनेक गुरा रत्नों का खजाना, परमात्मा को समक्षी ॥४॥

वहिरात्म भाव (पुद्गलानन्द) को त्याग कर धैर्य पूर्वक अन्तराभिमुख हो अर्थात् ग्रानन्द की खोज अपने अन्दर कर परमात्म स्वरूप का चिन्तन ही आत्म-समर्पण का श्रेष्ठ उपाय है ।।५।।

आत्मार्पेण तत्व पर विचार करने से बुद्धि का महान दोप-संशय जाता रहता है.। ज्ञान रूपी महान संपदा प्रगट होती है जो पूर्णानन्द-रस को पुष्ट करने वाली है.।।६।।

### श्रीपद्मप्रभ जिन स्तवन (६)

(राग-मारू तथा सिन्धुः चांदलिया सदेशो कहिले म्हारा कंत ने रे, ए देशी)
पदम प्रभु जिन तुज मुभ ग्रांतरू, किम भांज मगवन्त ।
करम विपाक कारण जोंइन, कोई कहै मितवन्त ।।पदम०।।१।।
पयइ ठिई ग्रणुभाग प्रदेशथी. मूल उत्तर बहु मेद ।
घाती ग्रघाती बंधोदयोदीरणा, सत्ता करम विछेद ।।पदम०।।२।।
कनकोपलवत पयडी पुरुष तणी, जोड़ि ग्रनादि सुभाय ।
ग्रन्य संजोगी जेंह लिंग ग्रातमा ससारी कहवाय ।।पदम०।।३।।
कारण जोगे बांधे बंधन, कारण मुगति मुकाय ।
ग्राश्रव संवर नाम ग्रनुक्रमे हेयोपादेय सुणाय । पदम०।।४।।
जु जन करणे ग्रंतर तुभ पड्यो, गुण करणे करि भंग ।
ग्रन्थ उक्ति करि पंडित जन कह्यो, ग्रन्तर भंग सुग्रंग ।।पदम०।।१।।
तुभ मुभ ग्रन्तर ग्रन्ते भांजसे, बाजस्य मंगल तूर ।
जीव सरोवर ग्रतिशय वाधिस्ये, ग्रानन्दघन रस पूर ।।पदम०।।६।।

<sup>(</sup>६) पाठान्तर—राग....कंतनेरे = ढाल सोहलानी (अ)। पदम = पद्म (इ, ई) प्रभ = प्रभु (अ, ज, ऊ)। आंतरू = आंतरी (अ, आ) भांजी = भांजी (अ, आ, ऊ)। जोइने = जोयने (ऊ)। पयई दिर्द = पैडीठिई (अ)। वहु = विहूँ (ज, ऊ)। वंघोदयोदीरणा = वंघ जदय जदीरणा (अ) वंघ जद दीरणा (आ) वधुदयदीरणा (इ, ई, ज, ऊ) सत्ता = संत (अ, ज, ऊ) पयडी = पयिड (इ, ज) पयड (ऊ)। जोडि = जोडी (अ, आ, ज, ऊ)। सुभाय = स्वभाव (ई, ज) सुभाव (ऊ)। अन्य = अनादि (अ), संजोगी = संयोगी (अ, आ, ज)। जहें = जां (अ, आ) जिहां (ज, ऊ)। कहवाय = कहिवाय (ज, ऊ)।

जोगे = योगे (अ, श्रा उ) । वांघे = वंघे (अ, उ) । वंधने = वंघ में (उ) । कारण = मुकाय = मुगित कारण मुंकाय (ऊ) । हेयोपादेय = हेयोदेय (अ, आ, इ) । जुंजन करणे = जे जिन कारणे (श्र) युंजन करणें (इ, ई) युंज्जन (उ) । उनित = उकित (अ, आ, उ, ऊ) । युक्ति (ई) । अन्ते = अन्तए (श्र, आ), अंतर (इ, ऊ) । 'उ' प्रति में न 'अन्ते' है, न 'अंतर' है । भौजसे = भाजिस्य (अ, आ) भाजस्ये (उ, ऊ) । वाजस्य = वाजिस्ये (अ, आ), वाजिस (इ) । वाधिस्ये = वाघ से (इ) वांघस्ये (उ) । वाघस्ये (ऊ) ।

शब्दार्थ-आंतरू- ग्रन्तर, फर्म । मांजै - नष्ट होय । विरानै - फल । मतिवन्त = बुद्धिमान । पयइ = प्रकृति वंव, कमं पुद्गलों का स्वभाव । ठिई - स्थिति वंध, कमत्त्व में रहने का काल प्रमाण । श्रणुभाग=कर्म का रस, कर्म का बल । प्रदेश = कर्म समुदाय का विभाग । मूल = मुख्य । उत्तर = अवान्तर भेद। घाती = आत्मा के मून गुणो (ज्ञानदि गुणों) को नष्ट करने वाले। ध्रवाती = मूलगुणों को नाश न करने वाले तथा संसार में परिश्रमण कराने वाले कर्म । वंबोदयोदीरएगा = वंध, उदय, उदीरएगा, वंध-कर्मी का आत्मा के साय मिलाप । उदय–कर्म फल प्रवृति काल । उदीरणा≔कर्मफल प्रवृति काल से पूर्व ही कर्मों को उदय के लिये खेंच लेना। सत् गा≔आत्मा के साथ कर्में। की मी तुदगी । विच्छेद=विच्छेद, नाश होना, अलग होना । कनकोपलवत=सोना धौर पत्यर के नमान, सोना और पत्थर मिट्टी खान से एक साथ निकलती है उसी के समान । पयडी - कर्म प्रकृति । पुरुष तस्मी - ग्रात्मा की । जोडी - साथ, संवंव। सुमाय = स्वभाव से ही । ग्राश्रव = कर्म ग्रहण का द्वारा। संवर = कर्म ग्रह्मा के मार्ग की रोक । हे गेपादेय = छोडने ग्रीर ग्रह्म करने योग्य । जुंजन करेंगे = कर्मों से जुडना । गुण करेंगे = गुणों की ग्रहण करने पर । भंग = नष्ट । उनित = कथन । सुअंग = उत्तम उपाय । वाजस्यै = वजेंगे । तूर 🖚 तुरही, वाजा । श्रतिशय 🖚 अत्यन्त । वाधिस्यै 🖛 वढेगा ।

ग्नर्थं—हे पद्मप्रभ जिनेश्वर देव ! आपका मेरा अन्तर किस प्रकार दूर होगा ? कोई बुद्धिमान ग्रन्तर के कारणों पर विचार कर उत्तर देता है—कर्म विपाक होने से-ग्नर्थात् कर्म के कारण का अभाव होने पर ॥१॥ कर्म के विषय में बनाया जाता है— ग्रुति, स्थित, अनुभाग और प्रदेश ये वंब के चार भेड़ हैं। कर्म के मूठ आठ और उत्तर वहुत भेद हैं। (मूठ भेद आठ हैं—जानावर्ती, दर्शनावर्ती, मोहनीय, अंतराय, वेडनी, नाम, गोत्र और आयुष्य और उत्तर भेद अनेकानेक हैं। मूच्य १४८ अयवा १६८ हैं।) कर्म के मून भेदों में प्रयम चार तो घाती कर्म हैं। विद्रेल जार अघाती कर्म हैं। इन आठ मूल क्यों का तथा इनकी उत्तर प्रकृतियों का बंध होता हैं अर्थात् आर्द्म प्रदेशों के साथ मेल होता है, किर ये उदय में आते हैं—फल देने में प्रदृत होते हैं। इन बढ़ कर्मों की उदी त्यों होती हैं अर्थात् तप आदि करके इन्हें उदय में लाकर नष्ट कर दिया जाता है। किर जो बाकी रहे कर्म हैं उनकी 'सता' नाम से कहा जाता है। इन सत्ता कर्मों के विच्दर—क्षय से ही प्रमुप्त जिनेस्वर के और मेरे मध्य का ग्रन्तर दूर होगा, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं ।।२॥ (विशेष जानकारी के विष् कर्म ग्रन्थ देखने चाहिये)

जिन प्रकार स्वर्ण और परवर ग्रनादि काल से बान में मिले हुए पाये जाते हैं उसी प्रकार कमें । इनि की और पुरुप(आत्मा) की भी जो भी ग्रनादि काल से चली ग्रा रही है। जब तक आत्मा अन्य-कमं पुद्गलों – के साथ संबंधी है, तब तक वह मंसारी कहलाता है।। ३।।

कर्मवन्य के कारण (मिथ्यात्व, अन्ना, कपाय और योग) उत्पन्न होने पर ही आत्मा कर्मो का बन्य करता है, इन कर्मवन्यन के कारणों को छोड़ने से ही आत्मा की मुक्ति होती है। आयव से कर्म वन्य होता है इसलिए यह हेय है-त्याच्य है और जिससे कर्म वन्य रकता है वह संवर उपादेय है-प्रहण करने योग्य है। ४॥ (इस हैयोगादेय की विवेकपूर्वक प्रवृत्ति होने से ही मगवान पद्मप्रम से अन्तर हूर होगा- ऐसा बुद्धिमान छोग कहते हैं।)

कर्नों के योग (सम्बन्ध) से ही, हे नाय! आप में और मुक्त में अन्तर पड़ा हुग्रा है-व्यवधान पड़ा हुग्रा है। गुण करण से-आत्म गुण (ज्ञान, दर्भन ग्रीर चारित्र) से-इन गुणों के विकास से-इस युक्तन करण का नाश होगा अर्थात् आपके और मेरे मध्य का व्यवधान दूर होगा। चास्त्रों के प्रमाण से पंडित लोगों ने (ज्ञानियों ने) इसे व्यवधान दूर करने का उत्तम अंगं (श्रेंष्ठ उपाय) माना है।।ধ।।

(आत्मा का कर्म से सम्बन्ध करने की क्रिया को 'यु'जनकरएा' कहत हैं। ग्रीर आरंमा के ज्ञान, दर्शन और चारित्र ग्रहण करने को 'गुण करएा' कहते हैं। गुणकरण से ही ही यु'जनकरण का नाज होता है)

ज्ञानकरण गु ग्रकरण दो, ए सुभाव सम्बद्ध ।
गुणकरणे समवाय फल, अवल अकल रिधि सिद्ध ।। (श्रीज्ञानसारजी)
ज्ञान जीव की सजगता, कर्म जीव क्षं भूल ।
ज्ञान मोश्र को अंकुर है, कर्म जगत को मूल ।। प्रशा
ज्ञान चेतना के जगे, प्रकटे केवल राम ।
कर्म चेतना में वसे, कंमं-वन्च परिग्णाम ।। प्रदा

(ममपनार नाटक अ० १०; महाकवि पण्डित बनारसीदास).

हे नाय ! अन्त में भ्रापके और मेरे बीच का यह अन्तर (व्यवधान)' दूर होगा और मांगलिक वाद्यंत्र वजेंगे । अर्थात् अनाहत नाद रूपी मांगलिक वाओं वजेंगे । जीव रूपी यह मरोवर (तालाव) भ्रानन्द-समूह के रस से परिपूर्ण होकर अत्यन्त वृद्धि को भ्राप्त होगा जिससे मेरी पद्य रूपी निर्मल आत्मा 'पद्मप्रभ' जैसी वन जावेगी ॥६॥

### श्री सुपार्श्व जिन स्तवन (७)

(राग—सारंग मल्हार, ललनानी देशी)

श्री सुपास जिन बिंद्ये, सुखं सम्पति नो हेतु । ललना । शांत सुघारस-जलनिधि, भवसागर माँ सेतु । ललना ॥१॥ सात महाभय टालतो; सप्तम जिनवर देव । ललना । सावधान मनसा करी, घारो जिन-पद सेव ॥ ललना ॥श्री सु०॥२॥ सिव संकर जगदीश्वरू, चिदानन्द भगवान । ललना ।
जिन ग्रिरहा तीर्यं करू, जोति स्वरूप ग्रसमान गललना।श्री सु०।।३॥
ग्रलख निरञ्जन वच्छ्नू सकल जन्तु विसराम । ललना ।
ग्रमयदान दाता सदा पूरण ग्रातम राम । लजना।श्री सु०॥४॥
बीतराग मद कल्पना, रित ग्रिरित भय तोग । लजना ।
निन्ना तन्त्रा दुरदसा, रिहत ग्रबाबित जोग ॥जलना।श्रो तु०:।६॥
परम पुरुष परमातमा, परमेसर परधान ।
परम पदा य परमेट्डो, परमदेव परमान । लजना।श्रो सु०॥६॥
विवि विर्वि विश्वंभरू, ऋषोकेस जगनाय ।
ग्रमहर ग्रममोचन धणी, मुगित परमपद साय ।।ललना।श्रो सु०॥७॥
इस ग्रनेक ग्रिम्हा वर्रे, ग्रमुमव गम्य विचार ।
ले जाएँ। तेहनै करं, 'ग्रानन्द्रधन' ग्रवतार ।।ललना।श्री सु०॥म॥

पाठान्तर—राग...देनी = हाल मयुकरनी (अ), राग सारंग नत्हार (इ) देशी लच्नानी (उ, क) सुराम = मुराश्वं (अ)। नो = नं (अ, उक)। हेनु = हेन (अ) शंन = हान्ति (अ, आ, इ, द, क)। मां = मही (अ) मांहै (उ)। जिन पद=निनग्द (अ,आ)। निन्न = शिन्न (इ,उ)। अरिहा=प्ररहा (अ)। तीर्यं कह = नित्यं कह (अ, आ)। जोनि = ज्योति (अ, आ, इ, ई, क)। स्व-रूप = स्वर (अ, आ, ई) असमान = समान (उ, क)। वच्छतु = न्छतु (उ,क)। मद = मन (अ)। रिन = रिनो (इ, ई)। जोग = योग (अ, आ, इ, ई, उ)। परमेसर = परमेश्वर (इ, ई, उ, क)। परमेस्टी = परमेश्वर (इ, ई, उ, क)। परमेस्टी (अ, आ,)। परिनृष्टी (क)। परमान = परिनो (अ)। मुगनि = मुक्ति (आ, इ, ई, क)। मुक्त (उ)। साय = साम (अ)। वर्षे = यरू (अ, आ)।

शब्दार्य-मुख = ब्रात्निक सुन । सम्मत्ति = सन्यत्ज्ञान, दर्शन, चारित्र । हेतु = कारण । शांत = कपवों के नष्ट होने पर, स्त्यन्न स्थिति, निज स्वरूप में स्थिरता । सुधारस - अमृतरस । जलनिधि - समुद्र । सेतु = पुल । सात महाभय = सात महान मय - इहलोक भय, परलोक भय. श्रादान भय, अकस्मात भय, आजीविका भय, अपयश भय, मरण भय, कान, फोध, मद, हर्ष, राग, हेप, और मिध्यात्व भाव भय । अरिहा = कर्मशत्रु के नाशक, ग्रईन्त । श्रसमान - अनुपम, अतुल्य । निरंजन - निलय । वच्छलू = वत्सल, सव के हित कारी, कल्याण कारी । विसराम - विश्वाम, सुख के स्थान । मद = गर्व । कल्पना - संकल्प विकल्प । हुरदसा = बुरी अवस्था, हुर्दशा, हुर्गछा, धृणा । विधि - विधाता, सन्मागं को स्थापित करने वाले । विरंवी = ब्रह्मा, आत्म ग्रुगों की रचना करने वाले । विश्वंभक्त = विश्वम्भर, संसार में श्रात्म ग्रुगों को पोदण करने वाले । ऋषीकेस=इंद्रियों के स्वामी । ध्णी - स्वामी । अभिधा = नाम, गुगा निष्पन्न नाम ।

श्रयं—श्री सुपार्श्वनाय भगवान को भक्ति पूर्वक वन्दन (प्रणाम) करो। जो प्रश्नु सांसारिक और श्रनन्त श्रात्मिक सुख ग्रीर सम्पत्ति के हेतुभूत हैं। श्रीर जो शांतरस (वैराग्य) रूपी अमृत के समुद्र एवं संसार समुद्र को पार करने के लिए सेतु (पुल) के समान है।।१।।

यह सातवें जिनेव्वर देव सातों ही महाभयों (सांसारिक सात महा भय १ इहलोक भय, २ परलोक भय, ३ आकस्मिक भय, ४ ग्राजीविका भय, ५ आदान भय, ६ अपयश भय, ७ मरणमय तथा आध्यात्मिक सात महा भय १ काम, २ क्रोय, ३ मट, ४ हर्प, ५ राग, ६ होप और ७ मिथ्यात्व) को टालने वाले—दूर करने वाले हैं। इसलिये सावधान होकर और मन लगाकर इन जिनेव्वर देव की सेवा धारण करो।।२।।

यह जिनेश्वर देव उपद्रवों का संहार (नाश) करने वाले होने से 'शिव' हैं, कल्याएकारी होने से शंकर है, ग्रात्म साम्राज्य के शासक होने से 'जगदीश्वर' हैं, ज्ञानमय और आनन्द मय होने से 'चिदानंद' हैं, अपने स्वरूप ऐश्वयं को प्राप्त कर लिया है इसलिये 'भगवान हैं। राग—हेप विजयी होने से 'जिन', कमं—शबुग्रों के नाशक होने से 'अरिहन्त', धार्मिक संस्था—चतुर्विष्ठ संघ

क़े संस्थापक होने से 'तीर्थ कर'. ज्ञान-ज्योति से प्रकाशमान होने से 'ज्योति स्वरूप' हैं ग्रीर इनकी किसी से भी तुल्लना नहीं की जा सकती है ग्रत: यह 'असमान' हैं, अर्थात् इनके समान यही हैं ॥३॥, ...

ं श्रांकों द्वारा यह देखे नहीं जाते, इसिल्ये अलख हैं। वासना रहित होने से यह 'निरंजन हैं। मब प्राणियों पर वात्सल्य भाव रखने से दच्छलू-वत्सलू' हैं और सब प्राणियों के विश्राम रूप हैं। ज्ञानामृत पान करा के मब को अभय बनाते हैं इसिल्ये अभय दांन के दाता हैं। अथवा शाणीमात्र (जड-जंगम) के अहिसक होने से 'अभय दात्री' हैं। युद्ध ग्रात्म स्वरूप में निरन्तर 'विना प्रयास रमण करने वाले हैं ग्रतः 'ग्रात्मराभी हैं। ४॥

भगवान सुपादवंनाय राग रहित हैं, मद, कल्पना, आजिन, अप्रीति, भय, शोक आदि मानिमक विकारों एवं निद्रा (नींट) तन्द्रा (ऊंघ), आलस्य आदि जारिरिक विकारों से मुक्त हैं इमलिए अवाधिन योगवाले हैं अर्थात् सयोगी केवली अवस्था में मन, वचन तथा काया के योग आपको बाधा रूप नहीं है।।१।।

पूजा (भक्ति) के परम पात्र होने से 'परम पुरुष', परमपद के पाने से 'पर-मात्मा' अनन्त शक्ति रूप ऐश्वयं के घारण करने से 'परमेश्वर' पुरुषोत्तम हैं-'प्रधान पुरुप' हैं। अतः प्रामाणिक रूप से आप ही प्राप्त करने योग्य 'परम-पदार्थ हैं, सेवा-भक्ति-करने योग्य 'परम इष्ट हैं और पूजने योग्य 'परम देव' स्वयं सिद्ध हैं ॥६॥

द्वादर्शांगी रूप मुक्ति मार्ग के सर्जनहार होने विधि (विधाता), मोक्ष मार्ग का विधान रचने के कारण श्री सुपार्श्वनाथ भगवान ब्रह्मा हैं। श्रापका उपदेश आत्मिक गुणों का पोषण करता है अतः आप 'विश्वम्भर' है। इंडीय विजयी होने के कारण आप 'ऋसिकेश' एवं जगत पूज्य होने से 'जगन्नाथ' हैं। हें स्वामी! आप पापों को हरण करने वाले हैं, पापों से छुटकारा दिलाने वाले हैं साथ ही परमपद—मोक्ष को प्रदान करने वाले स्वामी हैं ॥७॥ इस प्रकार इन भ्रनेक अभिघाओं (नामों) के अतिरिक्त भ्रापके अनेक गुरा निष्पन्न नाम है, उन सब का विचार अनुभव गम्य है। जो इन अभिघाओं का यथार्थ स्वरूप जानता है उसे यह आनन्दघन सुपार्श्वनाथ भगवान आनन्द का भ्रावतार ही कर देते हैं—आनन्द रूप ही बना देते है।।।।।

## श्री चन्द्रप्रभ जिनस् तवन (८)

(८) पाठान्तर—राग....मुकावै झराग, केदारो गौडी (ग्र), कुमारी रोवे आत्रन्द करें, मुने कोई मुकावै (ग्रा, च, ऊ)। यह स्तवन '६, ई प्रतियों में इस प्रकार आरंभ किया गया है—'देखण दे रे सखी मुने देखण दें। चन्द्रप्रभ = चन्द्र प्रमु (ग्र, आ, इ, ई, उ, ऊ) । मुने = मीने (ग्र,) मोने (आ)। इन्द्र = वृन्द (इ, ई) गत = गित (ऊ) । दंद = हंद (इ, ई) । निगीदे = निगीद (इ, च, ऊ) आऊ = आई (इ, ई, उ) । वाऊ = वाउ (इ, ई, उ, ऊ) वनसपित = वनस्पित (म्र, आ) घण = घणा (कहीं, कहीं) । दिहा = दीहा (अ, आ, उ, ऊ) । निहं = नहीं (म्र, म्रा, उ) नहीय = (ऊ) । चीरिदी = चउरिदी (इ, इ) । गित = गत (इ, उ) । चित्यो = चढीयो (अ) । जाणिये = जाणीये (अ, आ), जाणीई = (उ) । विण = विणु (म्र) । मित = मिन (अ) । मिणिये = म्रागीई (उ) । मगित = मिनत (इ, ई) । अवंचक = म्रवंछक (अ) जोग = योग (इ, ई, उ) । किरिया = किरिय (म्र), किया (इ, ई) । जोय = होय (म्र, आ, इ, ई) । खयं = क्षय (इ, ई, उ) थाय = जाय (म्र, आ, इ, ई) ।

शब्दार्थ — उपसम रस = द्यांत रस । कंद = मूठ । गत = चला गया। किलमल = रागहे पादि मैल । दंद = हंद, उत्पात । सुहम = सुटम । निगोदे= गित विशेष में, साधारण वनस्पतिकाय में । वादर = दिलाई पढने वाले जीव । पुढवी = पुट्यी काय । लाऊ = जल, अप्पकाय । तेऊ = अग्निकाय । वाऊ = हवा के जीव । लेस = किचित भी । घण = घणा, अधिक । दीहा = दिवस । दीठो = देला । दीदार = दर्शन । वि = हे इंद्रिय जीव । ति = तीन इंद्रिय वाले जीव । चीरिंदी = चार इंद्रिय वाले जीव । लीहा = रेला । सभी = मनवाले जीव । पण = परन्तु । तिरि = तियं च । निरय = नरक । अनारज = अनायं । अपज्ञता = अपर्यप्ता जीव । प्रतिभास = अन्तर मृहूतं काल की स्थिति । चतुर = पूर्णं ज्ञानी परमातमा । यल = स्थल, स्थान । मत=अभिप्राय । लही = प्राप्त कर । अवंचक = कपट - कुटिलता रहित । प्रेरक = प्रेरणा देने वाला । अवसर - अनुकूल समय । कामित = इच्छित, मन चाहां । सुरतल = कल्य वृक्ष ।

म्र्यं कित या भक्त की सुमित अपनी संखी श्रद्धा से कहती है के संखी श्रद्धे ! अब तो मुक्तेश्री चंद्रप्रभ भगवान के मुख चंद्र को देखने दे । यह उपसम रस का भूल है । यह देवताओं के इन्द्र और पनुष्यों के इन्द्र महाराजाश्रों द्वारा सेवित है । यह कनुपित मल, आशा निराशा एवं दुख-दृन्द से रिहित है इस मुख-चंद्र को मुक्ते वारंवार देखने दे ॥१॥

इस मुखचंन्द्र को मैने सूक्ष्म निगोद में नही देखा, श्रीर वादर निगोद में तो खास तौर पर नहीं 'जेखा । उसी भांति पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायू काय में भी लेश मात्र नहीं देखा । (जब मैं वहाँ—इन उक्त स्थानों में थी) । अब तो इस मनुष्य जन्म में जहाँ मैंने उत्तम कुल, आदि प्राप्त किया है, मुक्ते चंद्रप्रभ भगवान को देखने दे—लो लगाने दे । ।।२।।

वनस्पति में भी दीर्थ काल तक इस मख चन्द्र के दीदार (दर्शन) नहीं हुए । हे न्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं संजी पंचेन्द्रिय गतियों में भी दर्शन के बिना में जल रैखा के समान निष्फल हो गई ॥३॥

देवलोक में, तियं च योति में, नकं निवासों में यह दिखाई नहीं पढ़ा और ग्रनायं मनुष्यों की संगत के कारण दुलंग मनुष्य अवःमें-जन्म में-भी यह ज्वतुर हाथ नहीं श्राया तो प्रतिभास रूप अपर्याप्त अवस्या में तो किस -प्रकार हाथ आता ग्रयीत् किस प्रकार इस मुख-चंद्र के दर्शन होते .।। ४।।

इस प्रकार अनेक स्थल (स्थान) जिनेश्वर देव विन्द्रप्रभ के दर्शन विना व्यतीत हो गये। अव जिनागम से बुद्धि को निर्मल करके चेत्रित शुद्धि करके प्रभु की निष्काम भाव से सेवा-भित्त करो ॥५॥

कामना (इच्छा) रहित पवित्र साधुओं की भिक्ति से अवंचक (कुटिलता रहित) योग की प्राप्ति हो नि है । इस अवंचक योग की 'कियायें (कायें) भी उसी प्रकार अवंचक अमोध — अचूक होती हैं और इसका फल भी निरुचय ही अवंचक होता है। अर्थात् आत्म स्वरूप को प्राप्त सद्युरु के योग से यह अवंचक त्रिपुटी — निज स्वरूप को पहचानना योग, अवंचकता स्वरूप की साधना, 'किया अवंचकता तथा स्वरूप को प्राप्त करना, फल अवंचकता निद्ध होती '।।।।

### ंश्री सुविधि जिन स्तवन (६)

(राग-केदारो-इम घन्नो घणनै परचावै-ए देशी)

सुविधि जिणेसर पाय नमीने, शुभ करणी इम कीजेरे।
श्वात घण उलट ग्रग धरीने, प्रह ऊठी पूजीजेरे। सु०॥१॥
द्रव्य भाव सुवि भाव धरी ने, हरिल देहरे जइये रे।
दह तिग पण ग्रहिगम सांचवतां, एकमनां धुर थइये रे । सु०॥२॥
कुसुम श्रवलत वर वास सुगंधो, घूप दीप मन साली रे।
श्रा पूजा पण भेद सुणी इम, गुरु मुल श्रागम भाली रे। । सु।।३॥
एहनू फल दुइ भेद सुणीजे, ग्रन्तर ने परम्पर रे।
श्राणा पालन वित्त प्रसत्ति, मुगित सुगित सुर-मिन्दर रे। सु०॥४॥
फूल श्रवलत वर घूप पइवो, गंध निवेज फल जल भिर रे।
श्राग ग्रग्न पूजा मिलि ग्रड विधि, भावे भिवक शुभ गित वरि रे

सतर मेद इकबीस प्रकारे, श्रष्ट्रोत्तर सत भेदे रे।
भाव पुजा बहु विधि निरधारी, दोहग दुरगित छेदे रे।।सु०।।६।
नुरिय भेद पडिवत्ती पूजा, उपसम खोग सयोगी रे।
चउहा पूजा उतराभयणे, माखी केवल भोगी रे।।सु०।।७।।
इम पूजा बहु भेद सुणीन, सुखदायक सुभ करणी रे।
मविक जीव करसे ते लहसे, 'श्रानन्दधन' पद धरणी रे।।सु०।।८।।

(९) पाठान्तर—राग....परचावै = ढाल, सुिंग वहिनी पिउडो परदेशी (अ) इम घन्नो....परचावै (आ, उ, ऊ)। घर्ण = घर्णु (अ, आ) घर्णो (इ, ई) उलट अंग = अंगे ऊलट (अ), ऊलट अंग (ऊ)। ऊठी=उठी (इ,उ)। पूजीजैरे=

पूज रजीजे (अ), हरिब=हरखें (अ) हरवै(आ, उ, क) हरिष (इ, ई) । अहि-गम = ग्रभिगम (उ) । घुरः धुरि (ग्र, ग्रा, ई, उ) । यहये = थहई रे (उ) । अक्-खत=अक्षत (मा, इ, ई, उ, क) । सुगंधी = सुगंधी (अ,) । मन = मनि (अ) मुणि (कहीं कहीं)। अँग - अंग (अ, आ, ई, उ, ऊ)। पूजा - पूज (म्र)। एहनू - एहनु (म, ई) दुइ = दो (इ, उ, क) दोय (ई) । परंपर रे=पारंपर रे (अ)। प्रसत्ती = प्रसन्नी (मा, इ, ई)। सुगति = सूरगति (अ, आ,) सूर मंदिर रे = सुन्दर रे (ग्र), सुम मन्दिर रे (इ)। श्रमखत = अक्षत (आ, इ. च, क)। पहनी = पहनी (अ, आ, इ, ऊ)। निनेज = नेनज (म्र)। नैनेच (आ, उ, क) निवेद्य (इ, ई)। भरि रे - भर रे (म्र, आ, क)। तरि रे (उ)। मिलि -मिलिनै (अ, उ)। भावे = भावै (अ, आ, क)। तावे (उ), भविक = भुविक (उ) भवि (ऊ)। वरि रे=वर रे (अ, आ, इ, ऊ)। सतर = सत्तर (अ, उ) अठ्ठोत्तर = ग्रठोत्तर (का क), अब्टोत्तर (इ, ई)। सत = सौ (अ,)। पुजा = पूज (अ), पूजा (आ, उ, क) । तुरिय - तुरय (आ) तुरीय (उ) । उपसम = उनसम (अ)। खीरा = क्षीरा (इ, ई,) सयोगी रे = सँयोगी रे (इ, ई)। चउहा = चडदह (अ)। पूजा = पूज इम (ग्र,) पूजा इम (आ, उ, क)। उतराभयणे = उत्तरभयरो (ग्र, आ, उ, क)। सुम = शुभ (इ, ई)। करसे = करस्सै (ग्र, आ, उ, क)। लहसे = लहिस्यै (ग्र. आ. उ.क)।

शब्दार्थ— जलट = उल्लास, उमंग । प्रह = प्रातः काल । सुचि = पवित्र हरिख = प्रसन्नता पूर्वंक, । देहरे = मंदिर । दह = दश । तिग = तीन । पण = पांच । ग्रहिगम = अभिगम । साचवतां = पूर्णं करके । घर = स्थिर । कुसुम = पूल्ल । अक्खत = अक्षत, चांवल । वर = श्रेष्ट । वास = सुवास से । सुंगघो = गंधित । दुइ = दो । ग्रनन्तर = अन्तर (फकं) रहित, तुरत । परंपर = परम्परा से, क्रम से । आणा = आजा । प्रसत्ति = प्रसन्नता । सुगति = अच्छी गति (मनुष्य, देव) । सुर मन्दिर = वेमानिक देवो के मन्दिर (स्थान)। पइवो = दीपक । गंध = केशर ग्रादि । नेवज = नैवेद्य, वादाम आदि मेवे । अड विधि = ग्रष्ट प्रकारी पूजा । भावे = भाव पूर्वंक करो । मविक = भव्य जीव, मुक्ति में जाने वाले प्राणी । सतर = सतरह । अठ्ठोतर = एक सौ आठ । दोहग =

दुंभीग्य। दुरगति च खराव गति (नरक,तिय व) । छेदे रे क्ल नष्टं कर देता है। तुरिय च वौथां । पडिवत्ती=प्रतिपत्ति, आत्म ग्रंण का अनुभव, प्रात्म स्वरूप प्राप्ति । भाखी = कही है। घंरणी = पृथ्वी । ग्रानन्दघन पद घरणी = भोंका।

ग्रर्थे अपी सुविधिनाथ भगवान के चरणो में नमन करके आगे कही गई विधि से शुभ कार्य करने चाहिये। हृदय में अत्यन्त उत्साह और हर्ष पूर्वक प्रातः काल उठते ही विनय श्रद्धा पूर्वक भगवान का स्मर्ण करना चाहिये

द्रव्य और भाव से पवित्र—शुद्ध होकर (द्रव्य शुद्धि—शीरर 'एवं वस्त्रीं से पित्र होकर और भाव शुद्धि—हृदयं को काम, कीघ, लोभ, वासना रहित करके) हर्षोत्फुल्ल होकर मन्दिर जाना चाहिये। दंश त्रिक—(तीन निस्सही, तीन प्रणाम, तीन प्रदिक्षणा, भूमि प्रमार्जन तीन समय, तीन पूजा, तीन अवस्था, तीन अवलंबन, तीन मुद्रा, और तीन प्रणिधान) और पांचे श्रंहिंगमी का (सचिव वस्तु त्याग, श्रचित वस्तु ग्रहण, उत्तरासन, 'नत मस्तक एवं श्रंजिनकरण श्रीर एकाग्रमन) पालन करते हुये सब प्रथम मार्नसिक एकाग्रता की ओर ध्यान देना चाहिये।।२।।

सुर्गंधित पुष्प, अखेडित चौंवल, सुन्दर वासंचूर्गा, सुंगन्धित धूप, श्रीर दीपक यह पांच प्रकार की अंग पूजा—िं से गुरु मुख से मुना है और श्रीगम में जिसके संबंध में कहा गया है, मन की साक्षी से ग्रथीत चित्त लगाकर करनी चाहिये ॥३॥

इस पूर्णा का फल दो अकार का होता, एक तो अननंतर अन्तर रहित '-तिर्देशां प्रेंदियंक्ष'में, 'दूसरा 'परम्पर-परोक्ष-गत्यन्तर-भवान्तर में । 'जिनाज्ञा 'का पालन ग्रीर चित की प्रसन्नता, प्रत्यक्ष 'प्रथम फल है और दूसरा परोक्ष फल मुक्ति है वरना 'कम से कम उत्तम सामग्री युक्त मनुष्य भव या देवगति 'प्राप्त करना है ॥४॥ पुष्प, चांत्रल, श्रेब्ट घूप, दीनक, केशर चंदनादि सुगंधित पदार्थ, नैवेद्य (वादाम आदि) फल, और जल से भरा कलश—इस सामग्री से अंग श्रीर अग्र तूजा दोनों मिलाकर आठ प्रकार की होती है। जल, गंध श्रीर फूल से होनेवाली अंग पूजा है श्रीर धूप दीप, असत, नैवेद्य श्रीर फल से की जानेवाली अग्र पूजा है। जो भव्य प्राणी भाव पूर्वक (भिक्त पूर्वक) ये पूजायें करता है वह शुभ गति प्राप्त करता है। । ।।।

ं सतरह भेदी, इक्कीस प्रकारी श्रीर एक सी आठ भेद वाली स्रतेक पूजायें हैं तथा भाव पूजा के भी (चैत्यवन्दन, स्तवन, जाप स्रादि) अनेक भेद निर्धारित किये गये हैं ये सब पूजायें दुख श्रीर हुगैति का छेदन (नाश) करती हैं ॥६॥

इसं प्रकार पूजा के तीन भेद-अंग पूजा, अग्र पूजा और भाव पूजा कपर कही जा चुकी हैं। पूजा का चौया भेद प्रतिपित्त पूजा है। प्रतिपत्ति का अथं है अंगीकार (म्बीकार) करना जिनाज्ञा का अनुसरण, समप्ण भाव जहां ध्यान, ध्यता और ध्येय का लोप हो जाता है ऐसी प्रतिपत्ति यथाख्यात चारित्र, उपर्शांत मोह,क्षीण मोह एवं सयोगी अवस्था में होती है जिसका वर्णंन (चौथी पूजा का वर्णंन) केवल ज्ञान के भोगी भगवान ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है। । ।।

इस प्रकार पूजा के भ्रानेक भेद कहे हैं जिन्हें श्रवण करके जो भव्य प्राणी इस आनन्द दायक शुभ करणी (कार्य) को करेगा, वह निश्चय ही भ्रानन्दघन पद-घरणी (मोक्ष) को प्राप्त करेगा ।। ।।

श्री शीतल जिन स्तवन (१०)

(राग-वन्याथी गीडी-गुणह विसाला मंगलिकमाला-ए वेशी) शीतल जिनपति ललित त्रिभंगी, विविध भंगि मन मोहे रे। करुगा कोमलता तीक्षणता, उदासीनता सोहे रे ॥शी०॥१॥ सर्व जीव हित करणी करुणा, कर्म वीदारण तीक्षण रे।
हानादान रहित परणामी, उदासीनता वीक्षरण रे'। शि०।।२।।
परदुख छेदन इच्छा करुणा, तीक्षण पर दुख रीभे रे।
उदासीनता उभय विलक्षण, एक ठामि किम सीभे रे।।शी०।।३।।
प्रभय दान ते मलक्षय करुणा, तीक्षरणता गुरण भावे रे।
प्रेरण, विण कृत उदासीनता इम विरोध मित नावे रे।।शी०।।४।।
शक्ति व्यक्ती त्रिभुवन प्रभुता, निन्य वता सयोगे रे।
योगी भोगी वक्ता भौनी, श्रनुपयोगि उपयोगे रे।।शी०।।१।।
इत्यादिक बहुभंग, त्रिभंगी, चमत्कार चित देती रे।
श्रचरज कारी चित्र विचित्रा, 'श्रानन्दधन' पद लेती रे।।शी०।।६।।

(१०)पाठान्तर—राग....माला=हाल, पास जिनंद जुहारिये (अ), गुग्गह विशाला मंगलिक माल (ग्रा, उ, क) मंगि=भंग (ग्र,आ) भंगी (उ, क)। जीव= जन्तु (अ,ग्रा,उ, क)। तीक्षण = तीक्ष्यण (अ)। हानादान = हीनादान (अ)। तीक्षण = तीक्ष्यण (अ)। उदासीनता = ओदासनता (अ)। एक = इक (ग्र)। ठामि = ठामें (अ) ठांम (इ, क) ठाम (उ)। ते मल....करुणा = मलख़य फल करुणा (ग्र), ते करुणा मलक्षय (उ), तिम लक्षण करुणा (कहीं कहीं)। विग्ण = विनु (अ, उ) विन (आ, उ)। कृत = कृति (ई, उ)। मित = मिन (अ)। शक्ती व्यक्ती = शक्ति व्यक्ति (ग्र, आ, इ, उ)। निग्न थता (ग्र, आ, क)। संयोगे = संयोगी (ग्र,आ)। अनुपयोगि=अनुपयोगी (उ)अनुपयोग (क)। उपयोगे = उपयोगी (अ, आ)। चमत्कार = चमतकार (आ, उ,क)। अचरज = अचरिज (ग्र,) ग्रिचिरिज (उ) अचिरज (क)।

शब्दार्थ — लिलत=सुन्दर । त्रिभंगी = तीन प्रकार की भंगीमा (भुकाव) वाले । तीक्षणता = तीक्षणता, उग्रता, प्रचण्डता । उदासीनता = अलिप्तता। वीदारण = चीरने फाडने में, काटने में । हानादान = त्याग और ग्रहण । पिर-णामी = भाव वाले, विचार वाले । वीक्षण = देखना । रीं के = प्रसन्न होते हैं। उभय = दोनों । विलक्षण = विचित्र, अद्भुत, अनूठा । ठामि = स्थान । सीभे रे = मिद्ध होना, सफल होना, रहना । मलक्षय = कर्म मल को नष्ट करना । प्रेरेणा = प्रेरेणा, कार्य में लगाना ।

अर्थ —दशवें जिनेश्वर देव श्रीशीतलनाथ भगवान की त्रिभंगी 'वडी लाजित्य पूर्ण है जिसकी विविध भंगिमा सब के मन को मोहित करनेवाली है भगवान श्रीशीतलनाथ में करुणा रूपी कोमलता के साथ तीक्षणता भी है श्रीर इन दोनों से सर्वथा विलक्षण उदासीनता भी शोभायमान है ॥१॥

सव जीवों पर हिन बुद्धि रूप करुणा भगवान शीतलनाथ की कोम-लता है। जानावरणी आदि कर्मों को नष्ट करने में जो कठोरता (हढता) है यह इनकी 'तीक्ष्णता' है। आप वस्तु के त्याग व ग्रह्ण परिणामों से रहित हैं अर्थात् समपरणामी—मध्यस्थभावी है, यह आपकी ग्रद्भुत उदासीनता है॥२॥

दूत्ररों के दुल नष्ट करने की डच्छा आपकी करुणा है। पर दुल-पीर्गलिक दुखों मे प्रपन्न । यह आपकी 'तीक्षणता' है। अर्थात् परिपह सहन में प्रसन्नता ही आप की तीक्ष्णना है। कोमलता और तीक्ष्णता इन दोनों से भी विलक्षण (अद्भुत) आपकी (उदासीनता' है। ये तीनो विरोधी भाव एक ही साथ एक स्थान में की सिद्ध हो सकते हैं-कीसे संभव है ? परन्तु जो आत्मा-नन्द में रमण करते हैं उनमें ये सब संभव हैं। (यह व्यग्यार्थहै) ।।३।। (ऊपर के पद का उत्तर है—)

कर्मरूपी मल से सब जीव त्रस्त हैं—(भयभीत है), जन्म मरण रोग, शोक आदि से भयभीत हैं। भगवान के उपदेश से सब अभय बनते हैं यह अभयदान रूप आपकी 'करुणा' है। आत्मिक गुणों में—भावो में हढता यह आपकी 'तीक्ष्णता' है। शारीरिक कष्ट (२२ परिपह) से विचिलित नहीं होते अपितु इन्हें प्रसन्नना पूर्वंक सहन करते हैं, यह परदुख—रींभान क्ष्म . तीक्ष्णता है। ये सब करुणामय और कठोरतामय प्रवृति विना किसी प्रेरणा के स्वाभाविक रूप से होती है यह आपकी 'उदासीनता' है।।।।

इस प्रकार विचार करने पर जो विरोधभाव ती सरे पद में उठाया गया था उसका परिहार हो जाता है।

आगे के पदों में दो दो मंग ही वताये गए हैं तीसरें मंग की सिद्धि दोनों से हो ज़ाती है।

शक्ति, व्यक्तित्व त्रिभुवन प्रभुता, निग्नें थता, योगी, भोगी, वक्ता मौनी, उपयोग रहितता और उपयोग सहितता भगवान श्रीशीतलनाथ में है, यह वताते हैं—(१) अनत ज्ञान दर्शन यह इनकी शिवत है ((२) इन ग्रुगों को ज्ञान दर्शन को) भगवान श्रीशीतलनाथ ने अपने पुरुपार्थ से प्रकट किया है यह इनका व्यक्तित्व है ((३) अपने ही ग्रुग् अपने में प्रकट हों, इसमें 'नं शक्तित्व, न व्यक्तित्व रूप तीसरा भंग होने से 'त्रिभंगी!' सिद्ध हो जाती है।

- (१) तीनों लोकों के पूज्य होने से—'त्रिभुवन प्रभुता' (२) गांठ देकर रखने लायक कोई वाह्य सामग्री न होने से तथा न माया—ममतादि अंतरंग सामग्री होने से 'निग्न' थता' सिद्ध होती है। (३) भगवान में अपने को पुजाने की इच्छा न होने से 'न त्रिभुवन प्रभुत।' और इसी प्रकार निग्न थ के वाह्य चिन्ह न होने से 'न निग्न ध्वता है। इस प्रकार त्रिभंगी सिद्ध होती है।
- (१) चित्त वृति के निरोध से एवं तेर्हवें गुणस्थान सयोगी केवली अवस्था में मन, वचन काया के योग होने से भगवान योगी हैं 1-(२) धारम-रमणता रूप सुख भोगने से भगवान भोगी हैं। (३) मन, वचन, धौर काया के योग, कर्मक्षय के कारण वाधा उपस्थित नहीं करते धतः भगवान श्रयोगी हैं और इंद्रिय जन्य विषयों के त्यागी होने से धभोगी हैं।
- (१) द्वादशांगी शास्त्र के कथन से 'वक्ता,', (२) पापाश्रव संबंधी वचन न कहने से 'मौनी', (३) अनंत तीर्थं कर देव अनंत काल से जो कहते आये हैं, वही आपने भी कहा है, उससे न्यूनाधिक नहीं कहा, यह आपका 'अवकत-पन' है और धर्म तीर्थं के प्रवर्तन के लिये देशना देना आपका 'अमौनी-पन' है।

### [ 388 ]

(१) अनंत पदार्थ विना उपयोग दिये आपको केवल ज्ञान से प्रत्यक्ष है अतः आप अनुपयोगवन्त है। (२) आपके ज्ञान व दर्शनोपयोग है इसिलये आप ज्रुपयोगवंत है। (३) योग रू धन के पश्चात मिद्धावस्था में ज्ञान दर्शन का उपयोग अनुपयोग करने का कोई हेतु नहीं रहता अतः आप न उपयोगी, न अनुपयोगी हैं। इस प्रकार श्री शीतलनाथ मगंवान में त्रिभंगियों के सयोग की समावना विताई गई है।।।।।

इन त्रिभंगियों के और भी अनेक भेद कहे जा सकते हैं क्योंकि भंग-वान में अनं । गुण है । ये त्रिभंगियों वित्ता में चमत्कार उत्पन्न करती हैं ! आहवर्य उत्पन्न करने वाली है। ये विविध प्रकार की चित्र-विचित्र त्रिभंगियों अनन्दधन रूप भोक्ष पद को प्राप्त करती है।।६।।

### श्री श्रेयांस जिन स्तवन (११)

(राग-गौडो-प्रदी भतवाते साजना-ए देशी)

श्री श्रेयांस जिन ग्रतरजामी, ग्रांतम धर्मी नामी रे।
ग्रंथ्यातम मत पूरण पामी, सहज मुगित गित गामी रे।।श्री श्रेणारा।
सयल सँसारी इद्वियरामी, मुनिगण ग्रांतमरामी रे।
मुख्य पणे जे ग्रांतमरामी, ते केवल निक्कामी रे।।श्री श्रेणारा।
निज सरूप जे किरिया साध, ते ग्रध्यातम लिहये रे।
जे किरिये करि चड गित साध, ते न ग्रंध्यातम किहये रे।।श्री श्रे।।रे॥
नीम ग्रध्यातम ठवण ग्रध्यातम, द्रव्य ग्रध्यातम छंडो रे।
भाव ग्रध्यातम निज गुण साध, तो तेह थी रह मंडो रे।श्री श्रे।।४॥
ग्रब्द ग्रध्यातम ग्ररथ मुगी ने, निरिवकल्य ग्रादरज्यो रे।
ग्रब्द ग्रध्यातम भजना जाणी, हांन-ग्रहण मित घरज्यो रे

थ्रध्यातम जे वस्तु विचारी, बीजा जाण लवासी रे। वस्तु गते जे वस्तु प्रकासै, ग्रानन्दघन' मत वासी रे ।।श्री श्रे। ६॥

(११) पाठान्तर—राग....साजना = राग—रामगिरी—ढाल —सांभिति सामिलियासामी (अ,) अन्तरजामी = अन्तरयामी (इ. ई)। मत = मित (ऊ)। गामीरे = पामीरे (अ)। गए = गुए (अ, आ, उ, ऊ,)। निक्कामी = निःकाभी (अ,) निक्कामी (इ, ई)। सरूप = स्वरूप (आ; इ, ई, उ, ऊ)। लिहिरेरे = लिहिरेरे (उ)। चउगिति = चौगित (अ)। न अन्यातम = अनध्यातम (प्र)। किन्येरे = किहिरेरे (उ)। छंडोरे = छांडोरे (ऊ)। तेहथी = ते ते (अ,) तहसी (आ), तेहमुँ (इ, ई,) तेहसूं (उ)। गढ = रिढ (अ, आ, उ) शब्द = अरथ (अ, आ)। अरथ = अर्थ (इ, ई)। निविक्तप = निरिक्तिप (अ, आ, ऊ)। आदरज्योरे = आदरयो (अ,)। हांन = हानि (अ,) हान (आ, इ, ई,) दान (उ)। मित = मत (अ)। घरज्यो रे = घरयो रे (अ)। लवासी रे = लिवासीरे (अ, आ, उ, ऊ)। गते = गित (अ), गतै (आ, इ, ऊ)।

शब्दार्थ — आतमरामी = आत्मस्वरूप में रमण् करने वाले । नामी = प्रसिद्ध, श्रेट्ट नाम वाले । अध्यातम = आध्यात्मिक, धात्मा सम्बन्धी । मत = तत्व । पामी = प्राप्त करके । गामी = जाने वाले । सयल = सकल, सव । इंद्रियरामी = इंद्रिय सुखं में रमण् करने वाला । निक्कामी = निष्कामी, कामना रहित । चउगति = चारों गतियं — नरक, तिर्यं च, मनुष्य और देव । ठवण = स्थापना । रढ = रटना, प्रीति । निरिवकल्प = विकल्प रहित, जंका रहित । भजना = होय अथवा न होय । हांन = त्याग । गति = बुद्धि, धारण्। (मिति जांन का भेद) वीजा = दूसरे । लवासी = लवांड, लवार, वकवक करने वाले । मत = मान्यता, सिद्धांत । वासी = रहने वाले ।

श्चर्य —श्री श्रीयाँसनाथ मागवान अंतरयांभी है. आत्म गुणों में रमशा करने वाले सुप्रसिद्ध हैं। श्रापने श्रात्मतत्व को पूर्णक्ष्य से प्राप्त करके, सहज स्वाभाविक भाव से गंवम गति—मोक्ष गति प्राप्त करती है।।१।। सम्पूर्ण संसार के प्राणी तो इंद्रिय सुकों में छीन रहते हैं। केवल मुनि गए। ही श्रात्मिक सुख में रमए। करने वाले-लीन रहने वाले हैं। को लोग 'पुद्गलानन्द में रस न लेकर मात्र ग्रात्मानन्द में मग्न रहते हैं केवल वे ही कामना रहित-निस्पृह होते हैं। १२।।

संबल्पानुयायी—जो आत्मार्थी मुगुसु इस लोक और परलोक के सुर्खी की कामना त्याग कर आत्मार्थ ही किया करता है वह अध्यात्म को प्राप्त करता है किन्तु जो घन, कीर्ति, पूजा, सत्कार आदि की कामना से इहलोक और परलोक सम्बन्धी किया करते हैं वे चतुर्गति रूप भव—श्रमण की साधना करते हैं, उन्हें अध्यात्मी नहीं कहना चाहिये 1:311

गुरा विना केशल नाम मात्र अध्यातम शब्द को, कित्वत स्थापना— प्रध्यातम को और दिखावे रूप—आध्यातम किया रूप—द्रव्य ग्रध्यातम को छोड़ो 'भीर आत्न गुग्ग ज्ञान दर्शन रूप माधना, भाव अध्यात्म है उपी की साधना करो—उममें पूर्वत्य से लग जावो—मग्न हो जावो ।।४।।

गुरुमुख से अध्यास्त शब्द का अर्थ मुनकर, विकल्प रहित--संकल्प विकल्प रहित शुद्ध अस्त भाव को ग्रह्ण करो। मात्र अध्यास्त शब्द-'अहं ग्रह्मासि', 'सोऽइं' आदि में अध्यास्म है अथवा नही है इसे समक्ष कर अर्थात् अध्यास्म शब्द में ग्राध्यास्मिकता नहीं, वह भाव में ही है इसे जानकर क्या स्वागने योग्य है, क्या ग्रहण करने योग्य है, इसमें आनी बुद्धि लगावो। । । ।

आत्मवस्तु के विचारक ही आध्यात्मी हैं-गावु-संत-मुनि है, शेष दूगरे तो केवल लवासी हैं - वस्तु में रहे हुये गुगा व पर्यायों को स्पष्टतया यथार्थ रूप से जो प्रकट करते हैं वे ही आनन्दघन प्राकृतके सन्तनयाध्यत मत के वासी हैं-रमण करने वाले हैं।

श्री वासुपूज्य जिन स्तवन (१२) ' ' (राग-गोडी-तु गिया गिर सिखर सोहै ए देशी)

वासपूज्य जिन त्रिभुवन स्वामी, घणनामी परणामी रे। निराकार साकार सचेतन, करम करम फल कामी रे।।वास०॥१॥ निराकार श्रभेद संग्राहक, भेद ग्राहक साकारों रे।
दर्शन ज्ञान दु भेद चेतना, वस्तु ग्रहण व्यापारों रे। वासंगार।
करता परिगामी परिणामी, करम जे जीव करिये रे।
एक श्रनेक रूप नयवादे, नियते नर श्रनुसरिये रे।।वासंगार।
सुख दुख रूप करम फल जाणों, निरंचय एक श्रानदों रे।
चेतनता परिणाम न पूर्क, चेतन कहे जिन चंदोरे गंवासंगार।
परिणामी चेतन परिणामी, ज्ञान करम फल भावों रे।
ज्ञान करम फल चेतन कहिये लीज्यों तेह मनावों रे।।वासंग्री।
श्रातमज्ञानी श्रमण कहावे, बीजां तो द्रव्यालगी रे।
वस्तु गते जे वस्तु प्रकास, 'श्रानन्द्रघन' मत संगीरे। वासंगादी।

पाठान्तर—राग...:सोहै = आदर जीव क्षमा गुण आदर (ग्र)। वासपूज्य = वासुपूज्य (ग्र, ग्रा, ज)। वासुपुज्य (इ, ई)। घणनामी = घननामी
(आ, इ, ई ज, ऊ)। परणामीरे = परिणामीरे (अ, ज, ऊ)। परनामीरे =
(ग्रा,ई)। सचेतन=चेतना(ग्र,आ)। ग्राहक=ग्राह(ई) ग्रहण(ई)। दर्शन=दरसण (ग्र)।
करता = कर्ता (इ, ई, ज, ऊ)। जीवै = जीवई (अ), जीव (इ, ई)। करम
= कर्म (आ, इ, ई, ज, ऊ) कर्म (उ)। नियेते नर = नियति इतर (ग्र,आ)
नियतई नर (उ)। अनुसरियरे = अणुसरियरे (उ, ऊ)। जाणो = ग्राणै
(ग्र)। निश्चय = निश्चे (अ), निहचे (ग्रा, ऊ)। एक = इक (ग्र इ, ई)।
कहे = कहै (ग्र, ग्रा, ज, ऊ)। लीज्यो = लेज्यो (अ, आ, इ, ज, ऊ)। द्रव्य =
द्रव्यत (ग्र)। 'अ' प्रति में 'वीजा' के आगे 'तो' नहीं है। गतै = गति (अं)।
मत = मति (ऊ)।

शब्दार्थ — घणनामी = अनेकानेक नाम वाले। परणामी = शुद्धातम गुण में परिणमन कर्ने वाले। कामी = कामना करने वाले। संग्राहक = सत्य स्वरूप ग्रहण करने वाले। दुर्मेद = दों भेद (विभाग)। परिणामी = परिणामी: भावा वोले। श्रमुंसरिये = अनुसरण करना, माननां। श्रमुंगं = 1 साधु । बीजा = दूर्यरे, अन्य् । द्रव्यालिंगी = वेशघारी, साधु का केवल भेष धरने वाले ।

पर्य शीवासुपूज्य भगवान तीनों जगत के स्वामी हैं श्रीर अनेक नाम वाले हैं। भगवान ने श्रात्मा को परिणामी, (श्रात्मगुणों में परिणामन करने वाली) गाकार एवं निराकार उपयोग वाली, चैतन्य रूप, कर्म का कर्त्ता श्रीर फल का भोक्ता कहा है।।१।।

अभेद को ग्रहण करने वाले दर्शनीपयोग्को निराकारीपयोग—सामा-न्योपयोग और भेद को ग्रहण करने वाले ज्ञानोपयोग को साकारोपयोग—विशे-पोपयोग कहते हैं। इस प्रकार चेतना के 'दर्शन और ज्ञान' यह दो भेद हैं। इस चैतन्य व्यापार से ही यह आत्म वस्तु ग्रहण की जाती है—पहचानी जाती है। अथवा इस चैतन्य वस्तु से ही आत्मा वस्तुओं को देखता जानता है।।२।।

विशेय-अभेद की ग्रहण करने वाले द्रव्य नय की अपेक्षा आत्मा निराकार औरभेद को ग्रहण करने वाले पर्याय नय की अपेक्षा आत्मा सांकार है। चेतना के 'ज्ञान श्रीर दर्शन' दो भेद हैं। वस्तु के जानने श्रीर देखने का कार्य इन्हीं । द्वारा सम्पन्न होता है।

प्रत्येक द्रव्य सामान्य और विशेशतमक होता है। चेतन भी द्रव्य है, इसिल्ए वह भी नामान्य और विशेशतमक है। उसके दो रूप दर्शन और ज्ञान है। वह दर्शन-ज्ञान को कभी त्यागता नहीं है। दर्शन उसका सामान्य स्वरूप है, तथा ज्ञान उसका विशेष स्वरूप है। सामान्य उपयोग दर्शन है, विशेष उपयोग ज्ञान है।

जीव कर्ता है क्यों कि परिणामों में परिणमन करता है और कर्म का करता है। नयवाद से इस कर्न त्व के एक ही नहीं, अनेक रूप हैं। अर्थात निश्चय नय से अपने ज्ञान स्वभाव का कर्ता है। अशुद्ध निश्चय, नय से जिन जिन रागादि भावों में परिणमन करता है, उनका कर्ता है। तथा व्यवहार नय से ज्ञानावरणादि पौद्गलिक कार्यों का एवं शारीरिक नोकर्म का कर्ता है। श्रीर उपचार से घर, नगर आदि का कर्ता है। इस प्रकार इसमें कर्तापन व

परिगामनजीलता है किन्तु मनुष्य को गृह निश्चय नय के अुसार अपने जायक भाव में परिगामन करना चाहिए ॥३॥

सुझ और दुः इ दोनों को कमं-फल जानों। निश्चय से ती केवल आनंद ही है। केविनयों में चन्द्रमा के समान तीर्यं कर श्री वामुपूज्य भगवान ने क कहा है कि आत्मा किसी भी ग्रवस्था में ग्रपने चेनन स्वभाव को नहीं छोड़ता । है। अनः वह चैनन्य है और निश्चय नय से वह आनन्द स्वरूप है।।४॥

श्री ज्ञानसारजी ने कहा है—

धर्मी अपने धर्म को, तले न तीनों काल।
आत्मा न तजै ज्ञान गृरा, जड किरिया की चाल।।

सव द्रव्य परिकामी है, (एक अवस्था छोड़ कर दूसरी अवस्था प्राप्त करने को परिकाम कहते हैं अर्थात् परिवर्तनशीलता को परिकामी कहते हैं) अपने अपने स्वभाव में सब परिकामन करते हैं इसलिए चेतन भी परिकामी है। उनका परिकामन-ज्ञान, कमं और कमंफल कर होता है। इन्हें कम से ज्ञान-चेतना, कमं-चेतना और कमं फल-चेतना कहना चाहिये। इस प्रकार चेतना के यह तीन परिकामन मानने चाहिये। इन में ज्ञान चेतना शुद्ध चेतना है और कमं चेतना एवं कमं फल चेतना च्रद्ध चे ना है। ज्ञान के अतिरिक्त अन्य भाव में विचरना—'इसे मैं करता हूँ'—कमं चेतना है और ज्ञान के अतिरिक्त अन्य में यह चिन्तन करना —'मैं भोगता हूँ'—यह कमं फल चेतना है। ये दोनों अज्ञान चेतना संसार का बीज है और ज्ञान चेतना मुक्ति बीज है। अतः है भव्य जीवो! इस प्रकार समस्क कर अपने चेतन को मनाकर—समस्काकर आत्म स्वरूपं प्राप्त करो।।५॥

आतम ज्ञानी-भावित्यों ही श्रमण (सायू) कहें जाते हैं अन्य तो द्रव्य-लिगी-भेपवारी (सायू वेश वाले) हैं। जड और चेतन भाव को जो यथार्थ ् रूप से प्रकाशित करते हैं और रागादिभावों को—जड कर्म के संयोग से उत्पन्न जान कर छोड़ते हैं, वे भेद ज्ञानी चारित्रवान, आनन्द्रधन मत के संगी -सायी हैं। अर्थात् वे ही घनीभूत ग्रानन्द को प्राप्त करते हैं।।६॥

#### [ 560 ]

## श्रो विमल जिन स्तवन (१३)

(राग मल्हार-इडर ग्रांबा ग्रावली रे, इडर दाहिम दाल-ए देसी)

दुख दोहग दूरै टल्या रे सुख सम्पत सूँ मेट।
घाँग धणी माथै कियो रे कुगा गर्ज नरखेट।।
विमल जिन दीठा लोयणे प्राज म्हारा सीभा वंछित काज
॥विमल ।।१।।

चरण कमल कमला बसे रे, निरमल थिर पद देख।
समल अथिर पद परिहरी, पकज पामर पेख ।।विमला।।।
मुभ मन तुभ पद-पक्जे रे लीनो गुण-मकरंद।
रक गिणे मदर घरा रे, इन्द्र चन्द नागिन्द। वमला।।।।
साहव समरथ तूं घर्गी रे, पाम्यो परम उदार।
मन विसरामी बाल हो रे. आतम चो आघार।।विमला।।।।
दरसरा दीठें जिन तर्गो रे समय रहे न वेघ।
दिनकर कर भर पसरतां रे, अंघकार प्रतिषेघ।।ि मला प्रा।
अमी मरी मूरति रची रे उपमा घट न कोय।
गांत सुधारस भलीती रे निरखत नुपति न होय।।विमला।।।
एक अरज सेवक तणीं रे, अवघारो जिनदेव।

(१३) पाठान्तर—'राग मल्हार' शब्द आ, उ, ऊ, प्रतियों में नहीं है। 'अ' प्रति में यह स्तवन 'विमल जिनेसर' आदि से आरम्भ होता है। सूं = सुं (अ, आ), स्यु (उ)। कियो रे = कियां रे (म्र, ग्रा; उ, ऊ)। नरखेट = जनखेट (अ)। जिन = जिनेसर आज दीठा लोगणे (अ)। म्हारा = मारा (म्रा, क)। श्रीमा = सीवा (म्रा, उ)। 'म्हारा सीमा वंद्यित काज' 'अ' प्रति

में नहीं है। थिर पद = पद थिर (अ)। देख = देखि (अ, उ)। परिहरी रे = परिहरे रे (ग्र)। पंकज = पद कज (अ)। पेख = पेखि (उ)। मुफ....पंकजे रे = मन मधुकर तुफ पद कजरे (अ)। लीनो = लीएो (अ, उ, ऊ)। निएं = गुरंगे (ग्र)। मन्दर = मन्दिर (अ, ऊ)। साहत्र = महिव (अ, ग्रा, उ, ठ)। पाम्यो = पांम्यो (आ, ऊ)। आतमचो = आतमचो (अ, आ, उ, ऊ)। दीठें = दीठो (उ)। संसय = संसो (अ) पसरतां रे = विलसतो रे (अ) प्रमरतां रे (इ)। अमी=अमिट (इ,ई,)अमीय (उ,ऊ)। उपमा घटै न=उपमा न घटै (अ,आ, ऊ)। उपम न घटै (उ)। गांत=हिट (ग्र), ग्रान्ति (उ,ठ)। निरखत=निर्धित (ऊ)। तृपति = त्रिन्त (ग्र), तृप्ति (इ, ई)। किना = कृपा (अ, ग्रा, इ, ई, उ)।

शब्दार्थ—दोहग = दुर्भाग्य । टल्या रे = टल गये, दूर हो गये। धींग = प्रवल, वलवान । गंजै = जीते । नरखेट = नराधम, शिकारी, मोहादि कपायें । सीभा = सिद्ध हो गये, सफल हो गये । दीठा = देखा । लोयगं = लोचनों से, नेत्रों से । पामर = पापी । लीनो = लवलीन है । रंक = तुच्छ । मन्दर = मन्दर राचल, मेरू पर्वत । नागिन्द = नागेन्द्र, भुवनवासी देवताओं का इन्द्र । विसरामी = विश्रामस्थल । वालहो = प्रिय । चो = का । वेध = कमक, चुमन । पसरतां = फैलते ही । प्रतिखेद = ककावट । अमी=अमृत । भीलती=भरी हुई । अवधारो = ग्रहण करो ।

श्रर्थ — किन कहते हैं —श्री विमलनाथ जिनेश्वर के दर्शन से चतुर्गति सम्बन्धी दुल और श्रज्ञान सम्बन्धी दुर्भाग्य दूर चले गये हैं। मानसिक शांति रूप सुल और रत्नत्रय रूप सम्पत्ति प्राप्त हो गई है। ऐसे सामध्येवान स्वामी जब मेरे मस्तक पर हैं तब मोहादि अधम शिकारियों (शत्रुश्रों) में से ऐसा कौन है जो मुक्ते जीत सकता है। आज ज्ञान—चक्षुओं से मैंने श्री विमलनाथ भगवान के दर्शन कर लिये हैं। श्रव मेरे सम्पूर्ण मनोवांच्छित कार्य सिद्ध हो गये हैं। ११।

"कोघादि सब जीव के, लगे पीठ ठग लार । जक न दियत, मुनिराज लग, खेटक लच्छन घार ॥ (श्री ज्ञानसारजी) कमल को तुच्छ, मैला, क्षण स्थायी और घृणित कीवड सहित देखकर लक्ष्मी न उस स्थान को छोड दिया है और ग्रापके चरण रूपी कमल को निर्मत और स्थिर स्थान वाला देखकर वहाँ अपना निवास कर लिया है ॥१॥

मरा मन रूप अमर (भीरा) आपके चरण कमल के गुण रूपी पराग में लवलीन है-मरन है। यह मेरा मन इन्द्र, चन्द्र और नागेन्द्र आदि के महान पदों एवं मेरू पर्वत की स्वर्ण भूमियों को इन चरणों की तुलना में तुच्छ गिनता है-नमसता है।।३।।

हे नाय ! आप सब प्रकार से सामध्यंवान है। आप जैसा महान उदार स्वामी मुक्ते प्राप्त हुआ है। आर मनके विश्वाम रूप हैं, जहां मेरा मन विश्वाम लेता हैं-ठहरता है। ग्राप मुक्ते ग्रत्यन्त दिय हैं। मेरी ग्रास्मा के आघार श्रीर निज स्वरूप प्राप्ति के साधन, ध्येय हैं। मैंनें आज ज्ञान-चधुओं से आप के दर्जन कर लिये हैं।।४।।

हे जिनेश्वर देव ! जिस प्रकार सूर्य की किरणों के फैलने से अन्धकार (अन्धेरा) रुक जाना है-नुस्त हो जाता है, उसही प्रकार आपके दर्शनों से संपय अश्रद्धा, अज्ञानादि का मूलीच्यर हो जाता है ॥५॥

आपकी मूर्ति अमृत रस से भरी हुई है जिस पर कोई उपमा घटित ही नहीं होती प्रयात् यह अनुपमेय है। इसमे प्रश्नम रस रूप सुधा रस भकोले खा रहा है—उमड़ रहा है जिस निरख निरख कर—देख देख कर—कभी तृष्ति नहीं होती है—मन नहीं भरता है।।६।।

हे जिनेश्वर देव ! इस सेवक की एक ही विनय है उसे आप स्वीकार कीजिये। हे प्रभो ! कृपा पूर्वक सुफे आनन्दधन रूप परम पद की सेवा दीजिये ॥७॥

# श्री ग्रनन्त जिन स्तवन (१४)

(राग-रामिगरी कडखो)

घार तरवार नी सोहिली, दाहिली चउदमा जिन तणी चरण सेवा।

धार परि नाचता देखि बाजीगरा, सेवना-धार परि रहै न देवा ।।धार०।।१।।

एक कहै सेविये विविध किरिया करी फल श्रनेकांत लोचन न देखें। फल श्रनेकान्त किरिया करी वापड़ा, रडवर्ड चार गति माहि लेखें।।।धारकाश।

गच्छ ना भेद बहु नयण निहालतां, तत्वनी बात करतां न लाजं। उदर भरणादि निज काज करतां थकां, मोह नाडिया कलिकाल राजे

वचन निरपेख व्यवहार भू शै कहाो वचन सापेख व्यवहार साँचो। वचन निरपेख व्यवहार ससार फल, सांभली आदरी कांइ राची।।।धारकारित

देव गुरु धर्म नी शुद्धि कहो किम रहै किम रहै शुद्ध श्रद्धान श्राणो।
शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करी, छारि परि लीपणो तेह जाणो।
।।धार०।।४।।

पाप निंह कोइ उत्सूत्र भाषण जिस्यो धर्म निंह कोइ जग सूत्र सरीखो। सूत्र भ्रनुसार जे भविक किरिया करें, तेहनो शुद्ध चारित्र परिखो । ।।धार०॥६॥

एह उपदेशन्ं सार संक्षेप थी, जे नरा चित्तमां नित्य ध्यावै ।
्रेते नरा दिव्य बहुकाल सुख अनुभवा, नियत 'श्रानन्दघन' राज पावै
।।धार०।।७।।

पाठान्तर — राग....कडखो = राग कडखानी (अ, आ,) कडखो (उ) राग-कडपौ (ऊ) । सोहिली दोहिली = सोहली दोहली (इ, उ) । चउदमा = चौदमा (अ, आ,) चोदमा (उ) चवदमा (ऊ) । परि = पर (आ, इ, उ, ऊ) । देखि = देख (आ, इ, उ, ऊ) । सेविये = सेविइं (अ) । कहैं = कहि (उ, ऊ) । रडवर्ड = रडपड्या (अ), रढवर्स (उ) । चार = च्यार (अ, आ, उ,

.क)। नयए। = तयिए। (उ)। निरपेख = निरपेखि (श्र), निरपेक्ष (श्रा, इ, ई, उ, ऊ)। सापेख = सापेखि (श्र), सापेक्ष (श्रा, इ, ई, उ, ऊ)। आदरी = आचरी (श्र)। किम = किमि (उ)। श्रद्धान = सरधान (अ)। श्राएो = टाएो (अ, आ)। करी = सही (अ, आ,) कही (उ)। लीपएो = लीपएा। (श्र, आ)। तेह = सिरस (य, आ)। जिस्यो = जिसी (अ, श्रा, उ, ऊ)। जग = जिए। (अ)। अनुसार = अनुसार (उ)। परिखो = परपो (ऊ)। संक्षेपथी = संखेपथी (श्र)। चित्तमां = चित्त में (य, आ, उ, ऊ)। नित्य = नित्त (अ, आ, ऊ)। घार्व = भार्व (अ)। ते नरा अनुभवी = ते नरा काल वहु दिव्य सुख अनुभवी (श्रा)।

शान्वार्थ — सोहिली = सरल । दोहिली = कठिन । देना = देवता भी लोचन = आंख । वापडा = वेचारा, अजानी । रडवर्ड = भटकते हैं । गच्छना = समुदाय के । निहालतां = देवते हुये । उदर = पेट । मोह निध्या = मोह में फेंमे हुवे, मोहाधीन, मोह सं वंधे हुये । निरपेख = निरपेक्ष, अपेक्षा रहित, तटस्य । स.पेख = सापेक्ष, अपेक्षा सहित, जिन वचन अनुमार । सांभठी = मुनकर । राचो = प्रसन्न होना । आदरी = प्रहण करके । कांइ = क्या, कुछ भी । श्रद्धान = विश्वान, प्रतीति । आगो = प्राप्त करो, लावो । छारि = धूनपर । लीपणो = लीपना । उत्सूत्र = मूत्र के विपरीन, जिनवचन के विश्व । सूत्र = आगम शास्त्र । सरिखो = समान । परिखो=गरीक्षा करो ।

भ्रथं —तरवार की धार पर चलना मुगम है किन्तु चौ रहवें तीर्थं कर श्री अनन्तनाथ भगवान की चरण-सेवा—उनके चारित्रानुमार प्रवर्तन—अत्यन्त हुष्कर है। तलवार की धार पर नाचते हुये धनेक वाजीगर (खेल दिखाने वाले नट) देखे जाते हैं किन्तु भगवान की चारित्र-सेवा रूप धार पर देवता भी नहीं टिक (ठहर) सकते हैं क्यों कि उन्हें चग्रित्र नहीं प्राप्त हो सकता है।।१॥ कई एक क्रियावादी ऐसा कहते है कि विविध क्रियाओं (त्राग वैराग्य)

कइ एक कियाबादा एसी कहत है कि विविध कियाओं का फल भी दिविध, अनेकान्त रूप (नाना प्रकार का पुण्य वंध) होता है जिसे नेज (आंखें)

नहीं देखती। जिन कियाओं के करने से एकांत फल (मोक्ष) नहीं होता, विविध फल होते हैं—भांति भांति के फल मिलते हैं—ऐमी अनेकान्त फल दायक कियाओं से तो वे वेचारे चार गति रूप संसार में भटकते हैं जिनका लेखा—हिसाब नहीं वताया जा सकता।

(त्याग-वैराग्य पोक्ष मार्ग के साधन हैं। वे ग्रात्म ज्ञान सहित किये जाये तो मोक्ष रूप एकांत फल दाता हैं।)

जो क्रियायें एक लक्षी होती हैं उनका फल भी एकांत (मोक्ष) ही होता है। अनेकान्त नहीं होता। ऐसी एक लक्ष्मी-स्वरूपानुयायी क्रिया ही चारगति का फेरा-भव अमण टालती हैं। जैसे लक्ष्य साथ कर छोडा हुग्रा वाण ठीक निकाने पर पहुंचता है और विना लक्ष्य का वाण ऊंचा नीचा होकर निवाने पर नहीं पहुंचता।।२॥

गच्छों के अनेक भेद हिष्टिगोवर होते हैं। यह गच्छ-गमत्वी तत्व की वात करते हुंगे तिक भी नहीं सकुचाते हैं। पेटपालन आदि अपना कार्यं कःते हुंगे, ये लोग वुपम—कलिकाल के राज्य में महामोह में फैंसे हुये हैं— जकड़े हुंगे हैं। अर्थात् महामोह के आधीन होकर ये लोग कलिकाल में राजा वने बैठे हैं।।३॥

निर्पेक्ष वचन-प्रपेक्षा रहित वचन-एकान्तवाद ग्रसत्य है। सापेक्ष वचन-प्रपेक्षा सहित वचन-अनेकान्त वाद-नापेक्षवाद ही सत्य है। इस मापेक्ष वाद का प्रयोग ही सद् व्यवहार है। निरपेक्ष वचन-एकान्तिक वचन का प्रयोग संसार बढाता है। यह सुन कर उसे मान देकर-स्वीकार कर-उसमें क्यों रचपचते हो-अनुरक्त होते हो-निमग्न होते हो।।४।।

आगम साक्षी विना निरपेस वचनों से (एकान्त वाद से) देव, गुरु और धर्म की शुद्धि की परीक्षा कैसे हो मकती है ? परीक्षा विना हढ़ श्रद्धान कैसे रह सकती है ? और शुद्ध श्रद्धा के विना तो की हुयी सम्पूर्ण कियायें ऐसे व्ययं हो जाती हैं जैसे छार-भूछ के ग्रांगन पर किया हुआ लेपन। (लीपणा-गोवर की पतली दह पोतना)।।५॥ उत्मूत्र-भाषगा--आगम विरुद्ध भाषगा-के समान संसार में कोई पाप नहीं है ग्रीर आगम के अनुगार कथन ग्रीर आचरण के समान वोई धर्म नहीं है। सूत्र-आगम के श्रनुमार जो भव्य प्राणी कियायें करता है उसके चरित्र (चारित्र) को ही शुद्ध समक्षना चाहिये।।६।।

(जो मनुष्य आगमों के अर्थ का मृपा उन्देश देना है उसकी शुद्धि प्रायम्बित से भी नहीं हो सकती है क्योंकि जो व्यक्ति अपने जोतों को भंग करता है उनमे तो वह केवल अपनी ही ब्रात्मा को मलीन करता है किन्तु जो निद्धांत प्रत्थों का मृपा उपदेश देता है वह दूसरी अनेक श्रात्माओं को मलीन करना है संसार-ममुद्र में दुवोता है यतः इसके समान कोई दूसरा पाप नहीं है।

यह जिनेटनर देव के कथित उपदेश का नार-संक्षेप है। जो व्यक्ति इस आप धर्म का चित्त मे प्रति समय विचार रखेगा, वह वहुन समय तक टिट्न (अनोग्ने) मुग्न का अनुभव करके निञ्चय ही अनन्त ग्रानन्द का राज्य-मोल प्राप्त करेगा ॥७॥

श्री धर्म जिन स्तवन (१५)

(राग-गोटी सारंग, रसियानी देशी)

घरम जिनेसर गाऊं रग मूं भगन पडज्यो हो प्रीत । बीजो मन मन्दिर ग्राणूं नहीं, ए ग्रम्ह कुलवट रीत ।।घरम०।।१।। घरम घरम करतो जग सह फिरे, घरम न जाग़ हो ममं। घरम जिनेसर चरण प्रह्मां पछी,कोइ न बंधे हो कर्म ।।घरम०।।२।। प्रवचन ग्रंजन जो सद्गुरु करें, देखे परम निघान । हृदय नयन निहाल जग घग़ी, महिजा मेरु समान ।।घरम०।।३।। दोडत दोडत दोडत दोडियो, जेती मननी हो दौड । प्रेम प्रतीति विचारो ढूकडी, गुरुगम लीज्यो हो जोड ।।घरम०।।४।। एक पत्नी किन शित वर्र पड़े, उनय निल्यों हो सिव ।

हूँ रागी हूँ मोहे फंकियों, तू नीरागी निरवंशि ।।घरमवााप्ता

परम निवान प्रगट मुख आगर्ल, जगत उलबी हो लाय ।

क्योति विना लोवो लगदीसनी, अबो अब पुलाय ।।६।

निरमल गुणम्यि रोहरा भूषरा, मुनिजन मानस हम ।

घन ते नगरी वन बेना घड़ी मात पिता कुलवम ।।घरमवा।।।।

मन मबुकर वर कर जोड़ी कहीं, पद-कन्न निकट निवास ।

घन नामी 'आनन्द्रघन' तांमलों, ए सेवक अरदास ।।घरमवा।।।।

(१६) पाठास्तर--गर....देनी = गर गीडी देनी गीरणती (छ). देनी रनियानी-योडी नारंस (झा,) राज-योडी (ड), देशी पनियानी (ड,क)। जिनेमर = बिरोमर (मा र, क)। गार्क = गार्वा (म)। धीन = धीटि (स, हा, ह) ! बस्ह = हम (हा. इ. ई. ह. क) ! रीत = रीति (ह, ह) ! बग मह हिरै = नांमु किरै (४), बम् (इर), कामू (द, क्र) । मर्म = मर्म्स (स्र) । निनेमर = निरंमर (क, ना, उ, क)। वर्ड = वार्ड (सा, इ. ई, उ, क)। कर्म = कर्म्स (छ) । तयत = नयरा (इ. ट), के (छ) । सतनी हो = सतनी रे (इ. ई. इ. इ) । बोह = बोहि (ह) प्रनीति = प्रनीत (ब. बा इ. इ) । बीब्यो हो - लेको हो (क, का. छ) । तीको रे (इ, इ.) । बोट = भोडि (इ)। शित = भीत (ड, डा, इ, इ), भीते (इ) । हो संदि = होते संदि (ड), हुते संवि (भा, क), ही मंत्र (इ, इं,) हुइ मिन (ट) ! हैं = हुं (स) । फ़्रियो = क्रियो (इ)। तृ=तुं (इ)। निवात = निवि (अ)। प्रसट = परसट (इ)। मृख = रूए (इ. इ.)। इस्पर्न = अपनी (इ)। उनंबी हो = उनंदी हो (ह)। टम्बिटो (इ. इ) टर्निट रे हो (इ) । जोबो = जुओ (इ. ई.) जोबें (इ)। इन्दो इन्द पुत्रह = बांदे बांदी देत्रह (इ, बा,) बंदी बंदी प्ताट (ई) । वन देना = दिन देना (स, सा,) । पदकद = पड पँगक (म्र) वाननानी = वर्तानी (ब) ।

शब्दार्थ — रंग सूं = आनन्द से, आत्म भाव में लीन होकर । भंग = वाधा । म = नहीं । बीजो = दूसरा । आणू = लाकं । अम्ह = हमारी । कुल-वट = कुल (वंग) परम्परा । सहु = सव । मर्म = रहस्य । पछी = पीछे । निधान = खजाना । निहालं = देखे । घणी = स्वामी । महिमा = यश, कीर्ति दूकडी = समीप, नजदीक । एक पखी = इक तरफा, एकांगी । उभय = दोनों । संधि = मिलाप । निरवंध = वंध रहित । आगलं = आगे, सम्मुख । पुलाय = दौडना । रोहण = रोहणाचल । भूधरा = पवंत । वर = श्रेष्ठ । कज = कंज कमल । सांभलो = सुनो । धरदास = प्रार्थना ।

श्चरं — भिन्ति—रंग में रंग कर में श्रीवर्मनाथ जिनेश्वर का स्तवन—गायन करता हूँ। हे प्रभो ! आपके प्रति मेरी भक्ति है, वह कभी दूटे नहीं, यही मेरी प्रार्थना है। मेरे मन—मिन्दर में आपके श्चतिरिक्त किसी दूवरे को कोई स्थान नहीं है। यही हमारा कुलवमें है — यही आत्मस्वभाव है।।१।।

यह संसार घमं, घमं-मुनि घमं, यति घमं, सन्यास घमं, ग्रहस्य घमं आदि घमं करो घमं करो कहता हुआ फिर रहा है किन्तु यह घमं के ममं को-रहस्य को-जरा भी नहीं जानता।

'वस्तु स्वभावो धर्मः'। स्वभाव परिएाति ही धर्म है। अतः निज स्व-रूप रूप धर्म में परिएामन करने वाले धर्मनाथ जिनेश्वर के चरए पकड़ने के पश्चात—चारित्र का अनुसरए। करने के वाद—कोई भी नवीन पाप कर्म नहीं वौधता है।।२।।

सद्गुरु कृपा करके प्रवचन रूपी अंचन जिस किसी के हृदय रूपी नेत्रों में आंजते हैं—लगाते हैं—तो वह स्व स्वरूप रूपी परम निघान (जजाना) को देख लेता है। हृदय नेत्रों से उस जगतपित को वह देखता है जिसकी महिमा (यश) मेरू के समान है।।३।।

मन भ्रपनी दौड-कल्पना शक्ति के अनुसार चारों और जितना दौड सकता था-दौडा किन्तु कस्तूरीमृग के समान उसका चारों भ्रोर दौडना व्यर्थ ही गया । सद्गुरु द्वारा दी गई समक्ष को-ज्ञान को-अपनी वृद्धि के साथ जोड़ कर विचारने से प्रेम प्रतीति-भक्ति और श्रद्धा का ग्राघार आत्मदर्शन तो मन के अत्यन्त निकट ही है ॥४॥

एक तरफा प्रीति कैमे निभ सकती है। दोनों समान विभयों के मेल से ही संवि-मिलाप-होता है। मैं राग-द्रिप और मोह के फंदे में फंमा हुग्रा हूँ और आप राग रहिन और बंच रहित हैं। मेरी प्रीति तो तब ही निभ सकेगी जब मैं भी ग्राप जैसा बीतरागी बन जाऊं।।५॥

परम निवान (जजाना) मोझ मुख के सामने ही रखा हुआ है किन्तु उसे संसारी लोग (अंधे की भांति) टांघ कर चले जाते हैं। जगदीश की जान ज्योति के विना एक अन्धे के पीछे दूसरा अन्या—भेडिया धसान के समान दौड़ लगा रहा है और परम निवान आत्मतत्व को जो अपने पास है नहीं देखता—नहीं पहचानता ॥६॥

खंत्र चढाये तनयक् हेरत फिर्यो दिदेस ।
सुरत भई तव सांभर्यो, पूत खंव परवेस ।। (ज्ञानसारजी)

हे प्रभो ! आप निर्मल ज्ञानादि गृग्ग रत्नों के रोहग्गाचल पर्वत हैं और मुनिगगों के मनरूपी मानसरोवर के हंस हैं। वह नगरी घन्य है जो आपके चरगों से पवित्र हुई है। वह वेला—समय बन्य है जिसमें ग्रापका जन्म हुग्रा। आपके माता पिता और कुल (गोत्र) तथा वंश (कुटुम्द) ये सब घन्य हैं।।।।।

भिनत-भाव में विभोर मेरा श्रेष्ठ मन रूपी भ्रमर हाय जोड़ कर प्रार्थी है कि हे भगवान ! आपके चरण कमलों के निकट ही सेवक को निवास स्थान दीजिये । हे अनेक नाम वाले आनन्दघन प्रभो ! इस सेवक की यह प्रार्थना सुनिये और स्वीकार करिये ॥ ॥ -

## श्री शन्ति जिन स्तवन (१६)

(राग-मल्हार--चतुर चौमासो पडकमी-ए देशी)। शान्ति जिन इक मुक्त विनिती, सुर्गो त्रिभुवन राय रे।

शांति सरूप किम जािियये, कहो मन किम परखाय रे ।।शांति०।।१।। धन्य तू जेहने एहवो, हम्रो प्रश्न म्रवकास रे। धोरज मन घरि सांभली, कहूँ शान्ति प्रतिमास रे ।।शांति०।।२।। भाव श्रविशुद्ध सविशुद्ध जे,कह्या जिनवर देव रे। ते तिम ग्रवितत्थ सद्दहे,प्रथम ए शान्ति-पद सेव रे ।।शां०।।३।। श्रागम घर गुरु समिकती, किया सम्बर सार रे। सम्प्रदायि श्रवचक सदा, सुचि ग्रनुभवाधार रे ।।शां०।।४।। गुद्ध मालम्बन मादरै, तिज मबर जंजाल रे। तामसी वृत्ति सिव परिहरि, मजे सात्विकी साल रे ।।शां०॥४॥ फ़ल विसवाद जेहमां नहीं, शब्द ते ग्रर्थ सम्बन्धि रे। सकल नयवाद व्यापि रह्यो, ते शिव साधन संधि रे ।।शान्ति०।।६॥ विधि प्रतिषेध करि श्रातमा, पदारथ श्रविरोध रे। प्रहरण विधि महाजन परिग्रह्यूं, इस्यो म्रागमे बोध रे ।।शान्ति०।।७॥ दुष्ट जन संगति परिहरी, भजे सुगुरु संतान रे। जीग सामर्थ वित भावजै, घरै मुगति निहान रे ।।शान्ति०।।५।। मान ग्रपमान चित सम गिर्ण, सम गिर्ण कनक पाखान रे। वदक निन्दकहु सम गिर्ण, इस्यो होय तू जान रे ।।शान्ति०।।६।। सर्व जग जन्तु नै सम गिर्एं, गिर्एं त्रिण मिए। भाव रे। मुगित संसार वृधि सम घरं, मुग्गं भव-जलंनिधि नाव रे ।।शां०।।१०।। श्रापराो श्रातम भावजे, एक चेतना घार रे। श्रवर सचि साथ संजोगथी, ए निज परिकर सार रे ।।शा०।।११।। प्रभु मुख थी इम सांमली, कहै श्रातमराम रे। थाहरै दरसणे निस्तर्यो, मुक्त सीघा सिव काम रे ।।शां०॥१२॥

श्रहों श्रहो हूँ मुक्तने कहूँ, नमो मुक्त नमो मुक्त रे। श्रमित फल दान दातारनी, जेथी भेंट थई तुक्त रे।।शां०।।१३।। शान्ति सरूप संखेपथी, कह्यो निज पर रूप रे। श्रागम मांहि विस्तर घर्गो, कह्यो शान्ति निज भूप रे।।शां०।।१४।। शान्ति सरूप इम भाव से, धरि शुद्ध प्रिशांवान रे। 'श्रानन्दघन' पद पामसे, ते लहसे बहुमान रे।।शां०।।१५।।

पाठान्तर--राग....पडकमि-ए देसी = ढाल--दान उलट घरि दीजिये (अ, आ), चतुर चौमासो पडकमी-ए देसी (उ, ऊ,)। त्रिभुवन राय रे = त्रिभुवनराव रे (अ, ग्रा) । सरूप = स्वरूप (इ, ई, उ)। जाशिये = जाशियइ (ग्र), जाणिई (उ)। मन परखाय रे = निज परभाव रे (अ, ग्रा), मन परथाइरे (ড)। जेहने एहवो=एहवो जेहनै (ग्र), आतम जेहने (ড, ऊ)। हुवो=एहवो (अ, उ,ऊ)। धरि≂धरी (अ,उ,ऊ)। कहुँ=कहुं (अ,उ)। ग्रदिसुद्ध सविसुद्ध=ग्रविरुद्ध ग्रवि-शुद्ध (भ्र), अविशुद्ध, विशुद्ध (इ); यशुद्ध छै, शुद्ध छै (उ)। जिनवर=श्री जिनवर (भा, ई)। तिम = तेम (इ, ई)। ग्रवितत्य सद्हे = अवितय सद्हें (उ), अवि-तथ सरद है (ऊ)। प्रथम ए = प्रथम (अ)। गुरु = गुर (ऊ)। किया = किरिया (अ) । समप्रदायि = समप्रदायी (अ), सम्प्रदाई (आ, उ, ऊ) अवंचक= अवंछक (भ्र)। सुचि = सुची (अ)। अनुभवा = अनुभव (अ)। तजि = तजे (अ)। मूकतो (उ), तजी (ऊ)। परिहरी - परिहरै (ग्र, ऊ), परिहरइ (उ)। भजे - भजइ (उ) । सालरे = सार रे (उ) । केंहमां - जैम्हां (इ, ई) । शब्द ते अर्थ सम्वन्धि रे = शवद अरथ सम्बन्ध रे (ग्र), शब्द ते अर्थ सम्बन्ध रे (उ, क) । न्यापि = न्यापी (अ, आ, उ, क) । ते....संधि रे = सिद्ध साधन संध रे (अ) । विधि....आत्मा = विध-प्रतिषेध किया तथा (अ) । विधि = विध (अ)। महाजन - महाजने (अ, आ, क)। परिग्रह्यू - परिग्रह्यो (अ, ग्रा, उ, क), म्रागमे वोधरे - आगम अवबोध रे (अ), आगम बोधरे (इ) । परिहरी - परि-हरे (अ), परिहरइ (उ)। मजै = भजइ (उ)। जोग = योग (इ, ई, उ)। सामर्थं - सामर्थ्यं (उ) । अपमान = उपमान (इ, ई) । समगिरौ = गिरौ (अ,

थ्रा), समगरो (उ)। वंदक निन्दकहु = निन्दक वंदक (य), वंदक निन्दक (आ, उ, ऊ) इस्यो = इसौ (अ, आ, ऊ)। त्रिएा = तृएए (अ, आ,)। त्रुधि समधरे = वेउ सम गिरए (इ, ई), वहु (उ), विहुं (ऊ)। 'मुएं' अ प्रतियों में नहीं है। य्रातम = आतमा (उ)। सिव = सहु (अ)। साथ = सर्व (उ)। परिकर सार रे = परिसार रे । य)। थाहरे = ताहरे (अ, आ, उ क)। दरसए = दरसए (इ, उ)। मुक्त = मुज्क (ऊ)। सिव = सहु (अ), सवे (क)। आहो यहो हूँ = घहो हुं हुं (य, आ)। मुक्त = मुज्क (क)। दातारनी = दातारथी (अ), दातारनि (इ, ई)। अथी = अहवे (अ), अहनी (आ, उ, ऊ)। सरूप = स्वरूप (उ, क)। संत्रेप = संक्षेप (आ, इ, क)। कह्यो = कह्यूं (इ, ई)। भावसे = भावस्यै (अ, आ, उ, क)। शुद्ध = सुभ (अ)। पाम से = पामस्यै (प्र, आ, उ, ऊ)। ते लहमे = नहीं संत (अ, आ), लहस्ये ते (उ), ते लिहस्यै (ऊ)।

शब्दार्थ — त्रिमुवनराय = तीनों लोकों के स्वामी । परखाय = परीक्षा करना, पिहचानना । अवकाश = अवसर मिला, विचार आया । सांमली = सुनी । प्रतिभास = स्वरूप । अविसुद्ध = असुद्ध, हीन । सिवशुद्ध = शुद्ध, उत्तम । अवितत्य = यथार्थ । सहहे = श्रद्धान करे, माने । असम्प्रदाय = सम्प्रदाय के रक्षक वीतराग देव की मर्यादाओं के रखने वाले । अवंचक = निष्कपट । सुचि = पृतित्र , अनुभवाधार = अनुभव (ज्ञान) के आधार । अवर = अन्य, दूसरे । तामसी = नमो गृण वाली, कपायों वाली । सिव = सव । परिहरी = छोड-कर । सारित्रको = सारित्रक गृण वाली, समता, वया, क्षमादि गुण वाली । साल = सार, निष्कर्ष, उत्तमोत्तम । विसंवाद = संशय । प्रतिपेद = निषेद । श्रिवरोध = विरोध रहित । पाखान = पापाण, पत्थर । वंदक = वंदना करने वाला । निन्दक = निदा (बुराई) करने वाला । त्रिण = नृण, घास । परिकर = परिवार । थाहरे - तेरे । अमित = अनंत । प्रिणिवान = एकाग्रता, समाधि ।

भ्रयं—हे शान्तिनाथ प्रभो ! हे त्रिमुवन के राजेश्वर ! मेरी एक विनय युक्त प्रार्थना सुनिये। मैं आपके परम शान्त स्वरूप को कैसे जान सकता हूँ, कैसे पहचान सकता हूँ। ये सब ऋपा कर वताइये—कहिये॥१॥ यह जिज्ञासु भावनात्मक प्रश्न है, आगे के पद्य में इसका उत्तर है। लगता है कि स्वयं श्री शांतिनाथ भगवान ही उत्तर देते हैं या यों कहें कि ज्ञान चेतना कहती है—

हे आत्मा ! तू धन्य है जिसे ऐसे प्रश्न नरने का अवनर प्राप्त हुआ है, जिज्ञासा हुई है। मन में घैर्य धारण करके सुन। गांतिस्वरूप जैसा प्रति-पित हुआ हैं, ठीक वैसा ही यहां कहा जाता है।।२।।

श्री जिनेश्वर देव ने आगम में जिन जिन भावों को विशेष शुद्ध श्रीर जिन भावों को अशुद्ध (निकृष्ट) कहे हैं, उन्हें ठीक उस ही रूप में यथार्थ जान श्रीर उन पर पूर्ण श्रद्धा करना ही शांति-पद प्राप्ती की प्रथम सेवा है अर्थात् सोपान है। गांति-पद प्राप्ती के लिए सर्व प्रथम हढ श्रद्धा (विश्वाम) की आवश्यकता है।।३।।

इस पद में श्रद्धा ग्रयात् सम्यक्तव का महत्व एवं लक्षण वताया गया है।

(अनन्तकाल तक जीव स्वच्छन्द चले तो भी अपने ग्राप जान प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु जानी की आजा का आराधक अन्तर्मू हूर्त में ही केवल जान प्राप्त कर लेता है, इसलिए शीरामोह तक जानी की आजा का अवलंकन हितकारी है। श्री राजवन्ट)

आगमों के परमार्थ को घारण करने वाले अर्थात जिनेश्वर के कहे हुये ग्राचारांगादि शास्त्रों के जाता, संवर किया करने वाले, मोक्षमार्ग सम्प्र-दाय के अनुयायी और वीतराग देव श्री शांतिनाय भगवान की परम्परा के रक्षक, सदा अवंचक (आश्रव किया न करने वाले, निष्कपट और निर्देभ रहने वाले और दूसरों को न ठगने वाले) पवित्र, आत्मानुभव के आघार रूप सद्-गुरु की सेवा शांति-स्वरूपं प्राप्त करने का उत्कृष्ट मार्ग है ॥४॥

सम्पूर्ण सांसारिक जंजालों को त्याग कर जो शुद्ध आतम स्वरूप का अवलम्बन करते हैं श्रौर सब तामसी वृतियों (कपायादि राग-द्वेप भावों) का त्याग कर, जो मैत्री, प्रमोद, करुणा ग्रादि सात्विक वृत्तियों को ग्रहण करते हैं, वे ही शांतिस्वरूप को प्राप्त करने वाले सद्गुरु है।।।।।

गुरु उपदेश के सम्वन्य में कथन है-

फल का संदेह व अनिश्चित्तता जिसमें नहीं है ग्रर्थात् जो निश्चय रूप से मुक्तिदायक है, जिन के शब्द (उपदेश) भ्रांति रहित यथार्थं अर्थ के सूचक हैं, जिसमें पारमाथिक रूप से सफल नयबाद की पूर्ण रूप से व्यवस्था है—सब दृष्टिकोणों का समन्वय है। ऐमा गुरुउपदेश शिवमार्ग—मोक्ष मार्ग का साधन भूत एवं संविरूप है—हेतुरूप है—मिलाने वाला है।।६।।

आगे के सातवें पद्य में शांति स्वरूप का साक्षात्कार के प्रकार का निर्देशन है।

आतम पदार्थ के द्वारा ही विधि और निपेव की व्यवस्था और निर्णय होता है। जिन कियाओं का आतम भाव से विरोध नहीं है, वह 'विधिमार्ग' है। वह उपादेय (ग्रह्ण) करने योग्य है। आतम भाव से जिन कार्यो एवं कियाओं का विरोध हो व निपिध है—करने योग्य नहीं है। इस ग्रह्ण श्रीर स्थाप विधि को महापुरुषों ने अपनाया है, ऐसा श्रागम से वोध होता हैं।।।।।

कोवादि कपायं, राग-द्वेप और श्रशुम योग आत्म भाव के विरुद्ध हैं अतः ये त्याज्य हैं और तप संयमादि विविमार्ग हैं, यह ग्रहण करने योग्य हैं। ऐसा करते रहने से शांतिस्वरूप प्राप्त करने में कोई वाधा उपस्थित नहीं होती है, ऐसा आगमों (शास्त्रों) से बोध होता है।

ज्यां ज्यां के के योग्य छैं, तहां समऋ तू तेह । त्यां त्यां ते ते आदरे, ग्रात्मार्थी जन ऐह ।। (श्रीरायचन्द्र)

दुप्ट मनुष्यों के साथ को त्याग कर जो आरम्भ परिग्रह त्यागी, निरपृही अल्पकपायी, स्व पर समय के ज्ञाता ग्रुक्संतान की-शिष्य परम्परा की सेवा करता है वह योग शक्ति से-इच्छा योग, शास्त्र योग तथा सामर्थ्य योग से चित्त के भावों को स्वरूपानुयायी करके बंत में मुक्ति प्राप्त करता है।

श्रयवा मन, वचन और काया के योगों को श्रात्म शक्ति से वश में करके हृदय में इस परम पिवत्र आत्म तत्व को ध्याता है वह निश्चय से मुक्ति प्राप्त करता है। अर्थात् जो मन, वचन और काया के योगों को इतना संक्षिप्त करता है, ऐसा सम्यक् योग साघता है जिससे चित्तवृत्ति इधर उधर न जाकर श्रात्मा में ही लीन रहती है वह श्रवश्य मुक्ति लाभ करता है।।।।

मान (प्रतिष्ठा) अपमान को चित्त में समान समक्त, कनक (स्वर्ग्) और पत्थर की भी समान ही गराना कर, वन्दना करने वाले और निन्दा करने वाले को भी समान ही जान उस में भेद मत कर । हे प्रार्थी आनन्दघन! जब तू ऐसा हो जावेगा तब तू शॉति-स्वरूप वन जावेगा ।।१।।

जगत के सब प्राणियों को आत्मवत समक्क, मिण्यत्नादि को तृणवत जान, मुक्ति और संसार को भी समान जान अर्थात् दोनों में से किमी की इच्छा न कर । ऐसी विचार घारा भव-समुद्र से पार लगाने के छिए नाव के समान है, ऐसी दृढ श्रद्धान रख ।। १०।।

जो कोऊ निन्दा करें, करें प्रसन्धा कोय ।
असमी सम विसमें लखें, समी गर्ण सम होय ।।
समी खुसी, निह वे खुसी, असमी दोनों जोय ।
यात सम वृत्ति सबं, कर्म वंघ लघु होय ।।
दुख को सुख कर लेत है, जो समहप्टी साघ ।

असमी क्रं सुख दुख असम समी सदा निरवाघ।। (श्रीज्ञानसार)

अपना आत्म भाव (आत्मा का स्वभाव) एक चेतना के ग्राघार से जान दर्शन रूप जायक भाव ही है। यही सार रूप अपना (आत्मा का) परि-वार है, ग्रन्य सब साथ तो (स्त्री पुत्र घन दौलत ग्रादि) संयोगजन्य हैं "अस्याई हैं अतः हे ग्रात्मन! तू समस्त परभाव प्रपंच को छोड़ कर आत्म भाव में ही रमए। कर ॥११॥ प्रमु के मुख से ऐसा वोबप्रद उपदेश सुनकर आत्मा--चेतन व भक्त-क्षि कहता है— हे नाय ! आपके दर्शन से मेरा उद्घार हो गया और मेरे सब कार्य सिद्ध हो गये ॥१२॥

(वह अव आत्म विभोर हो कर कहता है) मेरा बही भाग्य है ! वन्य है मेरा भाग्य ! मुक्तको (आत्मा को) नमस्कार हो, वंदन हो ! हे नाय ! अनन्त फल देने वाले महादानेश्वर से जिसकी भेंट हो गई, वह घन्य है ।।१३।।

विशेष—जब परमात्म स्वरूप, प्रगट-अनुभव रूप प्रत्यक्ष—हो जाता है, तब ऐसे ही उद्गार निकलने हैं—"जो मैं हूँ, वह ही परमात्मा है, जो परमात्मा है सो मैं हूँ। मैं ही मेरा उपास्य हूँ।" भक्तराज देवचन्द्र जी ने मी कहा है—"जिनवर पूजारे ते निज पूजना रे"।

पंच पूज्ज थी पूज्य ए, सर्व ध्येय ये घ्येय ।
ध्याता ध्यानरू ध्येय ए, निश्चै अभेद ए श्रेय ।।६।।
अनुभव करता एहनो, थाए, परम प्रमोद ।
एक स्वरूप श्रम्यास सुं, शिव—सुख छै तसु गोद ।।१०।।श्रीदेवचन्द्रजी ।
राम रिसक अरु राम रस, कहन सुनन को दोय ।
जय समावि परगट भई, तब दुविधा नहीं कोय ।। श्रीवनारसीदासजी ।

शान्ति—स्वरूप—प्राप्ति के मार्ग का यह संक्षिप्त वर्णन है। इसमें निज स्वरूप और पर स्वरूप को जानने, समझते के लिये वर्णन किया गया है। इसका ग्रागम ग्रन्थों में अत्यन्त विस्तार है जिसे श्री शान्तिनाथ तीर्थं कर भगवान ने कहा है। (सव तीर्थं कर भगवान के आगम उस ही आत्म धर्म का उपदेश करते हैं, इसलिए उनके आगम एक ही हैं)।।१४॥

शान्तिनाथ भगवान के स्वरूप को जो इस प्रकार भिक्त पूर्वक निष्काम भाव से , . . (से एकाग्रता पूर्वक घ्यावेंगे वे अतिशय आनन्द दायक परम पद को प्राप्त करेंगे और संसार में बहुत सम्मान पावेंगे—सम्मानित होंगे।।१५।।

#### [ ३१४ ]

## श्री कुन्थु जिन स्तवन (१७)

(राग-रामकली - ग्रँवर देहु मुरारी हमारो -ए देशी)

कुन्थु जिन-मनड्रं किस हो न वाजै हो । जिम जिम जतन करीनै राखूं, तिम तिम ग्रलगू भाजै हो ।।कुन्थु०।।१।।

रजनी वासर वसती ऊजड, गयए पयाले जाय। सांप खायने मुखडू थोथू, ए उखाणो न्याय ।।कुन्यु०।।२।। मुगति तणा श्रभिलाषी तिषया, ज्ञान नै ध्यान श्रभ्यासै। वयरीडू कांइ एहवूं चिन्ते, नाखे श्रवले पासै ।।कुन्यु।।३।। श्रागम श्रागमधर नै हाथै; नावै किए। विघ श्रांकू। किहाँ कणे जो हट करि हटकूं, तो व्याल तणी पर वाँकू । कुन्यु । ४।। जो ठग कहूँ तो ठगतो न देखूं, साहूकार पिण नांहीं। सर्व मांहिनै सहुथी खलगू, ए खचरज मन मांही ॥कुन्यु॥५॥ जे जे कहुं ते कान न घारें, श्राप मते रहे क़ालो। सुर नर पंडितजन समभावै, समभै न म्हारो सालो ॥कुन्यु॥६॥ मैं जाण्यो ए लिंग नपुंसक, सकल मरद नै ठेलै। वीजी वातें समरथ छै नर, एहने कोई न भेलै ।।कुन्थु०।।७॥ मन साघ्यूं तिण सघलूं साघ्यूं, एह वात नहीं खोटी। इम कहै साध्यूं ते निव मानूं, एक ही वात छ मोटी ॥कुन्थु०॥६॥ मनडो दुराराध्य ते वसि श्राण्यूं, श्रागम थी मंति श्राण्ं। "श्रानन्दघन" प्रभु म्हारो श्रागो, तो सांचू करि जाणूः ॥कुन्थु०॥६॥

(१७)पाठान्तर--राम....हमारी - राग-तोरठ, मन्दोदरी दारदार यूं आसी (अ) । कुन्यु....वार्ज हो = हो कुन्यु जिन यनहुं किए। ही छाजै (अ)। वाजै हो = वां ऋइ (उ)। जतन = जतने (ग्र)। करीनै = कर कर (अ)। राम् = रादुं (अ, इ), राखो (उ)। भ्रलमू = अलिगुं (अ)। भाजै हो = भाजड जी (उ)। पयाले = पयाली (अ), पयाली (आ, उ)। जाय = नायै (आ, क), जायें (उ) । मुलह = मुहडी (अ) । थोयू = थोथो (अ), घोतू (उ) । ए= एह (क) । क्याएरो = कखरगो (उ), अखांसूर (क) । न्याय = न्याय (आ)। ज्ञान - ग्यांन (अ) । वयरीह - वैरीडो (अ, आ), वयरीड्डॉ (इ, ई), वयरीडो (उ) । एहवू = एहवो (अ) । चिन्ते = चिन्तवै (अ, आ) । अवले = अलवे (आ, क)। आगमधर = आगमधरि (अ)। नावै = जावै (अ) किहां करों = किसा ही (अ), किहां रे किए। (म्रा, क)। हठ करि - हठ करीनै (उ, क)। पर = परि (ध, आ, स)। कहूँ = कहुं (इ, ई)। देख्ं = देधुं (इ, स)। पिगा = पगा (अ, आ, उ)। ए = एह (य, आ)। अचरत = अचरिज (अ), अचिरिज (उ) अचिरज ए (छ)। कहूँ ते = कहूँनी (आ, छ)। कान = काने (इ, इ)। घारै = धारइ (उ) । कालो = काल्हो (ग्र) । समभावै = समुभावै (उ) । समभी= समऋइ (उ) । म्हारो - माहरो (उ) । मारी (ऊ) । मै - मै ए (अ) मइ (उ) । सकल - मयल (ग्र) । छै = छड़ (उ) । भीने - पैले (अ) । माध्यूं = साध्यो (अ,आ) । तिग् = तेग्रे (अ,आ), तिग्रे (इ,उ,ऊ), सघलू = नघलो । (अ, आर.) मगलूं (क)। एह वान = ए कहावनि (अ)। इस कहै = असकै (ম), इमकहि (ক্ত)। एक ही बात = एकहावति (এ), ए कहिबत (মা, জ,) एकहिवति (इ), एक हि वात (ई), ए कहवति (उ)। मनडो - मनडु (इ, ई, च), मनहूं (क)। दुराराध्य = दुरासद (अ). दुरादाध्य (ग्रा), दुराराध (इ)। वसि = वदा (इ, ई)। आण्यूं = आन्यी (अ,) आण्यी (या,) आप्यू (ई)। मित - मन (अ) । त्राएं - आण्यू (त्र), आर्णु (उ) । म्हारो - माहरो (अ, का, उ, ऊ) । सांचूं = सांची (अ, का,) सांचु (उ)। जाणूं = जाणों (अ), जाणुं (उ)।

शब्दार्थ-मनह = मन । किमही = किसी प्रकार से । न वार्ज = वार्ज

नहीं आता, मानता नहीं है। जतन = यतन, उपाय। अन्यू = अलग, हूर।
रजनी = रात। वासर = दिन। वसनी = जहाँ मनुष्य रहते हो। क्लड = जंगल; जहाँ कोई न रहता हो। गयण = गगन, आकाश। पयाल = पाताल।
योयू = लाली, अतृष्त। कलाणो = कहावत, उपाल्यान। वयरीह = वैरी, यहु। नालै = पटकता है। अवले = उल्टे, उन्मार्ग। पासै = पास में, रास्ते में। आहूं = अंकुश रूपाकं, वश में कर्ल। किहाँ कर्णे = किसी स्थान पर कभी। हटकूं = रोकूं, मना कर्ल। व्याल = उर्ष। वाकृ = वक्न, वाका, टेहा। पिण = परन्तु। जालो = दुवं दि परनी का का माई। सक्न = सव। मरद = पुरुष। ठेलै = दूर हटाता है। वीजी = दूसरी। समरय = वल्यान। नेले = पकडै। दूराराव्य = दु:साव्य, कठिनाई से आराधन (वश में) करने योग्य। मति = वृदि।

श्रयं—हे कुन्युनाय दिनेश्वर! मेरा यह मन बाद नहीं श्राना है— सानना नहीं है। श्रयवा मेरा यह मन रूपी वाद्यन्त्र मेरी वाग्गी के साय क्यों नहीं बजता है? अर्थात् सत्त्रका करते समय यह बाग्गी के स्वर में स्वर न मिलाकर इघर उघर क्यों मटकता है? जैसे दैसे पूर्ण यस्त करके वाग्गी के साय तत्स्य करने का श्रयाम करता हूं वैसे वैसे ही यह दूर क्यों भागता— दीवता है।।१।।

यह मेरा मन रात-दिन बस्ती, (नगर-प्राम) उजाइ, (जंगल) एवं आकास पाताल में निवांय गति मे जाता रहता है फिर भी तृष्त नहीं होना है अर्थात् भूखा ही रहता है। जैसे सर्प किसी को जाता है—उपना है तो उसका (नर्प का) मुख रीता (खाली) ही रहताहै—उसके मृख में कुछ नहीं जाता है। इस कहाबत के अनुसार मन चारों दिशाग्रों में मटकने पर भी कोरा ही—जाली ही रहता है। विषय रस तो इन्द्रियां लेती हैं।।२।।

मुक्ति के अनिवापी महान तयस्त्रियों एवं ज्ञान-च्यान के अम्यानियों को भी यह वैरी कुछ ऐसा जिन्तन करा कर, उनटे रास्ते लगा देना है-फंसा देता है। नोट---'नाखे अवले पासे' के स्थान पर कहीं कहीं यह पाठ है---''नाखे अलवे पासे'' जिसका वर्ष हैं---यह सहज ही उन्हें (ज्ञानी-ध्यानी तपस्वियों को) मोह पास में फैंसा देता है ॥३॥

आगमधरों के (शास्त्रज्ञों के) हाथ में आगम रूपी अंज़ुश रहता है फिर भी यह मदोन्मत हाथी किसी भी प्रकार से , उनके अंजुस से वस में नहीं आता । कभी किसी स्थान से बल पूर्वक दूर किया जाता है तो यह (मन) सप् के समान और भी अधिक वक्त (टेडा) हो जाता है । वशीभूत नहीं होता है ॥४॥

जो इसे, त्याग रूपी घमं को ठगने वाला ठग कहता हूँ तो इसे ठगी करते हुये नहीं देखता हूं क्यों कि भोगोपभोग रूपी ठगी तो इन्द्रियां करती दिखाई देती हैं। और इसे (मनको) साहूकार भी नहीं कह सकता हूँ क्यों के इसके योग विना इन्द्रियां प्रवृत्ति नहीं करती। अहा! अहा! यह मन की कैसी विचित्रता है? अरे! यह सब के (इन्द्रियों के) साथ रहकर भी सब से अलग है।।।।

परमार्थं की जो जो भी वातें कहता हूँ उस तरफ तो यह कान ही नहीं देना है—वे वातें तो सुनता ही नहीं है और अपने मते ही कलुपित रहता है। देव, मनुष्य और पंडित ज्ञानी लोगों के समक्षाने पर भी यह कुमित स्त्री का भाई समक्षता नहीं है।।६।।

(संस्कृत में मन शब्द नपुंसक लिंग है) अरे ! मैंने तो इसे नपुंसक लिंग ही समक्त रखा था किन्तु यह तो बड़े बड़े शक्तिशाली (सामर्थ्यंवान) पुरुषों को भी दूर ठेळ देता है। दूसरी वातों में मनुष्य भले ही समर्थ हो परन्तु इसके तेज को कोई भी सहन नहीं कर सकता है।।।।

(मनुष्य सिंह को वश में कर सकता है, समुद्र पार कर सकता है, अग्नी पर भी चल सकता है और हवा में भी उड सकता है पर मन को वश में करना कठिन है)। जिसने मन को साथ लिया है—विश्वमें कर लिया है, उसने सब कुछ सिद्ध कर लिया है। इस बात में तिनक भी खोट नहीं है—यह बात जरा भी गलत नहीं है। किन्तु इस पर विजय प्राप्त करने का कं ई यों ही दम्भ करे श्रीर कहे कि मैंने मन को श्रपने वश में कर लिया है तो मैं उमके इस दावे को नहीं मान सकता हूँ क्यों कि यह एक ही बात (मनोविजय) यहुत बड़ो है— बहुत ही महत्वपूर्ण और कठिन है।।।।

हे नाथ ! ऐसे कठिनता से आराधने योग्य-कठिगाई से वश में आने वाले मन को आपने वशीभूत कर लिया है-जीत लिया है। यह वात मैंने आगमों से जान ली है। हे अनन्त-आनन्द के धनी प्रभो ! यदि मेरे मन को आप वश में लादोगे तो मैं यह वात सचमुच ही प्रत्यक्ष जान लूंगा। अर्थात् जिसे शब्द प्रमाण से जाना है उसे प्रत्यक्ष प्रमाण से जान लूंगा।

इस स्तवन में ऐसा लगता है श्री आनन्दघन जी केवल मन की प्रवलता एवं दुराराध्यता ही दिखला कर रह गये है, उसे जीतने को कोई मार्ग नहीं दिखाया। परन्तु सुक्ष्म दृष्टि से विचारन पर इसका रहम्य कुल जाता है। श्री आनन्दघन जी केवल समस्याओं में उलक्ष कर ही नहीं रह जाते विक्त वह तो उसका समाधान अन्त में करके ही रहते हैं। इस पद में रहस्यमय ढंग से समाधान दिया है कि चाहे शास्त्र पढ़ो, योग साधन करो, तपस्या करो, ध्यान का श्रम्यास करो, यह मन तत्र तक वश में नहीं श्राता जब तक प्रभु—भिवत का दीपक प्रज्वलित न हो। मन को वश में करने वाले समर्थ महापुरुप का आश्रय लो कुं शुनाथ तीयं कर वैसे ही मन विजेता है अतः अपनी स्थित निवेदन कर मन की दुर्जेयता की वात करते हुए अन्त में मनोविजय की वात को सत्य—प्रत्यक्ष कर दिखाने—मुक्ते भी वैसा मनोविजयी बनादो कहा गया है।

### श्री ग्रर जिन स्तवन (१८)

(राग-परिजयो मारू, ऋषभनो वन्या रयणयरू, ए देशी) धरम परम श्ररनाथनो, किम जाएा मगवन्त रे।

स्व पर समय समभाविये, महिमावंत महन्त रे ॥घरम०॥१॥ शुद्धातम श्रनुभव सदा, स्व समय यह विलास रे। परविड छाँहिड जे पडै, ते पर समय निवास रे ।।घरम०।।२।। तारा नखत ग्रह चदनी, ज्योति दिनेश मकार रे। दरसण ज्ञान चरण थकी, सकति निजातम घार रे । धरम ।।।३।। भारी पीलो चीकराो, कनक श्रनेक तरंग रे। परजाय दृष्टि न दीजिये, एकज कनक ग्रमंग रे ।।धरम०।।४।। दरसण ज्ञान चरण थकी. प्रलख सरूप प्रनेक रे। निर विकलप रस पीजिये सुद्ध निरंजन एक रे ।।घरम०।।५।। परमारथ पथ जे कहै, ते रजे इक तन्त रे । व्यवहारे लिख जे रहैं, तेना भेद ग्रनन्त रे ।।धरम०।।६।। च्यवहारे लख दोहिलो, कांइ न ग्रावै हाथ रे। शुद्ध नय थापन सेवतां, निंद रहै दुवाधा साथ रे ।।धरम०।।७।। एक पिल लिख प्रीतनी, तुम साथे जगनाथ रे। किरपा करोनै राखज्यो, चरण तले गहि हाथ रे ॥थरम०॥ ।।।। चकी धरम तीरथ तणा, तीरथ फल तत सार रे। तीरथ सेवे ते लहे, "ग्रानन्दघन" निरघार रे ॥६॥

(१८) पाठान्तर—राग....रयग्रयरू = ढाल—मन मधुकर मोही रह्यो—
एहनी (ग्र)। जाणूं = जागुं (छ)। परविड = परिष्ड (ग्र, आ), परविडे
(उ, ऊ)। छाँहिंड = छांही (ग्र, आ), छांहडी (उ, ऊ)। जे = जिहाँ (ग्र, आ, उ,) जिहँ (ऊ)। तारा = तार (अ)। नखत = नक्षत्र (आ, उ, ऊ,) नक्षत (इ, ई)। ग्रह = ग्रह (ग्रा, उ,) थकां = तग्गी (अ, श्रा, उ)। सकित = श्रक्ति (अ, ग्रा, ऊ), शक्ति (इ, ई)। सकिती .... धार रे = ग्रातम ज्योति मभार रे (उ)। पीलो = पीयलो (ग्र)। परजाय = परजय (ग्र), पर्याय (आ,

इ, ई), पर्जय (उ), पर्यंय (ऊ) । दीजिये = दीजीइ (उ) । । सरूप = सरूगी (अ,) स्वरूप (इ, उ), निरिवकलप = निरिवकलप (इ, ई) । सुद्ध = गुद्ध (अ, इ, ई, उ, ऊ) । पथ = पिख (अ), पख (आ) गंथ (उ) । कहै = गहै (म्र, म्रा)। ते रंजे=तरें अं (अ), ते रंजइ (उ) । इकतन्तरे = एक तन्त रे (उ,) एकान्त रे (ऊ) । व्यवहारे = व्यवहारी (अ, आ, उ, ऊ) । लिख = लख इ, उ) । तेना = तेहना (म्र, आ, उ, ऊ), तेन्हा (ई) । व्यवहारे = व्यवहारी (उ) । लख = लखे (उ, ऊ) । दोहिलो = दौडता (अ, आ,) दोहिला (उ, ऊ) । नय थापन = नयातमें (म्र,) नयातम (म्रा), नय थापना (इ, उ, ऊ) । ना है = न रहै (म्र, म्रा) । साथरे = साधरे (उ)। किरपा = कृपा (अ, इ, ई, उ, ऊ)। राखज्यो = राखजो (अ,) गहि=म्रहि (अ, इ), म्रही (आ, ऊ)। म्रही(उ)। तम्मा = तम्मो (म्र, आ, उ, ऊ)। फल तत सार रे = धर्म फल सार रे (अ), फल तन सार रे (उ)। लहै = लिह ई (उ)।

शव्दार्थ-स्व — ग्रपना । पर च्यन्यका । समय=सिद्धांत । महिमांवन्त = यशस्वी । परविड=अनात्म भाववाली वड़ी । छांहिड़ि = छांह, छांव, छाया । नखत = नक्षत्र । दिनेश = सूर्य । कनक = सोना, स्वर्ण । परजाय = पर्याय, अवस्था । अभंग = ग्रखण्ड, भेद रहित । चरण = चारित्र । ग्रलख = अलक्ष, जो दिखाई न दे । निरिवकल्प = निर्विकल्प, विकल्प रहित, भ्रांति रहित, शांत भाव । निरंजन = निर्दोप, मल रहित । रंजे = प्रसन्न होवे । लखि = लक्ष्य, साधना विन्दु । लख = लक्ष्य । दोहिलो = कठिन, दुलंभ, दुष्कर । कांई = कुछ भी । दुविधा = संशय । गिह = पकड़कर । तले = नीचे । चित्री = चक्रवर्ती । लहे = प्राप्त करे, पावे । निरधार = निश्चय हो ।

श्चर्यं—श्री अरनाथ जिनेश्वर देव का धर्म अत्यन्त उत्कृष्ट है। ऐसे उत्कृष्ट धर्म को मैं किस प्रकार जान सकता हूँ? हे महिमावन्त महाप्रभु ! स्व ममय—स्वदर्शन—आत्मधर्म श्रीर पर समय—पर दर्शन—विभावधर्म—पुद्गल धर्म का स्वरूप मुभे कृप। कर समभाइये ।/१। उत्तर में मानो साक्षात् भग-वान कहते हैं—

शुद्ध ग्रात्म स्वरूप का निरन्तर अनुभव होता रहे, यह सब समय का विलास है—आतम स्वरूप का मनोविनोद (आनन्दमग्नता) है। पर पदार्थ— अनात्मभाव की जहां तिनक भी छाया पड़ती है—असर होता है तो वह पर समय निवास है। कम रूप जड़ पुद्गल का प्रभाव है। श्रर्थात् ज्ञान, दर्शन ग्रीर चारित्र में स्थित स्व समय है और पुद्गलमय कम प्रदेश में स्थिति पर समय है।।२।।

विशेष—हे भव्य ! जो जीव दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थिर रहता है उसे निश्चय ही स्व समय जानो और जीव 'पुद्गल कर्म के प्रदेशों में स्थित होता है, उसे पर समय समभो।

तारा, नक्षत्र, ग्रह ग्रीर चन्द्रमा की ज्योति जिस प्रकार सूर्य में निहित है-समावेश है, उस ही प्रकार दर्शन, ज्ञान ग्रीर चारित्र को निज आत्म शक्ति ही समभो ॥३॥

इसी तत्व को दूसरी तरह से वताते हैं-

सोना भारी, पीला, चिकना थ्रादि य्रनेक तरंग (भेद) वाला-गुग् पर्याय वाला है किन्तु पर्याय दृष्टि को गौग् कर देखा जाय तो स्वर्ण पदार्थ में सब तरंगों (भेदों) का अभंग रूप से समावेश हो जाता है। अर्थात् सोने के भारी पन, पीला पन, चिकना पन पर दृष्टि न दें तो मात्र सोना दिखाई देता है। उसी प्रकार ज्ञान, दर्शन, चारित्र ग्रात्मा के साधारण तौर पर पृथक् पृथक् गुग्ग दिखाई देते हैं किन्तु वे सब आत्मा रूप ही हैं 11४।।

दर्शन, ज्ञान श्रीर चारित्र के भेद से अञ्ख्-(अलक्ष्य)-आत्मा के अनेक स्वरूप हैं। निर्विकल्प रस पान कर-विकल्प त्याग कर शांति पूर्व क सम्यक हिण्टकीए। से देखें तो शुद्ध निरंज्न आत्मा तो एक ही है। अर्थात् आत्म ग्रुग पर्याय हिण्ट से-विकल्प से अनेक स्वरूप वाला है श्रीर निर्विकल्प हिण्ट से उसका स्वरूप शुद्ध निरंजन - सिद्ध स्वरूप है।।।।

जी परमार्थ मार्ग के-ग्रात्म मार्ग के कहने वाले हैं-आचरण करने वाले

निश्चयनयवादी हैं-वे तो केवल ग्रात्मतत्व से संतुष्ट होते हैं-प्रसन्न होते हैं। श्रीर जी व्यवहार की श्रीर लक्ष रहते हैं अर्थात् व्यवहारनयवादी हैं उन्हें इस के (आत्मा के) अनन्त भेद (ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ग्रजर अमर, ग्रव्यावाघ श्रादि) हृष्टि गोचर होतेहैं।।६॥

व्यवहार नय से लक्ष्य तक पहुंचना—परमार्थ प्राप्त करना—सिंच्यदानन्द रूप तत्व तक पहुंचना दुर्लभ है — कठिन है। व्यवहार नयवादी अन्तरंग को नहीं जानता यह बाल दृष्टि है इसलिए परमार्थरून कुछ भी हाथ नहीं आता है। किन्तु शुद्ध नय—निश्चयनय—को हृदय में स्थापित कर के जो आचरण करता है उसे किसी प्रकार की दुविधा का संयोग नहीं होता है। 1811

हे जगत के स्वामी अरनाथ भगवान ! श्रापके प्रति मेरी प्रीति एक पक्षीय है कारण कि मैं आप जैता नहीं हूँ। क्यों कि आप तो वीतरागी हैं और मैं साधक दशा में हूँ। इस एक पक्षीय भीति को देखकर अर्थात् मैं साधक दशा से गिरू' नहीं ग्रतः कृपा पूर्वक मेरा हाथ पकड कर मुक्ते अपने चरणों के आधीन ही रखना।। । ।

'निरागी था रे रागनू' जोडवू', लहिये भवनो पारोजी (श्रीदेवचन्द्रजी)

है भगवान! चतुर्विध संघ रूप धर्म तीर्थ के आप चन्नवर्ती सम्राट हैं। आपही इस धर्मतीर्थ के फल रूप, तत्व रूप सार पदार्थ हैं —ध्येय हैं। जो प्राग्ती आपके धर्मनीर्थ की सेवा करता है—आराधना करता है, वह निश्चय हो आनन्दघन पद (मोश) को प्राप्त करता है।।९।।

## श्री महिल जिन स्तवन (१६)

(राग-काफी)

सेवक किम श्रवगणिपहो ,मल्लि जिन, ए श्रव सोभा सारी। श्रवर जेने श्रादर श्रति दिये, तेने मूल निवारी हो ॥मल्लि॥१॥

ग्यान सरूप श्रनादि तुमांरूं, ने लीघो तुम ताणो। जूस्रो स्रत्रान दशा रीसाणी, जातां कारा न श्राणी हो ।।म०।।२।। निद्रा सुपन जागरूजागरता तुरिये ग्रवस्था श्रावी। निद्रा सुपन दसा रिसाणी, जाणि न नाथ मनावी हो ॥म०॥३॥ समकित साथे सगाई की घी, सपरिवार सुंगाढी। मिथ्यामति श्रपराधण जाणो, घर थी बाहिर काढी हो ।।म०।।४।। हास अरित रित सोक दुगंछा भय पामर करसाली। नीकष:य-गज श्रेणी चढतां, श्वान तर्गा गत भाली हो ।।म०॥५॥ राग द्वेषं ग्रविरतनो परणति. ए चरण मोहना जोधा। बीतराग परणित परणमतां ऊठी नाठा बोघा हो ।।म०।।६।। वेदोदय कामा परणामा, काम्यक रसह त्यागी। नियकामी करुणारस सागर, श्रनन्त चतुष्क पद पागी हो ॥म०.।७।। दान विघनवारी सहु जनने, श्रभयदान पद दाता। लाभ विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रस माता हो ॥म०॥८॥ बीर्य विवन पंडित बीर्ये हंणि, पूररा पदवी जोगी। भोगोपभोग द्रय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी हो ।।म०॥ है।। ए श्रठार दूषरा वरजित तनु, मुनिजन वृन्दे गाया। म्रविरति रूपक दोष निरूपण, निरदूषव मन भोर्या हो ॥म०॥१०॥ इग् विघ परखी मन विसरांमीं, जिनवंर गुण जे गावै। दीनवन्धुनी महर नजर थी, "ग्रानन्दघन" पद पार्व हो ॥म०॥११॥ (१९) पाठान्तर- राग-काफी-राग मारू (अ, आ), राग काफी-सेवक किम अवगुशीइहो (उ)। 'सेवक किम अवगणिय हो' यह वाक्य आः और उ, प्रति में नहीं है। ए अब सो्मा सारी = अचंभा भारी हो (अ), अचंभो भारी (आ)। ए = एह (उ)। अवर....दिये = अवर सह जेहने आदर दें (अ,) अवर जेहने आदर अति दिये (आ, इ, ऊ), अरि जेह नह आदर अति दिइं (उ)। तेने = तेहनुं (अ), तेहनुं (आ,) तेहने (इ, उं, ऊ)। ग्यान सरूप = जान सरूप (अ, आ,) जान स्वरूप (इ, ई; उ)। तुमारूं = तुंमहारो (अ), तुमारो (उ)। लीबो = लीघूं (आ, इ, ई, उ)। तुम = तुमे (अ, आ, ऊ,) तुम्हे (उ)। जुओ = जुओ (इ, ई,) जोऊं (उ, ऊ)। अज्ञान = अजाग (अ)। रीसायी = रीसावी (अ, आ, उ, ऊ)। काग = कागि (अ, उ)। निह्र.... जागरता = जागर उजागरता घरंतो (अ, आ,) निद्रा मुपन जागर उजागरता (उ, ऊ)। तुरिय = तुरी (अ,) तुरीय (उ)। जािण न = तािण (अ,).जािण न (आ, उ, ऊ)। साथे—अ प्रति में यह शब्द नहीं है, सािथ (जू)। सू = सौ (अ,) स्यु (उ)। अपराघण = अपराघिण (अ, उ)। वािहर = वाहिर (उ)। हास = हास्य (अ, इ, ई, उ, ऊ)। करसाली = घूलसाली (अ), धुरसाली (उ)।

नोट-अ प्रति में पांचवां पद तो छठा पद है और छठा पद पांचवां पद है।

गजश्रेणी = श्रेणी गज (अ,आ, ऊ) । श्रेणी गत (उ)। गत = गित (य्रा, इ, इ, अ)। श्रिवरतनी = अवरति (अ,) ग्रिवरितनी (आ; ऊ), अविरितना (उ)। परणित = परिणित (य्रा, इ, ई,) परिणित (ऊ)। जोधा = योधा (आ, इ, ई)। परणित = परिणित (आ, इ, ई), परिणित (ऊ)। परणमतां = परिणितां (य्रा, इ, उं, ऊ,)। वोधा = ग्रिवोधा (उ)। वेदोदय = वेदउदय (अ, उ)। परणामा = परनामा (अ, उ,) परिणामा (ग्रा, ऊ)। काम्यक....त्यागी = काम्य परम सहु त्यागी (ग्रा,) काम्य करम सहु त्यागी (ग्रा, उ, ऊ)। निक्कामी = निकामी (अ,) निष्कामी (इ, ई)। निःकामी (उ)। चतुष्क = चतुस्क (ऊ)। विधनवारी सहु = विधनवारी (ग्रा)। जग = जिंग (उ)। वीर्य = वीरज (ग्रा)। वीर्य = विरज (अ,) विरजे (उ)। हिणा = हर्ण (अ,) हणी (आ, उ, ऊ)। जोगी = योगी (इ, ई, उ) द्रय = दोइ (अ), दुइ (आ), दोय (उ, ऊ)। पूरणा= परम (ग्र, उ)। भोग सुभोगी = भोग रस भोगी (अ)। ए = एहं (ग्र,)।

श्रठार — श्रदार (अ, श्रा, इ, उ, ऊ)। गाया = गायो (य, क्षा)। श्रविरुति-रूपक — श्रवर निरूपक (श्र, श्रा)। भाया — भोयो (अ, आ,) नाया (उ)। इग्रा — इग्रि (उ)। विघ = विधि (आ, इ, ई, उ, ऊ)। महर = महिर (अ, उ, उन्,) मिहर (आ)।

शब्दार्थ—अवगणिये = उपेक्षा करते हो, अनादर करते हो। अवर = अन्य, दूमरे। निवानी = दूर करना। तांगी = खेंचकर। जुओ = देखों। रिसागी = कोघित होकर, कुपित होकर। काण = कानि, मर्यादा। तुरिय = चौथी। गाढी = मजबूत। काढी = निकाल दी। दुगंछा = ग्लानि, घुणा। पाम्र = नीच। करसाली = तीन दांतों वाली दन्ताली, पुरुप, हभी नपुंसक वेद, कृपक। दवान = कुत्ता। माली = पकडी। भाया = अच्छे लगते हो। परखी = परात कर, परीक्षा कर।

धर्य—हे मिल्लिनाथ जिनेश्वर! समवशरण रूप वाह्य शीभा और केवल ज्ञान रप अभ्यन्तर शीभा प्राप्त करके सेवक (भक्त) की आप ध्रव-गणना—उपेक्षा क्यों कर रहे है ? क्या आपकी शीभा (मिहिमा) की श्रेप्टता यही है ? नही, जिस राग भाव को अन्य लोग अत्यन्त आदर देते है, उस ममत्व को तो आपने जहामूल से ही उखाड कर फैक दिया है। (यही आप की 'महिमा की श्रेष्टता हैं) ॥१॥

आत्मा के ग्रनादि ज्ञान स्वरूप (जो आपका स्वरूप है) को ग्रापने , ग्रज्ञानावरण से खेंचकर वाहर निकाल लिया है। इसलिए वह अज्ञान दशा आपसे कुपित हो गई, और चली गई। उसे जाता देखकर भी श्रापने उसकी कोई काण-मर्यादा का विचार नहीं किया। अनादि काल की साथिन का भी विचार नहीं किया।।२।।

निद्रा, स्वप्न, जागृति श्रीर उजागरता (हर प्रकार से विशेष जागृति) इन चारों दशाग्रों में से उजागरता जो चौथी अवस्था है, उसे श्रापने प्राप्त करली है अर्थात् सहज श्रात्म स्वरूप में सतत जागृति प्राप्त करली है। इसलिए निद्रा श्रीर स्वप्नदशा आपसे कोधित हो गई। उनको कुपितं जान कर भी हे नाथ! आपने उन्हें नहीं मनाया-प्रसन्न करनं की कोई चेष्टा नहीं की ॥३॥

क्षापने सम्यवत्व और उसके परिवार (शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा श्रीर श्रास्तिक्य) के साथ प्रगाढ सम्बन्ध स्थापित किया है और मोह सुता मिथ्यामित को (दुर्बु दि को ) अपराधिनी समक कर आहम-गृह से वाहर निकाल दिया है।।४।।

हास्य, (हंसी) रित, (ग्रासिक्त) अरित, (चित्तका उद्देग या अप्रेति), शोक, (रंज), दुगंछा (घृगा, ग्लानी) और भय तथा स्त्री पुरुष नपुंसक वेद-ये नो कपाय जो पाप कमं के कृषक हैं, इन्होंने आप को क्षपक श्रेणी रूपी गजराज पर चढते हुए देखकर कुत्तों की चाल पकड़ छी ग्रथित् भोंक कर भाग गये।।।।।

राग-द्वेष, श्रविरित (चारित्र घातक भाव) ये चारित्र मोहनीय राजा के वलवान सुभट हैं। ये आपको वीतराग में परिण्यान करते जानकर-दीत-रागी होते देख कर, समभदारी का ढोंग करने वाले बेचारे, सामध्यंहीन भाग खड़े हुये ॥६॥

वेदोदय से पुरुष को स्त्री देख कर ग्रीर स्त्री को पुरुष देखकर काम वासना उत्पन्न होती है किन्तु ग्रापतो काम को उत्पन्न करनेवाले रस के सर्वथा त्यागी वन गये हैं। अवेदी वन गये है। इस प्रकार हे दया के समुद्र निष्कामी बनकर—कामना रहित होकर, आप अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य इस चतुष्क पद में ठीन हो गये हैं।।७।।

हे प्रभो ! आप दान देने में दिघ्न उत्पन्न करने वाले दानातराय कर्म की दूर करके सम्पूर्ण भव्य प्राणियों को अभयदान की पदवी (किर कभी भय उत्पन्न नहीं हो-ऐसी पदवी) देने वाले दानी हैं। लाभ में विघ्न उत्पन्न करने वाले लाभान्तराय कर्म के विघ्न दूर हटाने वाले ग्राप विघ्न विद्यानक हैं, और परम लाभ-उत्कृष्ट लाभ (मोक्ष) से लाभान्वित हैं।।5।। हे स्वामी ! शक्ति और पराक्रम में विध्न डालने वाले वीर्यान्तराय कर्म को अपने पंडित-चतुर आत्म वल से नष्ट कर आपने पूर्ण पदवी-अनन्त शक्ति से सम्बन्ध जोड लिया है। और भंगों में और उपभोगों में विध्न उप-स्थित करने वाले भोगान्तराय और उपभोगान्तराय इन दोनों को दूर करके पूर्ण भोग-आत्नानन्द को भो ने वाले हैं ॥९॥

कपर बताये हुये अठारहश्चिशोवों से रहित आगका शरीर है। मुनियों के बड़े बड़े समूशों ने अपकी स्तवना की है। आप अविरित रूप दोषों को बताने बाले हैं, और इन दोषों से आप रिहत हैं इसिवये आप मुफे अच्छे लगते हैं— प्रिय लगते हैं।।१०।।

इस प्रकार १८ दुषणा रहित तीर्थं कर की परीक्षा करके मन को विश्राम देने वाले (मन के विश्राम स्थल) श्री मल्ली नाथ जिनेश्वर देव के जो गुण गान करते हैं वे दीनवः घुभगवान जिनेश्वर की कृपा दृष्टि से आनन्द से परिपूर्णं पद—मोझ को प्राप्त करते हैं ।।११॥

# श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवत (२०)

(राग-काफी-प्राघा आम पधारी पूज्य, ए देशी)

मुनिसुव्रत निजराज एक मुभ विनती सुणो ।।टेक।। श्रातम तत क्यू जाणूं जगतगुरु, एह विचार मुभ कहिये। श्रातम तत जाण्या विरा निरमल, चित समाधि नवि लहिये

शमु०॥१॥

कोई म्रबंघ म्रातम तत मानै, किरिया करतो दोसै। किया तणो फल कोग् भोगवै, इम पूछ्यां चित रीसं ॥मु०॥२॥

श्चि १ आशा-तृष्णा, २ अज्ञान, ३ निद्रा, ४ स्वप्न, ५ मिण्यास्त्र, ६ हास्य, ७ रति, द अरति, ९ भय, १० शोक, ११ दुगंच्छा, १२ राग, १३ होप, १४ अविरति, १५ काम्यक दशा, १६ दानान्तराय, १७ लाभान्तराय और १६ भोगोनभोगान्तराय।

ंजड चेतन ए ग्रांतमं एकज, यावर जंगम सरिखो । सुख दुख संकर दूषण प्रावै, चित विचार जो परिखो ॥मु०॥३॥ एक कहै नित्यज भ्रातम तत, श्रातम दरसण लीनों। कृत विनास श्रकृतागम दूषण, नवि देखे मजि हीनो ।।मु०।।४।। सुगत मत रागी कहै वादी, क्षिएक ए आतम जाणी। बंध मोल सुख दुख निव घटै, एह विचार मन जाणो ॥मु०॥५॥ भूत चतुष्क वरजी. श्रातम तत, सत्ता श्रलगी न घटै। श्रन्ध सकट जो नजर न देखैं, तो स्यूं कीजै सकटै ।।मु०।।६॥ इम श्रनेक वादी मत विभ्रम, संकट पडियो न लहै। वित समाधि ते माटे पूछूं, तुम विण तत कोगा कहै। मु०।।७।। वलतुं जगगुरु इण परि भाखे, पक्षपात सहु छुंडी । राग-द्वेप मोहे पख वरिजत, श्रातम सूं रह मंडी ॥मु०॥ ॥। म्रातम ध्यान करे जो कोऊ, सो फिर इण में नावै। वागजाल बीजूं सहु जार्गे, एह तत्व चित चावै ।।मु०।।६।। जे विवेक घरि ए पख ग्रहियो, ते ततज्ञानी कहियै। श्री मुनिसुत्रत कृपा करो तो, ' श्रानन्दघन'' पद लहियै ॥मु०॥१०॥

(२०) पाठान्तर—राग....देती = राग सोरठ-अधिका ताहरा हुंता अपराधी (अ), आधा आम पघारो पूज-ए देती (अ, उ, ऊ) । मुनिसुवर्त = सुणौ मुनिसुवर्त (अ,) जिन राज = जिनराया (अ, उ,) जिन राय (अ, ऊ)। एक = इक (आ, ऊ)। विनती सुणो = वीनती (अ,) वीनति निसुणो (आ, ऊ)। तत = तत्त्व (उ, ऊ)। वयूं = िकम (अ, आ,) क्युं (उ)। जाणूं = जाणुं (अ, उ,) जाण्यूं (ई)। कहिये = कहीये (अ,) कहियो (इ, ऊ,) कहिओ (उ)। विण = विन(आ,) विणु (उ)। छहिये = लहीइ (अ,) लहियो (इ,

क,)लिहिओ (उ) । मानै - मानइ (उ) । किरिया - किया (अ) । फल = फल फहो (उ, क)। को ग - कु ए (उ, क)। पूछ्यां - पूछ्यो (य, या, उ,) पूछ्यूं (क)। जड....एकज = जड चेतन एकज आतम तत (अ,) जड चेतन तत यातम एका (उ)। थावर - स्थावर (इ)। सुख दुख - दुख सुख (अ, उ, क)। लीनो - लीएो (अ, आ, उ, क)। हीनो - हीएो (अ, आ, उ, क)। क्षिणक को ए आतम = आतमा (अ, या)। मोख = मोक्ष (इ, ई, उ)। निव घटै - तत न घटे (अ,) न घटै (आ, उ,) तने न घटै (उ)। मन = मित्र (अ)। वरजी - विजत (इ, ई)। नजर - निजर (य, उ, क)। देखै - निरखै (अ)। स्यूं - सू (अ)। मत = मित्र (उ)। पिडयो = पिडओ (उ,) पिडयौ (क)। को ग = कोन (य), को इन (या, उ, क)। सह - सव (इ, ई, उ, क)। मोहे - मोह (अ, आ, उ, क)। वरजित - विजत (इ)। रढ - रती (या, आ,) रिढ (उ)। को क - कोई (या, आ)। इएएमें - इतमें (अ)। इएएमां (उ)। जाएो - जाएो (उ)। एह....चवे - एह तत् चित भावै (या)। के - जिए। (अ, आ, का,) जिएं। (उ)। धिर - घर (आ, क)। ए पख - ए (या)। करो - करें (या)।

शान्दार्थ — तत = तत्त्र । निव = नहीं । निहये = प्राप्त करो । अबंध = वंध रहित, निलें । दिसे — दिखाई देता है । रीसे = रुष्ट होता है, नाराज होता है । यावर = स्थावर, स्थिर रहने वाले प्राणी । जंगम = चलने फिरने वाले प्राणी । सिरको = वरावर, समान । संकर = सांकर्य दोप । परिखो = परीक्षा करो । निह्मज = एकांत, नित्य । लीनो = निमग्न । मितहीनो = बुद्धि होन । सुगत = भगवान बुद्ध । भूत = तत्व । चतुष्क = चार तत्व-पृथ्वि, पाणी, प्राप्ति और वायु । वरजी = रहित । अलगी = अलग, पृथक । सकट = शकट, गाडी । तेमाटे = इस कारण । वलतूं = वापिसी में, उत्तर में । रढ = प्रीति । चागजाल = वाणी व्यापार, वक्षवास । वीजू = दूसरा । सहु = सव । विवेक = परीक्षक बुद्धि ।

. श्रर्भ — हे मुनिसुव्रत जिनेश्वर देव ! मुक्त सेवक की एक मात्र विनती -प्रार्थना है उसे सुनिये । हे जगतगुरु ! मैं श्रात्मतत्व को किस प्रकार जानलू

इस उपाय को मुक्ते बताइये। निर्मल ग्रात्मनत्त्र के जाने बिना बित्त में स्थिरता नहीं आती है-शांति प्राप्त नहीं होती है। मुक्ते बढी डलभन हो रही है क्यों कि आत्मा के सम्बन्ध में हरेक दर्शन के विभिन्न मत हैं।।१।।

कितने आत्मा को अवन्ध-वन्ध रहित मानते हैं किन्तु आत्मा क्रिया-कर्म करता दिखाई पडता है। जब क्रिया करने वाला आत्मा है तो उस क्रिया का फल दूसरा कीन भोगेगा? इस प्रकार प्रश्न करने पर आत्ना को बन्ध रहित मानने वाले एकान्तवादी मन में बोधित होते हैं।। २।।

. विशेष—यद्यपि जैन दर्शन निश्चयनय से आत्मा को वन्धरहित मानता है किन्तु यदि अन्य नयों की अपेक्षाओं का ध्यान न रखा जाय तो यह एकांत वाक्य हो जाता है। यह किसी अंग में सत्य होते हुये भी सर्वथा सत्य नहीं है,। यदि श्रात्मा को सर्वथा वन्ध रहिन मान निया जाय तो प्रश्न होता है कि आत्मा कियायें-कर्म-करता है, तो उनका फल भी भोगेगा ही। किया-कर्म है तो उसका फल भी है ही। आत्मा को किया करता हुआ तो मानते हैं, फल का भोगता नहीं। तब उस किया का फल कोई दूसरा भोगेगा क्या? (भोजन तो वेटा करेगा, पेट बाप का भरेगा!) इस प्रश्न पर वे एकांतवाची सांख्य और वेदान्ती कोधित हो जाते हैं।

जड़ श्रीर चैतन्य को कितने ही दार्शनिक एक रूप ही मानते हैं (श्रद्धे तवादी) अर्थात् चलने वाले तथा स्थिर रहने वाले पदार्थ दोनों एक ही समान है। ऐसा माना जाये तो जीव को सुख-दु:ख न होना चाहिये। यदि सुख-दुख माना जाय तो न्यायशास्त्रानुसार इस में संकर दोप होता है। इस प्रकार विचार कर आत्मतत्व की परीक्षा करनी चाहिये।।।।।

पृथक-पृथक पदार्थों के पृथक पृथक लक्षरा हैं। जहां ये लक्षरा एक दूसरे में घटित हो जावे वहां संकर नामक दोष होता है। सुखंका वेदन श्रानंद है और दुख का वेदन क्लेश है। दोनों भिन्न स्वभावी हैं। जहाँ इन्हें एक ही ही माना जाय वहां संकर दोप है। इसी प्रकार जड़ जंगम को (चैतन्य श्रीर जड़ को) एक समान समक्षते में भी संकर दोप है।

अद्वेत मत के मुख्य तीन भेद हैं - अद्वेत, द्वैताद्वैत और विशिष्टाद्वैत । अद्वेत वालों की मान्यता है— 'एकं ब्रह्मां द्विलीय नास्ति।' इसके अनुसार जड़ जंगम में कोई भेद नहीं है। मव ही ब्रह्मा है। विशिष्टाद्वैत वालों का कथन है— ''एकः गवंगतो नित्यः''। इसके अनुसार जड़-चेतन में एक ही आत्मा व्याप्त है द्वैताद्वैत के मानने वाले जड़ जंगम में धोड़ा भेद मानते हैं। सारांश यह है कि जड़ श्रीर चैतन्य दोनों आता की दृष्टि से एक ही है। इस मान्यता में संकर' नामक दोप है क्योंकि सुख-दुख भी एक ही हुये। इस दृष्टिकोश से चैन्य के कृत कर्म सुख-दुख जड़ को भोगने पड़ेंगे और जड़ के कृत कर्म सुख-दुख चैतन्य को भोगने पड़ेंगे। यह संभव नहीं है। यह तो संकर दोप है। इस्तिलये इस प्रकार कहापोह करके आत्मतत्व की परीक्षा करो।

एक मतावलंबी—एकांतवादी—आत्मतत्व को एकसा रूप में रहने वाला नित्यज मानते हैं क्योंकि वह अपने स्वरूप दर्शन में लवलीन है। इस मान्यता में कृत विनाश—अपने किये हुये कमें का फल स्वयं को नहीं मिलता और अकृतामग-जो कमें अभी तक किया नहीं गया है उसकी फल प्राप्ति—ये दो दोप आते हैं। इस वात को मितहीन-प्रिवारक एकान्तवादी जरा भी नहीं देखते हैं।।४।।

संनार में प्राणियों को सुख-दुख भोगते हुये देखा जाता है। उसका कारण पूर्व हुन शुभाशुम कमं ही हैं। यदि ग्रात्मतत्व को ग्रपने स्वरूप दर्शन में लवलीन (मग्न) नित्यज, एकरूप में रहने वाला माना जाय तो सुख दुख का कर्त्ता श्रीर भोगता कौन है? यह प्रश्न स्वतः ही उपस्थित होता है जिसका कोई उत्तर नहीं है।

आत्मतत्व की जाकारी तो वस दृष्टिकोणों से विचार करने पर हो सकती है।

वीद दर्शन को माननने वाले तर्कवादी ग्रात्मा को क्षिणिक (क्षण क्षण में बदलने वाली) कहते हैं। यदि मात्मा का रूप क्षिणिक माना जाय तो वेधन श्रीर मुक्ति तथा सुख और दुख की व्यवस्था वैठती नहीं है। इसका भी ती जरा विवार करो।। ।।।

अतमा को क्षण क्षण में वदलनी हुई माना जाय नो पुण्य-पाप करने वाली आत्मा दूमरी और मुख—हुन्न भोगने वाली आत्मा दूमरी होगी। वंघ में पड़ेने वाली आत्मा दूसरी होगी और मुक्न होने वाली आत्मा दूमरी होगी। जन्म लेने वाली आत्मा दूसरी होगी और मरने वाली आत्मा दूमरी होगी। तव फिर मुल—हुन, वंघ—मोक्ष जन्म—मरण शब्द निर्थंक हैं। ये सब शब्द काल्पनिक हैं। पहले क्षण कोई किया की गई, उसका वन्य हुआ ही नहीं. जव वंघ नहीं हुआ तो मोल—मुक्ति किस की होगी? कीन मुक्त होगा? आत्मा की क्षिणिक मानने में ये बाबायें उपस्थित होनी हैं। बुद्धदेव ने संसार को जो दुल क्ष्य वताया है, चार आर्य सत्य कहे हैं और दुल से लुटकारे का जो विचार कहा है, वह सब असत्य ठहरता है क्यों कि आत्मा क्षिणिक है।

स्वयं बुद्ध देव ने कई दिनों तक घोर तपस्या की और उसमें होने वाले...
सुख दुन के अनुभव किये। आत्मा क्षिण्य होने से सुख-दुख अनंत आत्माग्रों ने
अनुभव निये या बुद्ध देव ने ? यदि बुद्ध देव को सुन-दुख की प्रनुभृति हुई
तो ग्रात्मा क्ष्या स्थाई का सिद्धान्त गलत हो गया। यदि रा-क्ष्या वदलती
ग्रात्माओं ने सुन-दुन अनुभव किया तो तपस्या में किस का शरीर कृश
हुग्रा ? इस ऊनापोह से आत्मा क्षिण्यक सिद्ध नहीं होता है। आत्मा का स्वरूप
तो सब पर्यायों के ऊपर हिन्द रख कर ही किया जा सकता है।

चतुष्क भूत-चारों तत्त्र-पृथ्नी. पाग्नी, ग्रग्नि और ह्वा के अतिरिक्त आत्म तत्व नामक कोई अलग वस्तु की मत्ता नहीं है। यह सिद्धान्त चार्चाक दर्शनानुयायियों का है। यह सिद्धांत तो ऐसा है कि: किंसी अन्व पुरुष की आगे खड़ा हुआ शकट (गाडा) नजर नहीं ग्राता और वह टकरा जाता है तो इसमें गाड़े का क्या दोर। कारण कि आँख वाले के लिए तो गाड़े की सत्ता है ही, नेत्र शीन गाड़े की सत्ता न देख सके तो इस में गाड़े का अपराध है क्या ?।।६।।

नास्तिक मतावलंबी-चार्वाक मतानुयांथी पृथ्वी, पोरंगीं, अंग्नि ग्रीर वायु इन चार भूतों के मेल को ही चैतन्य शक्ति मानते हैं। इनके अलग ग्रेलंग होने पर चैतन्य को नष्ट हुपा मानते है। आत्मा या चैतन्य शिव्त की कोई प्रलग सत्ता नहीं मानते हैं। विचारिं यह है कि मृत शरीर में भूत चुतुष्क तो हैं ही, किर उसमें चेतना क्यों नहीं ? यदि यह सिद्धांत ठीक होता, तो मृत शरीर में चेतना होनी चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं हैं। चैतन्य शिव्त कोई क्लग चस्तु है िसके शरीर से निकल जाने पर शरीर कार्य करने की शिव्त से शून्य हो जाता है।

श्री आनन्दघन जी ने ऊपर उराहरण दिया हैं—नेत्र हीन व्यक्ति गाडा नहीं देख सकता है तो गाड़े का अभाव हो गया क्या? इसमें दोष गाड़े का है या नेय का। जो आत्मा-चैतन्य शक्ति का अनुभव करते हुए भी उसकी सत्ता स्वीकार नहीं करते है, उनके समभाने का क्या उपाय है ?

इस प्रकार अनेक दर्शनों की मान्यताओं के विश्वम में मेरी बुद्धि श्रथवा में पड़ गया हूँ, इस सकट के कारण मुभको ग्रास्त तस्व की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए अपने चित्त समाधि के लिये प्रार्थना करता हूँ। ग्रापके बिना ऐसा ग्रीर कीन है जो आस्म तस्त्र को बता सके 11911

उत्तर में संसार के गुरु श्री मुनिमुद्रतिजनेश्वर (शास्त्रवाणी द्वारा) इस प्रकार फहते हैं कि मतमतान्तरों के पक्षपात को छोड़ कर राग-द्वेप और मोह फो ८६ प्रकरने वालों से रहित हो कर केवल आत्मा से प्रीति लगावो, उसमें जीन हो जावो ॥ ॥

ग्राह्मा ग्रनुभव गम्य है वाणी का विषय नहीं है। आत्मानुभव होने पर सारे विवाद समाप्त हो जाते हैं चित्त समाधिष्ठ हो जाता है।

जो कोई ग्राहमा को ध्याता है, स्थिर चित्त से चिन्तन करता है वह फिर इन वादों के चयकर में नहीं पड़ता है। अन्य सब तो केवल बाग् जाल हैं— योलने की चतुराई है—कला है। वास्तव में तस्व वस्तु तो बाह्म ध्यान—ग्राहम चितन ही है। इस ही की चित्त-अन्तकरण इच्छा करता है।।६।।

जिन्होंने सद असद का विवेक पूर्वक विचार कर आस्म चिन्तन के पक्ष फी ग्रहण किया है, वही तस्व ज्ञानी कहलाते हैं। श्री श्रानन्दघन जी कहते हैं— हे मुनिमुद्रतजिनेश्वर देव ! यदि आप की कृपा हो आय, नो मैं भी अनंत आनंद पद-मोल प्राप्त कर सकूंगा ॥१०॥

आनन्दघन जी स्वयं अपने पदों में इमको बड़े मुन्दर रूप में व्यक्त किया है। देखें—'निसाणी कहा बताऊं रे'।

### श्री निम जिन स्तवन (२१)

(राग-ग्रासावरी-'धन धन सम्प्रति सांचो राजा, ए देशी') षड् दरसर् जिन ग्रंग भराी जै न्यास पडंग जो सावरे। निम जिनवर ना चरण उपासक, पड दरसण आराधरे ।।पड० ११।। जिन सुरपादप पाय बखारां, सांख्य जोग दुय मेदे रे। श्रातम सत्ता विवरण करतां लहो दुग श्रंग श्रवेदे रे ।।पड०।।२।। नेद अमेद सुगत मीमांसक जिनवर दुय कर भारी रे। लोकालोक ग्रलवन भाजियै. गुरुगम थी ग्रववारी रे ।।पड०।।३। लोकायतिक कुल जिनदरनी, ग्रस विचार जो कीर्ज रे। तत्व विचार सुधा रस वारा, गुरुगम विरा किम पीनं रे ।।पह।।।।। जैन जिणेसर वर उत्तमग्रंग ग्रंनरंग वहिरगे रे। **ग्रक्षर न्यास घरी ग्राराधक, ग्राराध गुरुसने रे ।**.पड०॥५॥ 🦈 जिनवरमा सगला दरसण छै. दरसण जिनवर भजनारे। सागरमां सघली तटनीखं, तटनी सागर भजना रे ।।पड०॥६॥ जिन सरूप यइ जिन ग्राराधे, ते सिह जिनवर होवे रे। भृंगी इलिकाने चटकावै, ते भृंगी जग जोव रे गपड०गाणा चूरिंग भाष्य सूत्र निर्यु क्ति. वृत्ति परम्पर ग्रनुभव रे । समय पुरुषना ग्रंग कह्या ए, जे छेदे, ते दुर भवरे ॥पड०॥माः मुद्रा वीन घारणा ग्रक्षर, न्यास ग्ररथ विनियोगे रे। ने घ्यावै ते निव वंचीजै. किया ग्रवंचक भोगे रे शषड०१६॥

श्रुत श्रमुसार विचारी बोलूं, सुगुरु तथा विधि न मिलै रे। विकित्या करि निव साथी सिक्ये, ए विखवाद चित सबलै रे

। विड् ा १४॥

ते माटे ऊभी कर जोडी, जिनवर ग्रागल किहये रे। समय चरण सेवा सुध दीज्यो, जिम 'ग्रानन्दघन' लिहयेरे।।षड०।।११।।

पाठान्तर - राग....राजा = आदर जीव क्षमा गुण ग्रादर (अ), धन धन.....राजा (उ, ऊ)। पड = पट (अ, आ, ऊ), ए पट (उ)। दरसगा = दरिसमा (उ) । सुरपादप - सुरपाय (अ) । पाय - पवाय (म्रा) । दुय - दीय (अ, भ्रा, उ, ऊ)। विवरण - विवारण (उ) विचारण (कहीं कहीं)। लही कर (प्रा, ऊ,) दोड कर (उ)। लो कालोक = लोक अलोक (प्र)। भिजय = भजिइ (३)। ग्रुरुगम = ग्रुरगम (३)। कुख = कुख (३), कृष (३)। विचार च विचारी (अ) । विएा = विराष्ट्र (ग्रा) । जिस्सेर = जिनेश्वर (ग्रा, इ, ई उ, क)। उत्तम अन = उत्तनांग (ग्र)। घरी = घरा (इ, ई उ, জ)। गुरु = घरि (४, ई, उ, ऊ)। सघला दरस । ⇒ मगला दरिसगा (उ)। छै = सहि (इ, ई,) सही (उ, क)। तटनी - तटनीमां (उ. क)। भजनारे - छलनारे (अ, था)। सरूप = स्वरूप (इ)। थइ (अ, उ) (ते सहि = तेसही (ग्र, आ, उ, ऊ)। इलिकाने = ईलिका (ग्र, था), ईलिकाने (उ, क) । ते = तो (अ) । चूरिण = चूरता (ग्र. क)। निथ्रक्ति = निरयुती (ग्र)। परम्पर = परम्परा (उ)। ते = सो (आ) । अरथ = अक्षर (अ) । क्रिया अवंचक = किरिय अवछक (म्र), किरिया अववक (उ) । अनुसार = अनुसार (अ) । वोलूं = वोल्यो (अ) । विधि = विध (ऊ)। साथी = साथ (अ)। निव = भव (उ)। सिकिये = सकी जै (अ), सकी इ (उ, ऊ)। विखवाद = विपाद (प्र, आ) ऊ। चित = विन (उ)। सवलो रे = सगलै रे (अ, अा, उ, क)। कभी = उभय (ग्र,) कभा (उ, क)। सुय = सुचि (अ), शुचि (उ)। दीज्यो = देज्यो (अं, आ, ऊ), देयो (उ)। आनन्दधन = धानन्दघनपद (अ)।

शब्दार्थ—षड दरसण् — छै दरसण्—सांख्य, योग, मीर्मासा, बीढ, चर्वाक ग्रीर जैन। भीएज = कहे जाते हैं। न्यास — स्थापना। पडंग — छै अंग, दोनों जंघा, दोनों वाहू, मस्तक, छाती। उपासक = उपासना करने वाले, आराधना करने वाले। सुरपादप = कल्पवृक्ष। पाय = पैर, मूल-जड़। वसाणू — वर्णन करूं। विवरण् = विवेचन। दुग — दिक, दो, युगल। अखेदेरे — खेद रहित, निसंकोच। दुय — दो। कर — हाथ। अलंवन = ग्रवसंव, आधार। भिजये — मानिये। अवधारी रे = घारण् करो। लोकायतिक — चार्वाक दर्शन, वृहस्पति प्रणीत नास्तिक मत। कुस — कुक्षि, उदर। उत्तम अंग — मस्तक। सुवारस — ग्रमृत रस। सघला — सव। भजनारे = कहीं है कहीं नहीं हैं। तटनी — नदी। शुंगी = भ्रमरी, भवरी, कीट विशेप। इलिका = एक प्रकार का कीड़ा—कीट। चटकावे = डंक मारता है। जोवे रे = देखता है। दुरभवरे भटकता है वुरी गति में जाता है। छेदे = अमान्य करे। विखवाद = दुख। सबलेरे = वल सहित, जवरदस्त। ते माटे = इसकारण्। अमो = खड़ा हूँ। आगल — ग्रागे, सन्मुख।

पीछे, के स्तवन में पृथक पृथक छैत्रों दर्शनों का स्वरूप दिखाया गया है अब इस स्तवन में उन सब का समन्वय दिखाया जाता है।

म्रथं — जिस प्रकार हाथ, पैर, पेट, मस्तक मादि अंग मिलकर ही बारीर कहा जाता है और किसी एक अंग को बारीर नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार पट दर्शनों को (साँख्य, योग, थोड़, मीमांसा, चार्वाक और जैन दर्शन को) जैन दर्शन के अंग (अवयव—भाग) कहने चाहिये। उन पट (छी) दर्शन रूप अंगों को श्री निमनाथ जिनेश्वर के अंगों (अवयवों) पर स्थापित करके जो अंपनी साधना करते हैं, वे निमनाथ भगवान के चरणों की उपासना करने वाले (उनके चारित्र धमें को पालने वाले) छै, भों ही दर्शनों की आराधना करते हैं-सेवा—उपासना करते हैं ॥१॥ षट दर्शन जिन निम प्रभु के ही अंग है प्रथात उनकी एकान्त विचारधारा का समन्वय जैन दर्शन में हो जाता है।

अव ग्रागे षडंग न्यास (स्थापना) की रीति कताई जाती है-

जिन तत्व-ज्ञान रूगि कल्पवृक्ष के सांख्य और योग दोनों दर्शन मूळ

(गड़) रूप चरण युगल कहे गये है। इन दोनों दर्शनों ने आहम-स्ता का विवेचन किया है अतः वेखटके (निसंकोच) इन दोनों दर्शनों को जिन तत्व ज्ञान रूपी कल्पवृक्ष के अंग समश्हो ॥२॥

दीद दर्शन आरमा को अनेक भेदवाली (क्षणिक) मानता है और मीसांसा दर्शन आरमा को अभेद (एक रूपरहने जाला) मानता है। ये दोनों दर्शन जिनेश्वर करूपवृक्ष के दो विशाल ( हे) हाथ हैं। बौद दशन का अवलंव लोक व्यवहार है अर्थात वह व्यवहार नय को प्रधानता देता है—व्यवहार नय चादी है। मीमांसा वेदान्तदर्शन का आधार अलोकिक है। वह निश्वयवादी है। ये सब वात्तें गुरुमुल से समक्ती चाहिए।

वीद दर्शन श्रारमा को क्षिणिक मानता है और जैन दर्शन पुद्गल पर्यायों की अपेशा आहमा को वदलता हुआ कहता है। मीमानक आहमा को एक ही मानते हैं। सूर्य श्रीर सूर्य के प्रतिविश्वों की तरह। जैन दर्शन सब आहमाओं की सत्ता एक रूप होना मानता है। निश्चय नय से आहमा का रूप धर्वय—वंयरहित शुद्ध है। इस प्रकार ये दीनों दर्शन जिन तर्व दर्शन के अंग रूप हाथ है।।३।।

किसी बंस से—अपेटा से-जिया किया जाय तो वृह्स्पति प्रग्तित चार्याक दर्गन जिनेश्वर देव की कुकि (उदर, पेट) है। आरमतरव के विचार रूपी अमृत रस की घारा को सद्गुरु से समक्षे विना किस प्रकार पिया जा सकता है?

वृहस्पति प्रणीत चार्वाक दर्शन घमं-अवमं, पुण्य-पाप स्वर्ग-नर्क और पुनर्जन्म को नहीं मानता है। वह तो प्रत्यक्ष प्रमाण से भूत चतुष्क (पृथ्वी, पाणी, अग्नि और वायु) के मेल से उत्पन्न चैतन्य शक्ति को मानता है। इस दर्शन ने इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रमाणित माना है।

जैन दर्शन ने प्रत्यक्ष (ग्रात्म प्रत्यक्ष और इंद्रिय प्रत्यक्ष), परोक्ष, आगम उपमा, और ग्रनुमान ये पांच प्रमाण माने हैं। चार्वाक दर्शन ने आतम प्रत्यक्ष को विलकुल ही छोड़ कर इंद्रिय प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना है। इस एक ग्रंश रूप विचार—इंद्रिय प्रत्यक्ष प्रमाण विचार की मान्यता के कारण चार्वाक दर्शन को जिनेक्वर देव के उदर में स्थापित किया है ग्रथित उदर (पेट) माना है। ग्राह्म-तत्व विचार रूपी अमृत का पान तो सद्गुरु द्वारा ही किया जा सकेगा ॥४॥

जैन दर्शन श्री जिनेश्वरदेव का श्रेण्ट उत्तमांग-मस्तक है। जिस प्रकार मस्तक शरीर के सब अंगों के ऊपर, बाहर दिखाई पड़ता है और अंतरंग में (ग्रन्दर) सुविचारों का खजाना है, उसी प्रकार अंतरंग में जैन दर्शन राग-द्वेप मोह, अज्ञान एवं मिथ्यात्व रहित बीतराग भावदर्शी और बाह्य-बाहर (प्रगट में चारित्रधर्भी) मर्वश्रेण्ट और सर्वोपिर है। जैन दर्शन के आगावक गए-मानने वान्नं सद्गुरु की संगति प्राप्त कर अक्षर न्यास के हारा-अक्षरों के रूपों हारा-जिन भावित आगमों के हारा-बिना कुछ उलट फेर के इमकी (जैन दर्शन की) आराधन करते हैं, उनपर सत्यावरण करते हैं। जिनेश्वर देव के उप-देशानुसार-आज्ञानुसार चलते हैं।।।।

अनेकान्तवादी जैन दर्शन में अन्य सय दर्शनों का समावेश हो जाता है। किन्तु अन्य दर्शनों में जैन दर्शन एक अंग मात्र में ही है। पूर्णां एक से नहीं क्यों कि वे एकां तवादी हैं। इस को समभने के लिये यह उदाहरण हैं — जिस प्रकार समुद्र में सब निदयों का समावेश हो जाता है किन्तु नदी में सागरत्व अंश मात्र ही है। नदी को समुद्र कोई नहीं कहता। उसी प्रकार अन्य दर्शनों में जैन दर्शन अंश रूप से हैं और जैन दर्शन में अन्य दर्शनों में जैन दर्शन अंश क्प से हैं और जैन दर्शन में अन्य दर्शनों में खंडनात्मक अथवा निन्दात्मक दृष्टिकोण न रख कर समन्वयात्मक दृष्टि रखो और उत्तर के हे अनुसार जैन दर्शन को शिरोमणी जानकर उसकी ग्राराधना करो।।६॥

जो मनुष्य राग-द्वेप को त्याग कर तदाकार वृत्ति घारण कर-वीत-रागी हो कर श्रीजिनेश्वरदेव की आराधना करते हैं, वे निश्चयरूप से इस प्रकार जिनेश्वर हो जाते हैं जिस प्रकार अमर (भोरा) लट को (कीट विशेष को) चटका देता है (भनभनाता है) और वह लट भ्रमर वन जाती है जिसे सब संसार देखता है।

भ्रमर लट को लेकर स्वनिर्मित मिट्टी के घर में रख देता है, फिर उम घर के सामने भनभनाता है और वह लट कुछ दिवस पश्चात् भ्रमर वन कर बाहर निकलता है। इस बात को सब संभार देखता है, और जानता है। वैसे ही बीतरागी मनुष्य जिनेश्वरदेव जैता हो जाता है।

चूिंग (महान ज्ञानियों कृत विवेचन), भाष्य (सूत्रों का अर्थ), सूत्र (गरा धन कृत आगम); नियुँ क्ति (पदच्छेद पूर्वक अर्थ विवेचन), वृत्ति (टीका) एवं ग्रुरु परम्परागत धनुभव ज्ञान ये समय-पुरुप के—सिद्धांत पुरुप के छै अग है। ये जीन दर्शन के छै अग है। जो व्यक्ति इन छश्रों अंगों में से एक का भी छेदन (काट) करता है— उत्थापन करता है, वह दुरभवी है—दुष्ट भवगानी है अर्थात् नीव गति में जाने वाला है।।।।

क्रपर कहा गया है कि जिनेश्वर रूप (त्रीतरागी) होकर, जिनेश्वरदेव की आराधना करता है वह निश्चय हो िनेश्वर वन जाता है। अपने को जैन या जिन-ग्रनुयायी कहलाने मात्र से जिनेश्वर नहीं वना जा सकता। उसके लिये साधना की ग्रावश्वकता है। उसका रूप यहां वताया जाता है—

थारम साधना में ध्यान का विशेष महत्व है। यहाँ श्रालंबन ध्यान पद्धित का निकृषण है। ध्यान में योगों (मन, वचन और काया के योगों) को स्थिर कर एकाग्र करने के लिये छै योग या अंग कहे गये हैं—

१मुद्रा, २वीज, ३वारएा, ४ग्रसर; ४न्यास ग्रौर ६अर्थ विनियोग।
१मुद्रा का अर्थ है—वैठने, खड़े होने, लेटने ग्रादि का ढंग, हाथ, मुख नेत्रादि
की स्थिति। योग मुद्रा, जिन मुद्रा। ध्यान में हाथ, मुख, पैर, नेत्र आदि किस
प्रकः रखे जावे ग्रर्थात् सरीर व अवयवों को किस आकृति में रखा जावे।
उसके लिये किसी भी योगासन को ग्रहण करना। (सिद्धासन, पद्मासन, सुखासन, आदि, २वीज—मंत्र। (क, ह्रीं, श्रीं सहित जाप मंत्र, पंच परमेष्ठी

जाप) ३ घारणा—चित्त को स्थिर करना (चित्त को बीज पर स्थिर करना)। ४ अक्षर—जाप मंत्र के अक्षर, पंच परमेष्ठी जाप के अक्षर। ४ न्यास—स्थापना अर्थात् हुदयकमल दल, अष्ट दल कमल, सहस्र दल कमल पर जाप के ग्रक्षरों को स्थापित करना। ६ अर्थविनियोग— जाप के अक्षरों के साथ उनके अर्थ का घोष्ट होना अर्थात् अर्थीपयोग बना रहे।

जो मुद्रा (यौग मुद्रा अथवा जिन मुद्रा) में स्थित होकर, बीज-जाप मंत्र पर (पंच परमेष्ठी मंत्र पर) घारणा करता हुग्रा-चित्त वृत्तियों को स्थिर करता हुग्रा, जाप के अक्षरों को न्यास — स्थापित करता है अर्थात् हृदय कमल वा अष्ट दल कमल वा सहस्रदल कमल पर जाप के अक्षरों को स्थापित करता है और साथ ही उसके (जाप ग्रक्षरों के) अर्थ का विनियोग-बोब रखकर (अर्थोपयोग रखकर) घ्यान करता है वह, कभी ठगा नहीं जाता है ग्रथांत आरमा को ठगने रूप किया न होने से आरमा ठगा नहीं जाता है। (आश्रव रूप कियायों आरमा को ठगती हैं, जो उन्हें नहीं करता, वह ठगा नहीं जाता है)। और वह इस अवंचक किया का ग्रवंचक फल (ग्रनंत आरिमक सुख) भोगता है।।।।

जो अवंचक रूप (साधना के लिये हिसादि का ध्याग कर और कपा॰ यादि पर विजय रूप साधुवृत्ति) धार्ण कर, अवंचक क्रिया (ध्यान साधना की क्रिया) करता है, वह निश्चय ही अवंचक फल (आरिमक सुख) भोगता है।

(वंचक, अवंचक किया, फल ग्रीर मोग को समक्षते के लिए इसी घौवीसी के श्री चंद्रश्रभ जिन स्तवन और शांति नाथ जिन स्तवन का मनन करना चाहिये)।

श्रुत-जैन आगमों-के अनुसार पूर्ण रूप से चिन्तन करके कहता हूँ कि जैसे लक्षण सद्गुरु के आगमों में घताये गये हैं, वैसे सद्गुरु ग्राज प्राप्त नहीं हैं। बतः ऐसे सद्गुरु के ग्राश्रय विना किया करके भी आत्म साधना नहीं कर सका, यह चित्त में प्रवल विपाद (दुःख-खिन्नता) रहता है।।१०।।

#### [ 388 ]

इसिलिये हे जिनेश्वर निमनाथ ! में हाथ जोड़ कर खड़ा हुया श्रापके सन्मुख प्रार्थना करता हूँ—मुक्ते शास्त्रानुसार चारित्र की शुद्ध सेवा प्रदान कीजिये जिनसे में श्रानन्द के समूह श्रापको प्राप्त कर श्रनन्त आत्मिक सुखों को प्राप्त होऊँ ।।११

## श्री नेमि जिन स्तवन (२२)

(राग-मारू-धरारा ढोला ए देशी)

श्राव्य भवांतर वाल्ही रे वाल्हा, तू मुक्त श्रातमराम । मनरावाल्हा । मुगति नारी सूं श्रापणे रे, वा०, सगपण कोइ न काम ॥मनरा०॥१॥ घर श्रावो हो वालम घर श्रावो. म्हारी श्रासारा विसराम ॥मनरा०॥ रथ-फेरो हो साजन रथ फेरो. म्हारा मनना मनोरथ साथ

नारी पर्छस्यों नेहलोरे वा०, सांच कहं जगन्नाथ । मनरा०। ईसर प्ररधंगे घरी रे वा०, तू मुक्त काले न हाथ । मनरा०। ३।। पशु जमनी करुणा करी रे वा०, प्रांगी हृदय विचार । मनरा०। माणसभी करुणा नहीं रे वा०, ए कुग्ण घर ग्राचार । मनरा०। ४। प्रेम कलपतर छेदियो रे वा०, घरियो जोग धतूर । मनरा०। चतुराई रो कुण कहो रे वा०, गुरु मिलयो जग सूर । मनरा।। १।। महारो तो एह मां क्यूं नहीं रे वा०, ग्राप विचारो राज । मनरा०। राज सभा मां वैसतां रे वा०, किसडी वयसी लाज । मनरा०। प्रेम करं जग जन सहू रे, वा०, निरवाह ते ग्रीर । मनरा०। प्रीत करी नै छाँडि दे रे वा०. तेसूं चाले न जोर । मनरा०। जो मनमां एहवो हतो रे वा०, निसपित करत न जागा । मनरा।

नितपति करिने छांडतां रे वा॰, माणस हुय नुकसाण ।।मनरा॰।। ।।। देतां दान संवच्छरी रे वा॰, सहु लहै वंछित पोख ।मनरा॰। सैवक वंछित लहै नही रे वा॰, ते सेवक रो दोख ।।मनर॰।।।६।। सखी कहै ए सामलो रे वा॰, हूं कहूं लखरा सेत ।मनरा॰। इस लखरा सांची सखी रे वा॰, श्राप विचारो हेत ।।मनरा॰।।१०।। रागी सूं रागी सहू रे वा॰, वैरागी स्यों राग । मनरा। राग बिना किम दाख्वो रे वा०, मुगत- दरी माग ।।मनरा०।।११॥ एक गुह्य घटतो नहीं रे वा॰, सगलौ जार्गं लोग ।मनरा॰। श्रतेकांतिक भोगवे रे वा॰, ब्रह्मचारी गत रोग । मनरा॰।।१२।। जिण जौणो तुमने जोऊ रे वा॰, तिण जोणी जोवो राज ।मनरा। एक वार मुभनै जोवो रे वा०, तो सीभी मुभ काज ।।मनरा०।।१३॥ मोह दसा घरि भावतां रे वा॰, चित्त लहै तत्व विचार ।मनरा। वीतरागता म्रादरी रे वा॰, प्राणनाथ निरघार ।।मनरा॰।।१४.। सेवक पण ते श्रादरं रे वा॰, तो रहै सेवक माम ।मनरा॰। श्रासय साथे चालिये रे वा॰, एहिज रूढो काम ।।मनरा॰।।१५।। त्रिविध जोग घर ब्रादर्यो रे वा०, नेमिनाथ भरतार ।मनरा०। घारण पोखण तारणो रे वा०, नवरस मुगता हार ।मनरा०॥१६॥ कारण रूपी प्रभु भज्यों रे वा॰, गिण्यो न काज श्रकाज सनरा॰। किया करी मुभ दीजिये रे वा॰, 'ग्रानन्दघन' पद राज

।।मनरा ।। १७॥

(२२) पाठान्तरः—भवांतर = भवंतर (अ, आ, ई, ऊ)। वाल्ही = वालहो (ई), वालही (उ, ऊ)। तू = तुं (अ)। ग्रापणे = आपणो (अ, आ)। घर = घरि (अ, उ)। म्हारी = मांहरी (अ), माहरी (आ, उ), मारी

(क) म्हारा....साथ = रथ ६ रो मनोरथ साथ (अ), माहरा मनना मनोरथ साथ (अ), साजन म्हारा मनोरय साथ (ई), सजन माहरा मनोरय साय (उ), साजन मारा मनना मनोरथ साथ (ऊ)। नेहलो - नाहली (ग्र)। ईसर -ईरवर (ई. उ, ऊ)। सालैन = भालने (१), भग्ले (उ)। जननी = जनरी (अ)। पेम = प्रेम (आ, ई, उ, ऊ) कलपतरु = कल्पतरु (ई)। জोग = योग (अ, आ, उ)। चनुराई रो = चनुराई नो (या, छ)। म्हारो = माहरो (अ, था,), म्हार (ई), माहरू (उ) मारूं (क) । विचारी विचार (ई, उ. क)। समामां - सभा में (ग्र, आ, ठ, क)। वयसी - वयसी (अ)। जग - जिंग (य)। छांडि दे = छांडिचें (य), छोडि दे (या, क)। तेमूं = तेसू (य, ही). तेहमुं (च)। मनमां = मनमे (अ), मनमी(उ)। एहवी = एहवूं (ई, उ, क)। हती = हतूं (ई, उ, क)। करिनं = करने (अ)। ह्य = हड (ई, उ)। संवच्छरी = संवत्नरी (अ, इ, च), संवछरी (आ, क) । पोख = पोप (अ, ई, उ, क)। लहै नहीं = निवलहै (ग्रा, ई, क), सिवलहै (उ)। सेवक रो = सेवक नो (ग्र, आ, ऊ) । दोख = दोप (अ, आ, ई, उ, ऊ) । सामलो = सामलो (अ, ई, ऊ)। लखरीं = लक्षमा (ई, उ, ऊ)। इम = इसि (उ)। लखरीं = लक्षमा (ई, ऊ), लक्षमं (उ) । विचारो = विचारै (उ, ऊ) । वैरागी स्यों राग = वैरागी वैराग (अ), वैगागी नै स्वो राग (उ)। किम दाख्ये = सुं दाखवुं (अ)। मुगत = मुगति (अ, आ, ई, उ, ऊ,)। सुँदरी माग = सुँदरी सुँ राग (अ), मुंटरी मुं मांग (ভ)। एक गुह्य = एह यूक्त (अ), एह गुज्ज (आ)। घटतो नही = घर नो मही रे (अ, आ). घटतुं नही (च), घटनू नथी (ऊ)। सगली = सगलोइ (ग्रा, उ, क), अनेकांतिक = अनेकांतिकी (अ, ग्रा) अनेकांतक (छ)। गत = गति (अ)। रोग = सोग (अ)। जोएी = जोयएी (अ), जोगे (ई, उ)। तुमनै = तुक्कनै (अ, उ)। तिसा = जिमा (अ)। जोसी = जोगे (ई, च) । जोवो = जुवो (ई) । जोवो रे = जुवो रे (बा), जुओ रे (ई, क)। घरि = तज (क)। मावतां रे = मावनां रे (उ, क)। परा = पिरा (उ, क) बादरै रे= ग्रादरी रे (उ) । ल्हो = ल्हों (ब ग्रा, इ), ल्हा (उ) हहूं (ऊ) । मुगताहार = मुकताहार (अ, आ) । रूपी = = रूप (अ) । भज्यो रै=मनु'रे (अ), भर्ज़ रे (आ)। मुक्त=प्रमुनी (अ, आ), प्रमु (उ)। दीनिये रे=धीयो रे (अ, आ)॥

शब्दार्थ = भावान्तर = अन्यभव, पूर्व जन्म । वाल्ही = प्रिय । सगण्म = सगाई, संबंध । पर्ख = पक्ष में । स्यों = क्यों। नेहलो = म्नेह । ईसर = महादेव । अरधंग = अधे अंग में । भालैन = पकडोने । माग्यनी = मनुष्य की । कलपतर = कल्यवृक्ष । छिदियो = काट डाला | चतुराई रो = चतुरता का । वसूं = कुछ भी । वैसतां = बैठते हुये । किमडी = कैसी । वधसी = ब्ढेगी । निरवाहै = निर्वाह करना, निभाना । निसपित = निसवत, सगाई, संबंध । पोख = पोपण । सामलो = सांवला स्थाम । दोख = दोप । लखणे = लक्षण से सेन = ब्वेत, उद्देशक । दाखवो = बताना, कहना । माग = मागं । ग्रहा = ग्रुप्त । सगलो = सव । अनेकांतिक = अनेकांत स्याद्वाट बुद्धि । गतरोग = रोग रहित । जोणी = योनि, जन्म । सीफैं = सिद्ध होवे । माम = ममं धमं प्रतिष्ठा । कढो = श्रेष्ठ ।

श्री नेमिश्वर, महाराज उग्रसेन की कन्या राजिमती से विवाह करने के लिये वरात (शोमायात्रा) लेकर जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने श्रनेक पशुओं को एक स्थान में बंद देखा और यह जानकर कि इनकी हत्या मेरे विवाह के निमित्त से होने वाली है; उनका हृदय दयाई हो उठा। अतः उन्होंन अपने रथ को वापिस लीटाने के लिये सारधी से कहा। तत्काल ही ग्राजा का पालन हुआ। रथ वापिस जाने लगा। रथ को वापिस लीटते देखकर राजिमती कह रही है—

श्चर्य-हे प्रियतम ! में निरंतन श्चाठ भवों से-जन्मों से आपकी प्रियतमा रही हैं अतः आप मेरी आत्मा में पूर्णं रूप से रम गये हैं। मुक्ति-स्त्री से ती आपका कभी कोई संबंध ही नहीं रहा है, फिर उससे संबंध करने की उत्सुकता का ध्या कारण ? ।।१।।

हे मेरे प्राणवल्लभ ! घर पवारो । हे मेरी आशाओं के विश्राम स्थल ! रथ को वापिस घुमाओ । हे साजन ! ग्रुपने रथ को वापिस लाओ । हे ियतम ! आपके न्थ के नाथ गई हुई मेरी आकायें भी वापिस लीट भावेंगी। अतः हे नाथ ! मेरी आकाओं के साथ अपने रथ को लीटा लावो । ।।२।। ं

आप कहते हैं कि मैं मुक्ति—नारी की श्रोर आकिंपत हो गया हूँ। तब मैं श्रापसे पूछती हूँ—हे जगत के रवाभी प्रियतम ! आप सच-सच वतलाइये। नारी के पक्ष मे—नारी के प्रति प्रापका यह स्नेह है क्या ? नारी के प्रति तो महादेव—गंकर का प्रेम देखिये जो उन्होंने पार्वती को श्रपने आधे शरीर में धारण कर लिया और अर्धनारीक्वर कहलाते हैं। एक नारी प्रेमी श्राप हैं ? जो मेरा हाथ भी नहीं फैलते हैं—नहीं पकड़ते हैं, 1311

हृदय में विचार आते ही, हे प्रियतम ! आपने पशुओं पर दया दिखाकर उन्हें बंधन मुक्त कर दिया। किन्तु आश्त्रयं है, आपके हृदय में मनुष्य के लिये कुछ भी दया नहीं है। हे प्रियतम ! यह किस बंश-कुल का आचरण (च्यव गर) है ? यह किस खानदान-घर की मर्यादा है ? ॥४॥

हे बल्लम ! आपने अपने हृदय से प्रेमरूपी कल्पनृक्ष को उखाड़कर योग-(वैगाय) रूपी घतूरे का नृक्षारोपण किया है। हे प्रियतम ! सच-सच बता इये कि यह चतुराई! (बुद्धिमानी का काम!) सिखाने वाला कौनमा शूरवीर जगतग्रुरु श्रापको मिला है ? ॥ १॥

हे प्रिय राजकुमार ! आप विचार तो कीजिये । आप जो मुक्ते छोड़ कर जा रहे हैं, इसमें मेरा तो कुछ अपराध है नहीं । मैं तो आपसे पूर्णं रूप से अनुरक्त हूँ । मुक्ते तो यही दुःख खटकता है । जब आप राजा महाराजाओं और सम्य समाज की परिपद् में विराजेंगे तो आपकी प्रतिष्ठा किस प्रकार बढ़ेगी क्योंकि आप तो मुक्ते पत्नी बनाना स्वीकार कर चुके थे । अब वचन भंग से प्रतिष्ठा बढ़ेगी क्या ? ॥६॥

संसार में प्रेम तो सब ही करते हैं किन्तु उसका निर्वाह करने वाले कोई और ही होते हैं अर्थात् प्रेम का निर्वाह करने वाले विरले ही होते हैं। (प्रेम में कोई बंधन तो है नहीं) जो व्यक्ति प्रीति करके छोड़ देते हैं, उनसे कोई जबरदस्ती तो नहीं की जा सकती है। ग्राप मेरे प्रेम की अबहेलना कर रहे हैं। मैं तो केवल विनती ही कर रही हूँ—"घर ग्रावो हो वालम ! घर आवो?" ।।७।।

जो आपके मन में पहिले से ही मुक्ते छोड़ने की बात थी तो आपको सोच समक्त कर—जानबूक कर-सगाई-संबंध ही न करना था। सगाई-संबंध करके और फिर उसे छोड़ने में तो मनुष्य का—नारी जाति की बहुत बड़ी हानि होती है। संसार में नाना प्रकार के अपवाद फैलते हैं। विवाह करने के लिये आकर भी आप वापिस जा रहे हैं, इसमें आपका भी अपयश है, अतः मैं प्राथीं हूँ—"घर आवो हो बालम! घर आवो"। हा।

जैन तीर्थं कर दीक्षा से पूर्व एक वर्ष तक प्रतिदिन एक. करोड़ और श्राठ लाख स्वर्ण मुद्राभ्रों का, दान देते हैं। जब राज़िमती ने श्री नेमीरवर के सांवत्सरिक दान, की बात सुनी, तब वह निराश होक्र अत्पन्त खेद के साथ. कहती है—

हे प्रियतम ! आगके इस सांवरसरिक दान से सूत्र ही लोग प्रपनी-अपनी इच्छात्रों का पोषण करते हैं। अर्थात् उनकी सब इच्छायें पूर्ण होती हैं। किन्तु मैं आठ जन्मों से आपकी चर्या करने वाली सेविका अपने इच्छित फल को प्राप्त नहीं कर रही हूँ। यह, मुफ सेब्रिका, का ही दोप ; अपराध है।।९।।

विशेष खिल होकर पुनः राजिम्ती कहती है—हे प्राण विल्म ! मेरी. सिखियें कहती थी कि यह नेमिनाथ तो स्यामवर्ण के हैं किन्तु प्रत्युत्तर में मैंने कहा था कि वर्ण स्याम (सावला) हुआ तो क्या ? गुणों के लक्षणों से तो यह. उज्जवल स्वेतवर्ण वाले हैं। किन्तु आपके इन् लक्षणों से मुक्ते त्यागकर जाने से—तो मिखियां ही सच्ची सिद्ध होती हैं। मैं क्या कहूँ, आप स्वयं ही इसका कारण सोचे—सम्भें। अतः मैं तो वारंबार कह रही हूँ— "घर आवो हो वालय घर आवो, म्हारी आशारा विश्लाम" ॥१०॥

है प्रिय स्वामी। प्रेम करने वाले के साथ तो संव प्रेम करते हैं किन्तु वैरामी के साथ राग-प्रेम कैसा? यदि आपका ऐसा मन्तव्य है तो में पूछती हूँ कि विना राग रुचि के आप मुन्ति-सुन्दरी के प्राप्त की मार्ग कैसे अपना रहे हो और दूसरों को यह मार्ग कैसे वता रहे ही-केह रहे हो? वैरामी वनकर राग-प्रेम रपना ग्रौर राग करने के लिये कहना, न्याय है क्या? इसेलिये में विनय करती हूँ — 'घर श्रावो हो वार्लम, घर ग्रावी" 118811

श्रापके वृत्त को तो सब ही मनुष्य जानते हैं, इसलिये आप में एक भी गुष्त कर्म चरितार्थ नहीं होता है। आप काम वामना—रोग रहित ब्रह्मचारीं हैं, किर भी आप अनेकांतिक बुद्धि रूपी स्त्री के संग रमगा करते हैं — अनेकांतिक बुद्धि का उपभोग क ते हैं यह वात सब जानते हैं। इसमें कोई गुष्त बात नहीं है। इसलिये ही मैं बाठ जन्मों की अद्धागिनी विनय करती हूँ— "घर श्रावो हो वालम घर आवो"।।१२।।

हे प्रियतम राजकुमार ! जिस प्रेम दृष्टि से मैं ग्रापको देखती हूँ जसु ही प्रेम दृष्टि से ग्राप भी तो मुक्ति सुन्दरी को देख रहे हो । यदि ग्राप केवल एक बार भी मेरी ग्रोर प्रेम दृष्टि से देख लगे तो मेरे सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जावेंगे और मेरा अपयश दूर हो जावेगा । इस सिद्धि के लिए ही तो मैं प्रार्थना करती हूं—पर श्रादो हो बालम, घर आवो, म्हानी ग्रासारा विसराम ॥१३॥

अब तक मोहायृत होंकर राजिमती अपने मनोद्गार व्यक्त कर रही थी। एकाएक उसके विचार पलटते हैं और उसका चित्त वास्तविक स्थिति की श्रीर मोड खाता है। जो स्वाभाविक है। कवि इस दंशा का वर्णन करता है—

मोहावृत्तं दशा में राजिमती के हृदयं में अनेकानेक भावनायें -विचार उठते वैठते रहें। अन्त में इसी विचार घारा के मध्य उसकी विंत तत्व विचार का दिव्य प्रकाश प्रोप्त कर गया। (मैं कीन हैं? स्वामी कीन हैं? मेरा क्या कत्त व्य है।?) इसे दिव्य प्रकाश में उसे (राजिमती को) वास्तविंकता का जान हो गया कि प्रांशनांथ जीवनंधनं नेमीश्वरं ने तो निश्चय ही वीतरागता स्वीकार कर ली है। वे वीतरागी वन गये हैं ॥१४॥

अव तो मुक्त सेविका की माम—लाज—प्रतिष्ठा इसी में है कि मैं भी उस ही पथ पर चल पहूं अर्थात् में भी वीतरागी वन जाऊँ। तभी मेरा सेवक-पन चिरतार्थ—सार्थक होगा। सेवक को स्वामी के आशय—इच्छा—उद्देश्य के अनुसार ही चलना चाहिये। यही सेवक के लिये सर्वश्रेष्ठ कार्य है।।१४।।

राजिमती कहती है— ''आसय साथे चालिये, एहिंग रूढ़ों काम'' के श्रनुसार मन-वचन-कर्म से मैंने योग-वीतराग भाव घारण कर वास्तव में श्री नेमीश्वर को भर्तार (भरण-पोषण कर्ता) रूप में स्वीकार कर लिया है। उन श्री नेमीश्वर भर्तारने मुफे नवरस रूपी-निरूपम एवं बिंदितीय आत्मिक गुणों से युवा-रित-प्रेम रूप श्रु गार रस; जड जंगम की भिन्नभिन्न अवस्था श्रीर रूपरंग से उत्पन्न हास्य रस; पर-दुख संतप्ततां रूप करण रस; कर्म-शश्रुओं पर विजय में, सदुपदेश दानमें, तप में, चारित्र-पालन में, पर दु:ख हरण में उत्साह रूप बीर रम; भव वंधन में डालने वाली कपायों पर कोव रूप रौ रस; जन्म-मरण के कब्टों से भयभी होने स्वरूप भयानक रस; कर्म-निगोद के दु:खों से उत्स्य ग्लानि रूप विभत्स रस; स गर की चित्र-विचित्रता में आश्चर्य रूप श्रद्भुत रस और राग-देश रहित निधिकार हो, आत्म-शांति मे छीन वैराग्य भाव रूप शांतरस रूपी-मुनाहार-अमूल्य मोतियों का कंठा मुफे उपहार में दिया है। (पति पत्नी को प्यम मिलन में उनहार देता ही है) यह अमूल्य मुनताहार मेरा धारण-आधार है—शोभा है। मेरे श्रात्मिक ग्रुणों को पुष्ट करने वाला है और श्रंत में मुफे गव-सागर से तारने वाला है।।१६।।

मेरे वीतराग भाव के निमित्त कारण प्रभु नेमिनाथ मगवान की मैंने आराधना की हैं। इसमें (आराधना में) मैंने कृत्याकृत्य का कुछ भी विचार नहीं किया है। अर्थात् मुफे क्या करना चाहिये था और क्या नहीं करना चाहिये था, इसमें क्या हानि होगी, क्या लाभ होगा? इसका विचार किये गिना ही उनके-श्रीनेमीरवर के आशय के अनुसार उनकी आराधना में तल्लीन हूं। श्रीर अब समर्पित होकर प्रार्थी हूँ हेक रुगा गिर्हा क्या कर मुफे परमानन्द के

<sup>\*</sup> जैन आगम अनुयोगद्वार में भयानक रस के स्थान पर 'ब्रीडारस' दिया गया है। अतः उसका रूप हुआ—"वीडोत्नादक (घृगोत्पादक) हिंसादि कर्म में लज्जा रूप ब्रीडारस।

समूह मोक्ष का साम्राज्य पटान कीजिये ॥१७॥

(महासती राजिमती की यह प्रार्थना फलीभूत हुई श्रीर श्री नेमिनाथ भगवान से पूर्व ही उन्हें केवल ज्ञान प्राप्त हो गया श्रीर अनंत सुखों के साम्राज्य की अधिकारिगी वन गई)।

इस अंतिम पद में यह व्यःयार्थ है—'किव श्रानंदघन जी कहते हैं में भी श्रापके मार्ग (वीतराग भाव) का अनुगामी हूँ । कार्य, श्रकार्य का— फलाफल का विचार किये विना आगकी आराधना में तन्मय हूँ। कृपा कर मुक्ते अनंत सुंखों के साम्राज्य को प्रदान की जिये।

> , श्री पार्श्व जिन स्तवन (२३) १ (देशी-रसियाकी)

ध्रुवपद रामी हो स्वामी माहरा, निःकामी गुणराय ।सुग्यानी। निज गुरा कामी हो पामी तू घणी, ध्रुव स्रारामी हो थाय ।।सुग्यानी घ्रु०।।१॥

सर्व व्यापी कहै सर्व जाणग पणे, पर परग्रामन स्वरूप
पर रूपे करी तत्वपणु वही, स्व सत्ता विद्रूष । सु० झु०।।२।।
गयेय स्रनेके हो ग्यान स्रनेकता, जल भाजन रिव जेम ।सु०।
द्रव्य एकत्व पणे गुण एकता, निज पद रमतां हो खेम ।।सु० झु०।।३।।
पर क्षेत्रे गम्य ग्येयने जागावै पर क्षेत्री थयु ग्यान ।सु०।
स्रित पणु निज क्षेत्रे तुम्हे कहो, निम्मंलता गुणमान ।।सु० झु०।।४।।
ग्रंथ विनाशे हो ग्यान विनश्वरू, काल प्रमा रेगो थाय ।सु०।
स्वकाले करि स्व सत्ता पणे, ते पर रीते न जाय ।।सु० झु०।।४।।
पर भावे करी परता पामता, स्व सत्ता थिर ठाण ।सु०।
स्रात्म चतुष्कमयी परमां नही, तो किम सहूनो रे जाण ।।सु० झु०।।६।।
स्रागुरुलघु निज गुग्गने देखातां द्रव्य सकल देखत ।सु०।
साधारण गुग्गनी साधम्यंता, दर्पण जल दृष्टते ।।सु० झु०।,७।।
श्री पारस जिनवर पारस समो, पिगा इहां पारस नांही ।सु०।
पूरण रिसयो हो निज गुण परसनो, 'स्नानन्दघन' मुक्त मांहि

(२३) १. यह स्तवन श्री ज्ञानविमलमूरिजी कृत कहा जाता है पान्तु यह उनका नहीं है (भूमिका देखें) इस स्तवन पर उन्होंने टीका नहीं लिखी है। हमारे पास की अन्य प्रतियों में यह स्तवन नहीं है। केवल श्री ज्ञानविमल सूरिजी वाली प्रति में हैं। श्रीर मुद्रित तीन प्रतियों में है। मुद्रित तीन ५ तियों में भी तीसरा श्रीर चौथा पद नहीं हैं। पाठान्तर मुद्रित प्रतियों के ही दिए हैं।

पाठान्तर - देसी रिसयांनी = रांग सारंग (मं, दि०)। माहरा = हमारा (मं, मा०)। कहि = कहो (वि)। परग्रमन = परिग्रमंन (मं, मा० वि)। वही = नही (मं, मा, वि)। ग्येय ..... खेम = यहं पद मं, मा में नहीं है। परक्षेत्र .....गुग्रमान-यह पद भी मं और मा में नहीं है। गम्य = गत (वि)। तुम्हें = तुम (वि)। कहो = कह्यो (वि)। सत्तांपग्रे = सदा (मं, मा, वि)। सहने = सहुने (मं)। सकलने = सकंत (मं, मा, वि)। जलने = जल (मं, मा)। जिनवर पारस समो = जिन पारस रस समो (मं, मा, वि)। परसनो = परंस मां (मं, मा)।

शब्दार्थं — ध्रुव = अटल । पद = स्पान । रामी = रमणं करने वाला । जाग्गपने = जाता पन में, जायक भाव से । पर पर्रग्रमन = अन्य में परिग्रमन करने वाले । चिदरूप = जान रूप । खेम = क्षेमं, आनन्दें। विनश्वेरू = नाशं-मान । आत्म चतुष्क मयी = अनन्त जान, दर्शन; चारित्रं श्रीरं वीर्यं रूप । समो = समान, वरावर । परसनो = स्पर्श का ।

प्रयं महे भरे स्वांभी श्री पांदर्नाय प्रभो ! आप अंचल पर्द आतम पर्द मोंस में रंमण करने वाल हैं। आप निष्कांभी इच्छा रहित और श्रमन्त आत्मक गुणी के राजा-संग्रीट हैं। कोई भी मंद्रें प्राणी श्रीहर्मक गुणी का इच्छुंक ऑपकी स्वामी वना लेता है, वह मोक्ष के शास्वत सुखों में श्राराम करने वाला-निवास करने वाला वन जाता है। ११।

सकल जड-जंगम के सब ग्रुण-पर्यायों को तीनों कालों में आप जानते हैं, इसलिए आपको सर्व न्यापी कहा जाता है किन्तु पर द्रव्य के परि-ज्यामन स्वरूप में-पर द्रव्य मय होने में वही तत्वत्व-बही स्व स्वरूपत्व (ग्राह्मत्व) है क्या ? अर्थात् नहीं है क्योंकि ग्रापकी सत्ता तो ज्ञानमय है। अतः सर्व को जानने से सर्व व्यापकत्व सिद्ध नहीं होता है क्योंकि ज्ञानमय-चैतन्य ग्रन्य स्वरूपी नहीं वृन सकता है। यदि वह पर द्रव्यमय हो जावेगा तो वह श्रपने स्वरूप में नहीं रह सकेगा। इसलिए हे स्वामी ! ग्राप घ्रवपद रामी हैं।।२।।

मर्च व्यापकत्व के सम्बन्ध में वादी कहते हैं — क्रीय पदार्थ (जाना जाने वाला परार्थ) की अनेकता के कारण ही जान की अनेकता इस प्रकार है, जिस प्रकार अनेक जल पात्रों में सूर्य का प्रतिविम्ब अनेक रूप दिखाई पड़ता है, अर्थात् एक ही जान अनेक क्रोनें में पृथक-पृथक रूप में दिखाई पड़ता है। इसका उत्तर है— द्रव्य के एक होने के कारण उसका ग्रुण, भी एक ही होता है क्यों, कि गुण और ग्रुणी, अलग-अलग तहीं हैं। अपने ग्रुण में ग्रुणी का रमण करना--रहना ही क्षेम कुशलता है अर्थीत् स्वसत्ता में रहना ही आनन्द है—मुक्ति, है। पर परणित में वह एकत्व (ग्रुण-ग्रुणीका एकपना) स्थिर नहीं रहता है। इसलिए तो हे नाथ! श्राप ध्रुवपदामी हैं।।३।।

ज्ञान अन्य स्थान में रहने वाले ज्ञेय पदार्थः को उसी क्षेत्र में जानने से अन्य क्षेत्र में होने वाला हो जाता है। ज्ञान दूसरे क्षेत्र रूप हो जाता है। किन्तु आपने ज्ञान का अस्तित्व (विद्यमनता-मत्ता) अपने क्षेत्र में ही ज्ञान की निर्मलता के कारण ही बताया है। अन्य क्षेत्र में ज्ञान का अस्तित्व नहीं है। अनंत पर क्षेत्र के ज्ञेय अनन्त होन से ज्ञान के भी अनन्त रूप होंगे, अर्थात् एक आत्मा (ज्ञान) अनंत श्रेय रूप होने से वह स्वयं भी अनंत रूप होगी। तब फिर आत्मा (ज्ञान) का अपने क्षेत्र में अस्तित्व कैसे सम्भव होगा ?-श्रथात् नहीं होगा। ज्ञान की सत्ता तो अपने ही क्षेत्र में है। इसलिए हे नाथ! श्राप ध्रुवपदरामी हैं. ॥४॥

यदि ज्ञान ज्ञेय रूप हो जावेगा तो ज्ञेय (जानने योग्य पदार्थ) के नाश होने पर ज्ञान भी अविध सम्पन्न होने पर नष्ट हो जावेगा। अर्थात जिस ज्ञेय का एक समय ज्ञान हुआ वह ज्ञेय समय नष्ट होते ही नष्ट हो जावेगा। जब ज्ञेय नष्ट हो जावेगा तो ज्ञान भी, नष्ट हो जावेगा। जैसे घटादि पदार्थ नष्ट होते हैं, वैसे ज्ञान उनके साथ नष्ट नहीं होता अतः ज्ञान तो स्वकाल में-ध्रनंत पर्याय के समय ग्रथीत् त्रिकाल में अपनी सत्ता में ही विद्यमान रहता है। वह तो पर पर्याय रूप में नहीं जाता है अर्थीत् वह पर रूप नहीं होता है। इसलिए तो हे ज्ञानमय नाथ ! आप "घ्रुवपदरामी स्वामी माहरा" हैं।।।।।

फिर तर्क है—परभाव में परिएामन करते समय, पर रूप वन जाने पर भी ग्रात्मा को अपनी सत्ता में और स्थान में स्थिर कहते हो। (ग्रात्मा तो चतुष्कमयी ग्रान्त ज्ञान. दर्शन, चारित्र और वीर्य रूप चार ग्रात्म स्वभाव वाली है और ये चारों ग्रुए पर में (ज्ञेयमें) होते नहीं, अर्थात् चतुष्कमयी सत्ता परवस्तु—ज्ञेय में उसके नाज्ञमान होने के कारए स्थिर नहीं रह सकती है। तब फिर किस प्रकार से आत्मा को सब का जानने वाला कहते हो ? ॥६॥

तर्क-समाधान--श्रात्मा का एक ग्रुण 'अग्रुक लघु' (नहीं भारी नहीं हलका) है। आत्मा ग्रुपने इस 'अग्रुक्लघु' ग्रुण को देखते हुए सम्पूर्ण परद्रक्यों को देखता है। सम्पूर्ण द्रक्यों में छै साधारण ग्रुण विद्यमान हैं—१ अस्तित्व, २ वस्तुत्व, ३ द्रक्यत्व, ४ प्रमेयत्व, ५ प्रदेशत्व और ग्रुगक्लघुत्व। इन छै गुणों के कारण ही सम्पूर्ण द्रक्य साग्रभी--समानधर्भी हैं ग्रुर्थात् द्रक्यों में इन सामान्य गुणों की साधम्यंता है। इसिल्ये जिस प्रकार दर्पण और जल में वस्तु प्रति-विम्वत होती है जसी प्रकार ज्ञान में ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं और वे ज्ञान से जाने जाते हैं। यही ज्ञान का सर्व क्यापकपना है। इस प्रकार वह (ज्ञान) पर-परिणति में भी नहीं जाता है ग्रीर न वह नष्ट ही होता है क्यों कि दर्पण में ग्रुपिन का प्रतिबिम्ब पड़ने से दर्पण कभी जलता नहीं है—अग्नि रूप नहीं होता है। वह तो अपने प्रतिबिम्वत गुणों में सदा एक सा ही रहता है। यही ज्ञान का स्वभाव है।।।।।

हे पार्श्वनाथ जिनेश्वर ! आपको पारसमणी के समान कहा जाता हैं जो लोहे को छूकर सोना बनाने वाली है किन्तु श्राप तो वैसे पारसमणी नहीं हैं बल्कि आप तो ऐसे परिपूर्ण रिसक पारस हैं जो दूसरों को भी पारम बना देते हैं। आप उन श्रात्म गुणों से युक्त हैं जिन आत्म गुणों के स्पर्शमात्र से ही मुक्त में आनन्द का समूह आ गया है अर्थात् जो श्रात्म गुणों का स्पर्श करता करता है वह आनन्द का समूह पारस बन जाता है।।।

### श्री पाश्वं जिन स्तवन (२३) २

(शान्ति जन इक मुक्त वीनती-ए देशी)

पासिन ताहरा रूपन्ं, मुक्त प्रतिमास किम होय रे।

सुक्त मुक्त सत्ता एकता, ग्रचल विमल ग्रकल जोय रे।।पास०।।१॥

सुक्त प्रवचन वचन पक्ष थीं, निश्चय भेद न कोय रे।

विवहारे लिख देखियें, भेद प्रतिभेद बहु लोय रे।।पा०। २॥

संघन मोख नहीं निश्चयें, विवहारे भज दोय रे।

ग्रखंड ग्रनादि निवचल कदा, नित्य ग्रवाधित सोय रे।।पा०॥३॥

ग्रन्वय हेतु वितरेक थीं, ग्रांतरी तुक्त मुक्त रूप रे।

ग्रंतर मेटवा कारणें, ग्रांतरी तुक्त मुक्त रूप रे।।पा०॥४॥

ग्रांतर मेटवा कारणें, ग्रांतरी तहना भेद न एक रे।

ग्रांतर परमात्मता, ग्रुद्ध नय भेद न एक रे।

ग्रांतर प्रांतित धर्मर्खं तहना भेद ग्रनेक रे।।पा०॥४॥

घरमी घरमथी एकता, तह मुक्त रूप ग्रमेद रे।

एक सत्ता लख एकता कहे ते मूटमित खेद रे।।पा०॥६॥

ग्रांतम घरम ने ग्रनुसरी, रमें जे ग्रांतमाराम रे।

'ग्रांनन्दघन' पदवी कहें, परम ग्रांतम तस नाम रे।।पास०॥७॥

(२३)२ यह स्तवन श्रीज्ञानस।रजी कृत हैं। यह पर हमारी किसी और प्रतियों में नहीं है केवल श्रीज्ञानसारजी वाली प्रति में ही है। इस स्तवन का उन्होंने अर्थ किया है। हमारे पास वाली मुद्रित प्रतियों में भी यह स्तवन नहीं है अत: पाठान्तर नहीं दिये जा सके।

शब्दार्थ-पास = पार्श्वनाथ भगवान । ताहरा = तुम्हारे । प्रतिमास = भक्षं आभास साक्षात्कार । अकल = निराकार । विवहार = व्यवहारे, व्यव- हारनय। लोय रे = जीवलोंक में । मोख = मोक्ष । अवाबित = बाधा रहित । वितरेक = ब्यतिरेक, भेद, अन्तर, व्यतिरेक हेतु । आंतरो = अन्तर । अवर = अन्य, दूसरे । तेहना = उसके । तस = उसका ।

ग्रर्थ:—हे पार्वनाथ भगवान ! ग्रापके स्वरूप की भलक-साक्षात्कार मुक्ते किस प्रकार हो, यह मुक्ते वताइये। वापकी और मेरी सत्ता ग्रटल, विमल (मल रहित) और निराकार के कारण एक है-अभिन्न है।।१।।

उत्तर है—मेरे कहे हुये सिद्धान्तों के कथन के अनुसार निश्चय नय से तो कोई भेद (अन्तर) नहीं है। (यह परमात्मा है और यह जीवात्मा है— ऐसा भेद नहीं है) किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से तो अनेकांनेंक भेद हैं।।२।।

आगे फिर—वांस्तव में निश्चय नय की अपेक्षा से न बंध है और न मोक्ष हैं, किन्तु व्यवंहार नय की अपेक्षा से बंध और मोक्ष दो कहे जांते हैं। निश्चय नय से आत्मा तीनों कालों में सिद्धात्मा की अपेक्षा अखड़ है। ग्रात्मा अजन्मा होने से ग्रनादि है। आत्मा के स्वरूप का कभी अभाव नहीं होता अतः वह अविचल है। ग्रात्मा का कभी नाश नहीं होता अतः वह निश्य है (अमर है)। आत्मा अनादि होने के कारण उसके स्वरूप में कोई बाधा (क्कावट) नहीं ग्राती ग्रतः वह अवाधित है।।३।।

तुम्हारे और भेरे (परमात्मा के) स्वरूप में अभिन्नता और अन्तर अन्वय हेतु और व्यतिरेक हेतु के कारण से है। अन्वय हेतु से आत्म सत्ता है। इसिलये परमात्म सत्ता है। यह सत्ता ही अभिन्नता है। व्यतिरेक हेतु के कारण मेरे में (परमात्मा में) आवरण अभाव है, वह तेरे में भी होना चाहिये था किन्तु वह आवरण अभाव तेरे में नहीं है (तू शुद्ध, शुद्ध, श्वात्मा नहीं है) इमिलये तेरे में श्रीर मेरे में श्रन्तर(भेद)है। इस अन्तर(भेद)को दूर करने का एक मात्र कारण

<sup>\*</sup> अन्यव हेतु — जिसके होने पर, जो हो, वह अन्वय हेतु है और जिसके न होने पर, जो न हो, वह व्यतिरेक हेतु है। 'साधन' के होने पर 'साध्य' का होना अवश्यंभावी है। यह अन्वय हेतु है। 'साध्य' के अभाव में 'मावन' न होना, व्यतिरेक हेतु है।

श्रनुपम आत्मा स्वरूप ही है अर्थात् जव श्रावरण मुक्त हो कर अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लेवेगा तब यह अन्तर (भेद)नहीं रहेगा ॥४॥

आत्मत्व ग्रीर परमात्मत्व में निश्चय नय से को इ भेट (अन्तर) नहीं है। आत्मा और परमात्मा एक ही है। (जो आत्मता है वही परमात्मता है और जो परमात्मता है वही आत्मता है। स्वरूप में अन्तर नहीं है। आगम वाक्य है—'एगे आया'।) अन्य तो ग्रारोपित स्वरूप हैं—स्याति धर्म हैं। उन आयोपित धर्म के तो अनेक भेट हैं। (आत्मा कभी मनुष्य, कभी पद्यु, कभी पद्यों, कभी स्त्री, कभी पुरुष, कभी पिता, कभी पुत्र, कभी भाई, कभी वहिन, रूप में कहा जाता है। ये सब ग्रारोपित स्वरूप है। वास्तव में भारना तो आत्मा हो है।।।।।।

धर्मी(आहमा) चर्म (प्रात्मत्व) में एकता है अर्थात् धर्मी (सात्मा) को धर्म (स्वभाव) ने प्रलग नहीं किया जासकता है। वे एक साथ ही रहते हैं। जात्म धर्म सिहत जो आत्मा है उसके स्वरूप और मेरे में (परमाहम स्वरूप में) प्रभेद है — कोई अन्तर नहीं है किन्तु जात्मा की केवल मत्ता देखकर एकता चताना मूर्व बुद्धियों का दुराग्रह है।।६।।

जो आत्मा श्रारम धर्म (स्वभाव) का श्रनुसंरण करके—स्वीकार करके अपनी आत्मा में रमण करता है अर्थात् अपने आत्म स्वभाव में रहता है, वह आनंन्द घन पद में है और इस ही का नाम परमात्मा है ।।७।।

## श्री पाश्वं जिन स्तवन (२३) ३

प्रणमुं पाद-पंकज पार्श्वना, जल वासना भ्रगम भ्रनूप रे।
मोह्यो मन-मधुकर जेह थो, पामे निज शुद्ध स्वरूप रे ॥प्र०॥१॥
पंक कलंक शंका निह. नहीं खेदादिक दुख दोंप रे
विविध भ्रवंचक जोग थी. लहै भ्रष्यातम सुख पोष रे ॥प्र०॥२॥
दुरदशा दूरे टलें, भजे मृदिता मैत्री भाव रे

वरते नित चित मध्यस्थता, करूगमय शुद्ध स्वभाव रे।।प्र०।।३।।
निज स्वभाव स्थिर कर घरे, न करे पुरगलनी खंच रे
साखी हुई बरते सदा, न कहा परभाव प्रपंच रे।।प्र०।।४।।
सहज दशा निश्चय जगे, उत्तम अनुभव रसरंग रे
राचे नहीं परभावशुं, निज भावशुं रंग ग्रभंग रे।।प्र०।।४।।
निज गुण सव निज में लखें, न चखे परगुगानी रेख रे।
खीर नीर विवरों करे, ग्रं अनुभव हंस शुं पेख रे।।प्र०।।६।।
निविकल्प ध्येय अनुभवे, अनुभव अनुभवनी पीस रे।
भौर न कबहु लखी शके, 'आनन्दघन' प्रीत प्रतीत रे।।प्र०॥७॥

(३२) ३ श्री ज्ञानसारजी के अनुसार यह स्तवन श्रां देवचन्दजी कृत का अनुजान होता है। (भूमिका देखिये) यह स्तवन श्री पं॰ मंगलजी उद्धवजी शास्त्री सम्पादित गुजराती की पुस्तक से लिया गया है। श्रीर कहीं देखने में न आने के कारण पाठान्तर नहीं दिये जा सके।

शब्दार्थ — पाद — पंक ज = चरण कमल । जस = जिसकी । वासना = सुगंघ । अवम = अगम्य है । अतूप = अनूटी है । मन-मधुकर = मन रूपी भवरा। पंक = कीचड़ । दुरंदशा = बुरी अवस्था, मिध्यात्व । मुदिता = प्रसन्नता । खंच = खींचातानी । रांचे = धुल मिलना, मस्त होना । विवरो करै = निर्णय करना । पेख = देखना । पीस = अम्यास । प्रतीत = विश्वास ।

श्चर्य—तेवीसवें तीर्थं कर भगवान श्री पार्श्व नाथ के चरण कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ—वंदन करता हूँ। जिन चरण कमलों की सुगंधी ग्रगम्य है—जो जानी नहीं जा सकती है श्रीर अनूठी व अनुपम है। मेरा मन रूपी भ्रमर (मँवरा) प्रमु के ग्रण रूपी मकरंद में मोहित हो रहा है। ग्रनादि कालीन मलीनता छोडकर अपने शुद्ध स्वरूप की प्राप्त करता है। ।।११।

प्रभुश्री पार्श्वनाय के चरण कमल की सेवा. से कलंक — अशुम कर्म रूपी की वड के लगने की शंका भय-जरा भी नहीं है ग्रीर न राग-द्वेप जितत दुख, भावों की चंव जता, शुभ प्रवृतियों में अरोवकत्ता तथा प्रमाद से उत्पन्न खेद होने की शंका नहीं रहती है। इससे मन वचन, और काया के शुद्ध योग से आध्यात्मिक सुखों की प्राप्ती होती है।।२।।

श्री पार्श्व नाथ भगवान के स्मर्ण से निष्यात्व दशा दूर हो जाती है कीर प्रसन्नता, मैत्री भाव, मध्यस्थता (समता), कारूण्य भाव आदि शुद्ध स्वभाव मन में सदैव वने रहते हैं ॥३॥

श्री पार्व नाय भगवान की भक्ति से आत्मा अपने स्वभाव में स्थिरता सहज ही घारण कर लेती है और जडवस्तु—पुद्गल का श्राकर्षण नष्ट हो जाता है। इसके परवात श्रात्मा साक्षी भाव में रहता है श्रनात्मिक भाव —हर्ष शोकादि पर भावों का प्रपंच कदापि नहीं रहता है अर्थात् मोह के सनेकानेक प्रपंचजाल —जंजाल जरा भी नहीं रहते है।।४।।

भगवान श्री पाश्वंनाय की सेवा से आत्मा की स्वाभाविक दशा निश्चय ही जाग्रत हो जाती है ग्रीर ग्रनोखे अनुभव रस के रंग में मन भूलता रहता है। मन परभावों—पौदगलिक भावों में जरा भी नहीं फंसता है। वह तो केवल आत्म भाव में मग्न रहता है। प्रा

श्री पार्व नाथ भगवान के स्मणं से आत्मा अपने सम्पूर्ण गुणों को सपने में देखता है-अनुभव करता है और परभाव-पौर्गलिक राग-रस का जरा भी आस्वादन नहीं करता है। जिस प्रकार हंस पानी और दूध सहज ही अलग कर के दूध को प्रहण करता है उसी प्रकार आत्मा अनुभव ज्ञान से विभाव दशा छोड़कर अपनी स्वभाव दशा को ग्रहण करता है।।६।।

भगवान श्री पाश्वैनाथ की मिक्त से आत्मा अनुभव ज्ञान के अम्यास द्वारा उत्पन्न दशा से संकल्प विकल्प रहित श्रवस्या का श्रनुभव करता है। ऐसे शुद्ध स्वभवा की जाग्रित के विना श्रानन्द के समूह-परमादनदशा की कदापि प्रतीति नहीं होती है श्रथित् आनन्दस्वरूप परमात्मपद की प्राप्ति तो शुद्ध आदिमक स्वभाव के विना नहीं होती है ऐसा आनन्दघनजी कहते हैं।।७।।

# र्था महावीर जिन स्तवन (२४)१

(राग-धन्यासिरी)

विरली नं चरणे लागूं, वीरपणूं ते मांगू रे।

मिय्यानीह तिमिरभय मागू, जीत नगालं वाणूं रे ॥वीर०॥१॥

छटमच्छ वीरय लेस्या सगे, अमिसंवित नित अगेरे

मृछ्नयूल क्या नं रगे, योगी ययो उनगेरे ॥वीर०॥२॥

असल प्रवेसे वीर्य असले, जोग असित कंलेरे।

पृद्रतल मिरा तिणे त्येसु विरेखे, यथासकति मित लेखेरे। वीर० ।३॥

उत्तृष्टे वीरय नं वेसे, जोग क्रिया निव पेसेरे।

लोग तथी श्रुवता नं लेसे, आतम सगीन न खेसेरे । वीर०॥४॥

कामवीर्य वसे लिम मोगी, तिम आतम ययो मोगी रे।

मूण्यां आतम उपयोगी, णाइ तेहनं अयोगी रे ।वीर-॥४॥

वीरपणूं ते आतम ठाणे, जाष्यूं तुमयी वाणे रे।

श्रालवन मायन वे त्यांगे, पर परिणत में भांगे रे।

श्रालवन मायन वे त्यांगे, पर परिणत में भांगे रे।

(२४) १-यह स्तवन की कान विमन मूरि भी कृत कहा जाता है। इस मतवन पर भी उन की दीना नहीं हैं। हसार पाम की क्रम्म प्रतियों में यह स्तवन नहीं है। केवल की जान विमन मृति की वाकी प्रति में है और मृतित मीन प्रतियों में है। प्रजान्तर मृतित प्रतियों के विवे गये हैं (विशेष के लिये मृतिका देखें) पाठान्तर-बीर की नै=बीर निनेदनर (में, मा) दीर सीने(दि) हाउमस्त्र - हांटमस्य (में), हाउमस्य (मा), हाउमस्य (वि) दीर्य = बीरत (में मा)। एकन = मृत्य(में, मा, वि,)। खोदी = बीदी (मों, मा, वि,) । असंख = ग्रसंख्य (मं, मा, वि,)। सिण् = गंण (मं, मा, वि,) । तिणे = तेणं (मं, मा;)। लेंसु = लेजु (मं; मा,) । सकति = जित्ति (मं, मा,)। वीरय = वीरज (मं, मा,) । वेसं = वेखे (वि)जोगः = योग (मं, मा, वि,)। सगति = जित्ति (मं, मा,) । जिम = जेम (मं,मा,) । तिम = तेम (मं, मा,) । स्रपणे = स्रपणे (मं,)। थाइ = थाय (म, मा,)। थाये (वि,)। तेहने = तेह (मं, मा,)। जाण्यूं = जाण्युं (मं, मा,)। तुमथी = तुमची (मं, मा, वि,) आलंवन "संगेरे—यह पंक्ति 'वि' प्रति में नहीं है। परिणत = परिणतिने,)। विरागे = वैरागे (मं,मा,)।

शन्वायं — तिमिर = अंबकार । भागू = भागगया, दूर हो गया । बागू रे = वजरहा है । छउमच्छ=छद्मस्य । ग्राभसंघिज = ग्रात्म शुद्धि शी श्रीमलापा, योगभिजनित, विशेष प्रयत्न से उत्पन्न । सूछम = सूक्ष्म । यूल = स्यूल । कंषरे = कांक्षा, अभिलापा करते हैं सिएा = सेना । पेसेरे = प्रवेश करती है । खेसेरे = स्वलिख होती है, डिगती है, खिसकती है । विनाशे = विशान । विरागे = वैराग्य ।

श्चर्यं—में उन अंतिम तीर्थंकर दीर भगवान (महावीर भगवान).के चरणों में बंदना करता हूँ, जिनके मिध्यात्व मोहनीय रूप श्रंधकार का भय दूर हो गया है और जिनके कर्म-शृत्रुओं पर विजय के नगारे बजे हैं। ऐसे भगवान महादीर से मैं उनके जैसा ही दीरत्व मांगता हूँ जिस वीरत्व (शीर्यं) से उन्होंने कर्म-शृत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।।१।।

छद्मस्थ अवस्था में (मंदकपायी अवस्था में) क्षायोपशमिक वीयं (आत्मोल्लास) और शुभलेश्या के साथ अपनी अभिसंधिज (महुद्देश्य में प्रयतनशील) बुद्धि को उनका अंग (भाग) बनाकर, सूक्ष्म (आत्मिक-ध्यान) श्रीर स्यूल (व्यवहारिक-महाव्रतादिपालन) किया में रंगकर उमंग से श्री महावीर भगवान योगी हुये हैं ॥रं॥ (यह सयोगी केवली बनने का वर्णन है)

. असंख्य आतम प्रदेश में श्रसंख्य वीयं-श्रात्मवल है। इससे श्रसंख्य मन, वचन और काया के योगों की आकांक्षा होती है अर्थात् योगों की प्रवृत्ति होती है। उस योग प्रवृत्ति के वल से ग्रात्मा बुद्धि हारा यथा शक्ति पुद्गल सैना— कर्मवर्गणा की शुभ लेश्या से गणना करती है अर्थात् कर्मवर्गणा को ग्रथा-शक्ति ग्रहण करती है ।।३।। (यहाँ सयोगी केवली ग्रवस्था में योगों हारा कर्मवर्गणा ग्रहण का वर्णन है)

वास्मा योगों द्वारा कर्मवर्गणा की ग्रहण करती है यह ऊपर वताया गया है। किन्तु जो आत्मा च्त्कृप्ट वीर्य-आत्म-वल के प्रभाव में श्रा जाती है, उस आत्मा में योग-मन, वचन और कार्या का व्यापार प्रवेश नहीं पाता हैं अर्थात् उस आत्मा में योग प्रवृत्ति नहीं होती है, क्योंकि योगों की ध्रुवता-स्थिरता से आत्मा छेश मात्र भी आत्म-वल से खिसकती नहीं है—डिगती नहीं है।।४।। (यहाँ चौदवें ग्रुणस्थान में अयोगी श्रवस्था का वर्णन है)

जिस प्रकार भोगी-कामी व्यक्ति च्हिन्ट काम-वासना के वशीभूत होता है उसी प्रकार आहमा क्षायिकदौर्य से अपने ग्रुएों को भोगने वाल। है-ग्राह्मा में रमण करेंने वाला है। इस शौर्य ग्रुग से बाहमा उपयोगमय होकर अयोगी ग्रवस्था प्राप्त कर लेता है। ग्रुथीत सिद्ध ग्रवस्था प्राप्त कर लेता है।।।।

यह वीरत्व-शीर्य आत्मा में ही स्थित है। इस वात को मैंने आपकी (महावीर की) वार्ी से-उपदेश से (जो आगमों में है) जान लिया है। मेरी शक्ति के अनुसार मैंने घ्यान से और विशेष ज्ञान से (श्रृत ज्ञान से) अपने शांति रूप अचल स्थान-मोक्ष पद को पहचान लिया है।।६।।

पूर्ण दीर्योल्लास से-ग्रदम्य उत्साह से जिसने सम्पूर्ण वाह्य श्रीर ध्रम्यन्तर आलंदनों और साधन (साधना के सहायकों) को त्याग दिया और पर परणित-ग्रात्मा से भिन्न भावों को नष्ट कर दिया है, वही ग्रक्षय (कभी नष्ट न होने वाला), शांध्वत दर्शन ज्ञान श्रीर वैराग्य से (तटस्थटृत्ति से) आनंद से भरपूर-आनंदमय-प्रभु-(परमात्मा) रूप होकर जगृत रहता है। ग्रथीत् सिद्ध गरमात्मा ग्ररूपी द्रव्य आत्मा सदैव आत्मज्योति से दीप्यमान रहता है-जग्भगाता रहता है।।।।।।

### श्री महावीर जिन स्तवन (२४)२

(पंथडी निहालूं रे बीजा जिन तरगी रे-ए देसी)

साकारी विण ध्यान न समवेरे, ए श्रविकार श्ररूप । चरमः।।१।।

प्राप सरूपे श्रातम मां रमेरे, तेहना घुर वे भेद ।

श्रसंख उक्कोसं साकारीपदेरे, निराकारी निरभेद ।। चरमः।।२।।

श्रुष्णमनाम करम निराकार जे रे, तेह भेदे नहीं श्रंत ।

निराकार जे निरणत करमधीरे, तेह श्रभेद श्रनंत।। चरमः।।३।।

हूप नहीं कद्दमें वधन घट्यू रे, वध न मोख न कोय ।

बध मोख विण सादि श्रनंतन रे, भंग सग किम होय।। चरमः।।४।।

श्रुध्यविना तिम सत्ता निव लहे रे, सत्ता विण स्यो रूप ।

हूप विना किम सिद्ध श्रनंततारे, मान्नं श्रकल सरूप ।। चरमः।।४।।

प्रातमता परिणत जे परिणम्यारे, ते मुभ मेदाभेद ।

तदाकार विण मारा रूपनू रे, ध्यानुं विधि प्रतिषेद ।। चरमः।।६।।

श्रातमभव गहिणे तुभ भावनूं रे, भावस्यूं सुद्ध सरूप ।

तद्दमें 'श्रानंदघन' पद पांमस्यूरे, श्रातम रूप श्रनूप ।। चरमः।।।।।

(२४)२—यह स्तवन श्रीज्ञानसारजी कृत है। यह पर हमारी किसी और प्रतियों में नहीं है, केवल श्री ज्ञानसारजी वाली प्रति में ही है। इस स्तवन का उन्होंने श्रयं किया है। एक मुद्रित प्रति गुजराती में है, जो पं॰ मंगनजी उद्धवजी हारा सम्पादित है। उससे ही पाठांतर दिया गया है। इस प्रति में आनंदघनजी के नाम के दो स्तवन श्री पादवंनाय श्रीर श्री महावीर के और हैं वे भी आगे दिये जाते हैं। पाठां॰—जिऐसर = जिनेश्वर (मं)। सहप = स्वरूप (मं)। सहपे = स्वरूप (मं)। सहपे = स्वरूप (मं)। निरगत =

निर्गति । करमथीरे = कर्मथीरे (मं) । कइये = कहिये (मं) । मोख = मोक्ष (मं) । किम = केम (मं) । तिम = तेम (मं) । किम = केम (मं) । सरूप = स्वरूप (मं) । परिणित = परिएति (मं) । भवगहिएो = भगग्रहरेए (मं) । सुद्ध स्वरूप = बुद्ध स्वरूप (मं) । पामस्यू - पामशुं (मं) । आतम = अंतिम (मं) । शव्दार्थ — चरम = अंतिम । विगत = वीता हुआ । साकारी = ग्राकार वाला । अविकार = विकार रहित । धुर = प्रथम । वे = दो । उनकोसे = उत्कृष्ट । निरभेद = भेद रहित । सूखम = सूक्षम । निरगत = निर्गति । स्यो = कैसा । सद्ये = वह ।

कवि श्री आनंदघन जी श्रामे मन को उद्वोधित करते हैं—हे मेरे मनः शासन नायक अंतिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर के स्वरूप का चिन्त-वन कर—स्मर्णं कर। मन कहता है—अंतिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर विगत स्वरूपी हैं अर्थात् विना रूप—आकार के हैं—अरूपी हैं, अतः उनके स्वरूपं का किस भांति चिन्तवन—ध्यान कर सकता हूँ? क्योंकि आकार सहित रूप के श्रभाव में—विनां साकार श्रालंबन के ध्यान—चिन्तवन संभव नहीं है श्रीर भगवान श्री महाधीर तो श्रविकाधी और श्ररूपी है।।१।।

घात्मा अपने स्वरूप में-आत्म स्वभाव में रमण करता है अर्थात् घात्मा अपने स्वभाव में रमण करने वाला है। प्रथम धात्मा के दो भेदहैं। एक साकारी परमात्मा और एक निराकारी परमात्मा। साकारी परमात्मा के दो भेद हैं। एक तीर्थंकर केवली परमात्मा और सामान्य केवली परमात्मा साकारी परमात्मा उत्कृष्ट (अविक से अविक) असंख्य हैं शीर निराकारी परमात्मा (सिद्ध भगवान) भेद रहित हैं-अनंत हैं।।२॥ १००० १०००

<sup>\*</sup> जैन आगमों में तीथ करों की संख्या जवन्य (कम से कम) २० और उत्कृष्ट १७० और सामान्य केविल्यों की संख्या जवन्य दो करोड़ और उत्कृष्ट नी करोड़ वताई गई है। यह गणना असंख्य संख्या का ही एक भाग है अतः साकारी प्रमारमा को असंख्य कहने में कोई दोप-आपित नहीं है।

किन्तु एकं प्रकार से निराकारी परमातमा के दो भेद हैं-१ सूक्ष्म नाम कर्मी निराकार परमातमा की र २ निरगत कर्मी निराकार परमातमा ।

ं जो सूक्ष्म नाम कभी निराकार परमात्मा हैं उनके भेदों का कोई अंत नहीं है। निगंत कभी निराकार परमात्मा अभेदी और श्रनंत हैं अर्थात् अर्वे सिद्ध ग्रसंख्यान प्रदेशात्मक भिन्न मिन्न होने से अनंत हैं ॥३॥

यहाँ तक है—निगंत कमी निराका ने, अर्थात् श्ररूपी—रूप श्राकार रिहत—हैं। जब आस्मा के कोई रूप—श्राकार नहीं है तब उस के बंध भी नहीं होसकता है। वह तीनों कालों में ग्रवंध माना जावेगा। जब वंध (कमंबध) नहीं, तो मोक्ष (कमंब्रय) भी नहीं है। वंध श्रीर मोक्ष दोनों के विना निगंत—कर्मी निराकारो परमास्ना की 'सादि अनत' विभाग के साथ संगति कैसे. हो सकती है ? 11४11

जब कोई द्रव्य (पदार्थ) ही नहीं है तब उस की सत्ता कैंसी? अर्थात्रें द्रव्यं के विना उस की सत्ता नहीं होती है। सता के विना उसका रूप कैंसा? रूप के श्राभाव में सिद्ध अनंत वधों? अर्थात् रूप विना सिद्धों की अनंतता कैंसी? तब अकल स्वरूप का-श्रमूर्त का चिन्तवन-ध्यान कैसे करूं? ॥ ॥

भगवान का उत्तर है, (आगम माध्यम से)—मेरी आत्मा का परिएएं मन और परिएमित आत्मा अर्थात् आत्मता ये दोनों भिन्न भी हैं और प्रभिन्न भी हैं। तदाकार होकर—अपने आत्म स्वभाव में होकर मेरे (परमात्मा के) स्वरूप का ध्यान विधिवत है और जिना तदाकार हुये मेरे (परमात्मा के) स्वरूप का चिन्तवन—ध्यान प्रतिपेघ है—विजत है।।६।।

इस पर कवि कहते हैं—इस पंचम काल में तो तदाकार होकर चिन्त-वन करना ग्रसंभव है ग्रतः जब मैं अंतिम भव ग्रहण कर ग्रशांत अंतिमजन्म लेकर आपके परमात्म स्वभावका, ग्रुद्ध स्वरूप हो कर चिन्तवन करूंगा तब ग्रनुपम तथा आनंद समूह आत्मरूप-परमात्म पद की प्राप्त करूंगा ॥७॥

#### [- ३५४ ]

## श्री महावीर जिन स्तवन (२४)३

वीर निनेश्वर परमेश्वर जथो, जग-जीवन जिन भूप ।

प्रमुभव मित्ते रे दित्ते हितकारी, दाल्युं तास स्वरूप ।।वीर०।।१।।

नेह ग्रगोचर मानस वचन ने, तेह ग्रतीन्द्रिय रूप ।

प्रमुभव मित्ते रे व्यक्तित शक्तित शुं, नाल्युं तास स्वरूप ।।वीर०।।२।।

मय निलेपे रे जेह न जाणीग्रे, निब निहां प्रसरे प्रमाण ।

गुद्धस्वरूपे रे ते ब्रह्म दाखवे, केवल ग्रमुभव भारण ।।वोर०।।३।।

प्रखंड ग्रगोचर ग्रमुभव ग्रयंनो, कोण कही जाणे रे नेद ।

सहज विशुद्धये रे ग्रमुभवनयण ग्रे शास्त्रे, ते सवलों रे खेद

विशि देलाडी शास्त्र सिव रहे, न लहे ग्रगोचर वात । कारज सायक वायक रहित के, प्रमुभव मित्त विख्यात ।।वीर० ।४:। प्रहो चतुराई रे ग्रमुभव मित्तनी, ग्रहो तस प्रीत प्रतीत । ग्रंतरजामी स्वामी समीप ते, राली मित्र शुं रीत ।।वीर०।।६।। ग्रमुभव संगे रे रगे प्रभु मल्या, सफल फल्यां सिव काज । निजपद सेवक के ते ग्रमुभव रे, 'ग्रानंदयन' महाराज ।।वीर०।।७।।

(२४)३—यह स्तवन भी श्री ज्ञान सारजी के उस्लेखानुनार श्री देवर्चर वी संवेती कृत है। यह स्तवन भी श्री मंगल वी शास्त्री की पुस्तक से लिया हुआ है।

शकार्य—दास्तुं = कहानया है। देह = दो। अगोवर = नहींदेता-दा नके। तेह = उनका। व्यक्ति = व्यक्तिया हुआ, दताया हुआ। भास्युं = कहा नया। तास = उनका। भाग् = भागु, सूरदा। सुदलो = नदा। तानी = पास, निकट। फुट्यां = फुट्यां हुओ। सुदि = सदा। प्रवं—संसार के जीवन स्वरूप, सम्पूर्ण केवली अगवानों के प्रधिराज और परम ऐक्वर्य के स्वामी महावीर प्रमु की जय हो। ऐसे भगवान महावीर का स्वरूप जो सब के चित्त के लिये हितकारी है-अनुभव मित्र ने कहा है।।१,।

ंजो मन श्रीर वचनं से श्रर्थात् विचारं श्रीर वागी से नहीं जाना जा सकता ऐसे इ ट्रियों से न जानने योग्य महावीर का स्वरूप अनुभव मित्र ही जान सकता है, उसने ही (अंनुभव ने ही) उनके स्वरूप को प्रकट किया है 11711

जो नय-निक्षेपों से-नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शव्द, समिभिरूढ़ और एवंभूत -सात नया तथा नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव चार निक्षेपों से नहीं जाना जाता है। जिसके जानने में परोक्षादि ज्ञान की भी गति नहीं है। ऐसे शुद्ध स्वरूप परमात्मा को केवल ज्ञान रूप सूर्य ही बताने में समयें है क्यों कि यह रूप निरंजन, निर्विकल्य, निराकार, निरुपाधि है इसलिये वाणी श्रीर परोक्ष प्रमाण्दि की इसे प्रकट कुरने में गति नहीं है।।३।।\*

ऐसे श्रखंड, अगोचर (अलख) श्रनुभवगम्य परमात्मा के स्वरूप के भेद को की त कह सकता है अर्थात् कोई बता नहीं सकता है वह तो आत्मा की स्वामाधिक शुद्धि होने पर ही अनुभव ज्ञान से जाना जाता है । सम्पूर्ण शास्त्र भी उस स्वरूप को बताने में असमर्थ हैं ।।४।।

सम्पूर्णं शास्त्र तो केवल मार्गं दर्शन करके ही रहजाते हैं, किन्तु उस अगोचर स्वरूप को प्रकाश में नहीं ला सकते हैं। उस स्वरूप को प्रकाश में लाने के लिये तो कार्यं को सिद्ध करने वाला और वाधाओं रहित अनुभव जान-मित्र (सूर्य) ही प्रसिद्ध है।।।।।

<sup>\*</sup> यतोवाचोनिवर्तन्ते, न यत्र मनसोगतिः । शुद्धानुभववेभेद्यं, तद्रूपं परमात्मनः ॥ श्री यशोविजयजीकृत—परमज्योतिः पंचविशातिका ।

ऐसे अनुभव भित्र के साथ से परमात्म प्रमु प्राप्त हो गये-प्रमु से मेंट हो गई। और मनोबंद्धित सम्पूर्ण कार्य फ़लीमूत, हो गये अवर्गत आत्ता ने अपने स्वरूप को प्राप्त कर छिया। ग्रात्म स्वरूप को प्राप्त कर्रे हैं संस्कृत जो सेवक-भक्त हैं ये अनुभव ज्ञान द्वारा ग्राखंद ग्रानंद रूप चनते हैं ।।७।।



#### श्री जरगडजी द्वारा संपादित व संकलित ग्रन्थ :

- श्री देवचन्द्रजी कृत चतुर्विणति जिन स्तवन (अनुवाद और जीवन चरित्र सहित)
- २. प्रार्थना ग्रीर तत्वज्ञान
- श्री देवचन्द्रजी कृत स्नात्र पूजा (ग्रनुवाद ग्रीर परिणिष्ट सहित)
- ४. श्री देवचन्द्रजी कृत स्नात्र पूजा (ग्रनुवाद, परिशिष्ट ग्रीर जीवन.चरित्र सहित)
- ५. ग्रानन्दघन गंथावली (सरलार्थ सहित)

पुस्तक प्राप्ति स्थान:
विजयचन्द जरगड
जोहरी वाजार,
(इमली वाले पंसारी के ऊपर)
जयपुर - ३